ॐ

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधारयेत् ।
आत्मनः प्र[illegible]लानि परेषां न समाचरेत् ॥

श्री हिन्दी साहित्य-अभिधान

प्रथम अवयव

श्री बृहत् जैन शब्दार्णव

प्रथम खण्ड
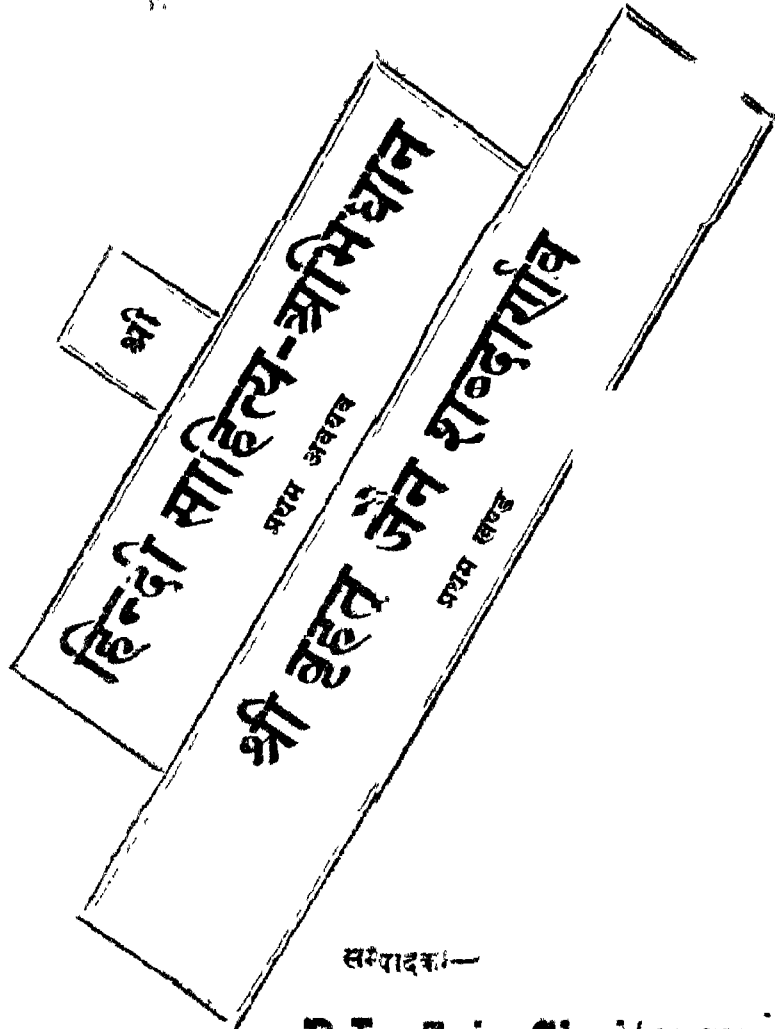
सम्पादक:—

B.L. Jain, Chaitanya.

बी० एल० जैन, चैतन्य (बुलन्दशहरी)

प्रथमावृत्ति

मूल्य ३।), [illegible] ४)

श्रीवीरनि०सं०२४५१
शुद्ध वीर नि० संवत्
२४७०

स्वल्पार्थ ज्ञानरत्नमाला के स्थायी
ग्राहकोंको २॥)में और अजिल्द ३=)में

Printed by [illegible] ri Prasada Shukl at the Desh Bandhu Press,
Bara Banki,

हिन्दी जैन गज़ट

कलकत्ता, शुक्रवार, पौष कृ० ८ वीर नि० सं० २४५१, ता० १९ दिसम्बर १९२४, वर्ष ३०, अङ्क १०

की

समालोचना।

बृहत् जैन शब्दार्णव।

रचयिता—श्रीयुत बा० बिहारीलाल जी जैन बुलन्दशहर निवासी। प्रकाशक—बा० शांतिचन्द्र जैन, बाराबङ्की। आकार बड़ा, कागज़ छपाई सफ़ाई आदि सभी उत्तम।

यह बहुत बड़ा जैनशब्द कोष अकारादि क्रम से लिखा जा रहा है। हमें समालोचनार्थ अभी प्रारम्भ से २०८ पृष्ठ तक प्राप्त हुआ है। इनमें केवल अकार पूर्वक शब्दों का ही उल्लेख है। २०८ वें पृष्ठ में 'अज्ञान-परीषह' शब्द आया है। जिस विवेचना शैली और विषयनिरूपण से इस ग्रन्थ का प्रारम्भ दीख रहा है उसे देख कर अनुमान होता है कि अभी केवल अकार निर्दिष्ट शब्द ही कई सौ पृष्ठ तक और जायँगे। फिर आकार, इकार आदि निर्दिष्ट शब्दों की बारी भी उसी विस्तार क्रम से आवेगी।

इस अकार निर्दिष्ट शब्द रचना से ही बहुत कुछ जैन शास्त्रों का रहस्य सुगमता से जाना जा सकता है। अक्षर स्वरूप, पदध्यान, अलौकिक गणित, इतिहास, कर्मस्वरूप निदर्शन, श्रुतविस्तार, द्वादशांग रचना, स्वर्गादि लोक रचना, गुणस्थान निरूपण, पर्वों की तिथियों के भेद विस्तार, चक्षुर्दर्शनादि उपयोग, अक्षीणादि ऋद्धियां इत्यादि अनेक पदार्थों का स्वरूप आदि केवल एक 'अ' नियोजित शब्दसे जाने जाते हैं। आगे जैसे २ इस महाग्रन्थ की रचना होगी उससे बहुत कुछ जैनधर्म निर्दिष्ट पदार्थों से एवं पुरातत्व विषयों का सूक्ष्म दृष्टि से परिज्ञान हो सकेगा।

इस प्रकार के ग्रन्थ की जैनसाहित्य में बड़ी भारी कमी थी जिसकी पूर्ति श्रीयुत मास्टर बिहारीलाल जी अपने असीम श्रम एवं बुद्धि विकास से कर रहे हैं। यह [illegible] साहब के अनेक वर्षों के मननपूर्वक स्वाध्याय का परिणाम है। इस महती [illegible] महोदय अतीव प्रशंसा के पात्र हैं। उनकी यह कृति जैनसमाज में तो आदर [illegible] से देखी ही जायगी साथ ही जैनेतर समाज भी उससे जैनधर्म का रहस्य सम[illegible] हुत बड़ी सहायता लेगा।

समस्त जैन बन्धुओं को चाहिये कि वे इस कोष को अवश्य मँगावें। हर एक भाई के लिये यह बड़े काम की वस्तु है।

—सहायक सम्पादक.

ॐ

कोष लेखक का संक्षिप्त परिचय ।

(१) जन्म—श्रीमान का जन्म संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध की मेरठ कमिश्नरी के बुलन्दशहर स्थान में जो काली नदी के बाएँ तट पर एक सुप्रसिद्ध नगर है शुभ मिती श्रावण शुक्ला १४ वि० सं० १९२४, वीर निर्वाण सं० २३९३ (शुद्ध वीर नि० सं० २४१२), ता० १५ अगस्त सन् १८६७ ई०, व १४ रबीउस्सानी सन् १२८४ हिजरी, दिन बुधवार की रात्रि को, श्रवण नक्षत्रोपरान्त धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथम चरण के प्रारंभ में कर्कार्क गतांश २९ पर कर्क लग्न में इष्टकाल घड़ी ५८। २५। ९९ पल शुभ मुहूर्त्त में हुआ।

कोषकार की जन्म कुंडली ।
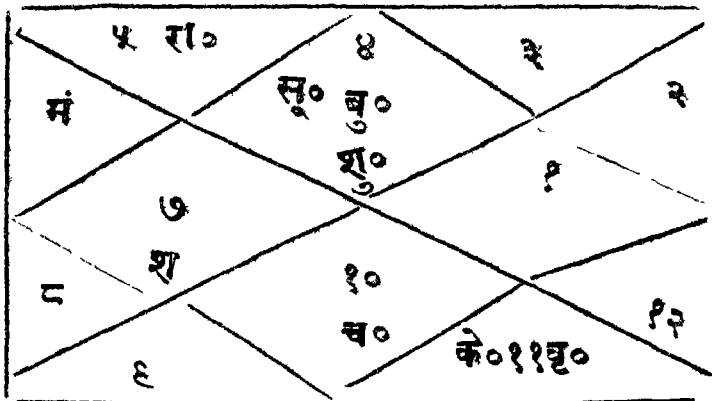
(२) कुल—आपका जन्म सूर्यवंशान्तर्गत अग्रवालवंश के मित्तल गोत्र में श्रीयुत ला० हज़ारीमल्ल के पौत्र और लाला मंगतराय के सुपुत्र श्रीयुत लाला देवीदास जी की धर्मपत्नी श्रीमती रामदेवी जी के गर्भ से हुआ।

नोट—आप अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। आपकी एक बड़ी बहन श्रीमती 'भगवती देवी' नामक अपने प्रिय पुत्र लाला पूर्णचन्द्र सहित भारतवर्ष की राजधानी देहली में निवास करती हैं। आपकी एक पुत्री श्रीमती कपूरी देवी हैं जो दिहली निवासी श्रीयुत ला० सनेही लाल जी के लघु पुत्र श्रीयुत लाला बाबू राम जी क्लर्क म्यूनिसिपल बोर्ड, म्यूनिसिपल ऑफ़िस देहली के साथ बिवाही गई हैं और दिहली ही में निवास करती हैं। आपकी एक बड़ी पुत्री स्वर्गीय श्रीमती बसन्ती देवी की एक पुत्री ज्ञानवती और दौहित्री मीनावती अर्थात् आपकी दौहित्री और दौहित्री की पुत्री भी आजकल दिहली ही में निवास करती हैं। आपके एक फुफेरे भाई श्रीयुत लाला ज्ञान चंद्र जी जो दिहली निवासी स्वर्गीय ला० जुगल किशोर जी के प्रिय पुत्र हैं अपने पुत्र पौत्रों ला० मंगल सेन आदि सहित आजकल पहाड़ी धीरज, दिहली ही में बज़ाज़े का व्यापार करते हैं। आपके प्रियपुत्र मुझ शान्तीशचन्द्र का विवाह संस्कार बिजनौर निवासी श्रीयुत लाला बद्रीदास जी जैन (भूतपूर्व वकील अदालत) की पितृव्य सुता (चचेरी बहिन) के साथ हुआ है।

वंशवृक्ष

- श्रीयुत लाला अरमल्ल जी (१)
  - १. ला० मुन्नालालजी
    - ला० नौबतरायजी
      - (१) ला० न्यादरमल
        - ला० अमोलकचन्द
      - (२) ला० मोतीराम
        - १. ला० प्रभानन्द
        - २. ला० निर्मलानन्द
        - ३. ला० भीमानन्द
  - २. ला० गोविन्दरामजी
    - ला० सालिगराम
      - ला० ज्वालाप्रसाद
  - ३. ला० हज़ारीमल्लजी (२)
    - ला० मंगतराय जी (३)
  - ४. ला० गोपालदासजी
    - १. ला० फ़क़ीरचन्द (कवि)
    - २. ला० भीखामल
  - ५. ला० जहांगीरी मलजी
    - (१) ला० कानजीमल
    - (२) ला० दौलतराम
      - ला० मटरूमल
        - ला० नानकचन्द (गोद)
    - (३) ला० मिट्ठनलाल
    - (४) ला० गिरधारीलाल
      - (१) ला० श्रोतीलाल
      - (२) ला० गुरुचरण
        - (१) ला० महावीरप्रसाद
        - (२) ला० जयप्रकाश
    - (५) ला० शिवलाल
  - ६. ला० सौदागरमलजी
    - (१) ला० रामदयाल
      - ला० भगवतीप्रसाद
    - (२) ला० रामकृष्ण
      - (१) ला० बाबूराम
        - (१) ला० शम्भुनाथ
        - (२) ला० मोहनलाल
      - (२) ला० कन्हैयालाल

ला० मंगतराय जी (३)
१. ला० दुर्गादास
२. ला० कल्याणदास
३. श्रीयुत ला० देवीदासजी (४)
४. ला० चिम्मनलाल
(१) ला० अमीचन्द्र (२) ला० बेनीप्रसाद
ला० राधेकृष्ण
ला० तुलाराम
श्रीयुत ला० बिहारीलालजी बी. टी.
(बी. एल. जैन, चैतन्य) (५)
शान्तीशचन्द्र (एस. सी. जैन)(६)
(१) चि. यतीशचन्द्र
(२) चि. लक्ष्मीशचन्द्र
ला० लक्ष्मी चन्द
(१) ला० मलूकचन्द (२) ला० होतीलाल (३) ला० मुरारीलाल (४) ला० नानक चन्द्र

(३) विद्याध्ययन--श्रीमान् का विद्याध्ययन जन्म से पंचमवर्ष में शुभ मिती माघ शुक्ला ५ वि० सं० १६२८ से प्रारम्भ हुआ। सन् १८८४ ई० में उर्दू मिडिल पास किया। इसी वर्ष में श्रीमान् के पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हो गया जिससे पैतृक धनादि के सर्वथा अभाव के कारण आगे के लिये विद्याध्ययन में बहुत कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तौ भी अपने पितामहके एक चचेरे भ्राता कविवरला०फ़क़ीरचन्द्रजी की कुछ सहायतासे तथाउर्दू मिडिल पास करने के उपलक्ष में मिले हुए गवर्न्मेंट स्कालरशिप और कुछ प्राइवेट ट्यूशन की आय से अपना और अपनी पूज्य माता जी का पालन पोषण करते हुए जिस प्रकार बना बुलन्दशहर हाईस्कूल से सन् १८८९ ई० में अंग्रेज़ी मिडिल, और सन् १८९१ ई० में फ़ारसी भाषा के साथ एंट्रेंस पास कर लिया।

उन दिनों सर्कारी स्कूलों में आज कल की समान उर्दू हिन्दी दोनों भाषाएँ साथ २ न पढ़ाई जाने के कारण एंट्रेन्स पास करने तक आपको हिन्दी भाषा में कुछ अभ्यास न था। धार्मिक रुचि अधिक होने और नित्यप्रति बाल्यावस्था ही से धर्मशास्त्र श्रवण करते रहने में दत्तचित्त रहने से हिन्दी भाषा सीखने की अभिलाषा होने पर भी एंट्रेन्स पास कर चुकने तक उसे सीखने का शुभ अवसर प्राप्त न हो सका। वरन् एंट्रेन्स पास करके अवसर मिलते ही थोड़े ही काल में हिन्दी भाषा में भी यथा आवश्यक स्वयम् ही अभ्यास करके मई सन् १८९२ से नित्यप्रति नियम पूर्वक शास्त्राध्ययन और शास्त्रस्वाध्याय का कार्य प्रारंभ कर दिया और तभी से यह भी प्रतिज्ञा कर ली कि "पर्याप्त योग्यता प्राप्त करने और अवसर मिलने पर अपनी मातृभाषा हिन्दी की सेवा जो कुछ बन पड़ेगी अवश्य करूँगा" ॥

(४) गवर्न्मेंटसर्विस—सन् १८९१ ई० में एंट्रेंस पास करने के पश्चात् लगभग दो वर्ष तक कलक्टरी के अङ्गरेज़ी दफ़्तर में तथा नहर गंग के व डिस्ट्रिक्ट एंजिनियर के ऑफ़िसों में अवैतनिक व सवैतनिक कार्य करके अन्त में शिक्षक विभाग को अपने लिये अधिक उपयोगी और उत्कोच आदि दोषों से मुक्त तथा विद्योन्नति व आत्मोत्कर्ष में अधिक सहायक समझ कर ५ सितम्बर सन् १८९३ ई० से गवर्न्मेंट हाईस्कूल बुलन्दशहर में केवल १२) मासिक के वेतन पर अध्यापकी का कार्य प्रारम्भ कर दिया जहां से लगभग १० वर्ष के पश्चात् वेतनवृद्धि पर सन् १९०३ में ता०३१ अक्तूबर को मुरादाबाद ज़िले के अमरोहा गवर्न्मेंट हाईस्कूल को बदली हो गई। इसी स्कूल से ता० १ जूलाई सन् १९०४ से ३० अप्रैल सन् १९०५ ई० तक १० मास के लिये डिप्यूट होकर गवर्न्मेंट सेंट्रल ट्रेनिंग कालिज, इलाहाबाद से अप्रैल सन् १९०५में शिक्षाविभाग का ट्रेनिंग पास करके और फिर इसी सन् के मई मास में स्पेशल वर्नेक्यूलर (हिन्दी उर्दू) में पास करके १० जूलाई सन् १९१७ तक लगभग १३ वर्ष तक उपरोक्त अमरोहा ग० हाईस्कूल में सहायक अध्यापकी का कार्य्य २०) के वेतन से ६०) के वेतन तक पर किया। पश्चात् ता० १० जूलाई सन् १९१७ को अवध प्रान्त के बाराबङ्की ग० हाईस्कूल को समान वेतन पर बदली हुई जहां कई बार वेतनवृद्धि होकर अब १२०) के वेतन पर इसी स्कूलमें सहायक अध्यापकी का कार्य कररहे हैं। और अब केवल ३ मास और रह कर ता० ३० जूलाई सन् १९२५ से पेंशनर होकर गवर्न्मेन्ट सर्विस के कार्य से मुक्त हो जायँगे।

(५) विवाहसंस्कार—उर्दू मिडिल पास करने के कुछ मास पश्चात् क़स्बा जेवर

निवासी श्रीयुत का० रामभरोसे की सुपुत्री श्रीमती सूर्य्यकला के साथ अक्तूबर सन् १८८४ में वाग्दान होकर फ़रवरी सन् १८८६ में लगभग २१॥ वर्ष की वय में शुभ मुहूर्त में श्रीमान् का विवाह संस्कार हुआ और एंट्रेन्स की परीक्षा दे चुकने पर सन् १८९१ ई० में द्विरागमन संस्कार हुआ जिससे लगभग २४ वर्ष की वय तक आपको अपना अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने में किसी प्रकार की बाधा न पड़ी।

६. सन्तान—(१) प्रथम पुत्री श्रीमती बसन्ती देवी का जन्म पौष शुक्ला १३ वि० सं० १९५०, जनवरी सन् १८९४ में (२) द्वितीय पुत्री श्रीमती कपूरी देवी का जन्म आषाढ़ शुक्ला ११ वि० सं० १९५३ में (३) तृतीय पुत्री श्रीमती चन्द्रावती का जन्म पौष कृ० ५ सं० १९५५ में (४) प्रथम पुत्र दयाचंद्र का जन्म भाद्रपद कृष्ण ३ सं० १९५८ में (५) द्वितीय पुत्र शान्तीशचंद्र का जन्म बैशाख कृ० १२ सं० १९६० में, और (६) तृतीय पुत्र नेमचन्द्र का जन्म भाद्रपद कृ० ६ सं० १९६३ में हुआ, जिनमें से द्वितीय पुत्री और द्वितीय ही पुत्र इस समय विद्यमान हैं। शेष का यथा समय स्वर्गारोहण हो चुका।

७. माता, पिता व धर्मपत्नी का स्वर्गारोहण—पिता का स्वर्गारोहण उर्दू मिडिल पास करने ही विवाह संस्कार से भी कई वर्ष पूर्व मिती श्रावण शुक्ला ५ वि० सं० १९४१ ही में हो गया और मातृश्री का स्वर्गवास उनकी लगभग ८० वर्ष की वय में मिती बैशाख शुक्ल ५ सं० १९७९ ता० २ मई सन् १९२२ में हुआ। धर्मपत्नी का स्वर्गारोहण केवल ३२ वर्ष की वय में फ़ाल्गुन मास वि० सं० १९६४ (मार्च सन् १९०७ ई०) में हुआ जबकि श्रीमान् की वय ४० वर्ष से भी कुछ कम थी। इतनी थोड़ी वय में ही धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो जाने पर भी श्रीमान् ने अपनी शेष आयु भर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने के विचार से अपना द्वितीय विवाह न किया।

८. ग्रन्थ रचना—जिस समय तक आप ने उर्दू मिडिल पास भी नहीं किया था तभी से आप के पवित्र हृदय की रुचि ग्रन्थ रचना की ओर थी और इसलिये स्कूली शिक्षा प्राप्त करते समय जो कुछ आप सीखते थे उसे यथा रुचि, आवश्यकीय नोटों द्वारा सुरक्षित रखते थे। आप की चित्तवृत्ति बाल्यावस्था ही से गणित की ओर अधिक आकर्षित रहने से इस विद्या में आप ने अधिक कुशलता प्राप्त कर ली थी। इस लिए हाईस्कूल में अंगरेज़ी भाषा सीखते हुए आप ने रेखा गणित और क्षेत्र गणित सम्बन्धी एक ग्रन्थ प्रकाशित कराने के विचार से पर्याप्त सामग्री संग्रहीत कर ली और एंट्रेंस की परीक्षा देने से ढाई तीन मास के अन्दर ही आप ने प्रेस में देने योग्य अपनी सब से पहिला 'क्षेत्र गणित' संबन्धी 'तशरीहुल मसाहत' नामक एक अपूर्व और महत्वपूर्ण ग्रन्थ उर्दू में लिख कर तैयार कर लिया जिसे द्रव्याभाव के कारण स्वयं न छपा सकने से एक मित्र द्वारा सन १८९१ ई० में ही प्रेस को दे दिया जिसका प्रथम भाग बड़े साइज़ के १९६ पृष्ठ में छपकर सन् १८९२ ई० में तईयार होगया और मित्र द्वारा प्रयत्न किये जाने पर नॉरमल स्कूलों में शिक्षा के लिये तथा हाईस्कूल आदि के पुस्तकालयों के लिये "यू० पी० की टैक्स्ट बुक कमेटी" (Text Book Committee, U. P. Allahabad.) से स्वीकृत भी हो गया।

इसके पश्चात् शिक्षा विभाग में गवर्मेंट सर्विस मिलते ही से आप ने पहिले उर्दू में

और फिर कुछ वर्ष पश्चात् हिन्दी में भी ग्रन्थ लिखना और यथा अवसर निज द्रव्य ही से प्रकाशित कराना प्रारंभ कर दिया जिनकी सूची निम्न लिखित है:--

(क) आपके रचित व स्वप्रकाशित उर्दू ग्रन्थ--

१. तहरीहुलमसाहत (प्रथमभाग)--रेखागणित व बीजगणित के प्रमाणों सहित एक क्षेत्रगणित सम्बन्धी अपूर्व ग्रन्थ। निर्माण काल वि० सं० १९४८, मुद्रणकाल १९४९।

२. दीबाचा हनुमानचरित्र नॉविल--निर्माणकाल वि० सं० १९४९, मुद्रणकाल १९५०।

३,४,५. हनुमानचरित्र नॉविल (तीन भाग)--हनुमान जी की जन्मकुण्डली व वंशावली आदि सहित अलंकृत गद्य में लगभग ४०० पृष्ठ का एक चित्ताकर्षक ऐतिहासिक उपन्यास। निर्माण काल व मु० काल १९५४, ५५, ५६, ५७।

६,७,८. हफ़्तजवाहर (तीन भाग)--वैद्यक, गणित, योग, सांख्य, आदि के कुछ सिद्धान्तों का पठनीय संग्रह लगभग १५० पृष्ठों में। निर्माण काल व मुद्रण काल वि० सं० १९५४, ५५, ५६, ५७।

९. रोमनउर्दू (प्रथम भाग)--बिना शिक्षक की सहायता के अपनी मातृभाषा उर्दू हिन्दी आदि को अंग्रेज़ी अक्षरों में लिखना पढ़ना सिखाने वाली एक बड़ी उपयोगी पुस्तक। निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १९५६, ५७।

१०. अम्मोलबूटी--एक ही सुप्रसिद्ध सुगम प्राप्य बूटी द्वारा अनेकानेक रोगों की चिकित्सा आदि सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण वैद्यक ग्रन्थ। निर्माण काल वि० सं० १९५६, मुद्रण काल १९५७, ५९, ६०। (४ संस्करण)

११. दवामीजंत्री--त्रिकालवर्ती अङ्गरेज़ी तारीख़ों के दिन और दिनों की तारीख़ें बताने वाली जंत्री। निर्माण व मु० काल वि० सं १९४८ व ५७।

१२. ख़ुलासा फ़वाइदज़राअत--कृषि विद्या सम्बन्धी एक संक्षिप्त ट्रैक्ट। निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १९५७, ५८।

१३. अन्मोलक़ायदा नं० १--त्रिकालवर्ती किसी अंग्रेज़ी ज्ञात तारीख़ का दिन या ज्ञात दिन की तारीख़ अर्द्धमिनट से भी कम में बड़ी सुगम रीति से ज़िह्वाग्र निकाल लेने की अपूर्व विधि। आविष्कार काल वि० सं० १९४८, मुद्रण काल १९५८।

१४. हकीम अफ़लातून--यूनान देश के प्रसिद्ध विद्वान् 'अफ़लातून' का जीवनचरित्र उस की अनेक मौलिक शिक्षाओं सहित। निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १९५९।

१५. फ़ादेज़हर (प्रथम भाग)--साँप, बिच्छू, बावला कुत्ता, आदि विषैले प्राणियों के काटने, डंक मारने आदि की पीड़ाओं को दूर करने के सहज उपाय। निर्माण काल १९५८, मुद्रण काल १९५८, व ६६ (दो संस्करण)

१६. फ़ादेज़हर (भाग २, ३)--अफ़यून, कुचला, भिलावा, आदि वनस्पतियों और संखिया, हड़ताल, पारा आदि धातुओं के विषैले प्रभाव का उतार आदि। निर्माण काल वि० सं० १९५९, मुद्रण काल १९६०।

१७. ज़मीमा अम्मोल बूटी--निर्माण काल व मुद्रण काल वि० सं० १९६०।

१८. भोज प्रबन्ध नाटक (प्रथम भाग)--राजनीति और धर्मनीति का शिक्षक, अलंकृत गद्यपद्यात्मक ड्रामा । निर्माणकाल व मुद्रणकाल वि० सं० १६६० ।

१९. गंजीनए मालूमात--सैकड़ों प्रकीर्णक ज्ञातव्य बातों का संग्रह । निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १६६० ।

२०. इलाजुल अमराज़--कुछ वैद्यक आदि सम्बन्धी चुटकुलों से अलंकृत एक पुस्तिका । निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १६६० ।

२१. हकीम अरस्तू--यूनान देश के प्रसिद्ध विद्वान् 'अरस्तू' (सिकन्दर महान का गुरु) का जीवनचरित्र उसकी अमूल्य शिक्षाओं सहित । निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १६६१ ।

२२. नशाली चीज़ें--मदिरा, अहिफेन, भंग, चरस, तमाकू आदि अनेक मादक दूषित पदार्थों के गुण दोष और हानि लाभादि । निर्माण व मुद्रण काल वि० सं० १६७२,७३ ।

२३. मौडर्नमेंटल अरिथमेटिक (प्रथम भाग)--नवीन शैली पर बालकों को शिक्षा देने वाला गणित सम्बन्धी एक साधारण पुस्तक । निर्माण व मुद्रण काल वि०सं० १९७३ ।

२४. अनमोल क़ायदा नं० २--त्रिकालवर्ती किसी हिन्दी मास की ज्ञात मिती का नक्षत्र या चन्द्रमा की राशि जिह्वाग्र निकाल लेने की सुगम विधि ।

(ख) आपके स्वरचित व अद्यापि अप्रकाशित उर्दू ग्रन्थः--

१. अग्रवाल इतिहास--सूर्यवंश की एक शाखा अग्रवंश या अग्रवाल जाति का ७००० वर्ष पूर्व से आज तक का एक प्रमाणिक इतिहास । निर्माण काल वि० सं० १९८० ।

(ग) आपके स्वअनुवादित व स्वप्रकाशित उर्दू व अंग्रेज़ी ग्रन्थ ।

१. भर्तृहरि नीतिशतक--अनुवाद व मुद्रण काल वि० सं० १९५५ ।

२. भर्तृहरि वैराग्यशतक--अनुवाद काल वि० सं० १६५५, मुद्रणकाल १६५५, १६६० । (दो संस्करण)

३. जैन वैराग्यशतक-- अनुवाद काल वि० सं० १९५६, मुद्रण काल वि० सं० १६५६, १९६० । (दो संस्करण)

४. सीताजी का बारहमासा--यति नैन सुखदास कृत बारहमासा उर्दू गद्य अनुवाद सहित । अनुवाद व मुद्रण काल वि० सं० १६५६ ।

५. योगसार--योगेन्द्राचार्यकृत 'योगसार' (ब्रह्मज्ञान का सार) का गद्य अनुवाद अनेक उर्दू फ़ारसी पद्यों से अलंकृत । अनुवाद काल वि० सं० १६५५, मुद्रण काल १९५६, १९८० । (दो बार)

६. चाणक्यनीति दर्पण--दोनों भाग का एक नीतिपूर्ण शिक्षाप्रद अनुवाद । अनुवाद काल वि० सं० १९५७ व मुद्रण काल १६५७, १६६० । (दो संस्करण)

७. प्रश्नोत्तरी स्वामी शंकराचार्य--शिक्षाप्रद साधारण अनुवाद । अनुवाद व मुद्रण काल वि० सं० १६५५ १६६० । (दो बार)

८. जैन वैराग्यशतक (अँग्रेज़ी)—अनुवाद काल वि० सं० १९६१, मुद्रणकाल १९६७।

(घ) आपके स्वप्रकाशित अन्य उर्दू ग्रन्थः—

१. सुदामाचरित्र—उर्दू पद्य में। मुद्रण काल वि० सं० १९५४।

२, ३, ४. मिथ्यात्व नाशक नाटक (३ भाग)—गद्यात्मक उर्दू भाषा में एक बड़े ही मनोरंजक अदालती मुक़द्दमे के ढँग पर जैन, आर्य, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि मत मतान्तरों के सत्यासत्य सिद्धान्तों का निर्णय। मुद्रण काल वि० सं० १९५६, ५७, ५८।

५. वैराग्य कुतूहल नाटक (२ भाग)—संसार की असारता दिखाने वाला एक हृदय ग्राही दृश्य। मुद्रण काल वि० सं० १९५८, १९६२।

७. रामचरित्र—सारी जैन रामायण का सारांश रूप एक ऐतिहासिक उपन्यास। मुद्रणकाल वि० सं० १९६२

(ङ) स्वरचित व स्वप्रकाशित हिन्दी ग्रन्थः—

१. हनुमान चरित्र नॉविल भूमिका (निज रचित उर्दू पुस्तक का हिन्दी अनुवाद)—इसमें वानर वंश और राक्षसवंश की उत्पत्ति और उनका संक्षिप्त इतिहास, वानरवंश के वंशवृक्ष व कई ऐतिहासिक फ़ुटनोटों सहित है। हिन्दी अनुवाद काल वि० सं० १९५२, मुद्रणकाल १९५३

२. अनमोल बूटी (निज रचित उर्दू भाषा की पुस्तक का हिन्दी लिपि में उल्था)—यह एक बड़ा उपयोगी वैद्यक ग्रन्थ है। हिन्दी अनुवाद व मुद्रण काल विक्रम संवत् १९७१।

३. उपयोगी नियम (शीट)—इस में सर्व साधारणोपयोगी हरदम कंठाग्र रखने योग्य चुने हुये ५७ धार्मिक तथा वैद्यक नियमों का संग्रह है। निर्माण व मुद्रणकाल वि० सं० १९७८

४. २४ तीर्थङ्करों के पञ्च कल्याणकों की शुद्ध तिथियों का तिथिक्रम से नक्षत्रों सहित शुद्ध तिथि कोष्ठ। निर्माण व मुद्रणकाल वि० सं० १९७८।

५. अनमोल विधि नं० १—त्रिकालवर्ती किसी अङ्गरेज़ी ज्ञात तारीख़ का दिन या ज्ञात दिन की तारीख अर्द्ध मिनट से भी कम में बड़ी सुगम रीति से जिह्वाग्र निकाल लेने की अपूर्व विधि। आविष्कार काल वि० सं० १९४८, मुद्रणकाल १९८०।

६. अनमोल विधि नं० २—त्रिकालवर्ती किसी हिन्दी मास की मिती का नक्षत्र या चन्द्रमा की राशि जिह्वाग्र निकाल लेने की सुगम विधि। मुद्रणकाल वि० सं० १९८०।

७. चतुर्विंशतिजिन पंचकल्याणक पाठ (एक प्राचीन सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि, पं० वृन्दावनजी की कृति का कल्याणक क्रम से सम्पादन)—सम्पादन काल वि० सं० १९८० मुद्रणकाल १९८१।

८. अग्रवाल इतिहास—सूर्यवंश की शाखा अग्रवंश या अग्रवाल जाति का ७००० वर्ष पूर्व

से आज तक का एक प्रमाणिक इतिहास । निर्माण काल वि० सं० १९७८, मुद्रण काल १९८१ ।

९. हिन्दी साहित्य अभिधान, प्रथमावयव, **'वृहत् जैन शब्दार्णव'** (जैन साइक्लोपीडिया (Jain Cyclopædia) प्रथम खंड—जैन पारिभाषिक व ऐतिहासिक आदि सर्वप्रकार के शब्दों का अर्थ उनकी व्याख्या आदि सहित बताने वाला महान कोष : निर्माणकाल का प्रारम्भ मिती ज्येष्ठ शु० ५ (श्रुत पंचमी) विक्रम संवत् १९५६, मुद्रणकाल सं० १९८२ ।

१०. हिन्दी साहित्य अभिधान, द्वितीय अवयव, "संस्कृत-हिन्दी व्याकरणशब्दरत्नाकर" (संक्षिप्त पद्य रचना व काव्य रचना सहित)--सिद्धान्तकौमुदी, लघुकौमुदी, शाकटायण, जैनेन्द्र व्याकरण आदि संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ,बहुतसे हिन्दी व्याकरण ग्रन्थ, और छन्द प्रभाकर, वाग्भटालंकार, नाट्यशास्त्र, संगीतसुदर्शन, आदि अनेक छन्दालंकार आदि ग्रन्थोंके आधार पर उनके पारिभाषिक शब्दोंकी सरल परिभाषा उदाहरणादि व अङ्गरेज़ी पर्याय वाची शब्दों सहित का एक अपूर्व संग्रह । निर्माणकाल वि० सं० १९८१, मुद्रणकाल वि० सं० १९८२ ।

११. हिन्दी साहित्य अभिधान, तृतीयावयव, "वृहत् हिन्दी शब्दार्थमहासागर", प्रथम खण्ड हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले सर्व शब्दों के पर्याय वाची संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, अङ्गरेज़ी शब्दों और उनका अर्थ व शब्दभेद आदि बताने वाला अकारादि क्रम से लिखा हुआ सर्वोपयोगी एक अपूर्व और महानकोष । निर्माणकाल वि० सं० १९८१, मुद्रणकाल वि० सं० १९८२ ।

(च) आपके स्वसंपादित व जैनधर्म संरक्षिणी सभा अमरोहा द्वारा प्रकाशित हिन्दी ग्रन्थ:—

१. जैनधर्म के विषय में अजैन विद्वानों की सम्मतियां प्रथम भाग—सम्पादन काल व मुद्रण काल वि० सं० १९७१

२. जैनधर्म के विषय में अजैन विद्वानों की सम्मतियां द्वितीय भाग--सम्पादन काल व मुद्रण काल वि० सं० १९७६

(छ) आपके स्वरचित, अनुवादित और अद्यापि अप्रकाशित हिन्दी ग्रन्थ:—

१. प्रकीर्णक कविता संग्रह—निर्माण काल वि० सं० १९७०-७१

२. जैन विवाह पद्धति (भाषा विधि आदि सहित)--निर्माण काल वि० सं० १९७१

३. जम्बू कुमार नाटक--वैराग्य रसपूर्ण स्टेज पर खेलने योग्य गद्यपद्यात्मक एक बड़ा मनोरंजक ऐतिहासिक नाटक । निर्माण काल वि० सं० १९७२,७३

४. आश्चर्यजनक स्मरणशक्ति--ता० २२ मई सन् १९०१ ई० के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र

पायोनियर (Pioneer) के इंडियंस ऑव टुडे (Indians of Today) अर्थात् "आजकल के भारतवासी" शीर्षक लेख और स्वर्गीय मि. वीरचन्द गान्धी लिखित "स्मरणशक्ति के अद्भुत करतब" (Wonderful Feats of Memory) शीर्षक लेख का हिन्दी अनुवाद। अनुवाद काल वि० सं० १९५६।

(ग) आपके स्वरचित व अद्यापि अपूर्ण हिन्दी ग्रन्थः-

१. विज्ञानार्कोदय नाटक--ज्ञान सूर्योदय या प्रबोधचन्द्रोदय के ढँग का एक आध्यात्मिक नाटक। निर्माण काल का प्रारंभ वि० सं० १९७२।

२. हिन्दी साहित्य अभिधान, चतुर्थावयव, "बृहत् विश्व चरितार्णव"--अकारादि क्रमसे पृथ्वीभर के प्राचीन व अर्वाचीन प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों (तीर्थंकरों, अवतारों, ऋषिमुनियों, आचार्यों व सन्तों, पैगम्बरों, इमामों, हकीमों, फ़िलॉसफ़रों, ज्योतिर्विदों, वैद्यों, गणितज्ञों, देशभक्तों व चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री आदि राजाओं, व दानवीरों आदि) का संक्षिप्त परिचय दिलाने वाला एक ऐतिहासिक कोष। निर्माण काल का प्रारंभ वि० सं० १९७५।

३. हिन्दी साहित्य अभिधान, पञ्चमावयव, "लघु स्थानांगार्णव"--विश्वभर के अगणित पदार्थों, तत्वों, द्रव्यों या वस्तुओं की गणना और उनके नामादि को एक एक, दो दो, तीन तीन, चार चार, इत्यादि संख्यानुक्रम से बताने वाला एक अपूर्व कोष। निर्माण काल का प्रारंभ वि० सं० १९७८।

४. विश्वावलोकन--दुनिया भरके सप्ताश्चर्यादि अनेकानेक आश्चर्योत्पादक और विस्मय में डालने वाले प्राचीन या नवीन ज्ञातव्य पदार्थों का संग्रह। निर्माण काल का प्रारंभ वि० सं० १९७९।

६. रचनाओं के कुछ नमूने--

(१) पद्यात्मक हिन्दी रचना

(क) 'प्रकीर्णक कविता संग्रह' से---

१. सप्त दिवस की सम्पदा, अवगुण लावे सात।
काम क्रोध मद लोभ छल, तथा वैर अरु घात॥
पर यदि परउपकार में, धन खर्चो मन खोल। सप्त गुणनकर युक्त जो, सो नर रत्न अमोल॥
क्षमा दया औदार्य अरु, मार्दव मनसन्तोष। चेतन आर्जव शान्ती सहितजो वह निर्दोष॥

२. अशुभ कर्म अँधियार में, साथ देय कुइ नाँहि।
चेतनछाया मनुष को, तजे अँधेरे माँहि॥

३. कड़ुए वचन तिहुँकाल में, सज्जन बोलत नाँहि। चेतनयों विधना रचे, हाड़ न जिह्वा माँहि।

४. बहु सुनबो कम बोलबो, यह है परम विवेक। चेतन यों विधिने रचे, कानदोय जिभ एक

५. जन्म समय सब कुटुम्ब जन, तुहि रोवत लख वीर।
हर्षित हो फूले फिरैं, होयँ न कछु दिलगीर॥
तिनके अनुचित कार्यका, क्यों नहिं बदला लेहु। मरण समय अवसर मिलै, ऐसे काम करेहु॥

चेतन पर उपकार से, बांधो सबको आज।
जाओ हंसते स्वर्ग को, रोता छोड़ समाज॥

६. वस्तु नशीली हैं जिती, सबही हैं दुख मूल।
चेतन इनको त्याग कर, सब पर डालो धूल॥

७. रे मन ढूंढै क्यों ना, तेरे इस घट में बोलता है कौन॥ टेक॥
जाकु तू ढूंढत फिरै रे, वह नहीं है कहुँ और।
वहतो तेरे उर बसै रे, क्यों नहीं करता गौर॥ रे मन ढूंढै......॥ १॥
नगर ढँढोरा नैं दियो रे, बगल में छोरा तोर।
फिर क्यों तू भटकत फिरत रे, तुझ में तेरा चोर॥ रे मन ढूंढै...... ॥ २॥
मन्दिर मसजिद तीर्थ सब रे, नित नित ढूंढत जाय।
तन मन्दिर नहीं एक दिन रे, खोजा चित्त लगाय॥ रे मन ढूंढै......॥ ३॥
वन जङ्गल परबत उदध रे, बचा न कोई एक।
पता न प्यारे को लगा रे, थक रहा बिना विवेक॥ रे मन ढूंढै......॥ ४॥
चेतन चित इत लाय कर रे, घट के पट अब खोल।
निश्चय दर्शन होयगा रे, जो मन करे अडोल॥ रे मन ढूंढै......॥ ५॥

(ख) 'विज्ञानार्कोदय नाटक से—

८. **'त्रिभुवन'** नामक देश इक, जिसका वार न पार।
राज्य करे चेतन पुरुष, ताही देश मँझार॥
चौरासी लख जाति के, नगर बसैं तिस देश।
सदा सैर तिनकी करे, सुख दुख गिनै न लेश॥
निज रजधानी 'मुक्तपुर' दीनी ताहि बिसार। काया तम्बू तान के, जाने निज आगार॥

'पुद्गल' रमणी रमण से, पुत्र हुआ **'मन'** एक।
'सुमति' 'कुमति' दोउ नारि सँग, कौतुक करै अनेक॥
कभी सुमति संग रमत है, कभी कुमति के सँग।
विषयवासना उर बसी, नित चित चाव उमंग॥
चार पुत्र 'सुमती' जने, प्रबोधादि गुणखान। 'कुमती' मोहादिक जने, पांच पुत्र अज्ञान॥

(ग) जम्बूकुमार नाटक से—

९. ज़माना रङ्ग बदलता है॥ टेक॥
जिस घर प्रातःकाल युवतियां गावहीं मंगलचार।
सायंकाल उसी घर में बहती अँसुवन की धार।

कर्म की यही कुटिलता है। किसी का वश नहीं चलता है। ज़माना रंग बदलता है॥ १॥

कल जिनको हम प्रेम दृष्टि से, समझे थे सुखकार।
आज उन्हींसे प्रेम तोड़कर, जान लिये दुखभार॥

मन की कैसी चंचलता है, विचलता कभी सम्हलता है। ज़माना रंग बदलता है॥ २॥

कभी काम के वश में फँस कर तकें पराई नार।
कभी प्रबल अरि कामदेव को जीत तजें निज दार॥

आज मनकी दुर्बलता है, कलह चित की उज्जलता है॥ ज़माना रंग बदलता है॥ ३॥

कोई पराये धनके लालच, मुसें पराया माल।
कोई अपन धन दौलत को भी, जानें जी जंजाल॥

लोभ में चित्त फिसलता है, साथ कुछ भी नहीं चलता है॥ ज़माना रंग बदलता है॥ ४॥

तन धन सब **चेतन** हैं चंचल, एक अटल **जिन** नाम।
कुछ दिन का जीवन जगमें है, शीघ्र करो निज काम॥

मनुषभव यही सफलता है। मौतका समय न टलता है॥ ज़माना रंग बदलता है॥ ५॥

(१०) जम्बूकुमार की एक स्त्री--

मम प्रीतम प्यारे प्राणाधारे, ज़रा तो इधर नज़र कर देख।
हम रूपवती, लावण्यवती, तुम प्राणपती दिल भरकर देख॥

जम्बूकुमार---

कौन है साथी किसका जगमें, दारा सुत मित सबही ठग हैं, सेठ दुलारी चित धर देख।
तन धन यौवन सब असार है, बिजली का सा चमत्कार है, अय बेखबर समझ कर देख॥

दूसरी स्त्री--

क्यों हमको छोड़ो मुंह को मोड़ो, दया को चित में धर कर देख।
लेश न दुख है भोगन सुख है, निश्चय नहीं तो कर कर देख॥
मम प्रीतम प्यारे प्राणाधारे, ज़रा तो इधर नज़र कर देख।
हम रूपवती लावण्यवती तुम प्राणपती दिल भर कर देख॥

जम्बूकुमार---

भोग विलासों में क्या रस है, क्षण २ खिसके तन का कस है, चित में ज़ेर ज़बर कर देख।
विषय भोग सब कड़े रोग हैं, त्याग करें बुध सो निरोग हैं, निश्चय नहीं तो कर कर देख॥
कौन है साथी किसका जगमें, दारा सुत मित सब ही ठग हैं, सेठ दुलारी चित धर देख।
तन धन यौवन सब असार है, बिजली का सा चमत्कार है, अय बेखबर समझ कर देख॥

तीसरी स्त्री---

बन में जाओ दुःख उठाओ फिर पछताओ समझ कर देख।
बन की ठोकर झेलो क्योंकर दिल को ज़रा पकड़ कर देख॥ मम प्रीतम प्यारे......॥

जम्बूकुमार---

मात पिता सुत सुन्दर नारी, अन्त समय कुछ साथ न जारी, चारों ओर नज़रकर देख।

यह जग सब सुपने की माया, सुख सम्पति सब तरवर छाया,इसको हिरद्य धरकर देख ॥
कौन है साथी......॥

११. एक चोर (जम्बूकुमार की माता को दुखी देखकर)—

ग़म खायना, घबरायना, तेरा हम से लखा दुख जायना ।
क्यों रोवै, जलावे, सतावे जिया, ग़म खायना, घबरायना ॥ तेरा० ॥
ज़र दौलत, धन सम्पत, इस पै लानत, हमको इसकी तनक अब चाह ना,
परवाय ना, ग़म खाय ना, घबराय ना, तेरा हमसे लखा दुख जाय ना ॥

माता मत देर करो चलके दिखादो हमको ।
चलके उस पुत्र से अब भेंट करादो हमको ॥
मुझको आशा है कि मन फेर सकूंगा उनका ।
जो न मानेंगे तो मैं साथी बनूंगा उनका ॥

दुख पायना, ग़म खायना, तू मन में तनक घबरायना ॥ तेरा० ॥

(२) गद्यात्मक हिन्दी रचना

(क) जम्बूकुमार नाटक से—

१. सूत्रधार (स्वयं)-अहोभाग्य है आज हमारा । उठत उमंग तरंग अपारा ॥
देख देख मन हर्षित होई । ज्ञानी गुनि सज्जन अवलोई ॥

अहाहा ! आज इस मंडप में कैसी शोभा छा रही है , वाह वा ! कैसी बहार आरही है । यहाँ आज कैसे कैसे विद्वान्, ज्ञानी और महान पुरुषों का समूह सुशोभित है, जिन का अपने अपने स्थान पर सुयोग्य रीति से आसन जमाये बैठना भी, अहा ! कैसा यथोचित है ।

(उपस्थित मंडली से)—महाशयगण ! आप जानते हैं यह संसार असार है । इस का वार है न पार है । यहाँ सदा मौत का गर्म बाज़ार है । फिर इसमें अधिक जी उलझाना निपट बेकार है ॥ जो इसमें जी उलझाते हैं, मनुष्य आयु को बेकार गंवाते हैं । पीछे पछताते हैं और अन्त समय इस दुनिया से यूंही हाथ पसारे चले जाते हैं । सभ्यगण ! लक्ष्मी स्वभाव ही से चंचल है । इसके स्थिर रहने का भरोसा घड़ी है न एक पल है । संसार में भला कौन साहस के साथ कह सकता है कि यह अटल है । यह इन्द्रियों के विषय भोग भोगते समय तो कहने मात्र रसीले हैं । पर निश्चय जानिये अपनी तासीर दिखाने में काले नाग से भी कहीं अधिक विषीले हैं ॥ जीतव्य पानी के बुलबुले के समान है । जिसको इस रहस्य का यथार्थ ज्ञान है उसी का निरन्तर परमात्मा से ध्यान है । वास्तव में ऐसे ही महान पुरुषों का फिर सदा के लिये कल्याण है ॥

मान्यवर महाशयो ! आपने नाटक तो बहुत से देखे होंगे पर पाप मोल लेकर दाम व्यर्थ ही फेंके होंगे । किन्तु इस समय जो नाटक आपको दिखाया जायगा, आशा है कि उससे आप में से हर व्यक्ति परम आनन्द उठायगा । संसार की असारता और लक्ष्मी आदि की क्षणकता जो इस समय थोड़े से शब्दों में आपको दर्शाई है उसी की हू बहू तसवीर खींचकर इस अमूल्य नाटक में दिखाई है जिसमें आपका खर्च एक पैसा है न पाई है । कहिये महाशयगण ! कैसी उपयोगी बात आपको सुनाई है ।

२. चोर--माता जी, क्या बताऊं ! मैं एक चोर हूँ नामी, कभी देखी नहीं ना कामी। विद्युतचोर मेरा नाम है, चोरी करना मेरा काम है। धन की चाह से यहां आया, पर अभाग्यवश अवसर न पाया। इसीलिये निराश हो पीछे क़दम हटाया।

जिनमती (बड़ी उदासी से)--अरे ! यह बहुतेरी पड़ी है माया, इसे मत जान माल पराया। जितनी उठाया जाय उठा ले, मन खूब ही रिझाले, ले जाकर चैन उड़ा ले।

चोर-माता जी ! तुम क्यों मुझे बनाती हो, मुझे क्यों शरमाती हो।

जिनमती-नहीं नहीं बेटा ! मुझे यह धन दौलत और मालमता अच्छा नहीं लगता मेरे सब कुछ पास है, पर मन इस से उदास है।

चोर (अचम्भे से)-क्यों, आपका मन क्यों इतना हिरास है। मैं भी बहुत देर से खड़ा देख रहा हूँ कि आपका दिल सचमुच हैरान परेशान और बदहवास है।.........

३. जम्बूकुमार-मान्यवर मामा जी, आप भूलते हैं। ज़रा विचार कर तो देखिये कि यह सर्व सांसारिक विभव और मन लुभावने भोग विलास के दिन के सुहाग हैं। ज्ञानियों की दृष्टि में तो यह सचमुच काले नाग हैं। दुनिया की यह सुखसम्पत्ति, यह मनोहर रागरंग, यह अटूट धनसम्पदा, यह जवानी की उमंग, यह देवांगनाओं की समान स्त्रियों के भोगविलास, यह सारा कुटुम्ब परिवार केवल दो चार दिन की बहार है। बिजुली का सा चमत्कार है। वास्तव में सब असार बल्कि दुखों का भण्डार है। स्वपने की सी माया है, जिसने इसमें मन लगाया है, दिल उलझाया है उसने कभी चैन न पाया है। उल्टा धोखा ही खाया और पीछे पछताया है।

विद्युतचोर-कुंवरजी ! तुमने जो कुछ बताया वह वास्तव में ठीक समझाया है। पर यह तो बताओ कि इसके त्याग में भी किसी ने कब सुख उठाया है?......

(ख) भोजप्रबंध नाटक से--

(१) बस यही इक़्वाल उमूर हैं जिन पर अमल करना शाहानेवेती को पुरज़रूर है। यही रमूज़े सल्तनत की जान हैं, यही मूजिबेतौक़ीरोशान हैं, और यही वसीलए आरामो आसायशे हरदोजहान हैं......

(२) मुंज-वत्सराज, उस काम का बस तुम ही पर सारा दारोमदार है।

वत्सराज-महाराज, इस ख़ादिम के लायक़ जो काम हो उससे इसे क्या इन्कार है। ख़ादिम तो आपका हर दम तावेदार व फ़र्माबरदार है।

मुंज—हां बेशक, मैं जानता हूं कि तू ही मेरा मुहिब्बेगमगुसार है। तू ही हर [illegible] राहत में मेरा शरीक व राज़दार है।

वत्सराज—हां हां, जो काम इस नियाज़मन्द के लायक़ हो बिलातामुल इरशाद फ़रमाइये। यह ख़ादिम तो हरदम आपका साथी व मददगार है।......

(३) मुंज--क्यों क्या सोच विचार है?

वत्सराज--महाराज, भोज ऐसा क्या ख़तावार है?

मुंज--बस यही कि वह बड़ा होनहार है। मुमकिन है कि किसी वक़्त सल्तनत का दावेदार बन कर मुक़ाबिले के लिये तैयार हो जाय। मेरे लिये यह क्या कुछ कम ख़ार है?

वत्सराज--महाराज, वह तो अभी महज़ एक तिफ़्ले नातजुरबेकार है। उस के पास न कोई लश्करेजर्रार है और न उस का कोई हामी व मददगार है। फिर आप का दिल इतना क्यों बेक़रार है?......

(४) भोज (वत्सराज के हाथ में नंगी तलवार देख कर)--अरे अरे मग़रूर! यह क्या गुस्ताख़ी है। क्या तेरी अक़्ल में कुछ फ़ितूर है?

वत्सराज--(अफ़सोसनाक लहजे में)--हुज़ूर! यह नमकख़्वार महज़ बेक़सूर है। राजा के हुक्म से मजबूर है।

भोज--क्यों, राजा को क्या मंज़ूर है?

वत्सराज-- आप को होनहार पाकर राजा का दिल बदी से भरपूर है। आप को क़त्ल कराना चाहते हैं। इसी में उनकी तबीअत को सुरूर है।

भोज (कमाल इस्तिक़लाल व तहम्मुल से)--हाँ अगर हमारे चचा साहिब को यही मंज़ूर है तो फ़िलहक़ीक़त तू बेक़सूर है। मुंशिये क़ज़ा व क़द्र ने क़लमे क़ुदरत से जिस के सुफ़हए पेशानी में जो कुछ लिख दिया है उसी का यह सब ज़ुहूर है। उसका मिटाना इमकानेबशरी तो क्या, फ़रिश्तों की ताक़त से भी दूर है। इसलिये अय वत्सराज जो कुछ फ़रमानेशाही है उसका बजा लाना ही इस वक़्त तुम्हारे लिये पुर ज़ुरूर है।......

(ग) हनुमानचरित्र नॉविल (उर्दू) से--

(१) इस मुक़ाम का सीन इस वक़्त देखने वालों की नज़र को बहिश्त का धोखा दे रहा है। वह देखिये ना, मन्दिरों में लोगबाग कैसी भक्ति और प्रेम के साथ पाको साफ़ अशयाय हश्तगाना (अष्टद्रव्य) से भगवत्पूजन में मसरूफ़ हैं। कोई आबेमुक़त्तर और गंगाजल नुक़रई व तिलाई झारियों में लिये हुए संस्कृत नज़्म में (पद्य में) बुलंद आवाज़ से अजीब दिलकश लहजे के साथ परमात्मा की स्तुति करते हुए प्रार्थना कर रहे हैं कि "अय परमात्मा! आप हमारे नापाक दिलों को वैसा ही पाक और पवित्र कीजिये जैसा यह जल पाक व शफ़्फ़ाफ़ है।" कोई मलियागिरि सन्दल सुफ़ेद......।

(२) मेघपुर के बाहर एक वसीअ मैदान में जहां थोड़ी देर पहिले सन्नाटा छाया हुआ था अब ग़ज़ब ही का हैबतनाक सीन नज़र आ रहा है। एक जानिब राक्षसों की फ़ौज के दल के दल छाये पड़े हैं जिनके बर्क़सिफ़त घोड़ों की रग रग में भरी हुई तेज़ी उन्हें चुपचाप नहीं खड़ा होने देती। बेचैन होहो कर उछलते कूदते और कनौतियां बदल रहे हैं। मस्त हाथियों की क़तारें दुश्मनों को अपने एक ही रेले में रौंद डालने और उन की जानों का ख़ातमा करने के इन्तिज़ार में खड़ी हैं जिन पर नेज़ाबरदार बैठे हुए अपने आ़सितों नेज़े और ख़ूँबहा भाले हवा में चमका रहे हैं। सुबह के आफ़ताब की तिरछी किरनें

इन चमकते हुए नेज़ों और खिंची हुई तलवारों पर कुछ घबरा घबराकर पड़तीं और परेशान हो होकर इधर उधर फैल जाती हैं। दूसरी जानिब फ़ौजी लोग ज़राबक्तर पहिने और हथियार बांधे...... ।

(३) असाढ़ का महीना है और बरसात का आग़ाज़। शाम का वक़्त है और मानसरोवर का किनारा। हर चहार तरफ़ क़ुदरती सब्ज़ा लहलहा रहा है और रंगबरंगे फूल खिल रहे हैं। ठंडी ठंडी हवाओं के झोंके अजीब मस्ताना अन्दाज़ से झूम झूम कर चलते और नाज़ुक २ फूलों की भीनी भीनी ख़ुशबुओं में बसकर कुछ ऐसे अठलाते फिरते हैं कि ज़मीन पर पाउँ तक नहीं रखते। मानसरोवर का पानी हवा के झोंकों से हिलकोरे ले लेकर लहरें मार रहा है। कोयलें ऊँचे २ दरख़्तों पर बैठी हुई कुहक कुहक कर कूक रही हैं। जुगनू (खद्योत) इधर उधर चमकते फिरते और इस मौसिम के क़ुदरती चौकीदार झींगर और मेंढक ख़ुशी में आ आ कर अपनी भरी हुई आवाज़ें निकाल रहे हैं।......

(४) रात के आख़िरी हिस्से का वह सुहाना २ वक़्त है जब कि नसीमेसहर की ठंडी २ सनक से बेअक़्ल दुनिया दार लोग तो और भी ऐंड २ कर सोते हैं मगर जो लोग इस रूह अफ़ज़ा (चित्तोल्लासक) वक़्त की ज़ाहिरी व बातिनी ख़ूबियों से कुछ भी वाक़िफ़ हैं वह इस बेशबहा (अमूल्य) वक़्त को ग़नीमत जान कर फ़ौरन आँखें मलते हुए उठ बैठते हैं और माबूदेहक़ीक़ी (परम पूज्य) की याद में अपने अपने मज़हबी अक़ीदे के मुआफ़िक़ कुछ न कुछ देर के लिये ज़रूर मसरूफ़ हो जाते है, बल्कि जिन्हों ने दुनिया की उल्फ़तों (मोह-ममता) को दिल से निकालकर हुसूले-मारफ़त (आत्मरमण प्राप्ति) के लिये गोशःगुज़ीनी (एकान्तवास) इख़्तियार करली हैं उनका तो कुछ हाल ही न पूछिये। इन से तो नींद की ख़ुमारी तक भी कोसों दूर भाग जाती है।......

(५) इस वक़्त रातकी तारीकी (अँधेरी) बानरबंशियों की पस्तहिम्मती की तरह दुनिया से रुख़सत हो रही है। आफ़ताब (सूर्य) जिसके नूरानी चिहरे पर कल शाम न मालूम किस ख़ौफ़नाक ख़याल से ज़रदी छा गई थी और जिसने अपनी गर्दन अहसान फ़रामोशों (कृतघ्नियों) की तरह नीचे झुकाकर दामनेमग़रिब (पश्चिम दिशा) में अपना मुंह छिपा लिया था रात ही रात में आज सारी दुनिया का तवाफ़ (परिक्रमा) करके अपनी गर्दन मुतकब्बिराना (अभिमानयुक्त)ऊँची उठाए हुए आगे बढ़ा आरहा है ।

(१०) अन्यान्य विशेष ज्ञातव्य बातें—

१. आप जैन समाज में एक सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। जैनधर्म संरक्षिणी सभा **अमरोहा** ज़िला मुरादाबाद के लगभग १२ वर्ष तक (जब तक अमरोहा रहे), और जैनसभा, **बाराबङ्की** के १ वर्ष तक आप स्थायी सभापति के पद पर भी नियुक्त रह चुके हैं।

२. आप **'श्री ज्ञानवर्द्धक जैन पाठशाला'** और **'बी० एस० परोपकारक जैन औषधालय' अमरोहा** के और **'जैन औषधालय' बाराबङ्की** के मूल संस्थापक हैं, "परोपकारक जैन औषधालय, **अमरोहा**" के लिये आप ने

५००) रु० स्वयं देकर और लगभग ५००) रु० का अन्य भ्रातृगण से चन्दा एकत्रित करके उसके एक स्थायी खाते की नीव डाली और आगे को स्थायी फण्ड बढ़ते रहने तथा उसे सुयोग्य रीति से चलते रहने का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया। आप जब तक अमरोहा रहे तब तक वहां की पाठशाला और औषधालय दोनों के **आनरेरी संचालक व प्रबन्धक** रहे। और **बाराबङ्की** आते ही से यहां की पाठशाला के भी अब से ३ मास पूर्वतक(६वर्ष)आनरेरी प्रबन्धक रहे। और यहांके जैनऔषधालय को स्थापित करके उसके अभी तक भी आनरेरी संचालक और प्रबन्धक हैं।

३. आप हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, और अँगरेज़ी, इन चारों भाषाओं का अच्छा परिज्ञान रखते हैं।

४. आप जैन धर्मावलम्बी होने पर भी न केवल जैन गृन्थों ही के अच्छे मर्मज्ञ और अभ्यासी हैं किन्तु वैदिक, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, आदि अनेक धर्मों और व्याकरण, गणित, ज्योतिष, वैद्यक आदि कई विद्याओं सम्बन्धी सैकड़ों सहस्रों गृन्थों का भी निज द्रव्य व्यय से संगृह कर उनका यथाशक्ति कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करते रहे हैं। जिससे लगभग ६ हज़ार छोटे बड़े सर्व प्रकार के गृन्थों का अच्छा संग्रह होकर इस समय आपका एक **'ज्ञानप्रचारक'** नामक बड़ा उपयोगी निज पुस्तकालय **अमरोहा** में विद्यमान है।

५. लगभग ५८ वर्ष के वयोवृद्ध होने पर भी आप अब भी बड़े ही उद्यमशील और परिश्रमी हैं। गवर्न्मेंट सर्विस में रहते हुए भी रात्रि दिवस **हिन्दी साहित्य वृद्धि** के लिये जी तोड़ परिश्रम करनाही आपका मुख्यध्येय है। उनकेअनेकानेकविषयों सम्बन्धी ज्ञान और अटूट परिश्रम का प्रमाण इनके लिखे ५० से अधिक हिन्दी, उर्दू ग्रन्थ और मुख्यतः हिन्दी साहित्याभिधान के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, अवयव **'वृहत् जैन शब्दार्णव'** (जो लगभग १०, १२ सहस्र से भी अधिक बड़े साइज़ के पृष्ठों में पूर्ण होगा) और "संस्कृत-हिन्दी व्याकरण शब्द-रत्नाकर" आदि गृन्थ हैं। [नं० (क) ६, १० ११, (ज) २, ३, पृ० ११, १२]

६. आप सन् १८६७ से १६०५ तक (आठ नव वर्ष तक) बुलन्दशहर से प्रकाशित होने वाले एक उर्दू **मासिक-पत्र के सम्पादक** और उस के अधिपति भी रह चुके हैं॥

७. आप केवल हिन्दी उर्दू के लेखक या कवि ही नहीं हैं किन्तु ज्योतिष, वैद्यक, रमल, यंत्र-मंत्र, आदि में भी थोड़ा थोड़ा और गणित में अच्छा अभ्यास रखते हैं॥

८. बाराबङ्की हाईस्कूल को ट्रांस्फर होने पर लेखन सहायक पर्याप्त सामग्री (गृन्थ आदि) यहां साथ न लासकने के कारण आपने यहां केवल १ मास काम करने के पश्चात् ही दो वर्ष की फ़र्लो (Furlough) छुट्टी ले ली और अमरोहा रह कर कोषादि लिखने का कार्य नित्यप्रति १५ या १६ घंटे से भी अधिक करते रहे। इस

छुट्टी के अतिरिक्त और भी कई बार एक एक, दो दो, तीन तीन मास की छुट्टियां ले लेकर अपना अधिक समय ग्रन्थलेखन कार्य ही में व्यय करते रहे हैं ॥

९. आपने ग्रन्थावलोकन और लेखन कार्य नित्यप्रति अधिक समय तक भले प्रकार कर सकने की योग्यता प्राप्त करने के लिये २० या २१ वर्ष की वय से ही रसनेन्द्रिय को वश में रख कर थोड़ा और **सात्विक भोजन** करने का अभ्यास किया और २४ वर्ष की वय से पूर्व अपना **द्विरागमन संस्कार** भी न कराया। और पश्चात् भी बहुत ही परिमित रूप से रहे जिसका शुभ फल यह हुआ कि सन् १८९७—९८ ई० में सरकारी ड्यूटी, और वेतन की कमी के कारण चार पांच घंटे नित्य का प्राइवेट ट्यूशन, तथा गृहस्थधर्म सम्बन्धी आवश्यक कार्यों के साथ साथ मासिक-पत्र के सम्पादन आदि का अधिक कार्य बढ़ जाने से **केवल डेढ़ दो घंटे** ही नित्य निद्रा लेने पर भी परमात्मा की कृपा से कोई कष्ट आदि आप को न हुआ और अब तक भी ४-५ घण्टे से अधिक निद्रा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

१०. अनेक ग्रन्थावलोकन और ग्रन्थलेखन कार्य के लिये अधिक से अधिक समय दे सकने के विचार से आपने अपना सरकारी वेतन केवल ४०) रु० मासिक हो जाने परही संतोष करके प्राइवेट ट्यूशन का कार्य कम कर दिया, अर्थात् तीन चार घंटे के स्थान में अब केवल घंटे सवाघंटे ही का रख लिया और उसी समय (सन् १९१३ ई० में) यह भी **प्रतिज्ञा** करली कि "६०) रु० मासिक वेतन होजाने पर प्राइवेट ट्यूशन करना सर्वथा त्याग दिया जायगा"। अतः सन् १९१६ ई० से जबकि आपका वेतन ६०) रु० होगया आपने निज प्रतिज्ञानुसार अपनी २००) रु० वार्षिक से अधिक की प्राइवेट ट्यूशन की रही सही आय का भी मोह त्याग दिया।

११. कोष के संग्रहीत शब्दों की व्याख्या आदि लिखना प्रारंभ करने के समय वि० सं० १९७९-८० (सन् १९२३-२४ ई०) में आप **सात्विक वृत्ति** अधिक बढ़ाने के विचारसे सवा वर्षसे अधिक तक केवल सेर सवासेर गोदुग्ध पर या केवल कुछ फलों पर नमक और अन्न आदि सर्व त्याग कर सर्कारी कार्य करते हुए शेष समय में कोष लिखने का कार्य भी भले प्रकार करते रहे। अब भी आपका भोजन छटाँक डेढ़ छटाँक अन्न और आध सेर तीन पाव दुग्ध से अधिक नहीं है।

शान्तीशचन्द्र जैन

(बुलन्दशहरी)

बाराबङ्की ।

ता० २०, अप्रैल १९२५

समर्पण

भगवन् ! यह संसार असार है। इसका कुछ वार है न पार है। इसमें निर्वाह करना असाधारण कठिनाइयों को सहन करते हुए नाना प्रकार के स्पर्द्धायुक्त व्यवहारों की घुड़दौड़ में बाज़ी लगाना किसी साधारण बुद्धि का कार्य्य नहीं। जिसने अपने वास्तविक जीवनरहस्य को समझा और अपने आत्मबल से काम लिया वह मानों चारों पदार्थ पागया। सच पूछिये तो उसने बालू में से तेल निकाल लिया, गगनकुसुम को हस्तगत कर लिया और उसके लिये कुछ भी असंभव न रह गया। परन्तु यह कार्य्य कथन करने में जितनाही सरल और बोधगम्य है उतनाही कार्यरूप में परिणत होने पर कठिन तथा कष्टसाध्य सिद्ध होता है। इसके लिये तो आपके चरण कमल के संस्पर्श से पवित्र हुए मृदु-मन्द-मलयानिल के साथ गुंजार करने वाली मुनि भ्रमरावली के मधुर गुंजार का सहारा ही अपेक्षित है। अथवा आपके नखचन्द्र की अमल चन्द्रिका को प्राणपण से इकटक निहारने वाले चातकाचार्यों के वचनामृत ही एक अलौकिक जीवन का संचार कर सकते हैं। यही समझ कर इस अनुपम पंथ का पान्थ बना, और विविध शास्त्र-पारीण उन ऋषि मुनियों की लगाई अनेक वाटिकाओं में—जो आपके निगूढ़ तत्वों के विविध प्रकार के नयनाभिराम पुष्पों से पुष्पित हैं--अनवरत विहार करने को प्रयाण कर दिया। इसीके फल स्वरूप यह "बृहत् जैनशब्दार्णव" प्रस्तुत है। इसमें मेरा निज का कुछ नहीं है। ज्ञानका औचित्यपूर्ण विशद भंडार तो सनातन से एक रस और समभाव से प्रसारित है। इसीलिये मैं कैसे कहूँ कि मैंने एक नवीन कृति लोगों के सन्मुख रक्खी है। मुझे यह कहने का अधिकार नहीं, फिर भी आपकी विशिष्ट-सृष्टि पुष्पावली में से जो कुछ पत्र पुष्प एकत्रित करके एक साधारण सी डाली सजाई है वह आदर पूर्वक किन्तु संकोच से आप के पावन पाद-पद्मोंमें परम श्रद्धा तथा भक्ति के साथ चढ़ाने का साहस करता हूं। आप वीतराग हैं, आपके लिये इसकी कुछ भी आवश्यक्ता नहीं, परन्तु इस भक्त की ओर तनिक देखिये और उसके साश्रु नयन, प्रकम्पित शरीरऔर गद् गद् वाणीयुत साग्रह तथा सानुरोध प्रार्थनाहीकेनाते उसे अपनाइये। भगवन ! आपका पदार्थ आपको हीसमर्पितहै। इसे आपहीअपने पवित्रहाथोंसे अपनेभक्तोंके सन्मुखउपस्थितकीजिये।

॥ इति ॥

आपके चरणों का एक तुच्छ
भक्त
बी० एल० जैन, चैतन्य

हिन्दी जैन गज़ट

[१६ दिसम्बर सन् १६२४ ई०]

की

इसी बृहत् कोष की समालोचना

पीछे इसी कोष के पृष्ठ २ पर देखें

वीर

के

इसी वर्ष के विशेषांक (अङ्क ११, १२ वर्ष २)

में

प्रकाशित

इस बृहत् कोष के सम्बन्ध

में

श्रीयुत मि० चम्पतराय जी बैरिस्टर-एट-ला, हरदोई

की

सम्मति

"इस बहुमूल्य पुस्तक का पहिला भाग अभी छपा है और उसे मैंने पढ़ा है। वास्तव में यह अपने ढँग का निराला कोष होगा जो सब बातों में परिपूर्ण (Comprehensive and Exhaustive) होगा। कमसे कम इसके विद्वान् लेखककी नीयत तो यही है कि इसे जैन ऐनसाइक्लोपीडिया (Jain Encyclopædia, विश्वकोष) बनाया जावे। लेखक की हिम्मत, विषद् उत्साह, परिश्रम, खोज और ख़ूबी की प्रशंसा करना वृथा है; स्वयं इस शब्दार्णव के पृष्ठ उनकी प्रशंसा पूर्णतयः कर रहे हैं! मैंने दो एक विषयों को परीक्षा की दृष्टि से देखा। लेख को गुंजलक तथा पेचीदगी से रहित पाया। उसमें मुझे दिखावे के पांडित्य की नहीं प्रत्युत वास्तविक पांडित्य ही की झलक नजर आई। यह कोष श्रीयुत मास्टर बिहारीलाल जी की उम्र भर की मिहनतका फल है। यूं तो उन्होंने और भी बहुतसे ट्रैक्ट लिखे हैं परन्तु प्रस्तुत कृति अपने ढँगमें अपूर्व है।"

ॐ

कोषकार का वक्तव्य
और
नम्र निवेदन

इस कोष जैसे महान् कार्य को हाथ में लेना यद्यपि मुझ जैसे अति अल्पज्ञ और अल्प-बुद्धी साधारण व्यक्ति के लिये मानो महासमुद्र को निज बाहुबल से तिरने का दुःसाहस करना है तथापि जैन समाज में अतीव आवश्यक होने पर भी ऐसे कोष का अभाव देख कर और यह विचार कर कि "मैं अपने जीवन भर में कम से कम यदि शब्द-संग्रह करके उन्हें अकारादि क्रम से लिखदेने का कार्य ही कर लूँगा तो अपने लिये तो अनेक ग्रन्थों की स्वाध्याय का परम लाभ होगा और शब्द संग्रह अकारादि क्रम से हो जाने पर जैन समाज के कोई न कोई धुरन्धर विद्वान् महानुभाव उन शब्दों का अर्थ आदि लिख कर इसकी चिर-वाञ्छनीय आवश्यक्ता की पूर्ति कर देंगे", मैंने शब्द संग्रह करने का कार्य प्रत्येक विषय के अनेकानेक जैन ग्रन्थों की स्वाध्याय द्वारा शुभ मिती ज्येष्ठ शु० ५ (श्रुत पंचमी) श्री वीर-नि० सं० २४२५ (शुद्ध वीर नि० सं० २४४४) वि० सं० १९५६ से प्रारम्भ कर दिया। और जैन ग्रन्थों का पर्याप्त भण्डार संग्रह करने में बहुत सा धन व्यय करके रात दिन के अटूट परिश्रम द्वारा **लगभग पांच सहस्र जैन पारिभाषिक शब्द और लगभग डेढ़ सहस्र जैन ऐतिहासिक शब्द संग्रह करके और उन्हें अँगरेज़ी कोषों के ढँग पर अकारादि क्रम से लिख कर** मैंने इसकी एक सूचना जैन-मित्र में प्रकाशनार्थ भेज दी जो ता० १६ नवम्बर सन् १९२२ ई० के जैनमित्र वर्ष २४ अङ्क ३ के पृष्ठ ४०, ४१, ४२ पर प्रकाशित हो चुकी है, जिसमें मैंने अपनी नितान्त अयोग्यता प्रकट करते हुए जैन विद्वन् मण्डली से सविनय प्रार्थना की थी कि वह इस महान् कार्यको अर्थात् संग्रहीत शब्दों का अर्थ और व्याख्यादि लिखने के कार्य को अब अपने हाथ में लेकर उसे शीघ्र पूर्ण करने या कराने का कोई सुप्रबन्ध करे। इस प्रार्थना में मैंने यह भी प्रकट कर दिया था कि मैंने यह कार्य पारमार्थिक दृष्टि से स्वपरोपकारार्थ किया है, अतः मैं अपने सर्व परिश्रम और आर्थिक व्यय का कोई किसी प्रकार का बदला, पुरुस्कार या पारितोषिक आदि पाने का लेशमात्र भी अभिलाषी नहीं हूं। केवल यही अभिलाषा है कि किसी न किसी प्रकार मेरे जीवनही में यह कार्य पूर्ण होजाय तो अच्छा है। उस लेखमें मैंने इस कोष की तैयारी के लिये शब्दार्थ आदि लिखे जाने की एक संक्षिप्त "स्कीम" [Scheme] अपनी बुद्ध्यनुसार दे दी थी। मुझे आशा थी कि जैन विद्वन् मण्डली, या किसी संस्था अथवा दानवीर सेठों में से किसी न किसी की ओर से मुझे शीघ्र ही यथोचित कोई उत्तर मिलेगा जिसके लिये मैं कई

मास तक बड़ा उत्कंठित रहा किन्तु शोक के साथ लिखना पड़ता है कि मेरी इस प्रार्थना पर किसी ने तनिक भी ध्यान न दिया। तब निराश होकर नितान्त अयोग्य होने पर भी मैंने ही इस कार्य को भी यह विचार कर प्रारम्भ कर दिया कि अपनी योग्यतानुसार जितना और जैसा कुछ मुझ से बन पड़े अब मुझे ही कर डालना चाहिए। शक्ति भर उद्योग करने और सात्विक वृत्ति के साथ पूर्ण सावधानी रखते हुए भी बुद्धि की मन्दता, और ज्ञान की हीनता से इसमें जो कुछ त्रुटियां और किसी प्रकार के दोषादि रह जायेंगे उन सब को विशेष विद्वान् महानुभाव स्वयं सुधार लेंगे तथा वृद्धावस्था अन्य शारीरिक व मानसिक बल की क्षीणता और आयु की अल्पता आदि कारणों से इस महान कार्य की समाप्ति में जितने भाग की कमी रह जायगी उसे भी वे अवश्य पूर्ण कर देंगे। इधर मुझे भी अपने जीवन के अन्तिम भाग में ग्रन्थ स्वाध्याय और उनके अध्ययन व मनन करने का विशेष सौभाग्य प्राप्त होगा जिससे मुझे आत्मकल्याण में महती सहायता मिलेगी।

अतः सज्जन माननीय विद्वानों की सेवा में प्रत्यक्ष व परोक्षरूप से मेरा नम्र निवेदन है कि:—

(१) वे मेरी अति अल्पज्ञता को ध्यान में रख कर इसमें रहे हुए दोषों को न केवल क्षमादृष्टि से ही अवलोकन करें किन्तु उन्हें ग्रन्थ में सुधार लेने और मुझ सेवक को भी उन से सूचित कर देने का कष्ट उठा कर कृतज्ञ और आभारी बनाएँ, जिससे कि मैं इसके अगले संस्करण में (यदि मुझे अपने जीवन में इसके अगले संस्करण का सौभाग्य प्राप्त हो) यथा शक्ति और यथा आवश्यक उन्हें दूर कर सकूँ। और

(२) इस प्रारम्भ किये हुए विशाल कार्य का जितना भाग मेरे इस अल्प मनुष्य जीवन में शेष रह जाय उसे भी जैसे बने पूर्ण कर देने का कोई न कोई सुयोग्य प्रबन्ध कर देने की उदारता दिखावें।

नोट—मुद्रित होने के पूर्व कोष के इस भाग की प्रेस कापियों को श्रीयुत जैनधर्मभूषण धर्म्मदिवाकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी ने भी एक बार देख लेने में अपना अमूल्य समय देकर उनमें आवश्यक संशोधन कर देने की सुयोग्य सम्मति प्रदान की है जिसके अनुकूल यथा आवश्यक सुधार कर दिया गया है। मैं इस कष्ट के लिये उनका हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

हिन्दी साहित्य प्रेमियों का सेवक,
हिन्दी साहित्य सेवी,

बिहारीलाल जैन, "चैतन्य" सी. टी.,
(बुलन्द शहरी)

बाराबङ्की (अवध)
ता० २५ जून सन् १९२५ ई०

असिस्टेन्ट मास्टर, गवर्न्मेंट हाईस्कूल,
बाराबङ्की (अवध)

ॐ

भूमिका

(PREFACE)

जैनधर्म का साहित्य बहुत विशाल है। इसमें न्याय, व्याकरण, काव्य, छन्द, इतिहास, पुराण, दर्शन, गणित, ज्योषि आदि सर्वही विषयों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। तथा प्रचलित संस्कृत प्राकृत तथा हिन्दी के शब्दों से विलक्षण लाखों पारिभाषिक शब्द हैं जिनको अर्थ समझने के लिये सैंकड़ों जैन ग्रन्थों के पढ़ने की आवश्यकता है। उन सर्व शब्दों को अकारादि के क्रम से कोषरूप में संग्रह करने की और अनेक ग्रन्थों में प्रसारित एक शब्द सम्बन्धी ज्ञान को एकत्र करने की बहुत बड़ी जरूरत थी। इस बृहद् कोष में इसही बात की पूर्ति की गई है। इससे जैन और अजैन सभीको यह एक बड़ा सुभीता होगा कि किसी भी स्थल पर जब कोई पारिभाषिक शब्द आवेगा वे उसी समय इस कोष को देख कर उसका पूर्ण अर्थ मालूम कर सकेंगे। यह ग्रन्थ आगामी सन्तानों के लिये सहस्रों वर्षों तक उपयोगी सिद्ध होगा। ग्रन्थकर्त्ता ने अपने जीवन का बहुत सा अमूल्य समय इस कार्य में व्यय करके अपने समय को सच्चे परोपकार के अर्थ सफल किया है। इन के इस महत्वपूर्ण कार्य का ऋण कोई चुका नहीं सकता।

जितना गम्भीर जैन साहित्य है उतना प्रयास इसके प्रचार का इसके अनुया-यियों ने इस कालमें अब तक नहीं किया है इसी से इसके ज्ञानरूपीरत्न गुप्त ही पड़े हुए हैं। वास्तव में जैन साहित्य एक सर्वोपयोगी अमौलिक रत्न है।

एक बड़ा भारी महत्व इस साहित्य में यह है कि इसमें एक पदार्थ के भिन्न भिन्न स्वभावों को भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से वर्णन किया गया है जिसको समझ लेने से जो मत ऐसे हैं कि जिन्होंने पदार्थ का एक ही स्वभाव माना है दूसरा नहीं माना व किसी ने दूसरे स्वभाव को मान कर पहिले के माने हुये स्वभाव को नहीं माना है और इस लिये इन दोनों मतोंमें परस्पर विरोध है वह विरोध जैन सिद्धान्त के अनेकान्तवाद से बिल्कुल मिट जाता है। और सर्व मतों के अन्तरङ्ग रहस्य को समझने की सच्ची कुंजी हाथ में आजाती है। इसी को 'स्याद्वाद नय' या 'अनेकान्त मत' कहते हैं-इस जैन दर्शन के परमागम का यह स्याद्वाद बीज है। कहा है--

परमागमस्य बीजं निषिद्ध जन्मांर्ध सिंधुर विधानं।
सकल नय विलसितानां विरोध मथनं नमाम्यनेकान्तं॥

भावार्थ—मैं उस अनेकान्त को नमस्कार करता हूं जो परमागम का बीज है। और जिसने अन्धों के हाथी के एक अंश को पूर्ण हाथी मानने के भ्रम को दूर कर दिया है, अर्थात् जो सर्व अंश रूप पदार्थ है उसके एक अंश को पूर्ण पदार्थ मानने की भूल को मिटा दिया

है। इसी लिये यह अनेकान्त-सिद्धान्त भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से भिन्न भिन्न बात को मानने वालों के विरोध को मेटने वाला है।

जैन साहित्य में दूसरा विलक्षण गुण यह है कि इसमें आत्मा के साथ पुण्य पाप रूप कर्मों के बन्धन का विस्तार से विधान है जिसको समझ लेने पर एक ज्ञाता यह सहज में जान सकता है कि जो मेरे यह भाव हैं इनसे किस किस तरह का कर्मबंध मैं करूँगा व कौनसा कर्म का बन्ध किस प्रकार का अपना फल दिखा रहा है। तथा कौन से भाव मैं करूं जिनके बल से मैं पूर्व बाँधे हुए कर्मों को उनके फल देनेसे पहिले ही अपने से अलग करदूँ।

जैन साहित्य में इतिहास का विवरण भी विशाल व जानने योग्य है जिससे पूर्णतः यह पता चलता है कि भारतवर्ष की सभ्यता बहुत प्राचीन है।

ऐसे महत्वपूर्ण अनेक विषयों से भरपूर यह जैन साहित्य है जिसके सर्व ही प्रकार के शब्दों का समावेश इस कोष में हुआ है। अतः यह कोष क्या है अनेक जैन शास्त्रों के रहस्य को दिखाने के लिये दर्पण के समान है। इसका आदर हर एक विद्वान को करना चाहिये तथा इसका उपयोग बढ़ाना चाहिये।

ब्र० सीतलप्रसाद,
आ० सम्पादक जैनमित्र—सूरत

INTRODUCTION

(आभाष)

We are told that "The Jains possess and sedulously guard extensive Libraries full of valuable literary material as yet very imperfectly explored, and their books are specially rich in historical and semi-historical matters." * It is true to a word, though the science and methods have advanced far lavishly by now, but to our regret the conditions with the Jain Literature have turned out to be no better at all even in this 20th Century. The existing Jain Libraries of even a single province have not been fully explored yet: then what to think of a systemetic publication of sacred Jain Canons! Even to-day we cannot hope for a uniform publication of the whole canonical collections. We have had a ray of hope in the sincere & sacred efforts, in this connection of memorable late Kumar Devendra Prasada Jain of Arrah. But to our unfathomable sorrow he kicked away his bucket of life quite untimely and with him the 'ray' disappeared. The atmosphere of Jain Literature in one way again plunged in quite dark oblivion. There was no projection or improvement seen in this direction after him, and it was little hoped that the Jain Literature would get again such enthusiastic champions as he was whose efforts might bear sacred fruits for the upheaval of Jainism, and we might get Jain authoritative books in all languages—specially in English and Hindi—in the near future. But the rosy time dawned and we have the occasion to hear a hopeful sound raised for the sacred cause from the far south. It was welcomed all amongst the Jains. Consequently Mr. C. S. Mallinath, the new champion, has been successful in establishing "The Devendra Printing & Publishing Co., Madras", for bringing out the Jain sacred books on the same lines as sacred books of the East. We only wait now for its ripe fruits. Along with this, another more enthusiastic champion for the selfsame cause has appeared in the self of Mr. BIHARI LAL Jain (Chaitanya) of Bulandshahr, Assistant Master, Govt High School, Barabanki, who was working hard single handed for years in quite seclusion. His untiring zeal & enthusiasm have resulted now in the shape of a comprehensive and exhaustive JAIN ENCYCLOPÆDIA. The first volume of this is now being placed in the hands of general readers. Such a work was needed badly. So, to the author is rightly due the credit of the charm and admiration of the work which is the only existing one of its kind.

*** Late Sir Vincent A. Smith, M. A., M. R. A. S., F. R. N. S, in 'A Special Appeal to Jains'.**

However our English-knowing readers may grudge and complain for, or feel the want of, an English Edition of this work. But knowing the present conditions in India we would congratulate our author for bringing out this valuable work in Hindi—"The would be Lingua Franca of India." We grant that an English edition would have served greatly for the cause of Jainism, but like a patriot, our author is bent on enriching the Sahitya of his Mother Tongue—the Rashtriya Bhasha of dear Bharatvarsha. So we are sure that everybody shall hail this well-planned and quite indispensable work on Jainism with all his heart. As for an English edition of it, we should wait anxiously for a future scholars' unbounding zeal for the cause.

Anyhow it is needless to point out the necessity of such a work, when we know that the wants and the nature of human beings naturally change, as the time flags on smoothly on its wings The languages, too, automatically change along with the same. The history of any language prevailing in any corner of the world will support it. We know how in India the ancient Vedic Sanskrit has assumed at present many forms prevailing in various parts of India, e.g. Hindi, Marathi, etc. The same is the case with the languages of Europe. Mr. *A. C.* Woolner *M. A.* asserts it and says:—

"An interesting parallel to the history of the Indo Aryan Languages is shown by that of the Romance Languages in Europe. Of several old Italic dialects, that of the Latin tribe prevailed, and Latin became the dominant language of Italy, and then of the Roman Empire. It became the language of the largest Christian Church of the middle ages, and thence the language of Science and Philosophy until the modern languages of Europe asserted their independent existence." (The Introduction to Prakrit, page 10)

So it is natural that phonetic and other changes may remain appearing in any language, in accordance with the timely revolutions among its votaries Hence it is not easy for a person of latter days to read a work of the days of yore, and to grasp its meaning in full. Consequently an Encyclopædia acquaints them with that language & makes them familiar with its literary and other importance. This necessity has been felt by enterprising foreigners in the very early days of this century. As a result, many foreign languages have their own Cyclopædias In Hindi, too, we have an Encyclopædia Indica, which is being published from Calcutta. Another such Hindi work was published sometime ago by the Nagri Pracharini Sabha of Benares. In both these works the explanation of a very few Jain technical terms of both sects—the Digambaras and Swetambaras—is given, but it is not comprehensive and somewhere not to the

point. Amongst the Jains we can make mention of Shatavadhani's "Ardh Magadhi Kosh", which gives a very short explanation, in Gujrati, Hindi and English, of Ardh Magadhi words only from the Swetambara Shastras. While in the present work we see a glimpse of such completion, atleast from the Digambaras' point of view, and we may style it a 'Key' to open the treasuries of hidden Jain Siddhanta. Mastering the 'Key', we shall be able to examine their precious contents.

Besides, available Jain books and lyrics have a testative character through the impossibility of examining the whole collection. So this work would be of a great help to future studies and editions on Jainism. By studying this work, a reader would learn about every branch of Jainology. Really it is a boon to those Hindi readers who are interested in studying the various branches of Indology. The method applied for giving and defining the meaning of every word is very expressive and exhaustive altogether, the style of narration quite definite and authoritative, and the language is, also, simple and comprehensible to all. The author has not kept him reserved to the support of Jain Shastras, but has made use of other non-Jain and research works as far as possible. He has not forgotten to quote the authorities in his favour, but on certain occasions he has failed to do so. However one thing will surely be a cause for the dissension of a reader that the author has omitted all those Hindi words which have no connection with Jainism. If he would have done likewise, the value of the work would have increased much. But this was not easy for a single person to complete such a comprehensive work all alone. Already it is a matter of curiosity and gratification that the author has completed all himself the present big work. Its historical treatises are also worth reading. The first volume covers in its 280 odd pages the words beginning with the Vowel 'अ',-"अण्वत्" being the last. This means that it will get completed in no less than 12000 pages. In short, its perusal will surely enlighten the reader on various topics of Philosophy, History, Geography, Astronomy, etc. in a quite extra-ordinary way. Really the work when published completely shall serve various useful purposes and be of great interest to the students of Religion and History. Of course, I think, this is the right way to Propagate interest in the mighty religion of the Jains. I extend my sincere thanks again to the author and wish every success to his future undertakings for the sacred cause.

JASWANTNAGAR [ETAWAH]
11th. MAY, 1925.

K. P. JAIN
HONOURARY SUB-EDITOR VIRA, BIJNOR.

* ॐ *

प्रस्तावना

(EXORDIUM)

१. कोष-ग्रन्थों की आवश्यकता–

जब हम अपने नगर की पाठशाला की किसी निम्न श्रेणी में बैठकर 'उर्दू भाषा' का अध्ययन करते थे तब किसी पुस्तक में पढ़ा था:—

ज़माना नाम है मेरा तो मैं सब को दिखा दूँगा।
कि जो तालीम से भागेंगे नाम उनका मिटा दूँगा॥

किन्तु बाल्यावस्था की स्वाभाविक निर्द्वन्दता, बुद्धि अपरिपक्वता और अग्रशोचादि उपयोगी गुणों के नितांत ही संकुचित होने के कारण, कभी इसके अन्तस्तल में छिपे हुये उपदेश को न तो अपेक्षा ही की दृष्टि से देखा, और न उसकी उपेक्षा ही की। अब ज्योंही गृहस्थ-जीवनरूपी-रथका चक्र घूमा, नमक तेल लकड़ीकी चिन्ता व्यापी, और आवश्यकताओं का अपार बोझ शिर को दबाने लगा त्योंही उपरोक्त शेर साक्षात् शेर बन कर मस्तिष्क क्षेत्र को अपनी क्रीड़ा का रङ्गस्थल बनाने लगा। होश ठिकाने आये और आंखें खुलीं। नज़र उठा कर देखा तो ज्ञात हुआ कि वास्तव में वर्त्तमान काल अशिक्षितों के लिये विनिष्टकारी काल ही है; बिना शिक्षित हुए आज कल दाल गलना ज़रा टेढ़ी खीर है। हमारे पूर्वजों ने अपनी सर्व-व्यापनी दृष्टि से इस बात का अनुभव बहुत पहिले ही से कर लिया था। हमारी शिक्षापूर्ण सामग्री अपने अनुभवों की अभूतपूर्व ज्ञानसमृद्धिराशि, तथा विविध शुद्ध सिद्धान्तों और नियमों के संग्रह को पुस्तक भंडार रूप में हमारे उपकारार्थ छोड़ दिया था। यद्यपि कुटिल काल की कुटिलता के कारण हमारा उपर्युक्त भंडार प्रायः नष्ट हो चुका है किन्तु फिर भी जो कुछ बचा खुचा है कम नहीं है। सच पूछिये तो हम जैसे कूढ़मग़ज़ तथा कुंठित बुद्धि वालोंके लिये तो यह अवशिष्ट रत्न-भण्डागार भी कुबेर की सम्पत्ति से कुछ कम नहीं हैं। इस अपूर्व भंडारमें बनीहुई अनेक अनुपम कोठरियों और उन कोठरियों में रक्खे हुये अगणित संदूकों के तालों के खोलने के लिये बुद्धिरूपी तालियों का होना परमावश्यक है। जबतक हमारे पास उन भंडारोंतक पहुँचनेका यथेष्ट मार्गही नहीं है तो उसमें रक्खी हुई अमूल्य वस्तुओं का दिग्दर्शन कैसे कर सकते हैं। हमारे कुछ दयालुचित्त पूर्वजों का ध्यान इस बात परभी गये बिना न रहा। उन्होंने इसी कमीको पूरा करने के लिये 'कोषग्रन्थों' की रचना की। किन्तु यह किसी पर अप्रगट नहीं कि संसार परिवर्त्तन शील है। उसकी भाषा तथा भाव सभी कुछ परिवर्तित होते रहते हैं। जब भाषा बदलती है तो उससे प्रथम के सिद्धान्तादि आवश्यक विषयों से सम्बन्ध रखने वाले शब्दों के परिज्ञान का मार्ग भी पलट जाता है और उनको जानने के नियम भी दूसरे ही हो जाते हैं वर्त्तमान काल न तो वैदिक काल है, न दर्शन तथा सूत्रकाल और न पौराणिक काल ही है। यही कारण है कि अब उस समय सम्बन्धी भाषाओंके समझने वाले भी नहीं रहे हैं। इसके अतिरिक्त हम अपने पूर्वजों के विविधकालीन अनन्त अनुभवों को उपेक्षा की दृष्टिसे देखने में भी अपना अकल्याण ही समझते हैं अतः आवश्यक है कि संस्कृतादि पूर्व राष्ट्र भाषाओं में सुरक्षित उन विचारों

को क्रमशः वर्तमान राष्ट्र तथा अपनी मातृ भाषा हिन्दी में लाने का सतत उद्योग करें। राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' द्वारा ही हमारा कल्याण होना संभव है अतः आज कल हिन्दी में बने हुए कोष ही हमारे ऋषि मुनियों के प्रगट किये हुये रहस्य को समझाने के लिये प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार निर्मित किये गये कोषों द्वारा कितना आनन्द प्राप्त होगा, इस बात को सहृदय पाठक ही समझ सकते हैं। यह आनन्द बिहारी के इस दोहे--

रे गन्धी मति अन्ध तू, अतर सुँघावत काहि।
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि॥

के अनुसार किसी मर्मज्ञता विहीन व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता और इसीलिये उस से युक्त मार्मिक रचना भी सम्मानित नहीं हो सकती।

"क़द्रे गौहर शाह दानद या बिदानद जौहरी"

अर्थात् मुक्ता का सम्मान (उस के गुणों को समझ कर) या तो जौहरी (पारखी) ही कर सकता है या फिर उस से विभूषित होने वाला नृपतिही कर सकता है। सच पूछिये तो यह 'कोषग्रन्थ' ही हमारेलिये वास्तविक कसौटी हैं। किसी जिज्ञासुको जौहरी अथवा बाद्-शाह की पदवी प्राप्त कराने की क्षमता उनमें है। भाषा विज्ञान और शब्द विज्ञानके वास्तविक रहस्य को जिसने समझ लिया, मानो त्रैलोक्य की सम्पत्ति पर उसका अधिकार हो गया। इस आगाध-रत्नाकर के अगणित रत्नों के रङ्ग रूप का पहचानना तनिक कष्ट साध्य है शब्दरत्न में अन्य रत्नों से एक विशिष्ट गुण यह भी है कि उस में अपना रङ्ग ढँग पलटने की सामर्थ्य है। वे बहुरूपिया की उपाधि से विभूषित किये जा सकते हैं। देखिये, शब्द-शक्ति की विलक्षणता—"आप की कृपा से मैं सकुशल हूं", "आपकी कृपा से आज मुझे रोटी तक नसीब नहीं हुई" इन दोनों वाक्यों में एक ही शब्द 'कृपा' अपने २ प्रयोग के अनुसार भाव रखता है। इसी प्रकार केवल एक ही शब्द के अनेक प्रयोग होते हैं। उन्हें हम बिना कोष के किसी प्रकार भी नहीं समझ सकते। वस्तुतः कोष हमारे लिये बड़े ही लाभदायक हैं। किसी कवि ने ठीक कहा है---कोशश्चैव महीपानाम् कोशश्च विदुषामपि।

उपयोगो महानेष क्लेशस्तेन विना भवेत्॥

वास्तव में महत्वाकांक्षी राजाओं के लिये जितनी आवश्यकता कोश (खजाना) की है उतनी ही आवश्यकता सद्कीर्त्याभिलाषी विद्वानों को कोश (शब्द भंडार) की है।

२. वर्त्तमान ग्रन्थ की आवश्यकता—

नागरी-प्रचारिणी सभा काशी का प्राचीन-हस्तलिखित हिन्दी साहित्य का अन्वेषण-सम्बन्धी कार्य करते हुए मुझे हिन्दी भाषा के जैन साहित्य को अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं समझता हूँ यदि उस ओर हमारे मातृ भाषा प्रेमी जैन तथा जैनेतर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो और निष्पक्ष भाव से पारस्परिक सहयोग किया जाय तो हिन्दी के इतिहास पर किसी विशेष प्रभाव के पड़ने की सम्भावना है। प्राकृत तथा संस्कृत से किये गये अनेक अनुवादित ग्रन्थों के अतिरिक्त, हिन्दी भाषा के मौलिक गद्य तथा पद्य ग्रन्थों की भी यहां (हिंदी जैन साहित्य में) कमी नहीं है। किन्तु खेद यही है कि अब तक जैन साहित्य के पारिभाषिक तथा ऐतिहासिक शब्दों का सरलता से परिचय कराने के लिये

कोई भी कोष ग्रन्थ न था। पर अब बड़े हर्ष की बात है कि इस चिरवाँछनीय आवश्यकता को श्रीयुत मास्टर बिहारीलाल जी जैन बुलन्दशहरी ने इस 'श्रीबृहत् जैन शब्दार्णवकोष' को बड़ेही परिश्रम और खोज के साथ लिख कर बहुतांश में पूर्ण कर दिया है।

इस 'बृहत् जैन शब्दार्णव' का अवतीर्ण होना न केवल जैन बांधवों के ही लिये सौभाग्य की बात है वरन् समस्त हिन्दी संसार के लिये भी एक बड़ा उपकार है। प्राकृत में तो एक श्वेताम्बरी मुनि द्वारा बनवाये गये ऐसे कोष का होना बताया भी जाता है परन्तु हिंदी में उसका पूर्णतयः अभावही था। इस अभाव की पूर्ति करके श्रीयुत मास्टर साहिब ने हिन्दी जगत को चिर ऋणी बना दिया है। हिन्दी में इस समय कलकत्ता के विश्वकोश कार्यालय और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय से निकले हुए दोनों कोषों में भी जैन सिद्धान्तों के मत से उनके धार्मिक ग्रन्थों में आये हुए बहुत ही थोड़े शब्दों का--कुछ नहीं के बराबर--समावेश हुआ है। अथवा जो कुछ शब्द लिये भी गये हैं तो उनका यथोचित भाव समझाने में प्रायः कुछ न कुछ त्रुटी या अशुद्धि रहगई है। अतः इस कोशके निर्माण होने की बड़ी आवश्यकता थी।

३. प्रस्तुत कोष के गुणों का संक्षिप्त परिचय--

(१) इस महान कोश की रचना अँगरेजी के 'एनसाइक्लोपीडिया (Encyclopædia) के नवीन ढँग पर की गई है। जिस शैली से इस ग्रन्थरत्न का सम्पादन हो रहा है, उससे तो यह अनुमान होता है कि दश बारह सहस्र पृष्ठों से कम में उसका पूर्ण होना संभव नहीं। मेरा विचार तो यह है कि एक सहस्र पृष्ठ तो उसका ह्रस्व अकार सम्बन्धी प्रथम भाग ही ले लेगा। वर्तमान ग्रन्थ, प्रथम भाग का प्रथम खंड है जो बड़े साइज़ के लगभग ३५० पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इसका अन्तिम शब्द 'अण्ण' है। बस! समझ लीजिये कि प्रत्येक बात को समझाने के लिये कितना परिश्रम किया गया होगा।

(२) इसे देखने से पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि किसी शब्द की व्याख्या करने और उसको समझाने का ढँग कितना उत्तम है। भाषा अत्यन्त सरल किन्तु रोचक है। नागरी का साधारण बोध रखने वाले सज्जन भी इससे यथोचित लाभ उठा सकेंगे।

(३) जिज्ञासुओं की तुलनात्मक रुचि को पूर्ण करने के लिये चतुर सम्पादक ने विविध ग्रन्थों की नामावली सहित स्थान स्थान पर प्रमाण भी उद्धृत कर दिये हैं। किसी शब्द की व्याख्या करने में इतनी गवेषणा कीगई है कि फिर उसको पढ़ कर किसी प्रकार का भ्रम नहीं रह जाता। यथा सम्भव सभी ज्ञातव्य विषयों का बोध हो जाता है। व्याख्या करते समय केवल धार्मिक ग्रन्थों ही को आधारस्तम्भ नहीं माना, और न केवल भारतवर्षीय वैद्यकादि सिद्धान्तों का समादर कर एकदेशीयता का ही समावेश होने दिया है, किन्तु समयानुसार ग्रन्थकारने अनुमान और अनुभवशीलता का भी सदुपयोग किया है और पाश्चात्य विद्वानोंके मत को भी यथा आवश्यक समाहृत किया है। स्थान स्थान पर धार्मिक तथा वैद्यक सिद्धान्तों को भी बड़े अपूर्व ढँग से मिलाया है और यह सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष के क्षुद्र से क्षुद्र धार्मिक विश्वास भी बड़ी सुदृढ़ नीव पर स्थिर हैं। जहां तक विचारा जासकता है, यह कहना अत्युक्ति न समझा जावेगा कि ग्रन्थकार ने इस कोष के संग्रह करने में किसी

भी प्रकार का प्रमाद नहीं किया है। आचार्यों के मत भेदों को भी फ़ुटनोटों द्वारा प्रकट कर दिया है। यथा अवसर जैनधर्म के ग्रन्थों के अतिरिक्त, बौद्धों, वैदिकों, और पौराणिकों के मत भी प्रकट किये गए हैं। उदाहरण के लिये पृ० ३८ अक्षरलिपि के तथा इसी प्रकार के अन्य कितने ही नोट द्रष्टव्य हैं।—

'ललितविस्तार' (बौद्धग्रन्थ), तथा 'नन्दिसूत्र' (जैन ग्रन्थ) के अनुसार लिपियों के ६४ व १८ भेदों की गणना कराके उससे आगे के नोट में 'ब्राह्मी' लिपि से निकली हुई कोई चालीस से भी अधिक नामों की नामावली अङ्कित करके तथा इसी प्रकार अन्य कितनी ही खोज सम्बन्धी बातें लिख कर अन्वेषकों के काम की बहुत सी सामग्री एक ही स्थान पर एकत्रित कर दी है। पृष्ठ २७१ पर अणु शब्द और पृष्ठ २७६ पर अण्डज शब्द की व्याख्या भी खोज से ही सम्बन्ध रखती है।

(४) अङ्कविद्या,और अङ्कगणना—लौकिक तथा अलौकिक गणना—पर प्रभावशाली बड़ी ज़ोरदार बहस करके भारत के प्राचीन गणित गौरव का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। इसके साथ ही पृ० ८६ व ८७ की टिप्पणी में सम्पादक ने लीलावती और सिद्धान्त शिरोमणि आदि ग्रन्थों के रचयिता श्री भास्कराचार्य से लगभग ३०० वर्ष पूर्व के श्री महावीर आचार्य रचित एक महत्वपूर्ण 'गणितसार संग्रह' नामक संस्कृत श्लोकबद्ध ग्रन्थ का भी जिसका अङ्गरेज़ी अनुवाद मूल सहित सन् १९१२ ई० में मदरास गवर्मेंट ने प्रकाशित कराया है ज़िक्र किया है (यह ग्रन्थ लेखक की कृपा से हम भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वास्तव में बड़े ही महत्व का ग्रन्थ है) और उसके मिलने का पता इत्यादि सब कुछ दे दिया है जिससे ज्ञात हो सकता है कि उन्हें अपने पाठकों को लाभ पहुँचाने का कितना ध्यान रहा है।

(५) 'अङ्कविद्या' शब्द की व्याख्याके अन्तर्गत नोटों द्वारा क्षेत्रमान में परमाणु से लेकर महास्कंध (त्रैलोक्य रचना या सम्पूर्ण ब्रह्मांड) तक की माप सूची (Table) और कालमान में काल के छोटे से छोटे अंश से लेकर ब्रह्म कल्प से और भी आगे तक की मापसूची बड़ी गवेषणा पूर्ण लिखी गई हैं जो सर्व ही गणित प्रेमियों के लिये ज्ञातव्य है।

(६) इस में भौगोलिक विषय सम्बन्धी प्राचीन स्थितियों का भी अच्छा विवरण दिया गया है।

(७) जिस प्रकार छन्द शास्त्र में छन्दों की सर्व संख्या, सर्व रूप, इष्टसंख्या, इष्टरूप इत्यादि जानने के लिये ९ या १० प्रकार के प्रत्यय (सूची, प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, आदि हैं उसी प्रकार किसी वस्तु या गुण आदि की संख्या आदि जानने के लिये सूची, प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट आदि को 'अजीवगत हिंसा' शब्द की व्याख्यान्तर्गत नोटों द्वारा बड़ी उत्तम रीति से सविस्तार दिया है जो जैनेतर विद्वानों के लिये भी बड़ी ही उपयोगी वस्तु है।

(८) न्याय दर्शनादि अन्य और भी कितने ही विषय ऐसे हैं जो सब ही को लाभ पहुँचा सकेंगे।

४. वर्त्तमान कोष का ऐतिहासिक अंग—

यहां तक तो जैन पारिभाषिक शब्द कोष विषयक बात चीत हुई। इसी ग्रन्थ का दूसरा अंग इतिहास-कोष है। अब इस पर भी विचार कर लेना चाहिये—

(१) इस अङ्ग को ग्रन्थकार ने बहुत ही रुचिकर बनाया है। उन्हें जैन पुराणों के जितने भी पुरुष मिले हैं सब ही का सूक्ष्म परिचय दिलाया है।

(२) कितने ही प्राचीन तथा नवीन जैन ग्रन्थकारों की जीवनी उनके निर्माण किये हुये गून्थों की नामावली सहित इस एक ही गून्थ में मिल सकेंगी।

(३) कितने ही व्यक्तियों के इतिहास इस उत्तमता से लिखे गये हैं कि उन से इतिहास-वेत्ता जैनेतर महानुभाव भी बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे। क्योंकि इस खोज में निजानुभव के साथ ही साथ अन्य देशीय विद्वानों की सम्मतियों का भी उचित आदर किया गया है—उदाहरण के लिये 'अजयपाल' शब्द के अन्तर्गत 'कुमारपाल' तथा 'अजितनाथ' तीर्थंकर सम्बन्धी इतिहास ज्ञातव्य विषय हैं। इन इतिहासों को सम्पादक ने सर्वांगपूर्ण बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इनमें से पहिले सज्जन के चरित्र का चित्रण करने के लिये 'बूलर' साहिब की 'मरहट्टा कथा' के अनुसार उससे ४० वर्ष पीछे होने वाले जगडूशाह के समय का दिग्दर्शन खोज से सम्बन्ध रखता है।

(४) प्रधान राजवंशों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने के लिये गून्थ में स्थान २ पर ऐसी सारणियां दे दी गई हैं जो क्रमानुसार एक के पीछे दूसरे राजा के समयादि का परिचय दिला सकेंगी। उदाहरण के लिये पृष्ठ १६६ पर 'मगध देश' इत्यादि के राजाओं की सारिणी उपस्थित की जा सकती है।

५. वर्त्तमान कोष की उपयोगिता—

उपर्युक्त गुणों पर ध्यान देने से हम समझ सकते हैं कि यह महान कोष जैन और अजैन सर्व ही को लाभ पहुँचा सकता है।

(क) जैन पाठकों को होने वाले लाभ–

(१) इसमें चारों ही अनुयोग—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, और द्रव्यानुयोग—के सैकड़ों सहस्रों जैन गून्थों में आये हुए सर्व प्रकार के शब्दों का अर्थ सविस्तर व्याख्या आदि सहित है। अतः जो महाशय किन्हीं विशेष कारणों से पृथक् पृथक् गून्थोंका अध्ययन नहीं कर सकते वे इस एक ही गून्थ की स्वाध्याय से सर्व प्रकार के जैन गून्थों के अध्ययन का बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे।

(२) इसमें सर्व शब्द अकारादि क्रमबद्ध हैं अतः किसी भी जैन गून्थ की स्वाध्याय करते समय जिस शब्द का अर्थ आदि जानने की आवश्यकता हो वह अकारादि क्रम से ढूंढने पर तुरन्त ही इस में मिल जायगा। इधर उधर अन्य कहीं ढूँढ़ने का कष्ट न उठाना पड़ेगा।

(३) सर्व प्रकार के व्रतोपवास और व्रतोद्यापन आदि की सविस्तर विधि तथा अनेक प्रकार के मंत्र और उनके जपने की रीति आदि भी इसी में यथास्थान मिलेंगी। इत्यादि ॥

(ख) जैनेतर सज्जनों को होने वाले लाभ—

(१) जिन लोगों को जैनधर्म का कुछ ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो और उनको विशेष गून्थों के देखने का अवसर न मिला हो उनको यह बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकता है—

उदाहरण के लिये 'अगारी' शब्द की व्याख्या के अन्तर्गत एक 'श्रावक' शब्द को ही ले लीजिये। हमें तो इस शब्द के विषय में यह ज्ञात था कि यह 'जैनी' शब्द का पर्यायवाची शब्द है और जैनी जैनधर्मानुयायी व्यक्ति को कहते हैं। कोषकार महोदय इसके विषय में हमें सूचना देते हैं कि उसमें १४ लक्षण, ५३ क्रियायें, १६ संस्कार, ६३ गुण, ५० दोषत्याग, ८ मूलगुण, ११ प्रतिमायें या श्रेणियां, २१ उत्तरगुण, १७ नित्यनियम, ७ सप्तमौन, ४४भोजन-अन्तराय, १२ व्रत, २२ अभक्ष्यत्याग, और ३ शल्यत्यागों का वर्णन उससे संबद्ध है। जिनके नामों का अलग अलग विवरण भी इसी शब्द की व्याख्या में दे दिया है।

(२) एकही नियम पर अपने तथा जैनधर्म के सम्बन्धमें ऐक्य और विपर्ययका परिचय प्राप्त होता है जिस से तर्कनाशक्ति की वृद्धिहो कर सत्यासत्य के निर्णय करने में अच्छा बोध होसकेगा।

(३) लिपियों तथा न्याय, इतिहास, गणितादि कई विषयों पर की हुई व्याख्या सभी के लिये समान लाभकारी है।

६. कोष के इस खण्ड की विशेष उपयोगिता—

कोष के इसी खंडान्तर्गत निर्दिष्ट अन्यान्य उपयोगी शब्दों की भी अकारादि क्रम युक्त एक सूची लगा दीगई है जिसने सोने में सुगन्धि का कार्य किया है। इसके द्वारा केवल "अ" नियोजित "अण्ण" शब्द तक के ही शब्दों का नहीं वरन् 'अ' से 'ह' तक के भी लगभग बारह सौ (१२००) अन्य शब्दों के अर्थ आदि का भी बोध इसी छोटे से प्रथमखण्ड से ही हो सकेगा। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि यह अपूर्ण कोष अर्थात् प्रथमखंड ही बहुतांश में एक संक्षिप्त पूर्ण कोष का सा ही लाभ पहुँचा सकेगा।

७. उपसंहार—

इसमें सन्देह नहीं कि यह कोष बहुत ही काम की वस्तु है। ऐसा उत्तम कोष सम्पादन करने के उपलक्ष में मैं श्रीयुत कोषकार महोदय को साधुवाद देता हुआ आशा करता हूं कि जैन धर्मावलम्बी महानुभाव तो इस अपूर्व और महत्वपूर्ण गून्थ को अपने मन्दिरों, पाठशालाओं, पुस्तकालयों और घरों में स्थान देंगे ही पर जैनेतर विद्याप्रेमी तथा हिन्दी साहित्य वृद्धि के अभिलाषी महानुभाव भी कम से कम अपने निजी व पब्लिक पुस्तकालयों और विद्यालयों में इसे अवश्य स्थान देकर अपने उदार हृदय का परिचय देंगे जिससे इस महत्वपूर्ण और अपने ढँग के अपूर्व गून्थका प्रचार कस्तूरीगन्ध सदृश फैल कर हिन्दी संसार को एकदम सौरभान्वित करदे। किंबहुना॥

भवदीय्

बाराबङ्की (अवध)
रामनवमी, वि० सं० १९८२

बाबूराम बित्थरिया, साहित्यरत्न,
सिरसागंज ज़ि० मैनपुरी निवासी,
साहित्य अन्वेषक नागरी प्र० स०, काशी।

——

शब्दानुक्रमणिका

—++ ❀ ++—

कोष के इसी खंडान्तर्गत निर्दिष्ट अन्यान्य उपयोगी शब्दों

की

अकारादि क्रमयुक्त सूची

नोट—कोष के इस खंड में उपर्युक्त सूची के शब्दों के अतिरिक्त यद्यपि बहुत से अन्यान्य जैन पारिभाषिक शब्द,तथा सैकड़ों जैन ग्रन्थों, सैकड़ों जैन अजैन ऋषि,मुनि,आचार्यों, सैकड़ों ग्रन्थ लेखक या अनुवादक पण्डितों व अन्य व्यक्तियों और सहस्रों अन्यान्य वस्तुओं के नाम आदि स्थान स्थान पर उनके अर्थ या कुछ विवरण आदि सहित आये हैं जिन सर्व का परिचय तो सम्पूर्ण खंड को पढ़ने ही से मिलेगा, तथापि उनमें से कुछ मुख्य मुख्य या अधिक उपयोगी शब्दों का परिचय प्राप्त करने के लिये निम्न लिखित सूची विशेष सहायक होगी जिसके द्वारा केवल **अ** नियोजित शब्दों का, और वह भी लगभग एक तिहाई भाग ही का नहीं वरन् **अ**कार से **ह**कार तक के भी बहुत से शब्दों के अर्थ आदि का परिज्ञान इसी छोटे से प्रथमखंड से प्राप्त हो सकेगा। अर्थात् इस सूची की सहायता से यह अपूर्ण कोष ही एक छोटे से संक्षिप्त **पूर्णकोष** का भी कुछ न कुछ अंशों में काम दे सकेगा।

ॐ

इस कोष में प्रयुक्त संकेताक्षरों का विवरण

„	वही, ऊपर का (अर्थात् यह चिह्न जिस शब्द के नीचे दिया जाता है वहां उसी ऊपर लिखे शब्द का काम देता है)।
अ.	अध्याय
अ. मा.	अर्द्धमागधी कोष
अना.	अनागार धर्मामृत
आदि.	आदि पुराण
ई.	ईस्वीसन्
उ.	उक्तं च
उत्तर.	उत्तर पुराण
क.	कर्णाटक जैन कवि
कृ.	कृष्ण पक्ष
क्ष.	क्षपणासार
क्षे.	क्षेपक
गा.	गाथा
गृ.	गृहस्थ धर्म
गो. क.	गोम्मटसार कर्मकांड
गो. जी.	गोम्मटसार जीवकांड
ग्र.	ग्रन्थ
च.	चर्चाशतक
चन्द्र.	चन्द्रप्रभु चरित्र
चा.	चारित्रसार
त. सार	तत्वार्थसार
त. सू.	तत्वार्थसूत्र
तत्वा.	तत्वार्थ राजवार्तिक
त्रि.	त्रिलोकसार गाथा
तीर्थ. द.	तीर्थ दर्शक
दि. ग्र.	दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ
द्रव्य.	द्रव्यसंग्रह
धर्म.	धर्मसंग्रह श्रावकाचार
नं०	नम्बर
नि.	निर्वाण
न्या.	न्यायदीपिका
प.	पर्व
पद्म.	पद्मपुराण
परी.	परीक्षामुख
पु.	पुराण
पृ.	पृष्ठ
पं.	पंचास्तिकाय
प्र.	प्रकरण
प्रा.	प्राकृत
भगवती.	भगवती आराधनासार
मू.	मूलाचार गाथा
या. द.	यात्रा दर्पण
रत्न.	रत्नकरंड श्रावकाचार
राज.	राजवार्तिक
ल.	लब्धिसार
वि. सं.	विक्रम सम्वत्
वृ. वि. च.	बृहत् विश्वचरितार्णव
व्या.	व्याख्या
श.	शब्द
शु.	शुक्लपक्ष
श्रा.	श्रावकधर्म संग्रह
श्लो.	श्लोक
सर्वार्थ.	सर्वार्थसिद्धि
सा.	सागारधर्मामृत
स्था.	स्थानांगार्णव
सू.	सूत्र
सं.	सम्वत्
ज्ञा.	ज्ञानार्णव
हरि.	हरिवंशपुराण

उत्थानिका

(PREAMBLE)

* ॐ *

* श्री जिनायनमः *

बिघ्न हरण मंगल करण, अजर अमर पद दाय ।
हाथ माथ धर ऋषभजिन, यजन करूँ शिरनाय ॥ १ ॥
रीझ रीझ पर वस्तु पै, निज सत् पद बिलराय ।
लालन पालन तन मलिन, करत असत् अपनाय ॥ २ ॥
शान्ति हेतु अब शान्ति जिन, बन्दूँ बारम्बार ।
चन्द्र प्रभू के पद कमल, नमूँ नमूँ शत बार ॥ ३ ॥
यती-पूज्य प्रभु नाम जप, साहस कीन गहीर ।
शब्दार्णव के तरण को, शरण लेय महावीर ॥ ४ ॥
चन्द्रसूर्य निकसत मुँदत, आयू बीतत जाय ।
जिन बच रत मम चित रहै, प्रतिक्षण हे जिनराय ॥ ५ ॥

अनुपम, अगम, अगाध भाव जल राशि भर्यो है ।
शब्द अर्थ जल जन्तु आदि सों जटिल खर्यो है ॥
अलंकार व्याकरण तरंगन विकट कर्यो है ।
साहित-सागर अखिल नरन को कठिन पर्यो है ॥
'चेतन' शब्दार्णव तरन, ग्रन्थ सुभग नौका अहै ।
भवि-समूह सेवन करै, अघस रतन अगणित लहै ॥

पूर्वाचार्यों का मत है कि किसी ग्रन्थ के लिखने में ग्रन्थलेखक ग्रन्थ निर्माण सम्बन्धी "अनुबन्ध-चतुष्टय" और निम्न लिखित "षड़ाङ्गों" को भी प्रकट कर दे ।

"मङ्गलं निमित्तंफलं परिमाणं नाम कर्त्तारमिति
षडपिव्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वंतु" ॥

इति वचनात्

१. अनुबन्ध चतुष्टय

१. अधिकारी—जैन साहित्य के सर्वोपयोगी अटूट भंडार से परिचित होकर लौकिक और लोकोत्तर ज्ञान प्राप्त करने और पारमार्थिक लाभ उठाने के इच्छुक महानुभाव इसके पठन पाठन के मुख्याधिकारी हैं ।

२. **सम्बन्ध**—इस ग्रन्थरत्न का मुख्य सम्बन्ध जैन साहित्य रत्नाकर से है।

३. **विषय**—जैन साहित्य रत्नाकर के अगणित शब्द रत्नों का परिज्ञान इसका मुख्य विषय है॥

४. **प्रयोजन** (निमित्त)—अगणित जैन ग्रन्थोंमें आए हुए पारिभाषिक व ऐतिहासिक आदि सर्व प्रकार के शब्दों के अर्थ और वस्तु स्वरूप आदि का यथार्थ ज्ञान इस एक ही महान ग्रन्थ की सहायता से प्राप्त हो सके, तथा जिस शब्द का अर्थ आदि जानना अभीष्ट हो वह अकारादि क्रम से ढूँढ़ने पर तुरन्त बड़ी सुगमता से इसमें मिल जाय, यही इसका मुख्य प्रयोजन है॥

२. षडांग

१. **मङ्गल** (मंगलाचरण)—

(१) शब्दार्थ—मं = पाप, दोष, मलीनता, इत्यादि।
गल = गलाने वाला, नष्ट करने या घातने वाला, इत्यादि।
अथवा—मंग = पुण्य, सुख सम्पत्ति, लाभ, इत्यादि।
ल = लाने वाला, आदान या ग्रहण या संग्रह करने वाला, प्रकाश डालने वाला, इत्यादि।

(२) भावार्थ—स्वेदादि बाह्य द्रव्यमल, ज्ञानावरणादि अष्टकर्म रूप अन्तरंग द्रव्यमल तथा अज्ञान या मिथ्याज्ञानादि भावमल को जो नष्ट करे, अथवा जो पुण्य और सर्व प्रकार की सुख सम्पत्ति आदि को ग्रहण करावे उसे मंगल कहते हैं। मंगल की व्यवहृति को "मंगलाचरण" कहते हैं॥

(३) भेद—१. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल, ६. भाव, यह छह मंगल के भेद हैं॥

१. नाम मंगल—परमब्रह्म परमात्मा का नाम, अथवा पंच परमेष्ठि वाचक ॐकार या अर्हन्त, सिद्ध आदि के नाम को 'नाममंगल' कहते हैं।

२. स्थापना मंगल—परमब्रह्म परमात्मा की अथवा पंच परमेष्ठि की कृत्रिम या अकृत्रिम तदाकार या अतदाकार प्रतिमा या प्रतिबिम्ब को "स्थापनामंगल" कहते हैं।

३. द्रव्य मंगल—अर्हन्त, आचार्य, आदि पूज्य पुरुषों के चरणादि पौद्गलिक शरीर को 'द्रव्य मंगल' कहते हैं।

४. क्षेत्रमंगल—पूज्य पुरुषों के तप आदि कल्याणकों की पवित्र भूमि, कैलाश, सम्मेद-शिखर, गिरिनार, आदि सर्व तीर्थ स्थानों को "क्षेत्र मंगल" कहते हैं।

५. काल मंगल—पूज्य पुरुषों के तपश्चरण आदि के पर्व काल को व अष्टान्हिक आदि पर्व तिथियों को "कालमंगल" कहते हैं।

६. भावमंगल—उपर्युक्त पांचों मांगलिक द्रव्यों में भक्तिरूप भाव को अथवा भक्तियुत आत्मद्रव्य या चेतन द्रव्य को भी "भाव मंगल" कहते हैं।

(४) हेतु—१. निर्विघ्नता से ग्रन्थ की समाप्ति २. नास्तिकता का परिहार ३. शिष्टाचार-पालन ४. उपकारस्मरण। इन चार मुख्य हेतुओं से प्रत्येक ग्रन्थकार को ग्रन्थ की आदि में, या आदि और अन्त में, अथवा आदि, मध्य और अन्त में परमात्मा या अपने

इष्टदेव की भक्ति, स्तुति, व वन्दना अथवा स्मरण व चिन्तवन प्रकट या अप्रकट रूप अवश्य करना उचित है। इसीको "मंगलाचरण" कहते हैं।

(५) फल—मंगल ग्रन्थ की आदि में किया हुआ मंगलकर्त्ता को अल्प काल में अज्ञानता से मुक्त करता है, मध्य में किया हुआ विद्याध्ययन के व्युच्छेद से उसे बचाता है और अन्त में किया हुआ आगे को विद्याध्ययन में पड़ सकने वाले अनेक विघ्नों से उसे सुरक्षित रखता है।

(६) रीति—१.नमस्कारात्मक २.वस्तुनिर्देशात्मक ३.आशीर्वादात्मक या इष्ट-प्रार्थनात्मक। इनमें पहिली रीति श्रेष्ठ है।

इस ग्रन्थ की आदि में "विघ्न विनाशक ऋषभ को ...." इत्यादि दो दोहों में, अथवा इस उत्थानिका के प्रारम्भ में 'विघ्न हरण......' इत्यादि ५ दोहों में जो मंगलाचरण किया गया है वह पहिली व अन्तिम रीति का है।

२. **निमित्त**—ग्रन्थ निर्माण के प्रयोजन को 'निमित्त' कहते हैं।

इस ग्रन्थ के लिखने का मुख्य निमित्त या प्रयोजन उपरोक्त है जो 'अनुबन्ध चतुष्टय' में बताया गया है।

३. **फल**—किसी ग्रन्थ के निर्माण या पठन पाठन व मनन से जो लाभ प्राप्त होता है उसे 'फल' कहते हैं।

(१) प्रत्यक्ष फलः—

(क) साक्षात प्रत्यक्ष—लेखक व पाठक दोनों के लिये कुछ न कुछ अंशों में अज्ञान का विनाश और ज्ञानावर्णीय कर्म की निर्जरा, इसके साक्षात प्रत्यक्ष फल हैं।

(ख) परम्परा प्रत्यक्ष—ग्रन्थ में निरूपित वस्तुओं सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो जाने से कुछ न कुछ लोकप्रतिष्ठा या कीर्त्ति तथा इच्छा होनेपर शिष्य प्रतिशिष्यों द्वारा किसी न किसी रीति से आर्थिक लाभादि इसके परम्परा प्रत्यक्ष फल हैं।

(२) परोक्षफलः—

(क) अभ्युदयरूप फल—इस ग्रन्थ के लिखने व पढ़ने में अज्ञान की कमी होने और अपने समय का कुछ न कुछ भाग शुभोपयोग में बीतने से सातावेदनीय रूप पुण्यबन्ध होकर जन्मान्तर में स्वर्ग या राज्य वैभव आदि किसी शुभ फल की प्राप्ति होना अभ्युदय रूप परोक्ष फल है।

(ख) निश्रेय स्वरूप फल—बिना किसी लौकिक प्रयोजन सिद्धि की इच्छा के निष्काम भावयुक्त इस ग्रन्थ को केवल 'ज्ञान प्राप्ति' और 'अज्ञान निवृत्ति' की अभिलाषा से लिखना या पठन पाठन व मनन करना मोक्ष प्राप्तिका भी परम्परा कारण है।

४. **परिमाण**—ग्रन्थ के इस प्रस्तुत प्रथम खंड का परिमाण लगभग १० सहस्र श्लोक (अनुष्टुप छन्द परिमाण) या इस से कुछ अधिक है।

५. **नाम**—श्री बृहत् जैन शब्दार्णव ('श्री हिन्दी साहित्य अभिधान' का प्रथम अवयव) इस ग्रन्थरत्न का नाम है

६. **कर्त्ता**—

(१) अर्थकर्त्ता या भावग्रन्थ कर्त्ता अथवा मूलग्रन्थ कर्त्ता—श्री अरहन्त देव हैं।

(२) ग्रन्थकर्त्ता व उत्तर ग्रन्थकर्त्ता—श्रीगणधर देव व अन्य पूर्वाचार्य आदि अनेक व्यक्ति हैं।

(३) संग्रह कर्त्ता या लेखक—एक अति अल्पज्ञ 'चैतन्य' है।

* ॐ *

श्री जिनाय नमः ॥

वृहत् जैन शब्दार्णव
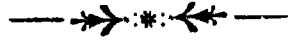
बिघ्न बिनाशक वृषभ को, हाथ जोड़ शिर नाय।
रीति गिरा ज्ञाता गणप, लागूं तिन के पाय॥
लघु बल अति पर बाहुबल, शब्दार्णव गम्भीर।
तरण हेतु साहस कियो, शरण लेय महावीर॥

अ

अ—(१) अक्षर—प्राकृत संस्कृत व इनसे निकली हुई प्रायः सर्व ही भाषाओं की वर्णमाला का यह पहिला अक्षर है। यह स्वर वर्ण का प्रथम अक्षर है।

(२) अव्यय—१. अभाव वाचक, जैसे 'अलोक' (लोक का अभाव);

२. विरोधवाचक, जैसे 'अधर्म' (धर्म विरुद्ध पाप);

३. अन्यपदार्थवाचक, जैसे 'अघट' (घट के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ);

४. अल्पतावाचक, जैसे 'अनुदरी' (अल्पोदरी, जिस का उदर अल्प अर्थात् छोटा हो);

५. अप्रशस्त्यवाचक, जैसे 'अकाल' (अयोग्य काल या अशुभ काल);

६. सादृश्य वाचक, जैसे "अब्राह्मण" (ब्राह्मण सदृश अन्य द्विज वर्ण, क्षत्रिय या वैश्य);

७. दुर्व्यवहारवाचक, जैसे "अनाचार" (दुराचार)॥

नोट—यह अक्षर जब किसी स्वर से प्रारम्भ होने वाले शब्द के पहिले लगाया जाता है तो "अन्" हो जाता है जैसे 'उदरी' के पहिले 'अ' लगाने से 'अन्-उदरी' = अनुदरी होगया, ऐसे ही 'आचार' 'अन्-आचार' = अनाचार इत्यादि।

(३) संकेत—१. अर्हन्त अर्थात् सकल परमात्मा, जीवनमुक्त आत्मा, परम-पूज्य या परम-स्तुत्य आत्मा, परम आराधनीय आत्मा; २. अशरीर अर्थात् सिद्ध या विदेह मुक्त या निकल परमात्मा या अजरामर परम-शुद्ध आत्मा; ३. अनन्त; ४. एक का अङ्क; ५ ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव, रक्षक, पोषक, वायु, वैश्वानर, मेघ, सूर्य,

ललाट, कण्ठ इत्यादि शब्दों का बोधक यह 'अ' अक्षर है ॥

नोट—'अ' अक्षर वास्तव में तो 'अर्हन्त,' अशरीर, अजर, अमर, अखंड, अभय, अबन्ध, अमल, अक्षय, अनन्त, अधिपति आदि शब्दों का प्रथम या आदि अक्षर होने के कारण केवल इन ही शब्दों का सांकेतिक अक्षर है, परन्तु यह शब्द जिन जिन अन्य अनेक शब्दों के पर्यायवाची हैं प्रायः उन सर्व ही के लिये 'अ' अक्षर का यथा आवश्यक प्रयोग किया जाता है ॥

(४) पर्याय—प्रणवाद्य अर्थात् ॐकार का आदि अक्षर, वागीश, अक्षराधिप, आद्यक्षर, प्रथमाक्षर आदि शब्द 'अ' अक्षर के पर्यायवाची हैं ॥

(५) मंत्र—"अ" अक्षर प्रणव (ॐ) की समान एकाक्षरी मंत्र भी है जिसका जपना पूर्वाचार्यों ने ध्यानकी सिद्धि और स्वर्ग मोक्ष के साधन के लिये बड़ा उपयोगी बताया है। किसी किसी आचार्य्य का मत है कि मन को वशीभूत करने के लिए मुमुक्षु को अपने अभ्यास की पूर्वावस्था में अरहन्तादि पञ्चपरमेष्ठी वाचक, प्रणव (ॐ) का जाप न करके पहिले प्रणवाद्य अर्थात् 'अ' अक्षर ही का जाप और ध्यान विधि पूर्वक करना चाहिये। इस मंत्रकी उपयोगिता का महत्व श्री 'शुभचन्द्राचार्य' अपने "ज्ञानार्णव" ग्रन्थ में पदस्थ ध्यान सम्बन्धी ३८ वें प्रकरण के निम्न श्लोकों द्वारा प्रदर्शित करते हैं:—

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं, जपन्नानन्द संभृतः।
प्राप्नोत्येकोपवासस्य, निर्जरां निर्जिताशयः॥५३

अर्थ—जो चित्त लगाकर आनन्द से 'अ' अक्षर का पाँचसौ (५००) बार जप करता है वह एक उपवास के निर्जरा रूप फल को प्राप्त होता है ॥

एतद्धि कथितं शास्त्रे, रुचिमात्र प्रसाधकम्।
किन्त्वमीषां फलं सम्यक्, स्वर्गमोक्षैकलक्षणम्॥५४

अर्थ—यह जो शास्त्रों में जप का एक उपवास रूप फल कहा है सो केवल मंत्र जपने की रुचि कराने के लिए है; किन्तु वास्तव में उसका फल स्वर्ग और मोक्ष ही है। (आगे देखो श. "अक्षरमातृका" और उस का नोट) ॥

अइरा (ऐरा, अचिरा)—श्री शान्तिनाथ तीर्थङ्कर की माता का नाम। (आगे देखो श. "ऐरा")।

अइलक (अईलक, अहिलक, ऐलक, ऐल्लक)—सर्वोत्कृष्ट श्रावक अर्थात् सर्व से ऊँचे दर्जे का धर्मात्मा गृहस्थी।

'उद्दिष्ट-त्याग' नामक ११वीं प्रतिमाधारी (प्रतिज्ञाधारी, कक्षारूढ़) श्रावक के 'क्षुल्लक' और 'अइलक' इन दो भेदों में से यह द्वितीय भेद है। इसे द्वितीयोद्दिष्ट-विरतधारी श्रावक भी कहते हैं, और दोनों प्रकार के ११वीं प्रतिमा (प्रतिज्ञा या कक्षा) धारी श्रावकों को 'अपवाद लिङ्गी, या वानप्रस्थ आश्रमी' तथा उद्दिष्टत्यागी-श्रावक, उद्दिष्ट वर्जी श्रावक, उद्दिष्ट विनिवृत श्रावक, उद्दिष्ट विरत-श्रावक, त्यक्तोद्दिष्ट-श्रावक, उद्दिष्टाहारविरत-श्रावक, उद्दिष्टपिंडविरत-श्रावक एक वस्त्रधारी या एक शाटक धारी श्रावक, खंड

वस्त्र धारी या चेल खंडधारी-श्रावक, गृह त्यागी या अगृहस्थ-श्रावक, और उत्कृष्ट श्रावक भी कहते हैं। यह दोनों ही अपने उद्देश्य से बने हुए भोजन के त्यागी होते हैं। इसी लिये 'उद्दिष्ट-त्यागी' कहलाते हैं॥

'अइलक' वह विरक्त आर्य है जो नीचे लिखे नियमों का भलेप्रकार दृढ़तासे पालन करे:—

(१) श्वेत * कोपीन (लङ्गोटी) के अतिरिक्त सर्व वस्त्रादि परिग्रह का त्यागी हो;

(२) दया निमित्त केवल एक पिच्छिका (मयूर पीछी) और शौच निमित्त केवल एक काठ का 'कमण्डल' सदा साथ रखे;

(३) डाढ़ी, मूंछ और मस्तक के केशों का लौंच (अपने हाथों से बाल उखाड़ना) हर दो तीन या चार मास में करता रहे;

(४) भोजन को 'ईर्यापथ-शुद्धि' पूर्वक जाय, गृहस्थके आँगन तक जहाँतक किसी के लिये रोक टोक न हो जाय; 'अक्षयदान' या 'धर्मलाभ' कहे; गृहस्थ यथा योग्य भक्ति व श्रद्धा सहित विधि पूर्वक पड़गाहे अर्थात् आहार देने को उद्यत हो तो यथा स्थान बैठ कर और अन्तराय टाल कर 'करपात्र' में शुद्ध भोजन करै, नहीं तो अन्य गृह चला जाय; पाँच घर से अधिक न जाय; एक दिन में एक ही घर का आहार केवल एक ही बार ले, यदि अन्तराय हो जाय तो उस दिन निर्जल उपवास करै;

(५) हर मास में दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशी के दिन विधिपूर्वक प्रोषधोपवास करै, रात्रि को नियम पूर्वक प्रतिमा-योग धारण कर (नग्न होकर) यथा शक्ति आत्म स्वरूप चिन्तवन, परमात्मविचार आदि धर्म्म ध्यान करै;

(६) सन्मुख आये उपसर्ग परिषह (उपद्रव, विपत्ति या कष्ट) को वीरता और साहस के साथ जीते, कायर न बने, जान बूझ कर किसी उपसर्ग परीषह के सन्मुख न जाय; अति कठिन आखिड़ी (प्रतिज्ञा) न ले और न मुनिव्रत धारण किये बिना त्रिकाल योग अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा, और शीत ऋतु की परीषह (पीड़ा) जीतने के सन्मुख हो;

(७) मुनिव्रत धारण करने का सदा अभिलाषी रहे, निरन्तर इसी को लक्ष्य बनाकर निज कक्षा सम्बन्धी नियमों का पालन निःकषाय, निःशल्य और विषय वासना रहित विरक्त भाव से करै;

(८) उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त प्रथम प्रतिमा (कक्षा) से दशम तक के तथा ११वीं 'प्रथमोद्दिष्टविरत' (क्षुल्लक व्रत) सम्बन्धी व्रत नियमादि भी यथा योग्य पालन करै॥

नोट १.—ऐलक को 'कर पात्र-भोजी-श्रावक', 'कोपीन मात्र-धारी श्रावक', सर्वोत्कृष्ट-श्रावक' तथा 'आर्य' और 'यती' भी कहते हैं॥

नोट २.—आगे देखो शब्द 'एकादश-प्रतिमा' और 'अगारी'॥

(सागार ध० अ० ७ श्लोक ३७-४९)

* किसी किसी आचार्य की सम्मति में लाल कोपीन भी ग्राह्य है।

अकच्छ—कच्छरहित, लंगोटरहित, निर्ग्रन्थ-मुनि, दिगम्बरसाधु, अकिञ्चन, जिन-लिङ्गी-भिक्षुक या उत्सर्गलिंगी भिक्षुक, अनगारी, अचेलव्रती, महाव्रती, संयमी, अपरिग्रही, श्रमण, भिक्षुकाश्रमी या सन्यस्ताश्रमी, इत्यादि ॥

व्रती पुरुषों के दो भेदों—(१) देशव्रती या अनुव्रती (अणुव्रती) और (२) महाव्रती—में से दूसरे व्रती पुरुषों को 'अकच्छ' कहते हैं। यह शुद्ध संयम में हीनाधिक्यता की अपेक्षा या व्रतों में अतीचारादि दोष लगने न लगने की अपेक्षा ५ प्रकार के होते हैं—(१) पुलाक (२) वकुश (३) कुशील (४) निर्ग्रन्थ और (५) स्नातक। इन के परोपकारादि की हीनाधिक्यता की अपेक्षा (१) अर्हन्त (२) आचार्य (३) उपाध्याय और (४) साधु यह ४ भेद हैं; कषायों की मन्दता से आत्म-शक्तियों की प्राप्ति की अपेक्षा (१) यति, (२) साधु, (३) ऋषि (राजर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, परमर्षि) और (४) मुनि, यह चार भेद हैं; सम्यक्त की तथा वाह्याभ्यन्तरङ्ग शुद्धि की अपेक्षा (१) द्रव्यलिंगी और (२) भावलिंगी, यह दो भेद हैं। गुणस्थान अपेक्षा छठे गुणस्थान से तेरहवें तक आठभेद हैं। अन्य अपेक्षा से आचार्य, उपाध्याय, वृद्ध, गणरक्ष, प्रवर्त्तक, शैक्ष्य, तपस्वी, संघ, गण, ग्लान, यह १० भेद हैं। इत्यादि इस पदस्थ के अनेक भेद उपभेद हैं ॥

इनमें से छठे गुणस्थान वाले प्रत्येक मुनि के (१) वस्त्र त्याग, (२) केशलुञ्च (३) शरीर संस्काराभाव, और (४) मयूर पिच्छिका (मोर-पीछी), यह चार मुख्य वाह्य चिन्ह या लिङ्ग हैं ॥

यह सर्व ही निर्ग्रन्थ मुनि पंच महाव्रत, पंच समिति, पंच इन्द्रिय-निरोध, षट आवश्यक, केशलुञ्च, आचेलक्य, अस्नान, भूमि शयन, अदन्तघर्षण, स्थितिभोजन, और एक-भक्त (एकाहार), इन अष्टाविंशति (२८, अट्ठाईस) मूलगुणों के धारक और यथा शक्ति अष्टादश-सहस्र (१८ हज़ार) शील, और चतुरशीति लक्ष (८४ लाख) उत्तर गुणों के पालक होते हैं। इन शील और गुणों की पूर्णता सर्वोत्कृष्ट "अर्हन्त" पदमें पहुँचने पर होती है ॥

यह सर्व ही साधु अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन, अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान, त्रयोदश-सम्यक्-चारित्र, पंचाचार, द्वादशतप, द्वाविंशति परीषहजय, दश लक्षणधर्म, द्वादशानुप्रेक्षा-चिन्तवन, इत्यादि को यथा विधि और यथा अवसर बड़े उत्साह के साथ त्रिशल्य रहित धारण करतेहुए अनादि कर्मबन्ध से मुक्त होने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते हैं ॥

नोट—उपर्युक्त मुनि भेदों और उनके मूल-गुण आदि के नाम व स्वरूपादि व्याख्या सहित इसी कोष में यथा स्थान देखें। (आगे देखो शं० "अठारहसहस्र-शील") ॥

{ मूलाचार, चारित्रसार, भगवति-आराधनासार, धर्म संग्रह श्रावकाचार आदि }

अकण्डुक-शयन—'अकण्डुक' शब्द का अर्थ है 'खाज रोग रहित'। अतः 'अकण्डुक-

शयन' इस प्रकार सोने को कहते हैं कि सोते समय शरीर में खाज उठने पर भी न खुजलाया जावे ॥

नोट १—यह अकण्डुक-शयन' बाह्यतपके षटभेदोंमें से पंचम 'काय क्लेश' नामक तपके अन्तर्गत 'शयन-काय-क्लेश' का एक भेद है जिसे शरीर ममत्व त्यागी निर्ग्रन्थ मुनि कर्म-निर्जरार्थ पालन करते हैं ॥

नोट २—इच्छाओंके घटाने या दूर करने को तथा इच्छाओं और क्रोधादि सब कषायों या मनोविकारों को नष्ट करनेकी विधि विशेष को 'तप' कहते हैं ॥

अकण्डूयक—शरीर में खाज उठने पर भी न खुजाने वाला; न खुजानेकी प्रतिज्ञालेने वाला साधु ॥

अकतिसंचित—अगणित, एकत्रित: एक समय में अनन्त उत्पन्न होने वाले जीवों का समूह (अ० मा०) ॥

अकम्पन—इस नाम के निम्नलिखित कई इतिहास प्रसिद्ध पुरुष हुए:—

(१) काशीदेश के एक महा मंडलेश्वर राजा—यह वर्तमान कल्प के वर्तमान अवसर्पिणीय विभागान्तर्गत दुःखम सुखम नामक गतचतुर्थ काल के प्रारम्भ में प्रथम तीर्थंकर "श्रीऋषभ देव" के समयमें हुए। नाभिपुत्र श्रीऋषभदेव ने इसे एक सहस्र मुकुटबन्ध राजाओं का अधिपति बनाया जिससे "नाथवंश" की उत्पत्ति हुई। इसकी एक बड़ी सुपुत्री 'सुलोचना' ने कुरु (कुरु जांगल) देशके दूसरे महा मंडलेश्वर राजा 'सोमप्रभ' के पुत्र 'जयकुमार' (मेघेश्वर) को स्वयम्बर में अपना पति स्वीकृत किया। और दूसरी छोटी पुत्री 'अक्षमाला' श्री ऋषभदेव के पौत्र 'अर्ककीर्ति' को, जो भरत चक्रवर्ती का सबसे बड़ा पुत्र था और जिस से 'अर्कवंश' अर्थात् "सूर्यवंश" का प्रारम्भ हुआ, व्याही गई। वर्तमान अवसर्पिणी कालमें "स्वयम्बर" की पद्धति सब से पहिले इसी राजा 'अकम्पन' ने चलाई। इसके चार मंत्री (१) श्रुतार्थ (२) सिद्धार्थ (३) सर्वार्थ और (४) सुमति थे, जो बड़े ही योग्य और गुणी थे। 'भरत' चक्री इस राजा को पिता की समान बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। अन्त में इस राजा ने अपने बड़े पुत्र हेमाङ्गदत्त' को राज्य देकर मुनिव्रत ले तपोवन को पयान किया। बहुत काल तक उग्रोग्र तपश्चरण कर सर्व कर्मों की निर्जरा को और निर्वाणपद प्राप्तकर सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त की ॥

(२) 'उत्पल-खेट' नगर के राजा 'वज्रजंघ' (श्री ऋषभदेव का अष्टम पूर्व भवधारी पुरुष जो बीच में ६ जन्म और धारण कर अष्टम जन्म में 'श्री ऋषभदेव' तीर्थंकर हुआ) का सेनापति—यह इसी राजा के पूर्व सेनापति 'अपराजित' का पुत्र था जो अपराजित की धर्म पत्नी 'आर्यवा' के उदर से जन्मा था। जिस समय 'वज्रजङ्घ', अपने मातुल तथा श्वसुर 'वज्रदन्त' चक्री के मुनि दीक्षा धारण करने के समाचार मिलने पर, उसकी राजधानी "पुण्डरीकिणी" नगरी की ओर स्व-स्त्री (वज्रदन्त

की पुत्री) श्रीमती व अन्य परिवारजन आदि सहित जा रहा था तो यह सेनापति 'अकम्पन' भी साथ था। मार्ग में किसी बन में ठहरने पर जब 'बज्रजङ्घ' और श्रीमती' नेअपने लघु युगल पुत्रों 'दम्बर-षेण' और 'सागरषेण' को जो कुछ दिन पूर्व पिता से आज्ञा लेकर मुनिपद ग्रहण कर चुके थे और जो उस समय अचानक वहां विचरते आ निकले थे, बड़ी भक्ति से यथाविधि अन्तराय रहित शुद्ध आहार दान दिया तब इस अकम्पन ने भी शुद्ध हृदय से इस दान की बड़ी अनुमोदना की जिससे इसे भी महान पुण्य बंध हुआ। "वज्रजङ्घ" और 'श्रीमती' के शरीर त्याग पश्चात् 'श्री दृढ़ धर्म स्वामी' दिगम्बराचार्य से 'अकम्पन' ने दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की और उग्र तपश्चरण करके शरीर त्याग कर प्रथम ग्रैवेयक में जन्म ले अहमेन्द्र पद पाया। यही 'अकम्पन' अहमेन्द्र पद के पश्चात् दो जन्म और लेकर पाँचवें जन्म में श्री ऋषभदेव का पुत्र 'बाहुबली' प्रथम कामदेव पदवी धारी पुरुष हुआ।

(३) एक प्रसिद्ध जैनाचार्य—यह नवें चक्रवर्ती राजा महापद्म के समय में विद्यमान थे। यह १९ वें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ और बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रतनाथ के अन्तराल काल में अष्टम बलभद्र नारायण श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण के समय से पूर्व हुए जिसे आज से लग-भग १२ या १३ लाख वर्ष व्यतीत होगये। यह महा मुनि समस्त श्रुत के ज्ञाता श्रुतकेवली ७०० शिष्य मुनियों के नायक थे। हस्तिनापुर के कुरुवंशी राजा पद्मरथ (महापद्म के पुत्र) के "बलि" नामकमंत्री ने राजा को वचनबद्ध करकेऔर७दिन का राज्य उससे लेकर पूर्व विरोध के कारण ७०० शिष्यों सहित इन ही अकम्पनाचार्य पर "नरमेधयज्ञ" रच कर भारी उपसर्ग किया जिसे वैक्रियिक ऋद्धि धारक "श्री विष्णुकुमार" मुनि ने, जो हस्तिनापुर नरेश पद्मरथ के लघु भ्राता थे और पिता के साथ ही गृहस्थपद त्याग तपस्वी दिगम्बरमुनि हो गये थे, अपनी वैक्रियिक ऋद्धि के बल से ५२ अंगुल का अपना शरीर बना वावनरूप धारण कर निवारण किया था। उस दिन तिथि श्रावण शुक्ला १५ और नक्षत्र श्रवण था। श्री विष्णुकुमार का यह वावनरूप ही "बावन अवतार" के नाम से लोक प्रसिद्ध है। रक्षा- बन्धन (सलूनों) का त्योहार उसी दिन से प्रचलित हुआ है॥

(४) लङ्कापति रावण का एक सेनापति—राम रावण युद्ध में यह श्री हनुमान के हाथ से मारा गया था। प्रहस्त और धूम्राक्ष इस के यह दो भाई और थे जिन में से प्रहस्त भी रावण की सेना का एक वीर अधिपति था। यह रावण की माता कैकसी का लघुभ्राता अर्थात् रावण का मातुल (मामा) था॥

(५) नवम नारायण या वासुदेव श्री कृष्णचन्द्र का ज्येष्ठ पितृव्य-पुत्र (तयेरा भाई)—यह श्रीकृष्णचन्द्र के पिता वसुदेव के ज्येष्ठ भ्राता विजय के छह पुत्रों में से सब से बड़ा पुत्र था। इस के ५ लघु-भ्राता १ बलि, २ युगन्त, ३ केशरी ४. धी-

मान् और ५. लम्बुग थे ॥

(६) श्रीकृष्णचन्द्र के अनेक पुत्रों में से एक पुत्र ॥

(७) महाभारत युद्ध के समय से पूर्व का एक राजा—इसे एक बार जब युद्ध में शत्रुओं ने घेर कर पकड़ लिया तो इसके पुत्र हरि ने, जो बड़ा पराक्रमी और वीर था, छुड़ाया था ॥

(८) विहार प्रान्तस्थ वैशाली नगर के लिच्छवि वंशी राजा 'चेटक' का एक पुत्र—यह हरिवंशी काश्यप कुलोत्पन्न अन्तिम तीर्थङ्कर "श्री महावीर स्वामी" (जिनका जन्म सन् ईस्वी के प्रारम्भ से ६१७ वर्ष पूर्व और निर्वाण ५४५* वर्ष पूर्व हुआ) की माता श्रीमती 'प्रिय कारिणी त्रिशला" का लघुभ्राता अर्थात् श्री महावीर का मातुल (मामा) था। इसके छह ज्येष्ठ भ्राता १. धनदत्त, २. दत्तभद्र, ३. उपेन्द्र, ४ सुदत्त, ५. सिंहभद्र, और ६. सुकम्भोज, और तीन लघुभ्राता १. सुपतङ्ग, २. प्रभञ्जन, और ३. प्रभास थे। इसकी ७ बहनें १. प्रियकारिणी त्रिशला, २. मृगावती, ३. सुप्रभा, ४. प्रभावती (शीलवती), ५. चेलिनी, ६. ज्येष्ठा, और ७. चन्दना थीं। इन ७ बहनों में से पहिली विदेहदेश (विहार प्रान्त) के कुंडपुराधीश हरिवंशी (नाथवंश की एक शाखा) महाराज "सिद्धार्थ" को विवाही गई जिसके गर्भ से श्री महावीर तीर्थङ्कर का जन्म हुआ, दूसरी वत्सदेश के कौशाम्बी नगराधीश चन्द्रवंशी राजा शतानीक को, तीसरी दशार्ण देश के हेरकच्छ नगराधीश सूर्यवंशी राजा दशरथ को, चौथी कच्छ देश के रोरुक नगर-नरेश उदयन को और पांचवीं बहन चेलिनी मगधदेश के राजगृही नगराधिपति श्रेणिक (बिम्बसार) को विवाही गई थीं। शेष दो बहनें ज्येष्ठा और चन्दना ने विवाह न कराकर और आर्यिका पद में दीक्षित होकर उग्र तपश्चरण किया ॥

(९) श्री महावीर स्वामी के ११ गणधरों में से अष्टम गणधर—यह सप्तऋद्धिधारी महा मुनि सवा छहसौ शिष्य मुनियों के गुरु ब्राह्मण वर्ण के थे। इनका जन्म सन् ईस्वी के प्रारम्भ से लगभग ६०० वर्ष पूर्व और शरीरोत्सर्ग ७८ वर्ष की वय में हुआ ॥

नोट १—श्रीमहावीर स्वामी के अष्टम गणधर "श्री अकम्पन" का नाम कहीं कहीं "अकम्पित" और "अकम्पिक" भी लिखा मिलता है। इनके जिनदीक्षा ग्रहण करने से पूर्व ३०० शिष्य थे जिन्होंने अपने गुरु के साथ ही दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी ॥

नोट२—श्रीमहावीर तीर्थंकर के ११ गणधर निम्नलिखित थे:—

१. इन्द्रभूति गौत्तम २. अग्निभूति ३. वायुभूति	} ये तीनों गौर्वर ग्राम निवासी वसुभूति(शांडिल्य) ब्राह्मणकी स्त्री

"पृथ्वी" (स्थिंडिला) और "केशरी" के गर्भ से जन्मे। [आगे देखो शब्द "अग्निभूति (१)"] ॥

* श्री महावीर तीर्थङ्कर के निर्वाण काल के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक विद्वानों के एक दूसरे के विरुद्ध कई अलग अलग मत हैं जो 'जैन हितैषी', वर्ष ११, अङ्क १, २ के पृष्ठ ४४

४ व्यक्त (अव्यक्त)—ये "कोल्लाग-सन्निवेश" निवासी "धनुमित्र" ब्राह्मण की "वारुणी" नामक स्त्री के गर्भ से जन्मे।

५. सुधर्म—ये "कोल्लाग सन्निवेश" निवासी "धम्मिल" ब्राह्मण की "भद्रिलाभव" नामक स्त्री के पुत्र थे॥

६ मौंड (मंडिक)—ये मौर्याख्य देश निवासी "धनदेव" ब्राह्मण की "विजया-देवी" स्त्री के गर्भ से जन्मे॥

७. मौर्यपुत्र—ये मौर्याख्यदेश निवासी "मौर्यक" ब्राह्मण के पुत्र थे॥

८ अकम्पन (अकम्पित)—येमिथिलापुरी निवासी "देव" नामक ब्राह्मण की "जयन्ती" नामक स्त्री के उदर से जन्मे॥

९. धवल (अचल भ्राता)—ये कोशलापुरी निवासी "वसु" नामक ब्राह्मण की स्त्री "नन्दा" के उदर से जन्मे॥

१०. मैत्रेय (मेतार्य)—ये वत्सदेशस्थ तुंगिकाख्य निवासी "दत्त" ब्राह्मण की स्त्री "करुणा" के गर्भ से जन्मे॥

११. प्रभास—ये राजगृही निवासी "बल" नामक ब्राह्मण की पत्नी "भद्रा" की कुक्षि से जन्मे॥

इन ११ गणधरों की आयु क्रम से ९२, ७४, ७०, ८०, १००, ८३, ९५, ७८, ७२, ६०, ४० वर्ष की हुई। यह सर्व ही वेद वेदांग आदि शास्त्रों के पारगामी और उच्च कुली

से ५६ तक पर सविस्तर प्रकाशित हो चुके हैं। तथा "भारत के प्राचीन राजवंश" नामक ग्रन्थ के द्वितीय भाग की प्रथमा वृत्ति के पृ० ४२, ४३ पर भी "जैन हितैषी भाग १३, अङ्क १२, पृ० ५३३ के हवाले से इस के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त लेख है। इन सर्व लेखों को गम्भीर विचार पूर्वक पढ़ने और श्री त्रैलोक्यसार की गा० ८५०, वसुनन्दी श्रावकाचार, कई प्राचीन पट्टावलियों और कलकत्ते से प्रकाशित श्री हरिवंशपुराण की प्रस्तावना के पृ० १२ की पंक्ति २२से२६ तक, तथा सूरत से मरहट्टी भाषा में प्रकाशित श्री कुन्द कुन्दाचार्य चरित्र की प्रथमावृत्ति के पृ० २५, पंक्ति ६, इत्यादि से श्री वीर निर्वाण काल विक्रम-जन्म से ४७० वर्ष पूर्व और विक्रम सम्वत् के प्रारम्भ से ४८८ वर्ष ५ मास पूर्व का अर्थात् सन् ईस्वी के प्रारम्भ से ५४५ (४८८ ५७) वर्ष दो मास पूर्व का निःशङ्क भले प्रकार सिद्ध होता है। आजकल जैन पंचाग या जैन समाचार पत्रों आदि में जो वीरनिर्वाण सम्वत् लिखा जाता है वह विक्रम सम्वत् से ४६९ वर्ष ५ मास पूर्व और सन् ईस्वी से लगभग ५२६ वर्ष दो मास पूर्व मानकर प्रचलित हो रहा है जिसमें वास्तविक सम्वत् से १९ वर्ष का अन्तर पड़ गया है। इस कोष के सम्पादक के कई लेख जैनमित्र वर्ष २० अङ्क ३३ पृ० ५१३, ५१४; अहिंसा, वर्ष १ अङ्क २० पृ० १०; दिगम्बरजैन वर्ष १४ अङ्क ६ पृ० २५ से २८ तक, इत्यादि कई जैन समाचार पत्रों में इस सम्वत् के निर्णयार्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें कई दृढ़ प्रमाणों द्वारा यही सिद्ध किया गया है कि श्री वीर निर्वाण काल शक शालिवाहन के जन्म से ६०५ वर्ष ५ मास पूर्व और शाका सम्वत् से ६२३ वर्ष ५ मास पूर्व अर्थात् विक्रम सम्वत् से ४८८ वर्ष ५ मासपूर्व का है जिससे जैन-धर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, स्वर्गीय ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजी आदि कई जैन विद्वान पूर्णतयः सहमत हैं और इसके विरुद्ध किसी महानुभाव का कोई लेख किसी समाचार पत्र में आज तक प्रकाशित हुआ नहीं देखने में आया है अतः इस कोष के लेखक की सम्मति में यही समय ठीक जान पड़ता है॥

ब्राह्मणों के देशप्रसिद्ध परम विद्वान् पुत्र थे जो क्रम से ५००, ५००, ५००, ५००, ५००, ३५०, ३५०, ३००, ३००, ३००, ३०० विद्यार्थियों के गुरु थे।

(हरि. पु., महावीर पु, वर्द्ध. च.)

अकर्ण—लवण समुद्र में समुद्र तट से ७०० योजन की दूरी पर का १७वां अन्तरद्वीप; इस अन्तरद्वीप में रहने वाले मनुष्य। (अ० मा०)

अकर्मन्—कर्मरहित, कर्मास्रवरहित (अ.मा.)

अकर्मभूमि—भोगभूमि; असि, मसि, कृषि आदि षट्कर्मवर्जित भूमि; कल्पवृक्षोत्पादक भूमि। (आगे देखो शब्द "भोग भूमि")

अकर्मांश—कर्मरजरहित, घातियाकर्मरहित, स्नातक, केवली अर्हन्त (अ०मा०) ॥

अकलङ्क—इस नाम के भी निम्नलिखित कई इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष हुए:—

(१) 'अकलङ्कदेव स्वामी' या 'भट्टाकलङ्कदेव' नाम से प्रसिद्ध एक जैनाचार्य—यह अब से लग भग ग्यारह सौ (११००) वर्ष पूर्व वीर निर्वाण की चौदहीं शताब्दी में तथा विक्रम की नवीं शताब्दी में देव-संघ में हुए। 'यह कर्णाटक और महाराष्ट्र देशों की प्राचीन राजधानी 'मान्यखेट' (जिसे आज कल 'मलखेड़' कहते हैं, और जो हैदराबाद रेलवे लाइन पर मलखेड़-रोडस्टेशन से ४ या ५ मील दूरी पर है) नगरके राष्ट्रकूटवंशीय कर्कराज-पुत्र 'साहसतुङ्ग' (कृष्णराज अकालवर्षशुभतुङ्ग) के मन्त्री 'पुरुषोत्तम' के बड़े पुत्र थे। इनकी माता का नाम पद्मावती और लघु भ्राता का नाम 'निःकलङ्क' था। यह दोनों भाई बालब्रह्मचारी थे और विद्याध्ययन कर छोटी अवस्थाहीमें अद्वितीय विद्वानहोगए। इन्होंने पटनेमें जाकर कुछदिन तक बौद्धधर्म की शिक्षा भी प्राप्त की थी। यह अकलङ्क देवस्वामी "एकसंस्थ" थे अर्थात् इन्हें कठिन से कठिन श्लोक आदि केवल एक ही बार सुन लेने पर याद हो जाते थे। इसी प्रकार इनका लघु भ्राता "द्विसंस्थ" था। एकदा बौद्धों के हाथ से अपने छोटे भाई के मारे जाने के पश्चात् वीर नि० सं० १४०० (सन् ८५५ ई०) में इन्होंने कांची या कलिङ्ग के (उड़ीसा के दक्षिण, मदरास प्रान्त में गोदावरी नदी के मुहाने के आस पास का देश) देशान्तर्गत 'रत्नसञ्चयपुर' के बौद्ध धर्मी राजा "हिमशील" की राज सभा में बौद्धों के एक प्रधान आचार्य 'संघश्री' को अनेक बौद्ध पंडितों और अन्य विद्वानों की उपस्थिति में ६ मास तक नित्य प्रति शास्त्रार्थ कर के परास्त किया और बौद्धों की बढ़ती हुई शक्ति को अपने पांडित्यबल से लगभग सारे भारत देश में निर्बल कर दिया। यह भट्टाकलङ्क देव थे तो सर्व ही विषयों के पारगत विद्वान, पर न्याय के अद्वितीय पंडित थे जिसका प्रमाण इनके रचे निम्नलिखित ग्रन्थों से भले प्रकार मिलजाता है:—

(१) वृहत्त्रयी (वृद्धत्रयी)

(२) लघीयस्त्रयी (लघुत्रयी)

(३) चूर्णी

(४) महाचूर्णी

(५) न्याय-चूलिका

(६) तत्त्वार्थ राजवार्तिकालङ्कार (श्री-मद्भगवत् "उमास्वामी" विरचित 'तत्त्वार्थसूत्र' की संस्कृत टीका, १६ सहस्र श्लोकपरिमाण)

(७) न्याय-विनिश्चयालङ्कार

(८) न्याय कुमुदचन्द्र (प्रभाचन्द्ररचित इसकी एक वृत्ति 'न्याय कुमुदचन्द्रो-दय' है)

(९) शब्दानुशासन (कनड़ी भाषा का व्याकरण संस्कृत भाषा में)

(१०) अष्टशती (उपर्युक्त 'तत्त्वार्थसूत्र' की स्वामी "समन्त भद्र" आचार्य कृत ८४ सहस्र श्लोक परिमाण संस्कृतटीका "गंधहस्तीमहाभाष्य" नामक के मङ्गलाचरण 'देवागम स्तोत्र' का संस्कृत भाष्य ८०० श्लोकों में)

(११) अकलङ्क प्रायश्चित

(१२) अकलङ्काष्टक स्तोत्र

(१३) भाषामञ्जरी (२४०० श्लोक); आदि अनेक महान ग्रन्थों के रचयिता यह आचार्य हैं।

इन ही श्री अकलङ्क देव के शिष्य "श्री प्रभाचन्द्र" और "विद्यानन्द स्वामी" थे जो "हरिवंशपुराण" के रचयिता "श्रीजिनसेना-चार्य" तथा महापुराण के पूर्व भाग "श्री आदि-पुराण" के रचयिता "श्रीभगवज्जिन-सेनाचार्य" के समकालीन थे।

(२) भट्टाकलङ्क नाम से प्रसिद्ध एक जैन विद्वान—यह अब से लगभग ७५० वर्ष पूर्व वीर निर्वाण सम्वत् १७०० में (विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में) बम्बई प्रान्त के 'गोकरण' तीर्थ के पास कनारा देश के 'भटकल' नगर में हुए। यह नगर पहिले 'मणिपुर' नाम से प्रसिद्ध था जिसको बैरादेवी रानी ने, जो इन परम विद्वान महात्मा की अनन्य भक्त थी, इनकी प्रसि-द्धि के लिये इनके नाम पर अपने नगर का नाम बदल कर 'भट्टाकलङ्क' नगर रक्खा (भट्ट संस्कृत में "परम विद्वान" तथा ब्रह्म ज्ञानी को कहते हैं)। यह नाम अपभ्रंश हो कर "भटकलनगर" या 'भटकल' कह-लाने लगा। इन्होंने 'श्रावक-प्रायश्चित्' नामक ग्रन्थ रचकर आषाढ़ शु० १४ को वि० सं० १२५६. वीर निर्वाण सम्वत् १७४४में समाप्त किया। 'अकलङ्क संहिता' या 'प्रतिष्ठाविधिरूपा' ८ सहस्र श्लोक परिमाण और भाषा मञ्जरी आदि अन्य कई ग्रन्थ भी इन्होंने रचे।

(३) "अकलङ्क चन्द्र" नाम से प्रसिद्ध एक दिगम्बर भट्टारक— यह ग्वालेर (ग्वालि-यर) की गद्दी के दशवें पट्टाधीश थे। इन का जन्म आषाढ़ शु० १४ वीर निर्वाण सम्वत् १६६७, विक्रम् सम्वत् १२०६ में हुआ। १४ वर्ष की वय में दिगम्बरी दीक्षा धारण की। ३३ वर्ष पश्चात् पूरे ४७ वर्ष

की वय में मिती आषाढ़ शु० १४ को 'वर्द्धमान' जी भट्टारक के स्वर्गवास होने पर उनसे तीन दिन पीछे उनकी गद्दी के पट्टाधीश हुए। यह एक वर्ष ३ मास और २४ दिन पट्टाधीश रह कर ४८ वर्ष ३ मास और २४ दिन की वय में मिती कार्त्तिक शु० ८ वीर निर्वाण सम्वत् २७४६, विक्रम सम्वत् १२५७ में स्वर्गवासी हुए। जाति के यह "अठसाखा पोरवाल" थे॥

(४) "अकलङ्क चन्द्र" नाम से प्रसिद्ध एक वस्त्रधारी भट्टारक—यह अब से साढ़े चार सौ (४५०) वर्ष पहिले वीर निर्वाण सम्वत् २००० के लगभग विक्रम की १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए। "अकलङ्कप्रतिष्ठापाठ" या 'प्रतिष्ठाकल्प' नामक ग्रन्थ इनही का रचित व संग्रहीत है॥

(देखो ग्रन्थ 'वृ० वि० चरितार्णव')

(५) धातकीखंड द्वीप में विजयमेरु के दक्षिण भरत क्षेत्रान्तर्गत आर्यखंड की अतीत चौबीसी के चतुर्थ तीर्थङ्कर का नाम भी श्री अकलङ्क था। (आगे देखो शब्द "अढ़ाई द्वीप पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

(६) पुष्करार्द्ध द्वीप की पूर्व दिशा में मन्दर मेरु के दक्षिण भरतक्षेत्र के अन्तर्गत आर्यखंड के वर्त्तमान अवसर्पिणी काल की चौबीसी के २१ वें तीर्थङ्कर का नाम जो "मृगाङ्क" नाम से भी प्रसिद्ध थे। (आगे देखो श० "अढ़ाई द्वीप पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

अकलङ्क कथा—प्रथमानुयोग के एक जैन कथा-ग्रन्थ का नाम है जिसमें श्री "अकलङ्क देव स्वामी' की कथा वर्णित है। इस नाम की एक कथा भट्टारक "प्रभाचन्द्र" द्वितीय की रचित है जो विक्रम सम्वत् १५७१ में विद्यमान थे। दूसरी इसी नाम की कथा श्री "सिंहनन्दि" जी कृत है जो श्री आराधना कथा कोश, नेमनाथ पुराण आदि कई ग्रन्थों के रचयिता हैं। श्री गुणकीर्ति जी के शिष्य यशःकीर्त्ति जी की रचित भी इस नाम की एक कथा है॥

अकलङ्क चन्द्र—देखो शब्द "अकलङ्क"॥

अकलङ्क चरित—यह सुजानगढ़ निवासी पं० पन्नालाल बाकलीवाल रचित 'स्वामी भट्टाकलङ्क देव' का एक चरित्र हिन्दी भाषा में है जो अकलङ्क स्तोत्र मूल और भाषा गद्य व पद्य सहित बम्बई से प्रकाशित हो चुका है॥

अकलङ्कदेव—पीछे देखो शब्द "अकलङ्क"

अकलङ्क देव भट्ट—देखो शब्द "अकलङ्क"

अकलङ्कदेव भट्टारक—पीछे देखो शब्द "अकलङ्क"॥

अकलङ्क देव स्वामी—पीछे देखो शब्द 'अकलङ्क"॥

अकलङ्क प्रतिष्ठापाठ—यह विक्रम की १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए अकलंक भट्ट रचित एक संस्कृत ग्रन्थ है जिसका विषय

नाम ही से प्रकट है। (पीछे देखो शब्द "अकलङ्क")॥

अकलङ्कप्रतिष्ठापाठकल्प—यह "अकलंक प्रतिष्ठापाठ" का ही नाम है॥

अकलङ्कप्रतिष्ठाविधिरूपा—यह विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में हुए 'अकलङ्क देव भट्टारक' रचित ८००० श्लोक का एक ग्रन्थ है। इसी का नाम "अकलङ्क संहिता" भी है। (पीछे देखो शब्द "अकलङ्क")॥

अकलङ्कप्रायश्चित—यह श्री "अकलङ्क देवभट्ट" रचित एक संस्कृत प्रायश्चित ग्रन्थ है जो ८७ अनुष्टुप छन्दों और एक अन्य छन्द, सर्व ८८ छन्दों में पूर्ण हुआ है। इस में केवल श्रावकों के प्रायश्चित का वर्णन है। इसकी रचना शैली से अनुमान किया जाता है कि यह ग्रन्थ विक्रम की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए "अकलंकभट्ट" नामक भट्टारक रचित है जिनका रचा "अकलंकप्रतिष्ठापाठ" नामक ग्रन्थ है। ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि विक्रम की १३वीं शताब्दी में हुए अकलंक-देव भट्ट ने जो "श्रावकप्रायश्चित" नामक ग्रन्थ रचकर विक्रम सम्वत् १२५६ के आषाढ़ शु० १४ को समाप्त किया था वह यही "अकलंक प्रायश्चित" नामक ग्रन्थ है॥

अकलङ्क भट्ट—देखो शब्द "अकलङ्क"॥

अकलङ्क संहिता—यह विक्रम की १३वीं शताब्दी में हुए अकलंक देव भट्टारक रचित "प्रतिष्ठाविधिरूपा" नाम से प्रसिद्ध ८००० श्लोक का एक ग्रन्थ है॥

अकलङ्क स्तोत्र—इसी का नाम 'अकलंकाष्टक' भी है जिसे "श्रीभट्टाकलङ्कस्वामी" ने संस्कृत पद्य में रचा है। इसमें सब केवल १२ शार्दूलविक्रीडित और ४ अन्य छन्द श्री अरहन्त देव की स्तुति में हैं। इसे पं० नाथूराम प्रेमी ने हिन्दी भाषा के वीर छन्द या आल्ह छन्द नामक ३१ मात्रा के १६ सम-मात्रिक छन्दों में भी रचा है॥

नोट १—श्रीमान् पं० पन्नालाल वाकलीवाल ने अपने भाषा अकलङ्कचरित्र के साथ यह मूल स्तोत्र भाषाटीका सहित तथा पं० नाथूरामजी रचित भाषा छन्दों सहित "कर्णाटक प्रिंटिङ्ग प्रेस नं० ७, बम्बई" में प्रकाशित करा दिया है॥

नोट २—इस स्तोत्र के छन्द १५, १६ के देखने से ऐसा जाना जाता है कि या तो यह स्तोत्र श्री अकलङ्क स्वामी का बनाया हुआ नहीं किन्तु उनके किसी शिष्यादि का बनाया हुआ है (जिसके सम्बन्ध में अन्य कई विद्वानों की भी यही सम्मति है) या श्री भट्टाकलङ्क स्वामी रचित छन्द केवल ८ या ६ हों जैसा कि इसके अपर नाम "अकलङ्काष्टक" से ज्ञात होता है, और शेष छन्द उनके शिष्यादि में से किसी ने बढ़ा दिये हों॥

अकलङ्काष्टक—अकलङ्क स्तोत्र ही का नाम अकलङ्काष्टक भी है (पीछे देखो शब्द "अकलङ्कस्तोत्र" नोटों सहित)॥

यह भाषा वचनिका (हिन्दी गद्य) में पं० सदासुख जी खंडेलवाल, काशलीवाल, जयपुर निवासी रचित भी है जो कि वि० सं० १६१५ में रचा गया था जब कि इनकी वय ६३ वर्ष की थी।

नोट १—पं० सदासुख जी रचित अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं—

(१) भगवती आराधनासार की टीका वचनिका १८००० श्लोक प्रमाण, भाद्रपद शु० २ वि० सम्वत् १६०८ (२) तत्त्वार्थ सूत्र की लघु टीका २००० श्लोक प्रमाण, फाल्गुण शु० १० वि० सं० १६१० (३) तत्वार्थ सूत्र की ११००० श्लोक प्रमाण 'अर्थ प्रकाशिका टीका', वैशाख शु० १० रविवार, वि० सं० १६१४ (४) रत्नकरंड श्रावकाचार की टीका, १६००० श्लोक प्रमाण, चैत्र कृ० १४ वि० सं० १६२० (५) नित्य नियम पूजा टीका, वि० सं० १६२१ (६) मृत्यु महोत्सव वचनिका ॥

नोट २—इस अकलंकाष्टक की एक संस्कृत टीका भी है जो एकी-भाव स्तोत्र, यशोधर चरित, पार्श्वनाथ चरित और काकुस्थ चरित आदि ग्रन्थों के रचयिता "श्री वादिराज सूरि" ने अथवा वाग्भट्टालंकार की संस्कृत टीका, ज्ञानलोचन, यशोधरकाव्य और पार्श्वनाथ निर्वाण काव्य आदि ग्रन्थों के कर्त्ता 'श्रीवादिराज" कवि ने बनाई है॥

अकल्प—साधु के न ग्रहण करने योग्य (अ० मा०)॥

अकल्पस्थित—अचेलकादि १० प्रकार के कल्प रहित, श्वेताम्बराम्नाय के अनुकूल बीचके २२ तीर्थङ्करों के साधु जो वस्त्र-त्याग आदि १० प्रकारके कल्प रहितथे (अ० मा०)

अकलिप्त—यह महाभारत युद्ध में सम्मिलित होने वाले राजाओं में से पाण्डवों के पक्ष का एक बड़ा पराक्रमी राजा था जिसे अन्य कई राजाओं सहित गरुड़ व्यूह रचते समय श्रीकृष्णचन्द्र के पिता "श्रीवसुदेव" ने अपने कुल की रक्षा पर नियत किया था। (देखो ग्रन्थ "वृ० वि० च०")

अकषाय—कषाय रहित, तीव्र-कषाय रहित, ईषत् (अल्प या किञ्चित) कषाय अर्थात् अल्प या थोड़ी कषाय, मन्द कषाय। जो आत्मा को कषै, कुषित करे, उसे कषाय कहते हैं। कषाय के विशेष स्वरूप व भेदादि जानने के लिये देखो शब्द "कषाय"

अकषायवेदनीय—चारित्र मोहनीय कर्म के दो भेदों (कषाय वेदनीय, अकषाय वेदनीय) में से एक भेद जिसके हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री-वेद, पुरुष-वेद, नपुन्सक वेद, यह नव भेद हैं। इनको "ईषत्-कषाय" वा "नो कषाय" भी कहते हैं।

अकस्मात् भय—अचानक किसी आपत्ति के आपड़ने का भय; सप्त भय अथवा सप्त भीत—इहलोक भय, परलोक भय, वेदना भय, मरण भय, अनरक्षा भय, अगुप्त भय और अकस्मात् भय—में से एक प्रकार का भय। सम्यक्त को बिगाड़ने

व मलीन करने वाले ५० दोषों या दूषणों में से एक दोष यह 'अकस्मात् भय' है और सम्यक्ती जीव के ६३ गुणों में से 'अकस्मात् भय-रहितपना' एक गुण है ॥

नोट १—५० दोष निम्न प्रकार हैं:—

२५ मलदोष—(१) शंका (२) कांक्षा (३) विचिकित्सा (४) मूढ़दृष्टि (५) अनुपगूहन (६) अस्थितिकरण (७) अवात्सल्य (८) अप्रभावना (९) जातिमद (१०) कुलमद (११) धनमद या लाभमद (१२) रूपमद (१३) बलमद (१४) विद्या या पांडित्य मद (१५) अधिकार या ऐश्वर्य मद (१६) तप मद (१७) देवमूढ़ता (१८) गुरुमूढ़ता (१९) लोक मूढ़ता (२०) कुदेव-अनायतन-संगति (२१) कुगुरु अनायतन-संगति (२२) कुधर्म-अनायतन-संगति (२३) कुदेव-पूजक-अनायतन-संगति (२४) कुगुरु-पूजक अनायतन-संगति (२५) कुधर्म-पूजक-अनायतन-संगति ॥

७ व्यसन—(१) द्यूत क्रीड़ा (जुआ खेलना) (२) वेश्या सेवन (३) पर-स्त्री रमण (४) चौर्य कर्म (५) माँस भक्षण (६) मद्य पान (शराब पीना) (७) मृगया (शिकार खेलना) ॥

३ शल्य—(१) माया शल्य (२) मिथ्या शल्य (३) निदान शल्य ॥

७ भय—(१) इह लोक भय (२) परलोक भय (३) वेदना भय (४) मरण भय (५) अनरक्षा भय (६) अगुप्त भय (७) अकस्मात् भय ॥

६ अभक्ष्य—(१) मधु (२) ऊमर फल (३) कठूमर फल (४) पाकर फल (५) बड़फल (६) पीपल फल ॥

२ अतिचार—(१) अन्यदृष्टि प्रशंसा (२) अन्य दृष्टि संस्तव ॥

५० जोड़

नोट २—उपर्युक्त २५ मलदोषों में से आदि के आठ "अष्टदूषण" इनसे अगले आठ अष्ट मद, इनसे अगले ३ "त्रिमूढ़ता" और इनसे अगले अर्थात् अन्तिम छह 'षट अनायतन' कहलाते हैं ॥

नोट ३—सम्यक्ती के ४८ मूलगुण और १५ उत्तरगुण सर्व ६३ गुण होते हैं जो इस प्रकार हैं—२५ मलदोष रहितपना, ८ संवेगादि लक्षण, ५ अतीचार रहितपना, ७ भय रहितपना और ३ शल्य रहितपना, यह ४८ मूलगुण । और ५ उदम्बर फलत्याग, ३ मकार त्याग और ७ व्यसन त्याग, यह १५ उत्तर गुण ॥

नोट ४—उपर्युक्त प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का अर्थ आदि यथा स्थान देखें ॥

अकाम—कामना या इच्छारहित, अनिच्छा; सर्व इच्छाओं का अभावरूप मोक्ष ॥

अकामनिर्जरा—बिना कामना या बिन इच्छा होने वाली निर्जरा; अपनी इच्छा बिना केवल पराधीनता से निज भोगोपभोग का निरोध होने और तीव्र कषाय रहित भूख, प्यास, मारन, ताड़न रोगादि कष्टसहन करने से या प्राण हरण होजाने से, तथा मिथ्या

श्रद्धान के कारण मन्दकषाय युक्त धर्म-बुद्धि सहित (धार्मिक-अन्धश्रद्धा से) स्वयम् पर्वतादि से गिरना, बर्फ़ में गलना, तीर्थजल में डूबना, अग्नि में जलना, अन्न जल त्यागना, इत्यादि धर्मार्थ या धर्मरक्षार्थ सहर्ष कष्ट सहन करने से जो कर्मों की निर्जरा (हीनता, व्योग, नाश, काट-छाँट, या सम्बन्धरहितपना) हो उसे "अकाम निर्जरा" कहते हैं ॥

{ तत्वार्थ राजवार्तिक अ० ६, सूत्र २० की व्याख्या }

नोट—क्रोधादि कषाय वश यदि स्व शरीर को कोई कष्ट दिया जाय या किसी उपाय द्वारा प्राण त्याग किए जांय तो इससे अकाम निर्जरा नहीं होती किन्तु दुर्गत का कारण तीव्र पापबन्ध होता है और ऐसे प्राण-त्याग को 'अपघात' या 'आत्मघात' कहते हैं जो तीव्र पापबन्ध का कारण होने के अतिरिक्त राज्य-दंड पाने योग्य तीव्र अपराध भी है ॥

अकामिक—(१) पुष्करार्द्ध द्वीप के विद्युन्माली मेरु के दक्षिण भरत-क्षेत्रान्तर्गत आर्य खंड की वर्त्तमान चौबीसी के २२वें तीर्थङ्कर। कविवर वृन्दावन जी ने इन्हें २१ वें तीर्थङ्कर लिखा है ॥

(२) पुष्करार्द्ध द्वीप के विद्युन्माली मेरु के उत्तर ऐरावत-क्षेत्रान्तर्गत आर्य खण्ड की वर्त्तमान चौबीसी के १८वें तीर्थंकर (आगे देखो शब्द "अढ़ाई द्वीप पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अकामुकदेव—धातकीखंड द्वीप की पूर्व दिशा में विजयमेरु के दक्षिण भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्यखंड में भविष्य उत्सर्पिणी काल में होने वाली चौबीसी के ११वें तीर्थंकर। (आगे देखो शब्द "अढ़ाई द्वीप पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अकाय—कायरहित, बिन शरीर, बिना धड़, राहुग्रह (ज्योतिषी लोग 'राहु' का आकार मनुष्य के कंठ के नीचे के सम्पूर्ण शरीर अर्थात् धड़रहित केवल गर्दन सहित मस्तक के आकार का मानते हैं। धड़ के आकार का 'केतु' ग्रह माना जाता है। दोनों ग्रहों का शरीर मिलकर मनुष्याकार हो जाता है); निराकार ब्रह्म, कायरहित शुद्ध जीव, विदेहमुक्त जीव, निकल परमात्मा या सिद्ध परमेष्ठी; षट् द्रव्य में से रूपी द्रव्य 'पुद्गल' को छोड़कर अन्य पाँच द्रव्य—जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, और कालद्रव्य; षट् द्रव्य में से पञ्चास्तिकाय अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश को छोड़कर केवल एक "कालद्रव्य" ॥

अकारण दोष—कारण रहित या अप्रशस्त अथवा अयोग्य कारण सहित दोष। आहार सम्बन्धी एक प्रकार का दोष जिस से निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि सदैव बचते हैं। नीचे लिखे ६ कारण बिना केवल शरीर-पुष्टि या विषय-सेवनार्थ या जिह्वा की लम्पटता आदि अप्रशस्त कारणों से जो भोजन करना है वह "अकारण दोष वाला भोजन" है ॥

(१) क्षुधा वेदना के उपशम को (२) योगीश्वरों की वैयावृत्य के लिये (३) षट आवश्यक कर्म की पूर्णता के अर्थ (४) संयम की स्थिति के अर्थ (५) धर्म-ध्यान के अर्थ (६) प्राण रक्षार्थ ॥

अकारिम देव—पुष्करार्द्ध द्वीपकी पूर्व दिशा में मन्दर मेरु के उत्तर ऐरावत-क्षेत्रान्तर्गत आर्यखण्ड की अतीत चौबीसी में हुए २३ वें तीर्थङ्कर का नाम। (आगे देखो शब्द "अढ़ाई द्वीप पाठ के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

अकारु—शूद्र वर्ण के 'कारु', 'अकारु' इन दो मूल भेदों में से एक वह भेद जो किसी प्रकार की शिल्पकारी या कारीगरी का कार्य न करता हो। इसके दो भेद हैं (१) स्पर्श्य अकारु, जैसे नाई, धोबी, माली, आदि (२) अस्पर्श्य अकारु, जैसे भंगी, चांडाल आदि ॥

नोट १—कारु के भी दो ही भेद हैं (१) स्पर्श्य कारु, जैसे सुनार, लुहार, कुम्हार, चित्रकार, बढ़ई आदि (२) अस्पर्श्यकारु, जैसे चमार आदि। (आगे देखो शब्द "अठारह श्रेणी शूद्र")॥

नोट २—चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—में से अन्तिम तीन वर्ण उनकी आजीविका के कार्यानुसार प्रथम तीर्थङ्कर "श्रीऋषभदेव" ने कृतयुग या कर्मभूमि की आदि में स्थापन किये और आवश्यक्ता जान कर पहिला वर्ण उनके पुत्र "भरत" चक्रवर्त्ती ने स्थापन किया। इन चारों वर्णों के कई कई भेद उपभेद भी उनकी आजीविका के अनुसार उसी समय स्थापन होगए थे और अन्य कई कई भेद यथा अवसर पीछे उत्पन्न हुए।

अकाल मृत्यु—कुसमय की या योग्य समय से पहिले की मृत्यु, बे समय की मौत, अपक्व मौत। जो मौत आयुकर्म की स्थिति पूर्ण होने से पहिले ही विष, अग्नि या शस्त्रादि के घात का बाह्य निमित्त पाकर आयु कर्म के शेष निषेकों के खिर जाने से हो। देव गति व नरक गति के किसी भी जीव की और मनुष्य गति में भोगभूमि के मनुष्यों व चरमोत्तम शरीरी अर्थात् १६६ पुण्य पुरुषों में से तद्भव मोक्ष गामी पुरुषों की और तिर्यञ्च गति में केवल भोग भूमि के जीवों की अकाल मृत्यु नहीं होती। अन्य सर्वत्र अकाल मृत्यु हो सकती है। इस मृत्यु का नाम "अपवर्त्तन घात" व "कदलीघात" भी है॥

नोट १—"कदली घात" से छूटने वाला शरीर यदि समाधि मरण रहित छूटा हो तो उसे "च्यावित शरीर" और यदि समाधि मरण सहित छूटा हो तो उसे "त्यक्त शरीर" कहते हैं॥

नोट २—तद्भव मोक्षगामी सर्व पुरुषों को "चरम शरीरी" और १६६ पुण्य-पुरुषों में तद्भव मोक्षगामी पुरुषों को "चरमोत्तम शरीरी" कहते हैं॥

नोट ३—१४ कुलकर (मनु), २४ तीर्थंकर, ४८ तीर्थंकरों के माता पिता, २४ कामदेव, १२ चक्रवर्त्ती, ११ रुद्र, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ नारद, यह सर्व १६९ पुण्य पुरुष हैं जिनमें २४ तीर्थङ्कर सर्व ही तद्भव मोक्षगामी हैं; १४ कुलकर, ११ रुद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ नारद, यह ५२

पुण्य पुरुष तद्भव मोक्षगामी नहीं हैं; शेष ६३ में से कुछ तद्भव मोक्षगामी हैं; और अन्य सर्व ही पुण्य पुरुष नियम से कुछ जन्म धारण कर निर्वाण पद शीघ्र ही प्राप्त करेंगे ॥

अकालवर्ष—इस नाम के मान्यखेट नगराधीश राष्ट्रकूटवंशीय अर्थात् राठौर-वंश के कई एक इतिहास प्रसिद्ध जैनधर्म श्रद्धालु दक्षिण देशीय निम्न लिखित राजा हुए:—

(१) अकाल वर्ष प्रथम अर्थात् "कृष्णराज-अकालवर्ष शुभतुङ्ग" या "साहसतुङ्ग" नाम से प्रसिद्ध—यह राठौरवंशी प्रथम राजा 'कर्कराज' का लघु पुत्र राष्ट्रकूटवन्श का पाँचवाँ राजा था। इसने अपने बड़े भाई "इन्द्र" के पुत्रों 'खड्गावलोक' और 'दन्तिदुर्ग' के शरीर त्यागने पर वीर निर्वाण सम्वत् १२६८ (वि० सं० ८१०) में दक्षिण देशीय राजगद्दी पाई। इसकी राजधानी 'मान्यखेट' नगरी थी जिसे आजकल मलखेड़ कहते हैं। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य "श्री भट्टाकलङ्क स्वामी" इसी "अकालवर्ष-शुभतुङ्ग" के मन्त्री 'पुरुषोत्तम' के ज्येष्ठ पुत्र थे। इस राजा ने ३० वर्ष राज्य भोगकर वि० सं० ८४० (शक सं० ७०५) में शरीरोत्सर्ग किया और इसकी जगह इसका पुत्र राजगद्दी पर आरूढ़ होकर "गोविन्द-श्रीवल्लभ-अमोघवर्ष" नाम से प्रसिद्ध हुआ जो श्री आदिपुराण के रचयिता "भगवज्जिनसेनाचार्य" का परम भक्त शिष्य और "प्रश्नोत्तर रत्नमाला" का रचयिता था। इस प्रश्नोत्तर रत्नमाला का एक तिब्बती-भाषानुवाद भी ईसा की ११ वीं शताब्दी में होगया है। इस अकालवर्ष के देहोत्सर्ग के समय उत्तर भारत में 'इन्द्रायुध' दक्षिण में इसी कृष्णराज-अकालवर्ष का पुत्र "गोविन्द श्रीवल्लभ", पूर्व में 'गौड़' व अवन्तिपति "वत्सराज" और पश्चिम में सौराष्ट्राधिपति "वीरवराह" शासन करते थे। इलारा की पहाड़ी पर कैलाश नामक मन्दिर को पत्थर काटकर इसी 'अकालवर्ष' ने बनवाया था।

(२) अकालवर्ष द्वितीय—यह "अकालवर्ष प्रथम" के लघु पुत्र "ध्रुवकलिवल्लभ-धारावर्ष-निरुपम" के पौत्र "शर्वदेवमहाराज-अमोघवर्ष-नृपतुङ्ग" का पुत्र राष्ट्रकूटवंश का १० वाँ राजा था। इसने अपने पिता के पश्चात् वीर नि० सं० १४१८ से १४५९ (वि० सं० ९३० से ९७१) तक 'कृष्ण-अकालवर्ष-शुभतुङ्ग द्वितीय" के नाम से ४१ वर्ष राज्य किया इसका पुत्र जगत् तुंग अपने पिता के राज्यकाल ही में मृत्यु को प्राप्त होचुका था। अतः इस अकालवर्ष के पीछे इसके ज्येष्ठ पौत्र (पोता) 'इन्द्रराज-नित्यवर्ष' को राजगद्दी मिली॥

महापुराण के पूर्व भाग श्री आदिपुराण के रचयिता "भगवज्जिनसेनाचार्य" के शिष्य "भगवद्गुणभद्राचार्य" जिन्होंने महापुराण के उत्तर भाग "श्री उत्तरपुराण" को रचा, इसी "अकालवर्ष द्वितीय" के समकालीन थे। इस अकालवर्ष के पिता "अमोघवर्ष-नृपतुङ्ग" ने वि० सं० ९३० में राज्यपद त्याग कर अपने दो ढाई वर्ष के बालक पुत्र को तो राज्यतिलक किया और अपने लघुभ्राता "इन्द्रराज" को अपने पुत्र

का संरक्षक बनाकर स्वयम् "उदासीन-श्रावक" हो आयु के अन्त तक ५ वर्ष एकांत वास किया। अकालवर्ष ने पन्द्रह सोलह वर्ष पश्चात् सारा राज्य कार्य अपने पितृव्य 'इन्द्रराज' से अपने हाथ में ले लिया। यह अपने पिता की समान बड़ा पराक्रमी और वीर राजा था। गुर्जर, गौड़, द्वार-समुद्र, कलिङ्ग, गङ्ग, अङ्ग, मगध आदि देशों के राजा इसके वशवर्तीय होगए थे।

(३) अकालवर्ष तृतीय—"यह अकालवर्ष द्वितीय" के लघु पौत्र "वद्दिग अमोघवर्ष" का ज्येष्ठ पुत्र राठौर या राष्ट्रकूटवंश का १५ वाँ राजा था। इसने अपने प्रपितामह ही के नाम पर "कृष्ण अकालवर्ष-शुभ-तुङ्ग" नाम से वीर नि० सं० १४८४ से १५०५ (वि० सं० ९९६ से १०१७) तक २१ वर्ष राज्य किया। इसके तीन लघु भ्राता "जगततुङ्ग," "खोट्टिग-नित्यवर्ष" और "कक्कअमोघवर्ष-नृपतुङ्ग" थे। इसके पश्चात् इसका तीसरा भाई 'खोट्टिगनित्य-वर्ष" राज्याधिकारी हुआ जिसके पश्चात् इसके चौथे भाई "कक्कअमोघवर्ष नृपतुंग" ने राजगद्दी पाकर वीर निर्वाण सम्वत् १५१९ (वि० सं० १०३१, शाक सम्वत् ८९६, ईस्वी सन् ९७४) तक राज्य किया। और अपने पवित्र राष्ट्रकूट या राठौरवंश की दक्षिण देशीय मान्यखेट की महान गद्दी का १८ वाँ अन्तिम राजा हुआ जिसे "चौलुक्य तैलप द्वितीय" ने विक्रम सम्वत् १०३१ में जीतकर "कल्याणी" के पश्चिमी चौलुक्यों की शाखा स्थापित की।

(४) अकालवर्षशुभतुङ्ग—यह राष्ट्रकूट-वंशीय गुर्जर शाखा का पाँचवा राजा हुआ जो "अकालवर्ष प्रथम" के लघु पुत्र 'ध्रुवकलिवल्लभधारावर्ष-निरुपम' के छोटे पुत्र 'इन्द्रराज' का प्रपौत्र था। यह विक्रम की दशवीं शताब्दी में गुजरात देश में राज्य करता था। इस वंश की इस गुर्जर शाखा का प्रारम्भ "इन्द्रराज" से हुआ जिसे इसके बड़े भाई "गोविन्द श्रीवल्लभ" ने, जो राष्ट्रकूटवंश का आठवाँ राजा था और जिसका राज्य उस समय मालवा देश की सीमा तक पहुँच चुका था, लाटदेश (भड़ोंच) को भी विक्रम सम्वत् ८६० के लगभग जीतकर यह देश दे दिया था।

इस वंश की वंशावली अगले पृष्ठ पर देखें॥

राष्ट्रकूट वंश की वंशावली
(१) कर्कराज
(२) इन्द्र
(३. ४) खड्गावलोक. दन्तिदुग
(५) कृष्णराज अकालवर्ष शुभतुङ्ग
(६) गोविन्द श्रीवल्लभ अमोघवर्ष
(७) ध्रुवकलिवल्लभधारावर्षनिरूपम
(८) गोविन्द श्रीवल्लभ प्रभूतवर्ष जगततुङ्ग
इन्द्रराज (गुर्जर शाखा) (१)
(९) शर्व महाराज अमोघवर्ष नृपतुङ्ग
कर्कराज सुवर्णवर्ष (२)
गोविन्दप्रभूतवर्ष (३)
(१०) कृष्ण अकालवर्ष शुभतुङ्ग
ध्रुवधारावर्ष निरूपम (४)
जगततुङ्ग (पिता के जीवित मृत्यु होगई)
अकालवर्ष शुभतुङ्ग (५)
(११) इन्द्रराज नित्यवर्ष
ध्रुवधारावर्षनिरूपम (६)
(१२) अमोघवर्ष
(१३) गोविन्द प्रभूतवर्ष नृपतुङ्ग
(१४) वड्डिग अमोघवर्ष
(१५) कृष्ण अकालवर्ष शुभतुङ्ग
(१६) जगततुङ्ग
(१७) खोट्टिग नित्यवर्ष
(१८) कक्क अमोघवर्ष नृपतुङ्ग
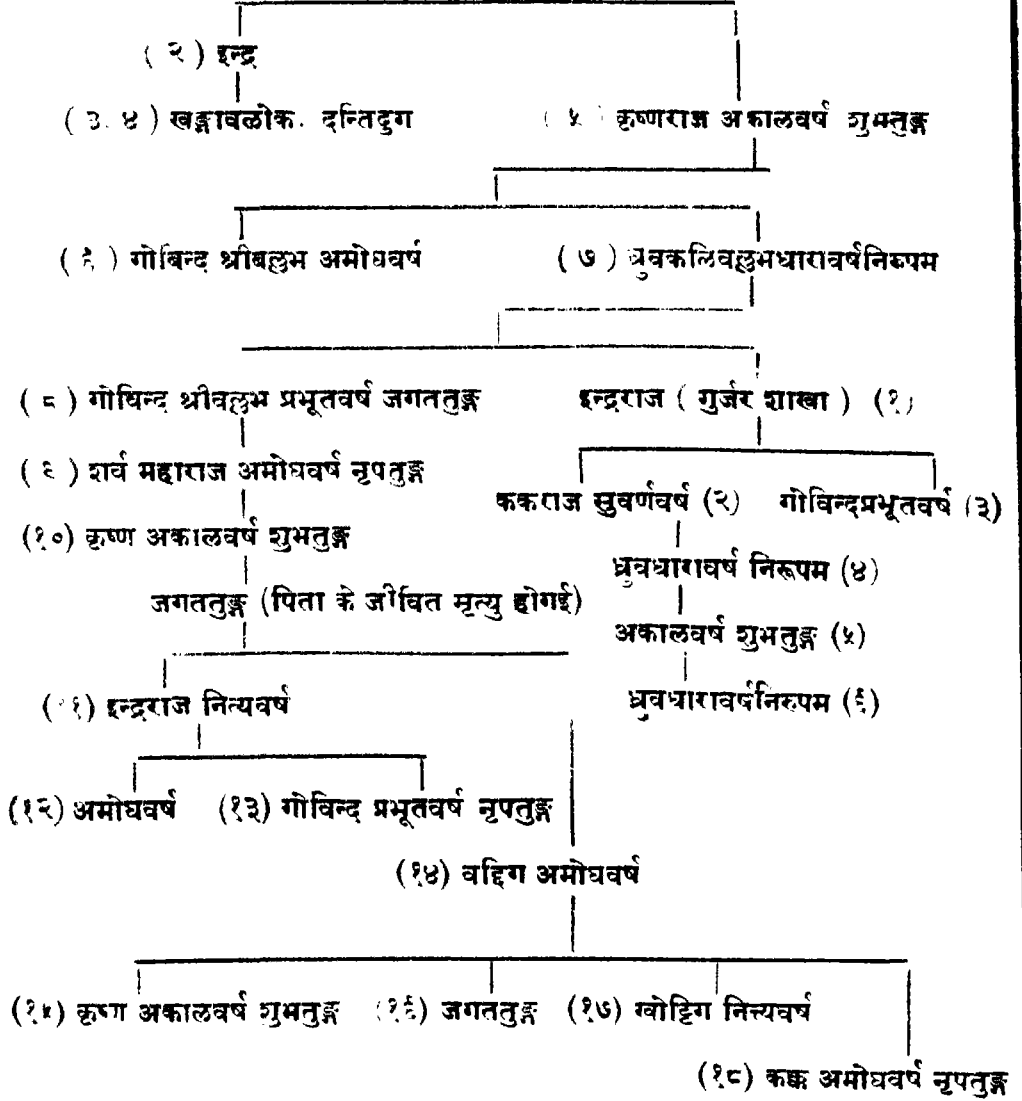
अकिञ्चन—निष्परिग्रही, सर्व सांसारिक पदार्थों से मोह ममता त्यागने वाला, दिगम्बर साधु। (पीछे देखो शब्द "अकच्छ")

अकिञ्चित्कर—किञ्चित्मात्र भी न कर सकने वाला, असमर्थ, निष्प्रयोजन, निष्फल, निर्मूल; न्याय की परिभाषा में हेत्वाभास के ४ भेदों में से एक भेद जो साध्य की सिद्धि करने में असमर्थ हो ॥

नोट—हेत्वाभास के ४ भेद—(१) असिद्ध (२) विरुद्ध (३) अनैकान्तिक (४) अकिञ्चित्कर ॥

अकिञ्चित्कर हेत्वाभास—वह हेतु जो साध्य की सिद्धि करने में असमर्थ या अनावश्यक हो। इस के दो भेद हैं (१) सिद्ध-साधन-अकिञ्चित्कर-हेत्वाभास (२) बाधित-विषय-अकिञ्चित्कर-हेत्वाभास, जिस के प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगम-बाधित, स्ववचन-बाधित आदि कई भेद हैं। (प्रत्येक भेद का स्वरूपादि यथा स्थान इसी कोष में देखें) ॥

अकुशलमूला—जिसकी जड़ कुशल रहित या कल्याण रहित हो, निष्प्रयोजन, अकार्यकारी, बेकार, बेमतलब, कर्म-निर्जरा का एक भेद ॥

अकुशलमूला-निर्जरा—निर्जरा के दो मूल भेदों में से एक का नाम; वह निर्जरा (आत्मा से कुछ कर्मों का सम्बंध टूटना) जो बिना किसी उपाय के अबुद्धि पूर्वक कर्मों के उदय आने पर कर्म फल के विपाक या भोग से संसारी जीवों के स्वयमेव होती रहती है। इसी को 'सविपाक-निर्जरा' तथा 'अबुद्धिपूर्वा-निर्जरा' भी कहते हैं ॥

नोट—कर्म-निर्जरा के दो भेद "अकुशल मूला" और 'सकुशलमूला" या "सविपाक" और "अविपाक" या "अबुद्धिपूर्वा" और "बुद्धिपूर्वा" हैं।

अकृति—कृति रहित, निकम्मा, मूर्ख, वक्र, साधन रहित; अवर्ग, गणित की परिभाषा में एक प्रकार का अङ्क जो किसी पूर्णाङ्क का वर्ग न हो ॥

अकृति अङ्क (अवर्ग अङ्क)—वह अङ्क जो किसी पूर्णाङ्क का वर्ग न हो अर्थात् जिस का वर्गमूल कोई पूर्णाङ्क न हो, जैसे २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७ इत्यादि।

नोट १—शेष अङ्क १, ४, ९, १६, २५, ३६ आदि जो किसी न किसी अङ्क का वर्ग हैं "कृति अङ्क" कहलाते हैं ॥

नोट २—किसी अङ्क को जब उसी अङ्क से एक बार गुणें तो गुणनफल को उस मूल अङ्क का 'वर्ग' कहते हैं और उस मूल अङ्क को इस गुणन फल का 'वर्गमूल' कहते हैं। जैसे ३ को ३ ही में गुणें तो गुणनफल ९ प्राप्त हुआ। यह ९ का अङ्क ३ का वर्ग है और ३ का अङ्क ९ का वर्गमूल है ॥

अकृति धारा (अवर्गधारा)—अङ्कगणित की चौदह धाराओं में से एक धारा का नाम, सर्व अकृति अङ्कों का समूह, सर्व अङ्कों अर्थात् १, २, ३, ४, ५, ६ आदि उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक की पूर्ण संख्या में से वे सर्व अङ्क जिनका वर्ग मूल कोई पूर्ण अङ्क न हो अर्थात् संख्यामान की "सर्वधारा"

में से कृतिधारा के अङ्कों को छोड़कर (१, ४, ६, १६, २५, ३६, ४६, ६४, ८१, १००, १२१ आदि को छोड़कर) अन्य सर्व अङ्क २, ३, ५, ६, ७, ८, १० आदि एक कम उत्कृष्ट-अनन्तानन्त तक। इस धारा का प्रथम-अङ्क या प्रथम-स्थान २ है और अन्तिम अङ्क (अन्तिम-स्थान) उत्कृष्ट अनन्तानन्त से १ कम है। 'सर्वधारा' के अङ्कों की स्थान संख्या अर्थात् उत्कृष्ट-अनन्तानन्त में से 'कृतिधारा' के अङ्कों की स्थान संख्या (उत्कृष्ट अनन्तानन्त का वर्गमूल) घटा देने से जो संख्या प्राप्त होगी वह इस 'अकृतिधारा' के अङ्कों की स्थान-संख्या है। (आगे देखो शब्द "अङ्कविद्या" और "चतुर्दश धारा" ॥

अकृतिमातृक अङ्क (अवर्गमूल अङ्क)—वह अङ्क जो किसी का वर्गमूल न हो, अर्थात् जिस का वर्ग उत्कृष्ट अनन्तानन्त की संख्या से बढ़ जाय जो असंभव है। प्रत्येक अकृतिमातृक अङ्क उत्कृष्ट अनन्तानन्त के वर्गमूल के अङ्क से बड़ा होता है अर्थात् उत्कृष्ट अनन्तानन्त के वर्गमूल में १ जोड़ने से जो अङ्क प्राप्त होगा वह प्रथम या सब से छोटा या जघन्य "अकृतिमातृक-अङ्क" है। इस के आगे एक एक जोड़ते जाने से जो उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक अङ्क प्राप्त होंगे वे सर्व ही "अकृतिमातृक अङ्क" हैं जिनमें उत्कृष्ट अनन्तानन्त की संख्या "उत्कृष्ट अकृतिमातृक अङ्क" है॥

नोट १—अकृतिमातृक-अङ्क यद्यपि अपने वास्तविक रूप में तो केवल कैवल्यज्ञान गम्य ही हैं तथापि मन की काल्पनिक शक्ति द्वारा उनका विचार और निर्णय छद्मस्थ (अल्पज्ञ) गणितज्ञ भी कर सकते हैं॥

नोट २—आगे देखो शब्द 'अङ्क', 'अङ्कगणना', 'अङ्क गणित', 'अङ्कविद्या'॥

अकृतिमातृक धारा—(अवर्गमातृक धारा या अवर्गमूल धारा)—अङ्कगणित सम्बन्धी १४ धाराओं में से एक धारा का नाम, सर्वधारा अर्थात् १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, आदि उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक की पूर्ण संख्या (गिनती) में से केवल वे सर्व अंक जिनका वर्ग कोई अङ्क न हो अर्थात् एक के अङ्क से उत्कृष्टअनन्तानन्त के वर्गमूल तक के सर्वधारा के समस्त अङ्कों की (जो कृतिमातृक या वर्गमातृक या वर्गमूल धारा के अङ्क हैं) छोड़ कर सर्व धारा के शेष समस्त अङ्क। इस धारा का प्रथम अङ्क (प्रथम स्थान) उत्कृष्ट अनन्तानन्त के वर्ग मूल से १ अधिक है। और अन्तिम अङ्क (अन्तिम स्थान) उत्कृष्ट अनन्तानन्त है। उत्कृष्ट अनन्तानन्त में से उसका वर्गमूल घटा देने से जो सङ्ख्या प्राप्त होगी वही इस 'अकृतिमातृक-धारा' के अङ्कों की स्थान-संख्या है॥

नोट १—अकृतिधारा और अकृतिमातृक धारा के अङ्कों की स्थान-संख्या समान है॥

नोट २—सर्व अकृतिमातृक अङ्कों का समूह ही "अकृतिमातृक धारा" है। (देखो शब्द "अकृतिमातृक अङ्क")

अकृत्रिम—अजन्य, प्राकृतिक, स्वाभाविक, बिना बनाया हुआ, जो किसी मनुष्यादि प्राणी द्वारा बुद्धि पूर्वक न बनाया गया हो, अनादिअनिधन॥

अकृत्रिमचैत्य—अकृत्रिम प्रतिमा, अकृत्रिम देवप्रतिमा, अजन्य देवमूर्त्ति, अनादिनिधन दिगम्बर मनुष्याकार शान्ति-मुद्रा धारी प्रतिमा, अकृत्रिम जिनबिम्ब॥

नोट—अष्ट प्रकार व्यन्तर देवों और पञ्च प्रकार ज्योतिषी देवों के स्थानों में अकृत्रिम चैत्य असंख्यात हैं॥ त्रिलोक के शेष सब स्थानों में जहाँ कहीं अकृत्रिम जिनप्रतिमा हैं उन सर्व की संख्या नौ सौ पच्चीस करोड़ त्रिपन लाख सत्ताइस हजार नौ सौ अड़ता लीस (९२५५३२७९४८) है॥ (देखो शब्द "अकृत्रिम चैत्यालय" का नोट २)॥

अकृत्रिमचैत्य-पूजा—जयपुर निवासी पं० चैनसुख जी रचित पूजन के एक भाषा ग्रन्थ का नाम जिसमें त्रैलोक की अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं का पूजन है॥

अकृत्रिमचैत्यालय—अकृत्रिम देवायतन, अकृत्रिम देवालय, अकृत्रिम देवमन्दिर।

नोट १–अष्ट प्रकार के व्यन्तरों और पञ्च प्रकार के ज्योतिषी देवों के स्थानों में असंख्यात अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। त्रिलोक के शेष स्थानों के अकृत्रिम जिनमन्दिरों की संख्या निम्न प्रकार है:—

अढ़ाईद्वीप (मनुष्य लोक) के ५ मेरु में से प्रत्येक पर सोलह सोलह (१६×५)......................८०

प्रत्येक मेरु सम्बन्धी छह छह कुलाचलों में से हर कुलाचल पर एक एक (५×६×१)......................३०

प्रत्येक मेरु सम्बन्धी सोलह सोलह वक्षारगिरों में से हर वक्षारगिर पर एक एक (५×१६×१)......................८०

प्रत्येक मेरु सम्बन्धी चार चार गजदन्तों में से हर गजदन्त पर एक एक (५×४×१)......................२०

चार इष्वाकार (इषु-आकार अर्थात् तीर के आकार पर्वत) में से हरएक पर एक एक (४×१)......................४

एक मानुषोत्तर पर्वत पर चार......४

पाँच मेरु सम्बन्धी पाँच शालमली वृक्षों में से प्रत्येक पर एक एक (५×१)......५

पाँच मेरु सम्बन्धी एक जम्बू, दो धातकी, दो पुष्कर वृक्षोंमें से प्रत्येक पर एक एक (५×१)......................५

हर मेरु सम्बन्धी बत्तीस २ विदेहों और एक भरत व एक ऐरावत क्षेत्रोंमेंसे हर एक के एक एक विजयार्द्ध या वैताढ्य पर्वत पर एक एक (५×३४×१)......१७०

कुल जोड़ ३९८

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में कुल ३९८ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। "नन्दीश्वर" नामक अष्टम द्वीप की चार दिशाओं में से हर एक में एक 'अञ्जनगिरि' चार 'दधिमुख' और आठ 'रतिकर' नामक पर्वत हैं और हर पर्वत पर एक एक अकृत्रिम चैत्यालय है। इस प्रकार हर दिशा के १३ और चारों दिशाओं के सर्व (१३×४) ५२ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। "कुण्डलवर" नामक ग्यारहवें द्वीप में इसी नाम के पर्वत पर ४, और "रुचकवर" नामक तेरहवें द्वीप में भी इसी नाम के पर्वत पर ४ अकृत्रिम चैत्यालय हैं॥

इस प्रकार मध्य लोक में सर्व (३९८+५२+४+४)४५८ अकृत्रिमचैत्यालयहैं॥

पाताल लोक में (भवनवासी देवों के भवनों में चित्रा पृथ्वी से नीचे) सर्व ७७२००००० सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम चैत्यालय हैं॥

ऊर्द्ध लोक में (प्रथम स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि-विमान तक) सर्व ८४९७०२३ चौरासी लाख ९७ हजार तेईस अकृत्रिम चैत्यालयहैं॥

इस प्रकार त्रिलोक के सर्व अकृत्रिम चैत्यालय, व्यन्तरों और ज्योतिषी देवों के स्थानों के असंख्य चैत्यालयों के अतिरिक्त (४५८+७७२००००० + ८४९७०२३) ८५६९७४८१ आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हज़ार चार सौ इक्यासी हैं ॥

नोट २—हर चैत्यालय में १०८ अकृत्रिम चैत्य हैं। इस लिये कुल अकृत्रिम चैत्य या जिन प्रतिमाओं की संख्या चैत्यालयों की उपर्युक्त संख्या ८५६९७४८१ को १०८ से गुणन करने से ९२५५३२७९४८ प्राप्त होगी ॥

नोट ३—हर पर्वत या द्वीप या लोक के उपर्युक्त चैत्यालयों की अलग अलग संख्याओं को १०८ में अलग अलग गुणन करने से हर एक के अकृत्रिम जिन बिम्बों की अलग-अलग संख्या निकल आवेगी ॥

नोट ४—परिमाण अपेक्षा सर्व अकृत्रिम जिन चैत्यालय उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य, लघु और अविशेषणिक भेद से निम्न लिखित पाँच प्रकार के हैं:—

(१) उत्कृष्ट—इनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई क्रम से १००, ५०, ७५ महायोजन है। ऐसे चैत्यालय भद्रशालबन, नन्दन बन, नंदीश्वर द्वीप और ऊर्द्ध लोक के हैं।

(२) मध्यम—इनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई क्रम से ५०, २५, ३७॥ महा योजन है। ऐसे चैत्यालय सौमनसवन, रुचकगिरि, कुंडलगिरि, वक्षारगिरि, गजदन्त, इष्वाकार, मानुषोत्तर और षट कुलाचलों के हैं॥

(३) जघन्य—इनकी लम्बाई चौड़ाई क्रम से २५, १२॥, १८॥। महायोजन है। ऐसे चैत्यालय पांडुक वन के हैं॥

(४) लघु—इनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई क्रम से केवल एक, अर्द्ध और पौन कोश की है। ऐसे चैत्यालय विजियार्द्ध गिरि, जम्बुवृक्ष शालमली वृक्ष के हैं॥

(५) अविशेषणिक—इनकी लम्बाई आदि अनियत है। ऐसे चैत्यालय अवशेष सर्व भवनवासी, व्यन्तर आदि के भवनों के हैं॥

{ त्रि० गा० ५६१, ५६२, २०८, ४५१, १०१६, ९८६, ९७८-९८२ }

अकृत्रिम चैत्यालय पूजा—यह हिन्दी भाषा के एक पूजन ग्रन्थ का नाम है जो निम्न लिखित कवियों द्वारा रचित कई प्रकार का उपलब्ध है:—

१ सांगानेर निवासी पं० लालचन्द रचित भाषा पूजा।

नोट १—इन कवि के रचे अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

(१) षट् कर्मोपदेश रत्नमाला (वि० सं० १८१८ में), (२) वारांग चरित्र छन्दोबद्ध (वि० सं० १८२७ में), (३) विमलनाथ पुराण छन्दोबद्ध (वि० सं० १८३७), (४) शिखर बिलास छन्दोबद्ध (वि० सं० १८४२), (५) इन्द्रध्वज पूजा (६) सम्यक्त कौमुदी छन्दोबद्ध (७) आगम शतक छन्दोबद्ध (८) पञ्च परमेष्ठी पूजा (९) समवशरण पूजा (१०) त्रिलोकसार पूजा (११) तेरह द्वीप पूजा (१२) पञ्च कल्याणक पूजा (१३) पञ्च कुमार पूजा।

२. दरिगह मल्ल के पुत्र पं० विनोदीलाल रचित भाषा पूजा।

नोट २—इन कवि के रचे अन्य ग्रन्थ:—

(१) भक्तामर चरित्र छन्दोबद्ध (२) ने

नाथ का ब्याहला ३) नमोकार पच्चीसी (४) फूलमाल पच्चीसी (५) अरहन्त पासा केवली (संस्कृत), इत्यादि ॥

३. पं० नेमकुमार रचित पूजन ।

४. पं० चन सुख जी खंडेलवाल जयपुर निवासी रचित पूजा ।

अकृत्रिमजिनपूजा—देखो शब्द "अकृत्रिम चैत्य पूजा" ।

अकृत्रिम-जिन-प्रतिमा—देखो शब्द "अकृत्रिम चैत्य" ।

अकृत्रिम-जिन-भवन—देखो शब्द "अकृत्रिम चैत्यालय" ।

अकृत्स्नस्कन्ध—अपरिपूर्ण स्कन्ध, दो परमाणुओं से लेकर एक परमाणु कम अनन्त परमाणुओं तक से बने हुए सर्व प्रकार के स्कन्ध (अ० मा० अकसिण स्कन्ध) ।

अकृत्स्ना—प्रायश्चित का एक भेद जिसमें अधिक तप का समावेश हो सके (अ० मा० अकसिणा) ।

अक्रियावाद—"औदयिक भाव" के २१ भेदों में से एक 'मिथ्यात्व भाव' जन्य 'गृहीत-मिथ्यात्व' के अन्तर्गत जो 'एकान्तवाद' है उस के ४ मूल भेदों—क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद और वैनयिकवाद—में से दूसरा भेद । इस अक्रियावाद के निम्न लिखित मूलभेद १२ और विशेष भेद ८४ हैं:—

(१) कालनास्तिवाद (२) नियतनास्तिवाद (३) कालस्वतः नास्तिवाद (४) कालपरतःनास्तिवाद (५) ईश्वरस्वतःनास्तिवाद (६) ईश्वरपरतः नास्तिवाद (७) आत्मास्वतः नास्तिवाद (८) आत्मापरतः नास्तिवाद (९) नियतिस्वतः नास्तिवाद (१०) नियति परतः नास्तिवाद (११) स्वभावस्वतः नास्तिवाद (१२) स्वभावपरतः नास्तिवाद । यह १२ मूल भेद हैं । इन १२ का जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन ७ तत्वों में से हर एक के साथ अलग २ लगाने से हर तत्त्व सम्बन्धी बारह बारह भेद हो कर कुल १२×७ (१२ गुणित ७) अर्थात् ८४ भेद हो जाते हैं ।

नोट १—'भाव' शब्द का अर्थ है अभिप्राय, विचार, चेष्टा, मानसविकार, सत्ता, मानस क्रिया, स्वभाव । शास्त्रीय परिभाषा में 'भाव' मन की उस 'क्रिया' या 'चेष्टा' को अथवा उस "आत्मस्वभाव" या "आत्मसत्ता" को कहते हैं जो अपने प्रति पक्षी कर्मों के उपशम या क्षयादि होने पर उत्पन्न होती है और जिससे जीव का अस्तित्व पहिचाना जाता है । इस 'भाव' की 'गुण' संज्ञा भी है ।

भाव के ५ मूल भेदों में से एक 'औदयिक भाव' है जिसके २१ भेद निम्नलिखित हैं जो जीव में कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं:—

(१) देवगति जन्य भाव, (२) मनुष्य गति जन्य भाव, (३) तिर्यञ्च गति जन्य भाव, (४) नरक गति जन्य भाव, (५) पुल्लिङ्ग जन्य भाव, (६) स्त्री लिंग जन्य भाव, (७) नपुंसकलिङ्गजन्यभाव, (८) क्रोध कषायजन्यभाव, (९) मान कषाय जन्य भाव, (१०) माया कषाय जन्य भाव, (११) लोभ कषाय जन्य भाव, (१२) मिथ्यात्व जन्य भाव, (१३) कृष्ण

लेश्या जन्य भाव. (१४) नील लेश्या जन्य भाव, (१५) कापोत लेश्या जन्य भाव. (१६) पीत लेश्या जन्य भाव, (१७) पद्म लेश्या जन्य भाव, (१८) शुक्ल लेश्या जन्य भाव,(१९)असिद्धत्व जन्य भाव,(२०) असंयम जन्य भाव, (२१) अज्ञान जन्य भाव।

नोट २—उपर्युक्त २१ भेदों में से १२ वें मिथ्यात्व जन्य-भाव के मूल भेद दो हैं—(१) अगृहीत या निसर्गज मिथ्यात्व जन्य भाव और (२) गृहीत या अधिगमज मिथ्यात्व जन्य भाव। इन दो में से दूसरे गृहीत मिथ्यात्व जन्य भाव के मूल भेद ५ हैं —(१) एकांत (२) विपरीत (३) विनय (४) संशय और (५) अज्ञान—इन ५ में से पहिले भेद "एकान्त मिथ्यात्व" के जो शेष चारों मिथ्यात्व का मूल है और जिसकी झलक प्रायः शेष चारों में भी दिखाई देती है उसके (१) क्रियावाद (२) अक्रियावाद (३) अज्ञानवाद और (४) वैनयिकवाद, यह चार मूल भेद और उनके क्रमसे १८०, ८४, ६७, और ३२ एवं सर्व ३६३ विशेष भेद हैं। इन में से अक्रियावाद के उपर्युक्त ८४ भेद हैं जिनमें से प्रत्येक का अभिप्राय है कि आत्मस्वरूप जानने या दुःख-निवृत्ति के लिये किसी प्रकार की क्रिया कलाप के संकट में फँसना व्यर्थ है जिसकी पुष्टी इन उपर्युक्त ८४ वादों में से किसी न किसी एक या अधिक से एकान्त पक्ष के साथ बिना किसी अपेक्षा के की जाती है, जिससे ऐसा ही एकान्त विचार हृदयस्थ हो जाता है॥

नोट ३—भाव के ५ मूल भेद यह हैं—(१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) मिश्र (४) औदयिक (५) पारिणामिक। इनके उत्तर-भेद क्रम से २, ९, १८, २१, ३, एवं सर्व ५३ हैं। (आगे देखो शब्द "अट्ठाईस भाव" का नोट)॥

{ गो. क. गा. ८८४, ८८५, ८१२, ८१३, ८१८, ... }

अक्रियावादी—अक्रियावाद के ८४ भेदों में से किसी एक या अनेक भेदों का पक्षपाती वा श्रद्धानी व्यक्ति॥

(पीछे देखो शब्द "अक्रियावाद")

अक्रूर—इस नाम के निम्नलिखित कई प्रसिद्ध पुरुष हुए:—

(१) अक्रूरदृष्टि—श्रीकृष्णचन्द्र का एक मुसेरा बड़ा भ्राता। बल और वीरता के कारण इसे "अर्द्ध-रथी" का पद प्राप्त था। यह श्रीकृष्णचन्द्र (नवम नारायण) के पिता श्री वसुदेव (२० वें कामदेव) की सबसे पहिली स्त्री गन्धर्वसेना (द्वितीय नाम विजयसेना) से पैदा हुआ था। 'सोमादेवी' इसकी माता की बड़ी बहन थी और विजयखेट नगर का एक प्रसिद्ध गन्धर्वाचार्य "सुग्रीव" नामक इसका नाना था। एक "क्रूर" नामक इसका लघु भ्राता था॥

(२) श्रीकृष्णचन्द्र का एक पितृव्य (चचा)—इसके पिता का नाम 'स्वफल्क' और माता का नाम 'गान्धिनी' (गान्दिनी) था जो काशी नरेश की पुत्री थी। यह अक्रूरादि १२ भाई थे।

(३) मगधाधीश राजा श्रेणिक (बिम्बसार) का एक पुत्र—इसका नाम 'कुणिक' और "अजातशत्रु" भी था। अक्रूर, वारिषेण, हल्ल, विहल, जितशत्रु, गजकुमार (दन्तिकुमार), मेघकुमार, यह सात भाई थे जो श्रेणिक की "चेलनी" नामक रानी से उत्पन्न हुए थे। इन सातों से बड़ा इन का एक मुसेरा भाई "अभय-

कुमार" था जो श्रेणिक की पहिली रानी नन्दश्री (सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री) से अपने ननिहाल में पैदा हुआ था। श्रीमहावीर (अन्तिम २४ वें तीर्थङ्कर) राजा श्रेणिक की स्त्री "चेलिनी" की सबसे बड़ी बहन "प्रियकारिणी" जो कुँडपुर (वैशाली या बसाढ़ जि० मुज़फ्फरपुर के निकट) नरेश "सिद्धार्थ" की पटरानी थी उसके पुत्र अर्थात् इस "अक्रूर" के मुसेरे भाई थे। इसका पिता श्रेणिक पहिले बहुत काल तक बौद्धधर्म्मी रहा, पश्चात् उसे त्याग कर जिन धर्म्म का पक्का श्रद्धानी होगया परन्तु अक्रूर (कुणिक) ने अज्ञानवश इसे बन्दीगृह में डालकर बड़ा कष्ट पहुँचाया और स्वयम् राज्यासन ग्रहण कर लिया और "अजात शत्रु" नाम से प्रसिद्ध हुआ। माता चेलिनी के अनेक प्रकार से बारम्बार समझाते रहने पर जब एक दिन इसे कुछ समझ आई और अपने इस दुष्कर्म पर पश्चाताप करता हुआ पिता को बन्धन-मुक्त करने के विचार से उसके पास को जा रहा था तो दुःखी श्रेणिक ने यह समझ कर कि न जाने क्या और कितना कष्ट और देने के लिये यह इधर आ रहा है तुरन्त अपघात कर लिया जिससे "अक्रूर" को भारी शोक हुआ और कुछ ही मास पीछे वारिषेण आदि अन्य भाइयों की समान राज्य लक्ष्मी को क्षणिक और दुःख-मूल जान उससे विरक्त हो अपने एक छोटे भाई 'अजितशत्रु' को जिसका मन इन्द्रिय भोगोंसे अभी तृप्त नहीं हुआथा अपने लोकपाल नामक पुत्र का संरक्षक बनाकर और पुत्र को राज्य सिंहासन देकर संयमी होगया॥

(आगे देखो श० अजातशत्रु नोटों सहित)

अक्रूर दृष्टि—पीछे देखो शब्द "अक्रूर (१)"

अक्रोश—साधु के चौमासा न करने योग्य स्थान जिसकी एक दो या तीनों ओर नदी पहाड़ या हिंसक पशु हों (अ० मा०)॥

अक्ष—१. धुरा, धुरी. पहिया, कील, गाड़ी, रथ, तराज़ू की डंडी, अभियोग (मुक़द्दमा), चौसर, चौसर खेलने का पासा, कर्ष अर्थात् १६ माशे की एक तोल, जन्मान्ध, ध्रुव तारा, तूतिया, नीला थोथा, सुहागा, आमला, बहेड़ा, रुद्राक्ष, सर्प, गरुड़, आँख, इन्द्रिय, आत्मा, रचना भेद, चार हाथ की लम्बाई (एक धनुष) प्रस्तार रचना में कोई अभीष्ट भंग॥

२. ज्योतिष चक्र सम्बन्धी ८८ ग्रहों में से एक का नाम; ८८ ग्रहों में से ५७ वां ग्रह, राशि चक्र के अवयव; ग्रहों के भ्रमण करने का पथ। (देखो शब्द "अघ" का नोट)

३. "मन्दोदरी" के उदर से उत्पन्न लङ्का-पति "रावण" के एक पुत्र का नाम भी "अक्ष" था। यह अठारवें कामदेव बानर वंशोत्पन्न 'पवनञ्जय' के पुत्र हनुमान के हाथ से, जब वह 'सीता' महारानी का पता लगाने के लिये लङ्का गया था, मृत्यु-प्राप्त हुआ। इसे "अक्षकुमार" और "अक्षयकुमार" नाम से भी बोलते थे। इसी नाम का काश्मीर देश का भी एक प्रसिद्ध नरेश था जो कामशास्त्र रचयिता काश्मीर नरेश "वसुनन्दि" का पौत्र और

"नर द्वितीय" का पुत्र था ॥

(देखो ग्रन्थ "बृहत् विश्व चरितार्णव")

अक्षदन्त—दुर्योधनादि कौरवों के पिता धृतराष्ट्र के वंश का एक राजा—यह महाभारत युद्ध के पश्चात् दक्षिण देश के एक "हस्तिवप्र" नामक नगर में राज्य करता था और यादवों व पाण्डवों से शत्रुता का भाव हृदय में रखता था । द्वारिकापुरी "द्वीपायन" मुनि की क्रोधाग्नि द्वारा भस्म होजाने के पीछे जब श्रीकृष्ण नारायण और श्रीबलदेव बलभद्र दोनों भाई दक्षिण मथुरा (मदुरा) की ओर पाण्डवों के पास को जा रहे थे तो मार्ग में 'हस्तिवप्र' नगर के बाहर विजय नामक उपवन (बाग़) में यह ठहरे । बड़े भाई श्रीबलदेवजी भोजन सामग्री लेने नगर में गये, तभी ज्ञात हो जाने पर इस राजा "अक्षदन्त" ने इन्हें पकड़ लेने के लिये एक बड़ी सैना भेजी । दोनों भ्राताओं ने बड़ी चतुरता और वीरता के साथ लड़कर सारी सैना को भगा दिया और शीघ्रता से तुरन्त दक्षिण मथुरा की ओर फिर गमन किया । "कौशाम्बी" नामक वन में पहुँचकर श्रीकृष्ण "जरा" (यादववंशी जरत्कुमार) नामक व्याध के तीर से मृग के धोखे में प्राणान्त हुए । (देखो ग्रन्थ "बृहत्‌विश्वचरितार्णव")

अक्षधर—आगे देखो श० "अक्षोभ (३)"

अक्षपरिवर्त्तन—अक्ष का अदल बदल, किसी प्रस्तार में पदार्थादि के किसी भेद या भङ्ग को एक स्थान से दूसरे स्थान ले आना या लौट फेर करना । इसी को 'अक्षसञ्चार' और अक्षसंक्रम या अक्षसंक्रमण भी कहते हैं । किसी पदार्थ के भेद आदि जानने की क्रिया विशेष के यह ५ अङ्ग या वस्तु हैं-(१) संख्या (२) प्रस्तार (३) अक्षसंचार (४) नष्ट (५) उद्दिष्ट । (आगे देखो श० "अजीवगत हिंसा" का नोट १०) ॥

(मू. गा. १०३४, गो. जी. गा. ३५)

अक्षमाला—नाथवंश के स्थापक काशी देश के महामंडलेश्वर राजा "अकम्पन" की लघु पुत्री— इसकी एक बड़ी बहन 'सुलोचना' थी जिसके स्वयम्बर के समय इसका विवाह श्रीऋषभदेव (प्रथम तीर्थङ्कर) के पौत्र अर्थात् भरत चक्रवर्ती के ज्येष्ठ पुत्र "अर्ककीर्त्ति" के साथ किया गया था । इसका पति 'अर्ककीर्त्ति',अर्कवंश (सूर्य्यवंश) का प्रथम राजा था जो अपने पिता भरत चक्रवर्त्ती के पश्चात् अयोध्या की गद्दी पर बैठा और सम्पूर्ण भारतदेश और उसके आस पास के कई देशों का अधिपति बना । (देखो ग्र० "बृ वि० च०")

अक्षबात (अक्षवाशु)—पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्वीय ऐरावत क्षेत्र की वर्त्तमान चौबीसी के द्वितीय तीर्थङ्कर । (आगे देखो शब्द "अढ़ाई द्वीप पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

अक्षमृक्षण—१. धुरी को आंगना, गाड़ी के पहिये की धुरी को घी आदि चिकनाई लगा कर ऊँगना ॥

२. एक प्रकार की 'भिक्षावृत्ति' या 'भिक्षाशुद्धि', निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों की पञ्च प्रकारी भिक्षावृत्ति—(१) गोचरी (गो-

चार) (२) अक्षमृक्षण (३) उदराग्नि-प्रशमन, (४) भ्रमराहार और (५) गर्त-पूर्ण (श्वभ्रपूर्ण)—में से एक वृत्ति का नाम; तथा 'अपहृत संयम' सम्बन्धी 'अष्ट शुद्धि'—(१) भाव शुद्धि (२) काय शुद्धि (३) विनय शुद्धि (४) ईर्यापथ-शुद्धि (५) भिक्षाशुद्धि (६) प्रतिष्ठापना शुद्धि (७) शयनासन शुद्धि (८) वाक्य शुद्धि—का एक भेद "भिक्षाशुद्धि" के उपर्युक्त पाँच भेदों में से एक भेद का नाम: अर्थात् 'अक्षमृक्षण' वह 'भिक्षावृत्ति' या 'भिक्षाशुद्धि' है जिस में भिक्षुक सुरस विरस भोजन के विचार रहित केवल इस अभिप्राय से शुद्ध और अल्प भोजन ग्रहण करे कि जिस प्रकार गाड़ीवान अपनी इष्टवस्तु से भरी गाड़ी को उस की धुरी घृत से बांग कर देशान्तर को अपने वांछित स्थान तक ले जाता है। इसी प्रकार मुझे भी धर्म रूपी रत्नों से भरी इस शरीर रूपी गाड़ी को उस का उदर रूपी अक्ष (धुरा) भोजन रूपी घृत से बांग कर अपने समाधिमरण रूपी इष्ट स्थान तक ले जाना है ॥

अक्षसंक्रम—पीछे देखो शब्द "अक्षपरिवर्तन"

अक्षसञ्चार—पीछे देखो शब्द 'अक्षपरिवर्तन'

अक्षयअनन्त (अक्षयअनन्तानन्त)—क्षय और अन्त रहित, जिस का न कभी विनाश हो और न कभी अन्त हो; अलौकिक संख्या मान के २१ भेदों में का एक भेद जो मध्यम अनन्तानन्त है उसके दो भेदों "सक्षय अनन्तानन्त" और "अक्षय-अनन्तानन्त" में का दूसरा भेद यह "अक्षय अनन्त" है यह वह राशि या संख्या है जिसमें नवीन वृद्धि न होने पर भी कुछ न कुछ व्यय होते होते कभी जिस का अन्त न हो। इसके विरुद्ध "सक्षय-अनन्त" या 'सक्षय अनन्तानन्त" वह मध्यम अनन्तानन्त राशि या संख्या है जिस में नवीन वृद्धि न होने पर यदि उस में से लगा तार कुछ न कुछ व्यय होता रहे तो कभी न कभी भविष्यकाल में उस का अन्त हो जाय ॥

नोट १.—"उत्कृष्ट अनन्तानन्त" संख्या-मान के २१ भेदों में से अन्तिम २१ वां भेद है। जो कैवल्यज्ञान की बराबर है और सर्वोत्कृष्ट "अक्षय अनन्त" है ॥

नोट २—(१) सिद्धराशि (२) प्रत्येकवनस्पति-जीवराशि, (३) साधारण वनस्पति जीवराशि या निगोदराशि (४) पुद्गल परमाणु राशि (५) भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनोंकाल के समय और (६) सर्व आकाश—लोकालोक—के प्रदेश, यह छहों महाराशि "अक्षय अनंत" हैं। इन में से प्रत्येक राशि अक्षय अनन्त होने पर भी पहिली राशि से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी और चौथी से पांचवीं और छटी राशि अनन्त अनन्त गुणी बड़ी हैं ॥

नोट ३—आगे देखो शब्द "अङ्कगणना" ॥

अक्षय तृतीया—अक्षय तीज, अखय तीज, आखा तीज, वैसाख शु० ३, सतयुग के आरम्भ का दिन। कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्र का योग यदि इस तिथि (वैसाख शु० ३) को हो तो अति उत्तम और शुभ है। इसी तिथी को हस्तिनापुर के राजा

"श्रेयाँस" ने "श्रीऋषभदेव" जी को इक्षुरस का निरन्तराय आहार दे कर प्रथम पारणा कराया जिसके सातिशय पुन्य से उसी समय उस के यहां देवोंकृत पञ्चाश्चर्य हुए और उसके रसोई गृह में उस दिन के लिये अक्षय अर्थात् अटूट भोजन हो गया जिस से इस तिथी का नाम "अक्षयतृतीया" प्रसिद्ध हुआ ॥

अक्षय तृतीया व्रत—इस व्रत में वैशाख शु० ३ को केवल एक एक उत्तम मध्यम या जघन्य उपवास ३ वर्ष तक यथा-विधि किया जाता है। व्रत के दिन "ॐ नमः ऋषभाय" या "ॐ श्रीऋषभायनमः" इस मंत्र की कम से कम ३ जाप की जाती हैं। व्रत का सम्पूर्ण समय सर्व गृहारम्भ त्याग कर शास्त्र स्वाध्याय, देवार्चन, धर्म चर्चा, मंत्र जाप, स्तोत्र पाठ आदि धर्मध्यान के कार्यों में व्यतीत किया जाता है। ३ वर्ष के पश्चात् यथा विधिऔर यथाशक्ति व्रतोद्यापन किया जाता है या दूने व्रत कर दिये जाते हैं ॥

अक्षय दशमी—श्रावण शु० १०; श्रीनेमनाथ तीर्थङ्कर ने श्रावण शु० ६ को दीक्षा ग्रहण की उसके ३ दिन पीछे इसी मिती को द्वारिकापुरीमें महाराज "वरदत्त" के हस्तसे प्रथम पारणा किया था। जिस के पुण्योदय या माहात्म्य से राजा के रसोई गृह में उस दिन के लिये अटूट भोजन हो गया। इसी कारण इस तिथि का यह नाम प्रसिद्ध हुआ ॥

अक्षय दशमी व्रत—इस व्रत में श्रावण शु० १० को हर वर्ष १० वर्ष तक यथा-विधि उत्तम, मध्यम या जघन्य एक एक उपवास या प्रोषधोपवास किया जाता है। व्रत के दिन "ॐ नमो नेमनाथाय" या "ॐ श्री नेमनाथाय नमः" इन में से किसी एक मंत्र की कम से कम १० जाप की जाती हैं और दश वर्ष के पश्चात् देवार्चन पूर्वक यथाशक्ति १० प्रकार की एक एक या दश दश उपयोगी वस्तु (शास्त्र, धोती, दुपट्टा, थाली, लोटा इत्यादि) एक या दश देवस्थानों में चढ़ाई जाती हैं या ग़रीब विद्यार्थियों या अन्य दुखित भुक्षित या अपाहजों को दी जाती हैं तथा इसके अतिरिक्त सम दान के रूप में साधर्मी पुरुषों में भी हर्ष पूर्वक बांटी जाती हैं। उद्यापन की शक्ति न हो तो दूने व्रत किये जाते हैं ॥

अक्षय दशमी व्रत कथा—इस कथा के सम्बन्ध में लिखा है कि श्रीशुभङ्कर नामक एक अवधि ज्ञानी मुनि के उपदेश से एक राजगृही नगर नरेश "मेघनाद" और उसकी स्त्री "पृथ्वी देवी" ने दश वर्ष तक यह व्रत विधि पूर्वक किया: व्रत पूर्ण होने पर यथा विधि बड़े उत्साह के साथ उसका उद्यापन किया जिसके महात्म्य से उन पुत्र बिहीन दम्पति के कई पुत्र पुत्रियां हुई और अन्त में समाधि मरण से शरीर त्याग कर प्रथम स्वर्ग में जा जन्म लिया ॥

अक्षयनिधिव्रत—एक व्रतहै जिसमें श्रावण शु० १० को यथाविधि "प्रोषधोपवास," फिर श्रावण शुक्ला ११ से भाद्रपद कृ० ६

तक नित्यप्रति "एकाशना", फिर भाद्रपद कृ० १० को 'प्रोषधोपवास' किया जाता है। इसी प्रकार १० वर्ष तक हर वर्ष करने के पश्चात् यथा शक्ति उद्यापन पूर्वक पूर्ण हो जाता है॥

अक्षयपद—अविनाशीपद, मुक्तिपद, निर्वाण पद, सिद्धपद, शुद्धात्मपद, निकल परमात्म पद॥

यह महान सर्वोत्कृष्ट पद तपोबल से (जिस के द्वारा सर्व प्रकार की इच्छाओं के निरोध पूर्वक आत्मा के सर्व वैभाविक भावों और विकारों को पूर्णतयः दूर करने का निरन्तर प्रयत्न किया जाता है) सर्व सञ्चित कर्मों को क्षय करके आत्मा को पूर्ण निर्मल कर लेने पर प्राप्त होता है। यह पवित्र निर्मल पद ही आत्मदेव का "निज स्वाभाविकपद" या "निज अनुभूति" है जो अनन्तानन्त ज्ञानादि शक्तियों का अक्षय अनन्त भंडार है और जिसे यह अनादिकर्म बन्ध के प्रवाह में रुलता हुआ संसारी जीव भूल रहा है॥

अक्षयपदाधिकारी—मुक्ति पद प्राप्त करने के अधिकारी, अर्थात् जो अवश्य मोक्ष पद प्राप्त करें। इस अधिकार सम्बन्धी नियम निम्न प्रकार हैं:—

१. तद्भव—सर्व तीर्थङ्कर, सर्व केवली, अष्टम या इससे उच्च गुण स्थानी क्षायक सम्यक्-दृष्टि, विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी, परमावधिज्ञानी, सर्वावधिज्ञानी॥

२. द्वितीय भव में—प्रथम स्वर्ग का "सौधर्म इन्द्र", प्रथम स्वर्ग के इन्द्र की शची "इन्द्राणी", इसी के "चारों लोकपाल"—सोम, वरुण, कुबेर, यम—; तीसरे, पाँचवें, नवें, तेरहवें, और पन्द्रहवें स्वर्गों के सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत, और आरण नामक "सर्व दक्षणेन्द्र"; "सर्व लौकान्तिकदेव"; "सर्व सर्वार्थ सिद्धि के देव"; "क्षायक सम्यक्ती नारकी जीव" या देव पर्यायी जीव जो १६ कारण भावना से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध करें॥

३. तृतीय भव में—जो मुनि १६ कारण भावना से तीर्थङ्कर गोत्र बाँधे॥

४. द्वितीय या चतुर्थ भवमें—पञ्च अनुत्तर में से विजय, वैजयन्त, जयन्त, और अपराजित इन चार विमान तथा नव अनुदिश विमानवासी देव॥

५. चतुर्थ भव तक—क्षायिक सम्यक्ती॥

६. अष्टम भव तक—समाधि मरण करने वाले भावलिङ्गी मुनि॥

७. अधिक से अधिक ४ बार उपशम श्रेणी चढ़ चुकने वाला उपशम सम्यग्दृष्टी और अधिक से अधिक ३२ बार सकल संयम को धारण करने वाला जीव अन्तिम बार अवश्य मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है॥

८. मोक्ष पदाधिकारी अन्य जीव—सर्व निकट भव्य और दूर भव्य जीव, उपशम सम्यग्दृष्टी, क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टी, चक्री, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कुलकर, तीर्थङ्करों के माता पिता, कामदेव, रुद्र, नारद, यह पदवीधारक पुरुष सर्व मोक्ष पदाधिकारी हैं जो आगे पीछे कभी न कभी नियम से मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं॥

{ त्रि. ५४८, गो.क ५२५, ६१६, तत्वा. अ. ४ सू०. २६, मूला ११८, ल. गा. १६४, धर्म. सं० श्लो७४ पृ. ८०, गो. जी. ६४५, क्षे. गा. १, इत्यादि }

अक्षयवड़—वह वटवृक्ष जिसके नीचे प्रथम तीर्थङ्कर "श्रीऋषभदेव" ने "प्रयागनगर" के बन में आकर दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी जिसके सहस्रों वर्ष पश्चात् नष्ट होजाने पर भी लोग किसी न किसी रूप में उस स्थान को आज तक पूज्य मान कर पूजते चले आते हैं। प्रयागराज जिस का प्रसिद्ध नाम आज कल 'इलाहाबाद' है उसके क़िले में एक नक़ली बट वृक्ष त्रिवेणी (गङ्गा यमुना का सङ्गम) के निकट अब भी विद्यमान है। जिसे लोग "अखय-वट" के नाम से पूजते हैं॥

नोट—"गया" में भी एक वटवृक्ष है जो सहस्रों वर्ष पुराना होने से 'अक्षयवट' कहाता है। जगन्नाथपुरी में भी इस नाम का एक वृक्ष होने का लेख मिलता है परन्तु अब वहां इस नाम का कोई वृक्ष नहीं है। दक्षिण भारत में नर्मदा नदी के निकट और सीलोन (लङ्का) टापू में भी अति प्रचीन और बहुत बड़े एक एक वट वृक्ष हैं॥

अक्षय श्रीमाल—ढुँढारी भाषा भाषी एक स्वर्गीय साधारण जैन विद्वान्—इन्होंने एक "धर्मचर्चा" ग्रन्थ ढुँढारी भाषा वचनिका (गद्य) में लिखा। (देखो ग्रन्थ "वृहत्-विश्वचरितार्णव")

अक्षयसप्तमी—भादों कृ० ७, इसे अक्षय ललिता भी कहते हैं। सोल्हवें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथ इसी तिथि को भरणी नक्षत्र में हस्तिनापुर के राजा "विश्वसैन" की रानी "ऐरादेवी के गर्भ में सर्वार्थसिद्धि विमान से चयकर अवतरे॥

अक्षर—(१) स्थिर, नाश रहित, अच्युत नित्य, आकाश, मोक्ष, परमात्मा, ब्रह्म, धर्म, धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, कालद्रव्य, तप, जल॥

(२) अकारादि वर्ण॥

अकारादि अक्षरों के मूल भेद दो हैं—भावाक्षर और द्रव्याक्षर। भावाक्षर अनादि-निधन अकृत्रिम हैं जिनसे द्रव्याक्षरों की रचना कालविशेष तथा क्षेत्रविशेष में अनेक प्रकार से अनेक आकारों में यथा-आवश्यक होती रहती है। वर्तमान कल्प काल के वर्तमान अवसर्पिणी विभाग में द्रव्याक्षरों की रचना सर्व से प्रथम श्री ऋषभदेव ने अयोध्यापुरी में की। और सर्व से पहिले अपनी बड़ी पुत्री "ब्राह्मी" को यह अक्षरावली सिखाई। इसी लिये इस 'अक्षरावली' का नाम "ब्राह्मीलिपि" प्रसिद्ध हुआ। इस लिपी में ६४ मूल वर्ण और एक कम एकट्ठी अर्थात् १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ मूल वर्णों सहित संयोगीवर्णोंकी संख्याहै जिनके अलग अलग आकार नियत किये गये हैं। ६४ मूलाक्षर निम्न प्रकार हैं:—

३३ व्यञ्जनाक्षर जिनके उच्चारण में अर्द्ध-मात्रा-काल लगता है—क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ्। ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व्। श् ष् स् ह्॥

९ ह्रस्व स्वर जिनके उच्चारण में एक-मात्रा-काल लगता है—अ इ उ ऋ ऌ। ए ऐ ओ औ॥

९ दीर्घ स्वर जिनके उच्चारण में दो-मात्रा-काल लगता है—आ ई ऊ ॠ ॡ।

ए २ ऐ २ ओ २ औ २ ॥

३ प्लुत स्वर जिनके उच्चारण में तीन-मात्रा-काल लगता है—आ ३ ई ३ ऊ ३ ॠ ३ ॡ ३ । ए ३ ऐ ३ ओ ३ औ ३ ॥

४ योगवाह जिनका उच्चारण किसी दूसरे अक्षर के योग से ही होता है—ं (अनुस्वार—यह चिन्ह किसी स्वर या व्यंजन के ऊपर यथा आवश्यक लगाया जाता है), : (विसर्ग—यह चिन्ह किसी व्यञ्जन के आगे यथा आवश्यक लगाया जाता है), ≍ (जिह्वामूलीय—यह चिन्ह 'क, ख' के पूर्व यथाआवश्यक लगाया जाता है), ≍ (उपध्मानीय—यह चिन्ह 'प,फ' के पूर्व यथाआवश्यक लगाया जाता है), इस प्रकार ३३ व्यञ्जन, २७स्वर, और ४ योगवाह, यह सर्व ६४ मूल अक्षर हैं॥

(गो० जी० गा० ३५१ —३५३)

नोट १—अन्य अपेक्षा से अक्षर के ३ भेद भी हैं—(१) लब्ध्यक्षर (२) निर्वृत्यक्षर और (३) स्थापनाक्षर । (आगे देखो शब्द "अक्षर-ज्ञान" का नोट १) ॥

नोट २—उपर्युक्त ६४ मूलाक्षरों से जो मूल वर्णों सहित एक कम एकट्ठी अर्थात् १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ असंयोगी (६४ मूलाक्षर), द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी, चतुः संयोगी, पंच संयोगी आदि ६४ संयोगी तक के अक्षर बनते हैं । उनके जानने की प्रक्रिया निम्न प्रकार है:—

उदाहरण के लिये क् ख् ग् घ् ङ्, इन ५ मूल अक्षरों से असंयोगी और संयोगी सर्व रूप कितने और किस प्रकार बन सकते हैं यह बात नीचे दिये कोष्ठ से पहिले भली प्रकार समझ लैनो चाहिये:—

मूलाक्षर संख्या	मूलअक्षर	मूलाक्षरों से बने हुए सर्व असंयोगी और संयोगी रूप या भंग	असंयोगी अक्षरों की संख्या	द्विसंयोगीअक्षरों की संख्या	त्रिसंयोगी अक्षरों की संख्या	चतुःसंयोगीअक्षरों की सं०	पंच संयोगी अक्षरों की सं०	सर्व अक्षरों का जोड़
१	क्	१ क्	१	०	०	०	०	१
२	क्, ख्	१ २ ३ क्, ख्, क्ख्	२	१	०	०	०	३
३	क्, ख्, ग्	१ २ ३ ४ ५ ६ क्, ख्, ग्, क्ख्, क्ग्, ख्ग्, ७ क्ख्ग्	३	३	१	०	०	७
४	क्, ख्, ग्, घ्	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ क्, ख्, ग्, घ्, क्ख्, क्ग्, क्घ्, ८ ९ १० ११ १२ ख्ग्, ख्घ्, ग्घ्, क्ख्ग्, क्ख्घ्, १३ १४ १५ क्ग्घ्, ख्ग्घ्, क्ख्ग्घ्	४	६	४	१	०	१५
५	क्, ख्, ग्, घ्, ङ्	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, क्ख्, क्ग्, क्घ्, ९ १० ११ १२ १३ १४ क्ङ्, ख्ग्, ख्घ्, ख्ङ्, ग्घ्, ग्ङ् १५ १६ १७ १८ १९ घ्ङ्, क्ख्ग्, क्ख्घ्, क्ख्ङ्, क्ग्घ्, २० २१ २२ २३ क्ग्ङ्, क्घ्ङ्, खगघ, खगङ, २४ २५ २६ २७ खघङ, गघङ, कखगघ, कखगङ, २८ २९ ३० कखघङ, कगघङ, खगघङ, ३१ कखगघङ ॥	५	१०	१०	५	१	३१

(१) उपर्युक्त कोष्ठ से प्रकट है कि एक अक्षर से केवल एक ही असंयोगी भंग, दो अक्षरों से सर्व ३ भंग, तीन अक्षरों से सात, चार अक्षरों से १५ और पांच अक्षरों से ३१ भंग प्राप्त होते हैं।

(२) भंगों की क्रम से बढ़ती हुई इस संख्या पर दृष्टि डालने से यह जाना जाता है कि भंगों की प्रत्येक अगली अगली संख्या अपनी निकट पूर्व संख्या से द्विगुण से एक अधिक है। इसी नियमानुकूल छह अक्षरों से प्राप्त भंग-संख्या ३१ के द्विगुण से एक अधिक अर्थात् ६३, सात अक्षरों से प्राप्त भंग-संख्या ६३ के द्विगुण से एक अधिक अर्थात् १२७, आठ अक्षरों से प्राप्त भंग-संख्या २५५, नौ अक्षरों से प्राप्त भंग-संख्या ५११, दश अक्षरों से १०२३, इत्यादि। इसी रीति से द्विगुण द्विगुण कर के एक एक जोड़ते जाने से ६४ अक्षरों से प्राप्त भंग-संख्या अर्थात् सर्व असंयोगी और संयोगी अक्षरों की संख्या उपर्युक्त एक कम एकट्ठी प्रमाण प्राप्त होगी॥

(३) अतः उपर्युक्त नियम से १, २, ३, ४, ५, ६ आदि चाहे जितने मूलाक्षरों से प्राप्त होने वाले सब असंयोगी और संयोगी अक्षरों की संख्या जानने के लिए निम्न लिखित 'करणसूत्र' या 'गुर' की उत्पत्ति होती है:—

जितनी मूलाक्षर संख्या हो उतनी जगह २ का अङ्क रख कर परस्पर उन्हें गुणें और गुणन फल से एक कम कर दें। शेष संख्या असंयोगी द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि सब अक्षरों की जोड़ संख्या होगी।

(४) उपर्युक्त करण सूत्र के अनुकूल

१ अक्षर की भंग-संख्या ...... २ − १ = १

२ अक्षरों की भंग-संख्या २ × २ − १

$= २^{२} − १ = ४ − १ = ३$

३ अक्षरों की भंग-संख्या २ × २ × २ − १

$= २^{३} − १ = ८ − १ = ७$

४ अक्षरों की भंग-संख्या २ × २ × २ × २ − १

$= २^{४} − १ = १६ − १ = १५$

५ अक्षरों की भंग-संख्या

$२ × २ × २ × २ × २ − १ = २^{५} − १ = ३२ − १ = ३१$

६ अक्षरों की भंग-संख्या

$२ × २ × २ × २ × २ × २ − १ = २^{६} − १ = ६४ − १ = ६३$

इत्यादि

अतः ६४ मूलाक्षरों की भंग-संख्या $= २^{६४} − १$

= एकट्ठी − १ = १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५

नोट ३—६४ मूलाक्षरों से असंयोगी, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि ६४ संयोगी तक के जो सर्व एक कम एकट्ठी प्रमाण अक्षर बनते हैं उनके जानने की प्रक्रिया दूसरे प्रकार से दूसरे प्रकार के कोष्ठ सहित "गोमट्टसार" जीवकांड की गा० ३५२, ३५३, [illegible] की श्रीमान् पं० टोडरमल जी कृत व्याख्या में देखें (मुद्रित ग्रन्थ का पृ० [illegible]५४ अथवा इसी की प्रतिलिपि रूप "श्रीभगवती आराधनासार" की गा० [illegible] की व्याख्या में देखें (कोल्हापुर जैनेन्द्र प्रेस की प्रथमावृत्ति के मुद्रित ग्रन्थ का पत्र १६६)॥

अक्षरमातृका—सर्व अक्षरों का समूह।

इस के पर्यायवाचक (अन्य एकार्थ बोधक नाम) अक्षरमाला, अक्षरश्रेणी, अक्षरावली, वर्णमाला, अक्षरमालिका, वर्णमातृका, अक्षरसमाम्नाय, इत्यादि हैं।

प्राकृतभाषा की वर्णमाला में ३३ व्यञ्जन, २७ स्वर और ४ योगवाह, सर्व ६४ मूल अक्षर हैं और इनके परस्पर के संयोग से जो मूलाक्षरों सहित संयोगी अक्षर बनते हैं उनकी संख्या एक कम एकट्ठी अर्थात् १८४४६७४४० ७३७०९५५१६१५ (एक सौ चौरासी संख, छयालीसपद्म, चौहत्तरनील, चालीसखर्ब, तिहत्तर अर्ब, सत्तर कोटि, पिच्चानवे लक्ष इक्यावन सहस्र, छह सौ पन्द्रह) है ॥

संस्कृत भाषा की अक्षरमाला में ३३ व्यञ्जन, २२ स्वर (५ह्रस्व, ८दीर्घ और ९प्लुत), ४ योगवाह और ४ यम अर्थात् युग्माक्षर, सर्व ६३ मूलाक्षर हैं ।

हिन्दी भाषा की देवनागरी अक्षरावली में ३३व्यञ्जन, १६ स्वर और ३युग्माक्षर सर्व ५२ अक्षर हैं । उर्दू भाषा में सर्व ३८, अरबी भाषामें २८, अँग्रेज़ी भाषा में २६, फ़ारसी भाषा में ३४, क्रिनिक भाषा में केवल २० अक्षरहैं । इसीप्रकार जितनी अन्य२ भाषाएँ देश देशान्तरों में देशभेद व कालभेद से उत्पन्नहो हो कर नष्टहो चुकीं या अब प्रचलित हो रहीहैं उनमें से हरेक की वर्णमाला में यथा आवश्यक भिन्न भिन्न अक्षर-संख्या है ।

अक्षरमातृका-ध्यान—"पदस्थ ध्यान" के अनेक भेदों में से एक का नाम । यह ध्यान इस प्रकार किया जाताहै:— ध्याता अपने "नाभि मंडल" पर पहिले १६ पंखड़ी के कमल का दृढ़ चिन्तवन करे । प्रत्येक पाँखड़ी पर स्वरावली के १६ स्वरों अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः में से एक एक क्रम से स्थित हुए चिन्तवे । कमल को प्रफुल्लित और आकाशमुख चिन्तवन करे।इसस्वरावली को प्रत्येक पत्र पर चक्राकार घूमता हुआ ध्यान करे । "हृदय स्थान" पर २४ दल कमल कर्णिका सहित का चिन्तवन करे । कर्णिका और २४ पत्रों पर क्रमसे क ख ग घ आदि म तकके २५ व्यञ्जन चिन्तवे। इस कमल का मुख नाभि कमल की ओरको पाताल मुख चिन्तवन करे।फिर अष्टदल "मुखकमल" का चिन्तवनकरे और "नाभिकमल"के समान इसके प्रत्येक पत्र पर य र आदि ह तक के आठ अक्षर क्रम से चक्राकार घूमते हुए ध्यान करे । इस प्रकार स्थिर चित्तसे किये गये इस अक्षरावली के ध्यानको "अक्षर मातृका" या "वर्णमातृका" ध्यान कहते हैं । इस ध्यान से ध्याता कुछ काल में पूर्ण श्रुतज्ञान का पारगामी हो सकता है, तथा क्षयीरोग, अरुचिपना, अग्निमन्दता, कुष्ट, उदर रोग, और कास श्वास आदि रोगों को जीतता है और वचनसिद्धता, महान पुरुषों से पूजा और परलोक में श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है ।

(ज्ञा. प्र० ३८, श्लो० २—६, उ० १, २)

नोट—जिस ध्यानमें एक या अनेक अक्षरों से बने हुए मंत्रों या पदों का या पदों के आश्रय उन के वाच्य देवी देवताओं का या शुद्धात्मतत्व या परमात्म-तत्व का विधिपूर्वक चिन्तवन किया जाय उसे "पदस्थ-ध्यान" कहते हैं । धर्म ध्यान के चार भेदों अर्थात् (१) आज्ञा विचय, (२) अपाय विचय, (३) विपाक विचय, और (४) संस्थान विचय में से चतुर्थ भेद "संस्थान विचय" के अन्तर्गत (१) पिंडस्थ, (२) पदस्थ, (३) रूपस्थ और (४) रूपातीत, यह जो चार प्रकार के ध्यान हैं इनमें से दूसरे

प्रकार का ध्यान "पदस्थ ध्यान" है। इस पदस्थध्यान सम्बन्धी निम्न लिखित अनेक "मंत्र" हैं जिनका सविस्तर स्वरूप, जपने की विधि और फल आदि इसी ग्रन्थ में "पदस्थ ध्यान" शब्द की व्याख्या में यथा स्थान मिलेंगे:—

१. एकाक्षरी—(१) ह्रं, यह मंत्रराज या मंत्राधिप नाम से प्रसिद्ध सर्व तत्वनायक या बीजाक्षर तत्व है। इसे कोई बुद्धि तत्व, कोई हरि, ब्रह्मा, महेश्वर या शिव तत्व, और कोई सार्व सर्वव्यापी या ईशान तत्व, इत्यादि अनेक नामों से नामाङ्कित करते हैं।

(२) ॐ या ओं (ओ३म्), यह "प्रणव" नाम से प्रसिद्ध मंत्र अर्हन्त, अशरीर (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय और मुनि (साधु), इन पंच परमेष्ठी वाचक है। कोई कोई इसे रेफ युक्त इस प्रकार (ओं) भी लिखते हैं।

(३) ह्रीं इस मंत्रका नाम "मायावर्ण" या "मायाबीज" है।

(४) क्ष्वीं, इस मंत्र का नाम "सकल-सिद्ध विद्या" या "महाविद्या" है।

(५) क्ष्वीं, इस मंत्र का नाम "छिन्न-मस्तक महाबीज" है।

(६) अ, ह्रां ह्रीं ह्रूं, ह्रौं, ह्रः, क्रीं, क्रूं, क्रौं, श्रां, श्रीं, श्रूं, क्षां, क्षीं, क्षं, क्षः, इत्यादि अनेक एकाक्षरी मंत्र हैं।

२. युग्माक्षरी—(१) अर्हं, (२) सिद्ध, (३) साधु (४) ॐ ह्रीं, इत्यादि।

३. त्र्याक्षरी—(१) अर्हंत (२) ॐ अर्हं (३) ॐ सिद्धं, इत्यादि।

४. चतुराक्षरी—(१) अरहन्त (२) ॐ सिद्धे-भ्यः, इत्यादि।

५. पञ्चाक्षरी—(१) अ. सि. आ. उ. सा. (२) ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः (३) अर्हन्त सिद्ध (४) णमोसिद्धाणं (५) नमो सिद्धेभ्यः (६) नमोअर्हते (७) नमो अर्हेभ्यः (८) ॐ आचार्येभ्यः, इत्यादि।

६. षडाक्षरी—(१) अरहन्त सिद्ध (२) नमो अरहते (३) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः (४) ॐ नमो अर्हते (५) ॐ नमो अर्हेभ्यः (६) ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं हंसः (७) ॐ नमः सिद्धे-भ्यः, इत्यादि।

७. सप्ताक्षरी—(१) णमो अरहंताणं (२) ॐ ह्रीं श्री अर्हं नमः (३) णमो आइरियाणं (४) णमो उवज्झायाणं (५) नमो उपा-ध्यायेभ्यः (६) नमः सर्व सिद्धेभ्यः (७) ॐ श्री जिनायनमः, इत्यादि।

८. अष्टाक्षरी—(१) ॐ णमो अरहंताणं (२) ॐ णमो आइरियाणं (३) ॐ नमो उपा-ध्यायेभ्यः (४) ॐ णमो उवज्झायाणं, इत्यादि।

९. नवाक्षरी—(१) णमो लोए सव्व साहूणं (२) अरहंत सिद्धेभ्यो नमः, इत्यादि।

१०. दशाक्षरी—(१) ॐ णमो लोए सव्व साहूणं (२) ॐ अरहन्त सिद्धेभ्यो नमः, इत्यादि।

११. एकादशाक्षरी—(१) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा (२) ॐ श्री अरहन्त सिद्धेभ्योनमः, इत्यादि।

१२. द्वादशाक्षरी—(१) ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः (२) ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा (३) अर्हत्सिद्ध सयोग केवलि स्वाहा, इत्यादि।

१३. त्रयोदशाक्षरी—(१) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः (२) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा (३) ॐ अर्हत्सिद्ध सयोग केवलि स्वाहा, इत्यादि ।

१४. चतुर्दशाक्षरी—(१) ॐ ह्रीं स्वर्हं नमो नमोऽर्हंताणं ह्रीं नमः (२) श्रीमदृषभादि वर्द्धमानान्तेभ्यो नमः, इत्यादि ।

१५. पञ्चदशाक्षरी—ॐ श्रीमदृषभादिवर्द्धमानान्तेभ्यो नमः, इत्यादि ।

१६. षोड़शाक्षरी—अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योनमः इत्यादि ।

१७. द्वाविंशत्यक्षरी—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः, इत्यादि ।

१८. त्रयोविंशत्यक्षरी—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं सर्व शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा, इत्यादि ।

१९. पञ्चविंशत्यक्षरी—ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिन पारिस्से स्वाहा, इत्यादि ।

२०. एकत्रिंशदक्षरी—ॐ सम्यग्दर्शनायनमः सम्यग्ज्ञानायनमः सम्यक् चारित्रायनमः सम्यक् तपसे नमः, इत्यादि ।

२१. पञ्चत्रिंशदक्षरी—णमोअरहंताणं णमोसिद्धाणंणमोआइरियाणंणमोउवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं इत्यादि ।

२२. एक सप्तत्यक्षरी—ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञान ज्वाला सहस्रप्रज्वलितेसरस्वति मम पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीर वर धवले अमृत सम्भवे वं वं हूं हूं स्वाहा ।

२३. षटसप्तत्यक्षरी—ॐ नमोऽर्हते केवलिने परम योगिनेऽनन्त शुद्धि परिणाम विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिर्दग्ध कर्मबीजाय प्राप्तानन्त चतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मंगलाय वरदाय अष्टादश दोष रहिताय स्वाहा ॥

२४. सप्तविंशत्यधिकशताक्षरी—चत्तारिमंगलं अरहन्तमंगलं सिद्धमंगलं साहूमंगलं केवलिपण्णत्तोधम्मो मंगलं, चत्तारिलोगुत्तमा अरहंतलोगुत्तमा सिद्धलोगुत्तमा साहूलोगुत्तमा केवलिपण्णत्तोधम्मो लोगुत्तमा, चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहन्तसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहूसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तोधम्मोसरणं पव्वज्जामि ॥

इत्यादि इत्यादि अनेकानेक मंत्र हैं जो यथाविधि जपने से सांसारिक या पारलौकिक कार्य सिद्धि के लिए तथा आत्मकल्याणार्थ बड़े उपयोगी हैं । (विधि और फलादि जानने के लिए देखो शब्द "पदस्थध्यान" और ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव प्र०३८) ॥

अक्षरलिपि—अक्षरों की बनावट या लिखावट । इसके पर्यायवाची (अर्थविबोधक) नाम अक्षरन्यास, वर्णन्यास, अक्षरविन्यास, अक्षरसंस्थान, अक्षरौटी, अक्षरलेख इत्यादि हैं ॥

अक्षरलिपि देश भेद से अनेक प्रकार की प्रचलित हैं जिनकी उत्पत्ति और विनाश देश और काल भेद से कर्मभूमि या कृतयुग की आदि से ही सदैव होता रहा है और होता रहेगा । वर्त्तमान कल्प के वर्त्तमान अवसर्पिणी विभाग में सर्व से

पहिली अक्षरलिपि का नाम "ब्राह्मीलिपि" है जिसे वर्त्तमान कृतयुग के प्रारम्भ से कुछ पहिले श्रीऋषभदेव (आदि देव या आदि-ब्रह्मा) ने अयोध्यापुरी में रची और सर्व से पहिले अपनी बड़ी पुत्री "ब्राह्मी" को सिखाई। आज कल की देवनागरी लिपि उसी का एक रूपान्तर है। तथा अन्यान्य जितनी लिपियों का आज कल प्रचार है उनमें से अधिकतर उसी का न्यूनाधिक रूपान्तर है अथवा उसी से कुछ न कुछ सहायता लेकर रची गई हैं। उस 'ब्राह्मी' नामक मूल अक्षरलिपि की ६४ अक्षरों की अक्षरावली को "सिद्ध मातृका" भी कहते हैं। इस लिए कि श्रीऋषभदेव स्वयम्भू भगवान ने जो "स्वायंभुव" व्याकरण की सर्व से प्रथम रचना की उसमें प्रथम "ॐ नमः सिद्धम्" लिखकर "अक्षरावली" का प्रारम्भ किया जो समस्त "श्रुतज्ञान" या शास्त्र ज्ञान सिद्ध करने का मूल है।

नोट १—अक्षरलिपि के मूल भेद ५ हैं—(१) लेखनी आश्रित, जो लेखनी से लिखी जाय (२) मुद्राङ्कित, जो मुहर या अंगुष्टादि से छापी जाय (३) शिल्पान्वित, जो चित्रकारी से सम्बन्धित हो (४) गुण्डिका, जो तन्दुलादि के चूर्ण से बनाई जाय (५) घूणाक्षर, जो घुन कीड़े की बनाई रेखाओं के समान हो जैसे हथेली की रेखाएं या अंग्रेज़ी "शौर्ट हैंड" की लिपि॥

नोट २—प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रन्थों में कहीं ६४ प्रकार की और कहीं कहीं १८ या ३६ प्रकार की भारत वर्ष में प्रचलित निम्न लिखित लिपियों का उल्लेख पाया जाता है:—

६४ लिपियों के नाम ("ललित विस्तार" में जो सन् ई० से कुछ अधिक १०० वर्ष पूर्व का संग्रहीत बौद्ध ग्रन्थ है)—(१) ब्राह्मी (२) खरोष्ठी (३) पुष्करसारी (४) अंग (५) वंग (६) मगध (७) मांगल्य (८) मनुष्य (९) अंगुलीय (१०) शकारि (११) ब्रह्मवल्ली (१२) द्राविड़ (१३) कनारी (१४) दक्षिण (१५) उग्र (१६) संख्या (१७) अनुलोम (१८) अर्द्धधनु (१९) दरद (२०) खास्य (२१) चीन (२२) हूण, (२३) मध्याक्षर विस्तर (२४) पुष्प (२५) देव (२६) नाग (२७) यक्ष (२८) गन्धर्व (२९) किन्नर (३०) महोरग (३१) असुर (३२) गरुड़ (३३) मृगचक्र (३४) चक्र (३५) वायु मरुत् (३६) भौमदेव (३७) अन्तरीक्ष देव (३८) उत्तर कुरु द्वीप (३९) अपर गौड़ादि (४०) पूर्व विदेह (४१) उत्क्षेप (४२) निक्षेप (४३) विक्षेप, (४४) प्रक्षेप (४५) सागर (४६) वज्र (४७) लेख प्रति लेख (४८) अनुद्रुत (४९) शास्त्रावर्त्त (५०) गणनावर्त्त (५१) उत्क्षेपावर्त्त(५२) विक्षेपावर्त्त (५३) पाद लिखित (५४) द्विरुत्तरपद सन्धि (५५) दशोत्तरपद सन्धि (५६) अध्याहारिणी (५७) सर्वभूतसंग्रहणी (५८) विद्यानुलोम (५९) विमिश्रित (६०) ऋषितपस्तप्ता (६१) धरणी प्रेक्षण (६२) सर्वौषधि निष्यन्दा (६३) सर्व सार संग्रहणी और (६४) सर्वभूत रुतग्रहणी।

१८ लिपिओं के नाम (५ वीं शताब्दी ईस्वी में लिखे गये जैन ग्रन्थ 'नन्दी सूत्र' में)-(१) हंस (२) भूत (३) यक्ष (४)

राक्षस (५) उड्डी (६) यावनी (७) तुरुष्की (८) कीरी (९) द्राविड़ी (१०) सैन्धवी (११) मालवी (१२) नड़ी (१३) नागरी (१४) पारसी (१५) लाटी (१६) अनामत्त (१७) चाणक्यी और (१८) मौलदेवी ॥

१८ लिपियों के नाम ('नन्दी सूत्र' ही में अन्य प्रकार से)—(१) लाटी (२) चौड़ी (३) डाहली (४) काणड़ी (५) गुजरी (६) सोरठी (७) मरहठी (८) कोङ्कणी (९) खुरासानी (१०) मागधी (११) सैंहली (१२) हाड़ी (१३) कीरी (१४) हम्बीरी (१५) परतीरी (१६) मसी (१७) मालवी और (१८) महायोधी।

१८ लिपियाँ (सन् ई० से लगभग ४५० वर्ष पीछे के जैन ग्रन्थ समवाय सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र में)—(१) ब्राह्मी (२) यवनानी (३) दशोत्तरिका (४) खरोष्ट्रिका (५) पुष्कर सारिका (६) पार्वतिका (७) उत्तरकुरुका (८) अक्षर पुस्तिका (९) भोगवहिका (१०) विक्षेपिका (११) निक्षेपिका (१२) अङ्क (१३) गणित (१४) गन्धर्व (१५) आदर्शक (१६) माहेश्वर (१७) द्राविड़ी और (१८) बोलिंदी।

नोट ३—ब्राह्मी लिपी से निकली भारत वर्ष की वर्त्तमान लिपियां निम्न लिखित हैं जो अकारादि क्रम से दी जाती हैं:—(१) अरोरा (सिन्धु प्रदेश में) (२) असमीया (३) उड़िया (४) ओझा (विहार के ब्राह्मणों में) (५) कणाड़ी (६) कराढ़ी (७) कायथी (८) गुजराती (९) गुरुमुखी (पञ्जाब में सिक्खों के बीच) (१०) ग्रन्थम् (तामिल ब्राह्मणों के मध्य) (११) तामिल तुलू (मंगलूर में) (१२) तेलगू (१३) थल (पञ्जाब के डेराजात में) (१४) दोगरी (काश्मीर में) (१५) देवनागरी (१६) निमारी (मध्य प्रदेश में) (१७) नेपाली (१८) परार्ची (भेर में) (१९) पहाड़ी (कुमायूँ और गढ़वाल में) (२०) बणिया (सिरसा और हिसार में) (२१) बंगला (२२) भावलपुरी (२३) बिसाती (२४) बड़िया (२५) मणिपुरी (२६) मलयालम् (२७) मराठी (२८) मारवाड़ी (२९) मुलतानी (३०) मैथिली (३१) मोड़ी (३२) रोरी (पञ्जाब में) (३३) लामावासी (३४) लुण्डी (स्यालकोट में) (३५) शरार्फी या श्रावकी (पश्चिम के बनियों में) (३६) सारिका (पञ्जाब के डेरा जात में) (३७) सईसी (उत्तर पश्चिम के भृत्यों में) (३८) सिंहली (३९) शिकारपुरी और (४०) सिन्धी। इन्हें छोड़ भारत के अनुद्वीपों में बर्म्मी, श्याम, लेयस, काम्बोज, पेगुयान और यवद्वीप और फिलिपाइन में भी नाना प्रकार की लिपियाँ चलती हैं॥

अक्षरविद्या—विद्या के मुख्य भेद दो हैं:—(१) शब्द जन्य विद्या और (२) लिंग जन्य विद्या। इनमें से पहिली शब्द-जन्य विद्या के भी दो भेद हैं—अक्षरात्मक शब्द जन्य विद्या और अनक्षरात्मक शब्द-जन्य विद्या; इन दो में से पहिली "अक्षरात्मक-शब्दजन्य विद्या" ही का नाम लाघव के लिए "अक्षर विद्या" भी है। कोष, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार आदि सर्व विद्याएँ जिनसे किसी भाषा-ज्ञान या साहित्य-ज्ञान की पूर्णता होती है इस "अक्षर विद्या" में गर्भित हैं॥

अक्षरसमास—अक्षरों का मेल; एक अक्षर से अधिक और एक 'मध्यमपद' से कम अक्षरों का समूह॥

नोट १—पद के ३ भेद हैं—(१) अर्थपद (२) प्रमाणपद (३) मध्यमपद ॥

नोट २—किसी अर्थ विशेष के बोधक किसी छोटे बड़े अनियत अक्षरों के समूह रूप वाक्य को अर्थपद कहते हैं; किसी छन्द के एक चरण या पाद को जिसमें छन्दशास्त्र के नियमानुकूल अक्षरों की गणना छन्द भेद अपेक्षा न्यूनाधिक होती है प्रमाणपद कहते हैं; और १६३४८३०७८८८ नियत अक्षरों के समूह को मध्यमपद कहते हैं ॥ (गो० जी० गा० ३३५) ॥

नोट ३—आगे देखो शब्द "अक्षरसमासज्ञान" का नोट ॥

अक्षरसमासज्ञान—'श्रुतज्ञान' के २० भेदों में से एक चौथे भेद का नाम; वह ज्ञान जो कम से कम दो अक्षरों का और अधिक से अधिक एक "मध्यमपद" से एक अक्षर कम का हो। एक "मध्यमपद" के अक्षरों की संख्या से दो कम इस ज्ञान के स्थान या भेद हैं ॥ (गो० जी० गा० ३३४) ॥

नोट १—एक मध्यम पद के अक्षरों की संख्या १६३४८३०७८८८ है अतः 'अक्षरसमासज्ञान' के १६३४८३०७८८६ स्थान या भेद हैं अर्थात् २ अक्षरज्ञान, ३ अक्षरज्ञान, ४ अक्षरज्ञान, इत्यादि के एक एक अक्षर बढ़ाकर १६३४८३०७८८७ अक्षरज्ञान पर्यन्त में से प्रत्येक को "अक्षरसमासज्ञान" कहते हैं। इस का प्रथम स्थान या जघन्यभेद "दो अक्षरज्ञान" है। इससे कम एक अक्षर के ज्ञान को "अक्षरज्ञान" कहते हैं और अन्तिम स्थान या उत्कृष्ट भेद, १६३४८३०७८८७ अक्षरों का ज्ञान है। इससे एक अक्षर अधिक के ज्ञानको "पदज्ञान" कहते हैं।

नोट २—यहां अक्षर से अभिप्राय द्रव्याक्षर का नहीं है किन्तु भावाक्षररूप-श्रुतज्ञान का है जो पर्यायसमासज्ञान से कुछ अधिक है ॥

नोट ३—श्रुतज्ञान के २० भेद यह हैं—(१) पर्याय ज्ञान (२) पर्यायसमास ज्ञान (३) अक्षरज्ञान (४) अक्षरसमास ज्ञान (५) पदज्ञान (६) पदसमास ज्ञान (७) संघात ज्ञान (८) संघातसमास ज्ञान (९) प्रतिपत्तिक ज्ञान (१०) प्रतिपत्तिकसमास ज्ञान (११) अनुयोगज्ञान (१२) अनुयोगसमास ज्ञान (१३) प्राभृतप्राभृतक ज्ञान (१४) प्राभृतप्राभृतकसमास ज्ञान (१५) प्राभृत ज्ञान (१६) प्राभृतसमास ज्ञान (१७) वस्तुज्ञान (१८) वस्तुसमास ज्ञान (१९) पूर्वज्ञान (२०) पूर्वसमास ज्ञान ॥

इनमें से प्रथम दो भेद अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के हैं और शेष १८ भेद अक्षरात्मक के हैं।

(गो० जी० गा० ३१७, ३३७, ३४८)

नोट ४—श्रुतज्ञान के उपर्युक्त २० भेद 'भावश्रुत' अपेक्षा हैं; द्रव्यश्रुत अपेक्षा अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य, यह दो मूल भेद हैं ॥

अक्षरज्ञान—श्रुतज्ञान के २० भेदों में से एक तीसरे भेद का नाम; वह ज्ञान जो केवल एक मूलाक्षर या संयोगी अक्षर सम्बन्धी हो। इसी को 'अर्थाक्षर ज्ञान' भी कहते हैं। यह श्रुतज्ञान के २० भेदों में से जो दूसरा भेद "पर्याय समास ज्ञान" है उसके उत्कृष्ट भेद से अनन्त गुणा है ॥

(देखो 'अक्षर समास ज्ञान' का नोट ३)

नोट १—अक्षर के निम्न लिखित ३ भेद हैं:—

(१) लब्धि-अक्षर (लब्ध्यक्षर)—अक्षरज्ञान की उत्पत्ति का कारण भावेन्द्रिय रूप "आत्मशक्ति" का उस अक्षर लब्धि (प्राप्ति) को लब्ध्यक्षर कहते हैं जो पर्यायज्ञानावरण से लेकर श्रुत-केवल-ज्ञानावर्ण

तक के अर्थात् पूर्ण श्रुतज्ञानावरण के कर्म-क्षयोपशम से हुई हो ॥

(२) निर्वृत्ति-अक्षर (निर्वृत्यक्षर)—मुखोत्पन्न उच्चारण रूप कोई स्वर या व्यञ्जनादि मूल वर्ण या संयोगी वर्ण ॥

(३) स्थापना-अक्षर (स्थापनाक्षर)—किसी देश कालादि की प्रवृत्ति के अनुकूल किसी प्रकार की लिपि में स्थापित (लिखित) कोई अक्षर ॥

अक्षरात्मक—अक्षर जन्य, अक्षरों से बना हुआ ॥

अक्षरात्मकश्रुतज्ञान (अक्षरात्मक ज्ञान)—वह ज्ञान जो एक या अनेक अक्षरों की सहायता से हो; श्रुतज्ञान के मूल दो भेदों, अर्थात् 'अक्षरात्मक' और 'अन-क्षरात्मक' में से एक पहिला भेद; वह ज्ञान जो कम से कम एक अक्षर सम्बन्धी हो और अधिक से अधिक श्रुतज्ञान के समस्त अक्षरों सम्बन्धी हो अर्थात् पूर्ण अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो। यह पूर्ण अक्षरात्मक श्रुतज्ञान (१) अङ्गप्रविष्ट और (२) अङ्गवाह्य, इन दो विभागों में विभाजित है ॥

नोट १—यह ज्ञान "पर्याय समास ज्ञान" से अधिक सम्पूर्ण "अक्षरात्मक-श्रुतज्ञान" तक है ॥

नोट २—पूर्ण अक्षरात्मक-श्रुतज्ञान के समस्त अपुनरुक्त मूल और संयोगी अक्षरों की संख्या एक कम एकट्ठी अर्थात् १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ है। अतः अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के स्थान या भेद एक कम एकट्ठी हैं ॥

नोट ३—पूर्ण श्रुतज्ञानी को "श्रुतकेवली" या "द्वादशांगपाठी" भी कहते हैं। ऐसे ज्ञानी को भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल सम्बन्धी त्रिलोक के समस्त स्थूल व सूक्ष्म पदार्थों का उनकी असंख्य पर्यायों सहित परोक्ष रूप ज्ञान होता है, जिसका प्रादुर्भाव किसी निर्ग्रन्थ भाव-लिङ्गी मुनि की पवित्र आत्मा में महान तपोबल से हो जाता है। पूर्ण 'श्रुतज्ञानी' और 'कैवल्यज्ञानी' के ज्ञान में केवल इतना ही अन्तर रहता है कि कैवल्य-ज्ञान आत्म-प्रत्यक्ष और पूर्ण विशद होता है और श्रुतज्ञान परोक्ष। वह ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म प्रकृतियों के क्षय से होता है और यह उनके क्षयोपशम से अर्थात् केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है और श्रुतज्ञान क्षायोपशमिक है ॥

नोट ४—कैवल्यज्ञानियों के पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान में जिन लोकालोकवर्त्ती सम्पूर्ण सूक्ष्म या स्थूल पदार्थों और उनकी भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों काल सम्बन्धी अनन्तानन्त पर्यायों का ज्ञान होता है उनके अनन्तवें भाग प्रज्ञापनीय पदार्थ (बचन द्वारा कहे जाने योग्य पदार्थ) हैं। और जितने पदार्थ बचन द्वारा निरूपण किये जा सकते हैं उनका अनन्तवाँ भाग मात्र सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत या अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में निरूपित है। तो भी सम्पूर्ण अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में उपर्युक्त एक कम एकट्ठी तो अपुनरुक्त मूल और संयोगी अक्षर हैं। उसमें पुनरुक्त अक्षरों की संख्या उनसे भी कई गुणी अधिक है। यह पूर्ण "अक्षरात्मक श्रुतज्ञान" इतना अधिक है कि इसे पूर्ण रूप लिखना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसी लिये आज तक कभी लेखनी-बद्ध नहीं हुआ। केवल मुख द्वारा ही इसका निरूपण होता रहा। लेखनी द्वारा तो यथा आवश्यक कुछ कुछ भाग ही कभी कभी लिखा जाता रहा है ॥

अक्षरात्मक ज्ञान—देखो शब्द "अक्षरात्मक श्रुतज्ञान" ॥

अक्षरावली—देखो शब्द "अक्षरमाला" ॥

अक्षरौटी—देखो शब्द "अक्षर-लिपि" ॥

अक्षिप्र—मन्द, विलम्ब, एक मुहूर्त के सोलहवें भाग से कुछ हीनाधिक समय ॥

अक्षिप्र-मतिज्ञान—मन्दगत व्यक्तया अव्यक्त पदार्थ सम्बन्धी मति-ज्ञान; पाँचों इन्द्रिय और मन, इन छह में से किसी के द्वारा किसी मन्दगत प्रकट या अप्रकट पदार्थ का अवग्रहादि, अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप ज्ञान "अक्षिप्र मतिज्ञान" कहलाता है । इसके निम्न लिखित मूल भेद दो और उत्तर भेद २८ हैं:—

१. अर्थ (प्रकट पदार्थ) सम्बन्धी अक्षिप्र मतिज्ञान । यह निम्न लिखित २४ प्रकार का है:—

(१) स्पर्शनेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह (२) रसनेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह (३) घ्राणेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह (४) चक्षुरेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह (५) कर्णेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह (६) मनेन्द्रिय जन्य अर्थावग्रह (७) स्पर्शनेन्द्रिय जन्य अर्थीहा ज्ञान (८) रसनेन्द्रिय जन्य अर्थीहा ज्ञान (९) घ्राणेन्द्रिय जन्य अर्थीहा ज्ञान (१०) चक्षुरेन्द्रिय जन्य अर्थीहा ज्ञान (११) श्रोत्रेन्द्रिय जन्य अर्थीहा ज्ञान (१२) मनेन्द्रिय जन्य अर्थीहा ज्ञान (१३) स्पर्शनेन्द्रिय जन्य अर्थावाय ज्ञान (१४) रसनेन्द्रिय जन्य अर्थावाय ज्ञान (१५) घ्राणेन्द्रिय जन्य अर्थावाय ज्ञान (१६) चक्षुरेन्द्रिय जन्य अर्थावाय ज्ञान (१७) श्रोत्रेन्द्रिय जन्य अर्थावाय ज्ञान (१८) मनेन्द्रिय जन्य अर्थावाय ज्ञान (१९) स्पर्शनेन्द्रिय जन्य अर्थधारणा ज्ञान (२०) रसनेन्द्रिय जन्य अर्थ धारणा ज्ञान (२१) घ्राणेन्द्रिय जन्य अर्थधारणा ज्ञान (२२) चक्षुरेन्द्रिय जन्य अर्थ धारणा ज्ञान (२३) श्रोत्रेन्द्रिय जन्य अर्थधारणा ज्ञान (२४) मनेन्द्रिय जन्य अर्थधारणा ज्ञान ॥

२. व्यञ्जन (अप्रकट पदार्थ) सम्बन्धी अक्षिप्र मतिज्ञान । यह निम्न लिखित ४ प्रकार का है:—

(१) स्पर्शनेन्द्रिय जन्य व्यञ्जनावग्रह ज्ञान (२) रसनेन्द्रिय जन्य व्यञ्जनावग्रह ज्ञान (३) घ्राणेन्द्रिय जन्य व्यञ्जनावग्रह ज्ञान (४) श्रोत्रेन्द्रिय जन्य व्यञ्जनावग्रह ज्ञान ।

नोट—जिस प्रकार यह उपर्युक्त २८ भेद "अक्षिप्र-मतिज्ञान" के हैं ठीक उसी प्रकार यही २८, २८ भेद (१) एक (२) बहु (३) एक विध (४) बहु विध (५) क्षिप्र (६) निःसृत (७) अनिःसृत (८) उक्त (९) अनुक्त (१०) अध्रुव (११) ध्रुव, इन ११ प्रकार के प्रकट या अप्रकट पदार्थों सम्बन्धी मतिज्ञान के भी हैं । अतः मतिज्ञान के सर्व भेद या विकल्प २८ को १२ गुणा करने से ३३६ होते हैं (देखो शब्द "मतिज्ञान") ॥

अक्षीण—क्षीणता रहित, न घटने या न कम होने वाला ।

अक्षीणऋद्धि—अष्ट ऋद्धियों में से एक का नाम; क्षेत्र ऋद्धि का अपर नाम; इसके दो भेद हैं—(१) अक्षीण महानस ऋद्धि (२) अक्षीण महालय ऋद्धि ।

नोट १—इस ऋद्धि व विक्रिया ऋद्धि के धारक ऋषि "राजर्षि" कहलाते हैं ॥

नोट २—अष्ट ऋद्धि—(१) बुद्धि ऋद्धि (२) क्रिया ऋद्धि (३) विक्रिया ऋद्धि (४) तपो ऋद्धि (५) बल ऋद्धि (६) औषध ऋद्धि (७) रस ऋद्धि (८) क्षेत्र ऋद्धि या अक्षीण ऋद्धि ॥

इन में बुद्धि ऋद्धि आदि क्रम से १८ या २५, २, ११, ७, ३, ८, ६ और २ प्रकार की हैं । अतः आठ ऋद्धियों के विशेष भेद ५७ या ६४ हैं । इनके कई अन्यान्य

उपभेद भी आड़ लेने से इनकी संख्या और भी बढ़ जाती है। (देखो शब्द 'ऋद्धि') ॥

अक्षीण महानस ऋद्धि—(अक्षीणमहानसर्द्धि)—क्षेत्र ऋद्धि या अक्षीण ऋद्धि के दो भेदों में से एक भेद; महान तपोबल से "लाभान्तराय कर्म" के क्षयोपशम की आधिक्यता होने पर प्रकट हुई तपस्वियों का वह 'आत्मशक्ति' जिसके होते हुए यदि वह महा तपस्वी किसी गृहस्थ के घर भोजन करे तो उस गृहस्थ ने जिस पात्र से निकाल कर भोजन उन्हें दिया हो उस पात्र (बर्तन या बासन या भाजन) में इतना अटूट भोज्य पदार्थ हो जाय कि उस दिन उस पात्र में चाहे चक्रवर्ती राजा के समस्त दल को जिमा दिया जावे तौ भी वह पात्र रीता न हो ॥

अक्षीण महानसिक—अक्षीण महानस ऋद्धि प्राप्त मुनि ॥

अक्षीणमहानसी—अक्षीणमहानस लब्धि॥

अक्षीण महालयऋद्धि—(अक्षीण महालयर्द्धि)—क्षेत्र ऋद्धि के दो भेदों में से एक का नाम; उग्र तप के प्रभाव से प्रकट हुई तपस्वियों की वह आत्म-शक्ति जिसके होने से इस ऋद्धि का धारक ऋषि जिस स्थान में स्थित हो वहाँ चाहे जितने प्राणी आजावें उन सर्व ही को बिना किसी रुकावट के स्थान मिल जाय ॥

अक्षीरमधुसर्पिष्क—दूध घी आदि गोरस का त्यागी साधु (अ. मा.) ॥

अक्षोभ—(१) क्षोभ रहित, चंचलता रहित, अक्षोभित, न घबड़ाया हुआ, क्षोभ का अभाव, शान्ति, दृढ़ता, हाथी बांधने का खूंटा।

(२) जम्बूद्वीप के 'भरत' और 'ऐरावत' क्षेत्रों में से हर एक के 'विजयार्द्ध' पर्वत की उत्तर श्रेणी की ६० नगरियों में से एक नगरी का नाम जो उस विजयार्द्ध के पश्चिम भाग से ४८ वीं और पूर्व भाग से १३ वीं है। देखो शब्द "विजयार्द्ध पर्वत" ॥

(३) श्वेताम्बराम्नायी अन्तगड़ सूत्र के प्रथम वर्ग के ८ वें अध्याय का नाम (अ. मा.) ॥

(४) पुष्करार्द्धद्वीप का पश्चिमदिशा में विद्युन्माली मेरु के दक्षिण भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्यखंड की वर्तमान काल में हुई चौबीसी के १६ वें तीर्थंकर का नाम। यह श्री अक्षोभ अक्षधर के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। कविवर वृन्दावन जी ने अपने ३० चौबीसी पाठ में इन्हें १८ वें तीर्थंकर १६ वें की जगह लिखा है। (आगे देखो शब्द "अढ़ाईद्वीप पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अक्षोभ्य—(१) अचंचल, स्थिर, गम्भीर।

(२) नवम नारायण श्रीकृष्ण चन्द्र के ज्येष्ठ पितृव्य और २२ वें तीर्थङ्कर श्री नेमनाथ (अरिष्ट नेमि) के लघु पितृव्य (चचा)—यह यादव वंशी शौर्यपुर नरेश 'अन्धकवृष्णि' की महारानी 'सुभद्रा' से उत्पन्न दश भाई थे—(१) समुद्र विजय (२) अक्षोभ (३) स्तिमित सागर (४) हिमवान (५) विजय (६) अचल (७) धारण (८) पूरण (९) अभिचन्द्र (१०) वसुदेव। इनमें से सब से बड़े भ्राता "समुद्र विजय" के पुत्र श्री नेमनाथ आदि और सब से छोटे वसुदेव के पुत्र श्री बलदेव और श्रीकृष्णचन्द्र आदि थे। इन दशों भाइयों की 'कुन्ती' और 'मद्री' यह दो बहनें थीं जो हस्तिनापुर नरेश "पाण्डु" को व्याही गई थीं जिन से युधिष्ठरादि ५ पाण्डव उत्पन्न हुए। इस 'अक्षोभ्य' के उसकी "धृति"

नामक धर्म्मपत्नी के उदर से (१) उद्धव, (२) वच (३) क्षुभितवारिधि (४) अम्भोधि (५) जलधि (६) वाम देव और (७) दृढ़ व्रत, यह सात पुत्र थे ॥

(देखो ग्रन्थ "बृ० वि० च०")

(३) अन्धकवृष्णि की दूसरी रानी धारणी का एक पुत्र भी "अक्षोभ्य" था जिसने श्रीनेमिनाथ स्वामी से दीक्षा लेकर और गुणरत्न नामक तप करके तथा १६ वर्ष तक इसी अवस्था में रहकर अन्त में १ मास का अनशन तप किया और शत्रुंजय पर्वत से निर्वाण पद पाया (अ. मा.) ॥

अक्षोहिणी—(अक्षौहिणी, अक्षौहिनी) एक बड़ी सैना जिसमें १० अनीकिनी दल हो अर्थात् जिस में २१८७० रथ, इतने ही हाथी, रथों से तिगुने ६५६१० घोड़े और पचगुने १०९३५० प्यादे (पैदल) हों।

नोट१.—हर रथ में एक रथसवार और एक रथवान (रथवाहक) और हर हाथी पर एक हाथी-सवार और एक हाथीवान होते हैं और हर घोड़े पर केवल एक घुड़-सवार होता है ॥

नोट २.—पूर्वकाल में सेना के निम्न लिखित ६ भेद माने जाते थे:—

(१) पत्ति—जिसमें एक रथ, एक हाथी, ३ घोड़े और ५ प्यादे हों।
(२) सेना—जिस में ३ पत्तिदल हों।
(३) सेनामुख—जिसमें ३ सेनादल हों।
(४) गुल्म—जिसमें ३ सेनामुखादल हों।
(५) वाहिनी—जिसमें ३ गुल्मदल हों।
(६) प्रतना—जिसमें ३ वाहिनीदल हों।
(७) चमू—जिसमें ३ प्रतनादल हों।
(८) अनीकिनी—जिसमें ३ चमूदल हों।
(९) अक्षोहिणी—जिसमें १० अनीकिनी दल हों ॥

अखय तीज—देखो शब्द "अक्षय तृतीया"

अखय बड़—देखो शब्द "अक्षयबड़"

अखाद्य—अभक्ष, न खाने योग्य; वह पदार्थ या वस्तु जिसके खाने से शारीरिक या मानसिक अथवा आत्मिक बल में कोई न कोई हानि पहुँचे, जो बुद्धि को मलीन करे या स्थूल बनावे अथवा चित्त में कोई विकार (क्रोध, मान, माया, लोभ आदि) उत्पन्न करे और जिसमें जीवघात अधिक हो ॥

नोट—ऐसे हानिकारक मुख्य पदार्थ निम्न लिखित २२ हैं:—

(१) इन्द्रोपल या ओला—जमे हुए जल के टुकड़े। यह जल-वर्षा के साथ साथ कभी कभी आकाश से पाषाण के टुकड़े जैसे बरसते हैं। यह गुण में अति शीत युक्त शुष्क हैं। दाँतों की जड़ों को बहुत हानिकारक और बातरोग उत्पादक हैं। शीत प्रकृति के मनुष्यों की अँतड़ियों को हानि पहुँचाते हैं ॥

(२) घोर बड़ा, या दही मठा मिश्रित द्विदल—जिस अन्न या अनाज की दो दाल होती हैं, जैसे चना, मटर, उड़द, मूँग, मोठ, मसूर, रमास, लोभिया, अरहड़ आदि, इन्हें द्विदल या विदल या दलहन कहते हैं। ऐसे कच्चे या पके या भुने या उबाले या पिसे किसी भी प्रकार के अन्न को कच्चे दही या तक्र, मट्ठा या छाछ के साथ खाने से मुँह की लार मिलते ही अगणित सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय जीव (जन्तु) उत्पन्न हो जाते हैं जो खाते खाते मुख ही में मरते और नवीन नवीन उत्पन्न होते रहते हैं जिससे न केवल हिंसा का ही दोष लगता है किन्तु बुद्धिबल और आत्म शक्ति को भी हानि पहुँचती है।

राई, नमक, हींग आदि मिश्रित जल में उड़द, मूँग आदि की पीठी के बड़े डाल कर जो एक दो दिन या इस से भी

अधिक समय तक तुर्शी या खटास उत्पन्न करने के लिये रख छोड़े जाते हैं उन्हें "घोर बड़ा" कहते हैं। जिस प्रकार जल मिश्रित अन्न के किसी भी कच्चे या अधपके पदार्थों में शीघ्र ही और पूर्ण पके पदार्थों में एक दो दिन या कुछ अधिक दिनों में असंख्य सूक्ष्म जीव पड़ कर और उन्हीं में मर कर अप्राकृतिक खटास उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार "घोर बड़ों" में भी अगणित जीव उत्पन्न हो कर और मर कर खटास आजाती है। यह खटास यद्यपि जिह्वालम्पटि मनुष्यों को स्वादिष्ट लगती है परन्तु वीर्य को तथा स्मरण-शक्ति को प्राकृतिक खटाई से भी सहस्रों गुणी हानि-कारक है। मस्तिष्क (दिमाग़, मग़ज़, भेजा) में खराब रतूबत पैदा करके बुद्धि बल और आत्म शक्तियों को हानि पहुँचाती है॥

इसी प्रकार आटे का ख़मीर उठा कर जो जलेबी या रोटी आदि पदार्थ बनाये जाते हैं वे बाह्य दृष्टि में यद्यपि शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचाते किन्तु कई अवस्थाओं में कुछ न कुछ लाभ भी पहुँचाते हैं तथापि आटे के सड़ने और इसी लिये आत्मोन्नति में बाधक होने से, यह पदार्थ भी "अभक्ष्य" हैं॥

(३) रात्रि भोजन—रात्रि में किसी भी प्रकार का अन्न जल आदि खाना पीना, या रात्रि में बनाया हुआ कोई भी भोज्य पदार्थ दिन में भक्षण करना "रात्रि भोजन" कहलाता है। दिन में भी जब कभी या जहाँ कहीं सूर्य का पर्याप्त उजाला न हो तथा प्रातः काल सूर्योदय से पीछे की दो घड़ी या कम से कम एक घड़ी के अन्दर और सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व की दो घड़ी या कम से कम एक घड़ी के अन्दर कोई वस्तु खाना पीना भी 'रात्रि-भोजन' की समान दूषित है। रात्रि-भोजन में जीव-हिंसा और मांस-भक्षण समान दोषों के अतिरिक्त निम्न लिखित कई एक अन्य दोष भी बहुत ही हानि-कारक हैं:—

१—वैद्यक सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है; क्योंकि

हर २४ घंटे में रात्रि को लगभग ७ या ८ घंटे सोना, खाना पच जाने से पहिले निद्रा न लेना और न काम सेवन या मैथुन कर्म करना (जिसके लिये लगभग ३ घंटे बिताने की आवश्यकता है), सायंकाल के पश्चात् अधिक रात तक न जागना अर्थात् शीघ्र सो जाना और प्रातःकाल सूर्योदय से कम से कम दो घड़ी पूर्व जागना, यह चारों बातें सदैव स्वास्थ्य ठीक रखने और निरोग रहने तथा बुद्धि को निर्मल और मन को प्रसन्न रखने के लिये वैद्यक शास्त्र का सर्वतन्त्र और सर्व मान्य सिद्धान्त मानी जाती हैं। रात्रि में खाने पीने वालों से इन चारों बहुमूल्य सिद्धान्तों का पालन कदापि नहीं हो सकता, कोई न कोई अवश्य तोड़ना ही पड़ेगा। और रात्रि भोजन का त्यागी इन चारों का पालन बड़ी सुगमता से कर सकता और पूर्ण स्वास्थ्य लाभ उठा सकता है॥

२—रात्रि के समय मुख्यतः वर्षाऋतु में बड़ी सावधानी और यत्न के साथ भी खाने पीने या भोजन बनाने में साधारण जीव जन्तुओं के अतिरिक्त किसी न किसी ऐसे विषैले कीड़े मकौड़े के पड़जाने की भी अधिक सम्भावना है जो खाने वाले के स्वास्थ्य को तुरन्त या शीघ्र ही बिगाड़ दे। जैसे

(क) मकड़ी पड़ जाने से रुधिर विकार उत्पन्न हो जाता है।

(ख) तेलनी मक्षिका पड़ जाने से वीर्य दूषित होकर प्रमेह रोग हो जाता है जो प्रायः असाध्य होता है।

(ग) एक प्रकार की चींटी या पिपीलिका

ऐसी विषैली होती है जिसके पड़जाने से कंठमाला का तीव्र रोग पैदा हो जाता है।

(घ) जूँ पड़जाने से पेट में जलोदर रोग हो जाता है।

(ङ) साधारण मक्षिका पड़ जाने से तुरन्त उलटी (कय या वमन) हो जाती है।

(च) बाभनी नामक कीड़ा कोढ़ उत्पन्न करता है।

(छ) शिर का बाल कंठरोग (गला बैठना आदि) उत्पन्न करता या वमन का कारण होता और शरीर के अभ्यन्तर अंगों को हानि पहुँचाता है।

(ज) बिच्छू फेफड़ों को हानि पहुँचाता है।

(झ) बीर बहोटी नामक बरसाती रक्तवर्ण कीड़ा गर्भपात करता है।

(ञ) कंखजूरा शीघ्र प्राण नाशक है।

(ट) खटमल मतली रोगोत्पादक है।

(ठ) झींगुर उदर पीड़ा उत्पन्न करता है।

(ड) डांस मच्छर पिस्सू और पतङ्ग (परवाना) आदि पाचन शक्ति को बिगाड़ते हैं तथा कई प्रकार के उदरविकार उत्पन्न करते हैं।

(ढ) दीपक के उजाले पर आने वाले कीड़ों में से कई जाति के कीड़े ऐसे भी होते हैं जो भोज्य पदार्थों में पड़कर स्मरण शक्ति को बिगाड़ते और बुद्धि को मलीन करते हैं।

(ण) कई प्रकार के वबाई रोगोत्पादक भी बहुधा किसी न किसी प्रकार के कीड़े ही होते हैं।

इत्यादि, इत्यादि

(४) बहुबीजा - जिस फल के एक ही कोष्ठ में या कई कोष्ठ हों तो प्रत्येक कोष्ठ में गूदे से अलिप्त कई कई बीज हों और जो उस फल को तोड़ने पर स्वयम् अलग गिर जायें, जैसे अहिफेन (अफ़ीम या अफ़यून) का फल पोस्ता, जिसके दानों या बीजों को खश-खश या खशखश बोलते हैं, अरंड खरबूज़ा या अरंडकाकड़ी, तिजारा, इत्यादि फल 'बहुबीजा' कहलाते हैं। इस प्रकार के सर्व ही फल मानसिक शक्तियों को बहुत ही हानिकारक हैं॥

(५) वृन्ताक या बैंगन (भट्टा या भाँटा)– यह एक प्रसिद्ध फल है। यह पित्तबर्द्धक और बातरोगोत्पादक है। इसका शिर घिस-कर बवासीर के मस्सों पर लगाना यद्यपि लाभदायक है परन्तु इसका खाना बवासीर रोगोत्पादक और बवासीर के रोगी तथा पित्तप्रकृति वाले को अधिक हानिकारक है। उदरशूल (वातशूल, पित्तशूल या दर्द कूलंज या कालिक पेन Colic pain) का कारण है। आत्मोन्नति में बाधक और बल मानसिकबल को हानिकारक है॥

(६) अथान (अथाना, सधान, संधाना, अचार)—आम, नींबू, करोंदा, आमला, करेला आदि कच्चे या उबाले पदार्थों में यथा विधि नमक, मिर्च, राई, तैल आदि डालकर जिन्हें तैयार करते और कई दिनों, महीनों या वर्षों तक रख छोड़ते और खाते रहते हैं उन्हें 'अथाना' या 'अचार' कहते हैं। किसी किसी की सम्मति में सर्व प्रकार के मुरब्बे और गुलकन्द, शर्बत आदि भी 'अथाना' ही हैं। यदि यह पदार्थ तईयारी के दिन ही ताज़े ताज़े खाये जावें तो इनकी गणना 'अथाने' में नहीं है। इन सर्व ही में शीघ्र ही त्रस जीवोत्पत्ति का प्रारम्भ हो जाता है। और किसी किसी में तो मुख्यत: जिनमें पानी का अंश अधिक होता है तईयारी से २४ घंटे पीछे से या तईयारी के दिन ही सूर्यास्त के पश्चात् से सूक्ष्म त्रस जीवोत्पत्ति होने लगती है जिसकी संख्या कुछ ही दिन में किसी किसी में तो इतनी बढ़ जाती है कि यदि अथाने को हिला जुलाकर उलट पलट न किया जाय तो श्वेत या पीत फूलन या जाले

के से आकार में प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने लगती है जो यथार्थ में निरन्तर जीवन मरण करते रहने वाले उन्हीं अगणित सूक्ष्म जीवों के कलेवरों का पिंड होती है। इसके अतिरिक्त लगभग सर्व ही प्रकार के अथाने, मुख्यत: जो तैल से तईयार किये जाते हैं और जिनमें खटास होती है, वीर्य को कुछ न कुछ दूषित करते, बुद्धि और स्मरण शक्ति को हानि पहुँचाते और मस्तिष्क को बलहीन करते हैं। इसी लिये आत्मोन्नति में भी बाधक हैं। इन्हें जितना अधिक सेवन किया जाता है उतना ही यह मनुष्य को अधिक जिह्वा लम्पटी और थोड़ी असावधानी से ही शरीराङ्गों को शीघ्र रोग ग्रहण कर लेने के योग्य भी बना देते हैं ॥

(७-११) रक्तपदा या यक्षावास अर्थात् वड़-फल या बड़बट्टा; अश्वत्थ फल या कुंजराशन-फल अर्थात् पिप्पल-फल या पीपली; यक्षांग या हेमदुग्ध अर्थात् ऊमर या घटुम्बर या जन्तुफल या गूलर; वनप्रियाल या मलायु या फल्गु अर्थात् जंगली अंजीर या कठिया गूलर या कठूमर; और प्लक्ष या ग र्भांडक या पर्कटी फल अर्थात् पिलखन या पाकर या पकरिया फल; इन पांचों ही वृक्षों के फल काठ फोड़कर बिना फूल आये उत्पन्न होते हैं और इन सर्व ही में प्रत्यक्ष रूप से त्रस जीवों की उत्पत्ति अधिक होती है। यद्यपि बिना फूल आये काठ फोड़कर निकलने वाले सर्व ही फल बुद्धि को कुछ न कुछ स्थूल करते और मस्तिष्क को हानि पहुँचा कर आत्मोन्नति में बाधा डालते हैं तथापि यह पांचों अधिक हानिकारक होने से २२ मुख्य अभक्ष्य पदार्थों में गिनाये गये हैं ॥

(१२) अजान फल—जिसके नाम और गुण आदि से हम अनभिज्ञ हैं तथा जिसे हमने अन्य मनुष्यों को खाता हुआ भी कभी नहीं देखा हो उसे 'अजानफल' कहते हैं। इसे अभक्ष्य में इस लिये गिनाया है कि इस के खाने में हानि पहुँचने की सम्भावना है ॥

(१३) कन्दमूल—आलू, कचालू, रतालू, पिंडालू, कसेरू, अदरक, हलदी, अरुई, या अरवी (घुईयाँ), शकरक़न्दी, ज़मींकन्द, इत्यादि जिनका कंद या पिंड ही बीज है और जो पृथ्वी के अभ्यन्तर ही उत्पन्न होते और बढ़ते हैं उन्हें "कन्द" कहते हैं। और मूली, गाजर, शलजम, प्याज़, गांठ-गोभी, इत्यादि जिनका बीज होता है और जिन पर फूल लगकर फली लगती हैं और प्राय: जिनकी जड़ें ही खाने में आती हैं उन्हें "मूल" कहते हैं। यह कन्द और मूल दोनों ही प्राय: कामोद्दीपन करते और विषयलम्पटता को बढ़ाकर आत्मोन्नति और धार्मिक कार्यों में बाधा डालते हैं। इन में सूक्ष्म निगोद जीवों की उत्पत्ति भी अधिक होती है ॥

(१४) मृत्तिका (मिट्टी) आँतों में कीड़े उत्पन्न करती और मस्तिष्क को निर्बल बनाती है ॥

(१५) विष या ज़हर—यह साधारणत: प्राणान्त करने वाला पदार्थ है। और यदि इसे वैद्यक शास्त्र के नियमानुकूल यथा विधि भी भक्षण किया जाय तो कामोद्दीपन करता और विषय लम्पटी बनाता है। अत: आत्मोन्नति के इच्छुकों को यह त्याज्य ही है ॥

(१६) पिशित या पल या पलल या आमिष अर्थात् मांस—त्रस जीवों अर्थात् द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सर्व जीवों के कलेवर की "माँस" संज्ञा है। इसके भक्षण में निम्नलिखित बहुत से दूषण हैं:—

१. त्रस जीव मुख्यत: पंचेन्द्रिय जीव घात, जो स्वयम् एक महा पाप है।

२. प्राणान्त होते ही से माँस सड़ने लगता है अर्थात् उसमें प्रति समय अगणित त्रस जीव उत्पन्न हो हो कर मरते रहते हैं जिससे

उस मांस में प्रति समय दुर्गन्धि बढ़ती ही जाती है। जिह्वा लम्पटी और मांस लोलुपी इसकी दुर्गन्धि दूर करने और स्वादिष्ट बनाने के लिये इसमें नमक मिर्च मसाला आदि डालकर पकाकर या भूनकर खाते हैं तथापि जीवोत्पत्तिमरण इसमें प्रत्येक अवस्था में बना ही रहता है जिससे खाने वाले को अगणित त्रस हिंसा का महापाप लगता है।

३. यदि किसी पंचेन्द्रिय प्राणी को बिना मारे स्वयम् प्राणान्त हुए प्राणी का मांस ग्रहण किया जाय तो यह माँस और भी अधिक शीघ्रता से सड़ता है और यद्यपि जिस प्राणी का माँस ग्रहण किया गया है उसके मारने का दोष तो नहीं लगता है तथापि इसके भक्षण में अनन्तानन्त त्रस प्राणियों के घात का और भी अधिक पाप है।

४. हर प्रकार का मांस विषय वासनाओं को बढ़ाता, दयालुता को हरता, क्रोधादि कषायों की ओर आत्मा को आकर्षित करता और इस प्रकार आत्मोन्नति के वास्तविक मार्ग से सर्वथा हटा देता है॥

(१७) सारघ या क्षौद्र अर्थात् माक्षिक या मधु (शहद)—मुमाखियाँ जो कई प्रकार के फूलों का रस चूस कर लातीं और लाकर अपने छत्ते में उगल उगल कर संग्रह करती हैं उसे 'मधु कहते हैं। यह निम्न लिखित कारणों से अभक्ष्य है:—

१. मक्खियों के मुँह का उगाल है।

२. लाखों मक्खियों की बड़े कष्ट से संग्रह की हुई जान से अधिक प्रिय अमूल्य सम्पत्ति है जिसे बलात् छीन लेना घोर पाप है जिसके लिये धर्म ग्रन्थों का वचन है कि एक मधु छत्ते को तोड़ने या उसमें से चुआ चुआ कर मधु ग्रहण कर लेने का पाप एक सौ ग्राम फूंक देने के पाप से भी कहीं अधिक है।

३. मक्खियों को उड़ाकर छत्ता तोड़ने और फिर उसे निचोड़ कर मधु प्राप्त करने में मक्खियों के सर्व अंडे बच्चे और कुछ न कुछ मक्खियां भी उसी के साथ निचोड़ ली जाती हैं जिससे उनके शरीर का मांस और रुधिर भी मधु में सम्मिलत हो जाता है।

४. छत्ता तोड़ कर लाने और लाकर दूकानदारों के हाथ मधु बेचने वाले मनुष्य प्रायः निर्दय चित्त और ऐसी नीच जाति के मनुष्य होते हैं जिनके हाथ का द्रव पदार्थ उच्च जाति के मनुष्य खाना अस्वीकृत करते हैं।

५. उगाल होने के कारण मुख की लार उस में मिल जाने और सर्व अण्डों बच्चों व कुछ मक्खियों का मांस रुधिर युक्त कलेवर सम्मिलत हो जाने से उसमें उसी जाति के मधु के वर्ण सदृश अगणित सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है और इस लिए मांस समान दूषित है।

६. कुछ रोगों में लाभ दायक होने पर भी यह वात-रोगोत्पादक और मस्तिष्क को हानिकारक है। कभी कभी मस्तक शूल भी उत्पन्न करता है।

७. विषैली मक्खियों का या विषैले फूलों से लाये हुए रस का मधु (जिसका पहिचानना कठिन है) लाभ के स्थान में बहुत हानि भी पहुंचाता है।

८. कोई कोई प्रकार का मधु ऐसा भी होता है जिसे अनजाने खा लेने से कुछ बेहोशी या नशा उत्पन्न हो जाती और ठंढा पसीना शरीर पर आजाता है। बुद्धि भी कुछ नष्ट सी हो जाती है॥

(१८) हैयङ्गवीन या सरज या मन्थन अर्थात् नवनीत (नयनी घी या मक्खन)—ताज़ा मक्खन कामोद्दीपक, मन्दाग्नि कारक और चर्बी या मज्जा वर्द्धक है जिससे अनावश्यक मुटापा उत्पन्न होकर शरीर भारी

और धर्म सेवन में बाधा डालने वाला हो जाता है। मस्तिष्क में स्थूलता आजाने से आत्मविचार में रुकावट पड़ जाती है। कच्चे दुग्ध या दही में से निकालने के दो घड़ी पश्चात् से इसमें सूक्ष्म त्रस जीव अगणित उत्पन्न हो हो कर मरने लगते हैं। इसी लिये कुछ घंटों में या एक दो दिन में ही जब अनन्तानन्त जीवों का कलेवर उस में संग्रहीत हो जाता है तो प्रत्यक्ष उस में दुर्गन्धि आने लगती है। वर्ण और स्वाद भी बहुत कुछ बदल जाता है। अतः इसे खाने में मांस समान दोष उत्पन्न होजाते हैं।

(१९) वारुणी या शुण्डा अर्थात् मद्य या सुरा (मदिरा या शराब)—यह प्रत्यक्ष रूप से अगणित जीवों के कलेवरों के रस-युक्त, दुर्गन्धित, बुद्धि-विनाशक, स्मरणशक्ति-घातक, कामोद्दीपक, विषयवासनावर्द्धक और परमार्थबाधक हैं।

(२०) अति तुच्छ फल (अपनी मर्यादा से बहुत छोटा फल जिसमें अभी बढ़ने की शक्ति विद्यमान है)—यह साधारणनिगोद राशि का घर होने से मस्तिष्क को हानिकारक, मनोविकारवर्द्धक और आत्मोन्नति में बाधक होते हैं।

(२१) प्रालेय या तुहिन अर्थात् तुषार या हिम (पाला या बर्फ़)—यह इन्द्रोपल या ओले की समान दूषित हैं।

(२२) चलितरस—मर्यादाबाह्य होजाने से या किसी प्रकार की असावधानी आदि से मर्यादा से पूर्व भी जिन पदार्थों का स्वाद बिगड़ जाता है उन्हें 'चलितरस' कहते हैं। ऐसे खाने पीने के सर्व ही पदार्थों में सूक्ष्मत्रस जीवों की उत्पत्ति और मरण का प्रारम्भ हो जाता है जिससे शीघ्र ही उनमें खटास, जाला, फूली, तार बंधना, रंग बदल जाना, इत्यादि किसी न किसी एक या अधिक प्रकार का परिवर्तन हो जाता है। ऐसे पदार्थ शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की अनेक हानियां पहुँचाने से सांसारिक व पारमार्थिक कार्यों में बाधा डालते हैं।

नोट २—इन २२ अभक्ष्य पदार्थों के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिये देखो शब्द "अभक्ष्य"॥

अखिलविद्याजलनिधि—विद्यारूपी जल का पूर्ण समुद्र; यह उपाधि किसी असाधारण विद्वान कवि को राजा की ओर से दी जाती है। 'खगेन्द्रमणिदर्पण' नामक वैद्यक ग्रन्थ के रचयिता जैन महाकवि 'मंगराज प्रथम' को यह श्रेष्ठ उपाधि विजय नगराधीश "हरिहर" से मिली थी। यह कर्णाटक देश निवासी कवि विक्रम की छटी शताब्दी के सुप्रसिद्ध आचार्य "श्रीपूज्यपाद यतीन्द्र" का, जो तत्वार्थ-सूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका के कर्त्ता हैं, एक शिष्य था। इसे सुललितकविपिक-वसन्त, विधुवंशललाम, कविजनैकमित्र, अगणितगुणनिलय, पंचगुरुपदाम्बुज भृंग, इत्यादि अन्यान्य उपाधियां भी प्राप्त थीं। यह कर्णाटक देशस्थ देवलगे प्रान्त के मुख्य पत्तन "मुगुलेयपुर" का स्वामी था। इस की धर्मपत्नी का नाम कामलता था जिस के उदर से तीन पुत्र जन्मे थे। (देखो ग्रन्थ 'बृ० वि० च०' में शब्द 'मंगराज')

अगडदत्त—शंखपुर नरेश "सुन्दर" की सुलसा रानी का एक पुत्र जो अपनी स्त्री का दुश्चरित्र देख कर सांसारिक विषय भोगों से विरक्त हो गया था। (अ० मा०)॥

अगणप्रतिबद्ध—अन्तरङ्ग तप के ६ भेदों में से 'प्रायश्चित' नामक प्रथम भेद का एक उपभेद अर्थात् वह प्रायश्चित जिसके अनुसार किसी अपराध के दंड में गुरु की आज्ञानुसार कुछ नियत काल तक मुनि को संघ से अलग रह कर किसी ऐसे देश के बन में श्रद्धा पूर्वक मौन सहित तप करना पड़े जहां के मनुष्य धर्म से अनभिज्ञ हों।

नोट—प्रायश्चित तपके दश भेद यह हैं:—(१) आलोचना (२) प्रतिक्रमण (३) आलोचना-प्रतिक्रमण (४) विवेक (५) व्युत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) मूल या उपस्थापना या छेदोपस्थापना (९) परिहार (१०) श्रद्धान ॥

इन दश में से अन्तिम भेद 'श्रद्धान' नामक प्रायश्चित को अनावश्यक जानकर किसी किसी आचार्य ने प्रायश्चित तप के केवल ९ ही भेद बताये हैं ॥

इन दश में से ९ वें 'परिहार' प्रायश्चित के (१) गण प्रतिबद्ध और (२) अगणप्रतिबद्ध, यह २ भेद हैं ॥

किसी किसी आचार्य ने इस परिहार प्रायश्चित के (१) अनुपस्थापन और (२) पारंचिक, यह दो भेद करके "अनुपस्थापन" के भी दो भेद (१) निज गुणानुपस्थापन और (२) परगुणानुपस्थापन किये हैं ॥ (उपर्युक्त सर्व भेदों का स्वरूप आदि यथास्थान देखें) ॥

अगणितगुणनिलय—अपार गुणों का स्थान; यह एक विरदावली जैन महा कवि "मंगराज प्रथम" की थी (देखो शब्द "अखिलविद्याजलनिधि" और "मंगराज") ॥

अगद—रोग रहित, निरोगी, स्वस्थ्य; रोग दूर करने वाली वस्तु अर्थात् औषधि; अकथक मुँह चुप्पा; दैवशक्ति सम्पन्न रत्न-विशेष; नदी विशेष ॥

अगद ऋद्धि—औषध ऋद्धि का दूसरा नाम। वह ऋद्धि (आत्मशक्ति) जिस के प्राप्त होजाने पर इस ऋद्धि का स्वामी ऋषि अपने मलादि तक से रोगियों के असाध्य रोग तक को भी दूर कर सकता है। अथवा उस ऋषि के शरीर का कोई मैल आदि या उसके शरीर से स्पर्श हुई वायु या जलादि भी सर्व प्रकार के कठिन से कठिन शारीरिक रोगों को दूर करसकें ॥

इस ऋद्धि के ८ भेद हैं—(१) आमर्श (२) क्ष्वेल (३) जल्ल (४) मल (५) विट (६) सर्वौषधि (७) आस्याविष (८) दृष्टिविष। (देखो शब्द "अक्षीणऋद्धि" का नोट २)

अगमिक—वह श्रुत जिसके पाठ, गाथा आदि परस्पर समान न हों; आचारांगादि कालिकश्रुत। (अ० मा० अगमिय) ॥

अगस्ति (अगत्थि, अगस्त्य)—(१) ८८ ग्रहों में से ४५ वें 'रुद्र' नामक ग्रह का नाम ॥

(२) एक तारे का नाम जो आश्विन मास के प्रारम्भ में उदय होता है।

(३) एक पौराणिक ऋषि का नाम जो 'कुम्भज' ऋषि के नाम से भी प्रसिद्ध थे। यह 'मित्रावरुण' के पुत्र थे। इनका पहिला नाम "मान" था। दक्षिण भारत के एक पर्वत की चोटी का नाम 'अगस्तिकूट' इन ही के नाम से प्रसिद्ध है जिससे "ताम्रपर्णी" नदी निकलती है ॥

(४) अगस्त्य का पुत्र; एक वृक्ष, मौलसिरी; दक्षिण दिशा ॥

अगाढ़—अस्थिर, स्थिर न रहने वाला, चलायमान, अदृढ़, दृढ़ता रहित ॥

अगाढ़ सम्यग्दर्शन—वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के ३ भेदों (१) चल-सम्यग्दर्शन (२) मलिन सम्यग्दर्शन (३) अगाढ़ सम्यग्दर्शन में से तीसरे भेद का नाम, जिसमें आत्मा के परिणाम या भाव अकम्प न रह कर सांसारिक पदार्थों में ममत्व, परत्व रूप भ्रम का कुछ न कुछ सद्भाव हो ॥

नोट—सम्यग्दर्शन के मूल भेद ३ हैं (१) औपशमिक (२) क्षायिक और (३) क्षायोपशमिक। इन में से तीसरे का एक भेद उपर्युक्त "अगाढ़ सम्यग्दर्शन" है। इस का स्थिति-काल जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त (दो घड़ी

से कम) और उत्कृष्ट ६६ सागरोपम है। जिस व्यक्ति को जिस प्रकार का सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है उसे उसी प्रकार का "सम्यग्दृष्टी" या "सम्यक्ती" या "तत्त्वज्ञानी" या "आत्मज्ञानी" या "मोक्षमार्गी" कहते हैं। (देखो शब्द "अकस्मात् भय" के नोट १, २, ३, और पृ. १३, १४ शब्द "सम्यग्दर्शन" आदि) ॥

अगार—आगार, सदन, गृह, घर, मकान; गृहस्थाश्रम; श्रावकधर्म; बन्धन रहित, मुक्त, विवन्ध रोग, समुद्र ॥

अगारी (अगारि)—गृहस्थी, घर में रहने या बसने वाला, कुटुम्ब परिवार सहित रहन सहन करने वाला; व्रती मनुष्य के दो भेदों अर्थात् 'अगारी' और 'अनगारी' अथवा 'आगारी' और 'अनागारी' में से एक पहिले भेद का नाम; सप्त व्यसन त्यागी और अष्ट मूलगुणधारी गृहस्थी; अणुव्रती गृहस्थ, देशव्रती श्रावक, वह गृहस्थ जिसने सम्यग्दर्शन पूर्वक ५ पापों अर्थात् हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन या अब्रह्म, और परिग्रह का एकदेश (अपूर्ण) त्याग किया हो; वह गृहस्थ जो त्रिशल्यरहित अर्थात् माया, मिथ्या, निदान रहित ५ अणुव्रत (अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, और परिग्रह परिमाणाणुव्रत) का धारक हो, तथा जो सप्तशील अर्थात् ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत को भी पञ्चाणुव्रत की रक्षार्थ पालता हो और अन्त में सल्लेखना अर्थात् समाधि मरण सहित शरीर छोड़े। इन सर्व व्रतों को अतिचार रहित पालन करने वाले गृहस्थी को पूर्ण सागारधर्मी अर्थात् सागार धर्म को पूर्णतयः पालन करने वाला श्रावक कहते हैं ॥

नोट १—ऐसे श्रावक के नीचे लिखे १४ लक्षण या गुण हैं :—

(१) न्यायोपार्जित-धन-ग्राही—न्याय पूर्वक धन कमा कर भोगने वाला।

(२) सद्गुण-गुरुपूजक—सदाचार, स्वपरोपकार, दया, शील, क्षमा आदि सद्गुणों और उनके धारक पुरुषों तथा माता पिता आदि में भक्ति रखने वाला।

(३) सद्वी—सत्य, मधुर और हित मित बचन बोलने वाला ॥

(४) त्रिवर्गसाधक—धर्म, अर्थ, काम, इन तीनों पुरुषार्थों को परस्पर विरोध रहित धर्म की मुख्यता पूर्वक साधन करने वाला ॥

(५) गृहिणीस्थानालयी—सुशीलापतिव्रता स्त्री सहित ऐसे नगर, ग्राम, घर में निवास करने वाला गृहस्थी जहां त्रिवर्ग साधन में किसी प्रकार की बाधा न पड़े ॥

(६) ह्रीमय—लज्जावन्त, निर्लज्जता रहित।

(७) युक्ताहारविहारी—जिस का खान पान, गमनागमन, बैठ उठ आदि सर्व क्रिया योग्य और शास्त्रानुकूल हों ॥

(८) सुसंगी—सदाचारी सज्जन पुरुषों की संगति में रहने वाला और कुसंग त्यागी ॥

(९) प्राज्ञ—बुद्धिमानी से हर कार्य के गुणावगुण विचार कर दूर दर्शिता पूर्वक काम करने वाला ॥

(१०) कृतज्ञ—पराये किये उपकार को कभी न भूलने वाला और सदा प्रति उपकार का अभिलाषी ॥

(११) वशी (जितेन्द्रिय)—इन्द्रियाधीन न रहकर मन को वश में रखने वाला ॥

(१२) धर्मविधि-श्रोता—धर्म्मसाधन के कारणों को सदा श्रवण करने वाला ॥

(१३) दयालु दया को धर्म का मूल जान कर दुःखी, दरिद्री, दीनों पर दया भाव रखने वाला ॥

(१४) अघभी (पाप भीरु)—दुराचरणों से सदा भय भीत रहने वाला ॥

इन १४ लक्षणों या गुणों को धारण करने वाला पुरुष पूर्ण सागारधर्मी (अगारी या आगारी) बनने के योग्य होता है। ऐसा पुरुष उपर्युक्त गुणों की रक्षार्थ निम्न लिखित नियमों

का यथा शक्ति पालन करता, आदर्शआगारी बनने के लिये प्रयत्न करता और अनागारी बनने के लिये अभ्यास बढ़ाता है:—

(१) उपर्युक्त ५ अनुव्रत (अणुव्रत), ७ शील (३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत)और अन्त-सल्लेखनामरण, इन १३ में से प्रत्येक के ५, ५ अतिचार दोषों को भी बचाता और ५, ५ भावनाओं को ध्यान में रखता है।

(२) सप्त-दुर्व्यसन-त्याग, अष्टमूलगुण ग्रहण और त्रिशल्य-वर्जन को भी अतीचार दोषों से बचाकर पालन करने में प्रयत्न शील रहता है।

(३) २२ प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण से बचता है॥

(४) गृहस्थ धर्मसम्बन्धी ५३ क्रियाओं को यथा योग्य और यथा आवश्यक अपने पद के अनुकूल पालता है।

(५) गर्भाधानादि २६ संस्कारों को शास्त्रानुकूल करने कराने का उद्यम रखता है।

(६) सम्यक्त को बिगाड़ने या मलीन करने वाले ५० दोषों को बचाता और ६३ गुणों को अवधारण करता है।

(७) श्रावक के २१ उत्तर गुणों का पालक और १७ नियमों का धारक बनता है॥

(८) ७ अवसरों पर मौन धारण करता और भोजन के समय के ४ प्रकार के ४४ अन्तरायों को बचाता है॥

(९) पंचशून अर्थात् चूल्हा, चौका, चक्की, बुहारी और ओखली सम्बन्धी नित्य प्रति की घर की क्रियाएं बड़ी शुद्धता से यथाविधि कराता और ऊपर से कोई जीव जन्तु न पड़े इस अभिप्राय से पूजनस्थान आदि ११ स्थानों में चन्दोवे लगाता है॥

(१०) अपनी दिनचर्या और रात्रिचर्या शास्त्रानुकूल बनाता है॥

(११) दिनभर के किये कार्यों की सम्हाल और उनकी आलोचना व प्रतिक्रमण रात्रि को सोते समय और रात्रि के कार्यों की सम्हाल और उनकी आलोचना व प्रतिक्रमण प्रातःकाल जागते समय नित्य प्रति करता और यथा आवश्यक दोषों का प्रायश्चित्त भी लेता है॥

ऐसा योग्य पुरुष यदि संसारदेह-भोगादि से विरक्त होकर मोक्ष-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा रखता हो तो अवसर पाकर यथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव या तो तुरन्त अनागारी (महाव्रती मुनि) बन जाता है या अपनी योग्यता व शक्ति अनुसार श्रावकधर्म की निम्न लिखित ११ प्रतिमाओं (प्रतिज्ञा, कक्षा या श्रेणी) में से कोई एक धारण करके उदासीन वृत्ति के साथ ऊपर को चढ़ता हुआ यथा अवसर मुनिव्रत धारण करलेता है। वे ११ प्रतिमा यह हैं:—(१) दर्शन (२) व्रत (३) सामायिक (४) प्रोषधोपवास (५) सचित्तत्याग (६) रात्रि भोजन त्याग (७) ब्रह्मचर्य (८) आरंभ त्याग (९) परिग्रह त्याग (१०) अनुमति त्याग (११) उद्दिष्ट त्याग॥

नोट :—२

३ गुणव्रत—दिग्व्रत, अनर्थदंडत्याग व्रत, और भोगोपभोगपरिमाण व्रत॥

४ शिक्षाव्रत—देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथि संविभाग॥

७ दुर्व्यसन—जुआ, चोरी, वेश्या गमन, मद्यपान, मांसभक्षण, पर-स्त्री-रमण और मृगया॥

८ मूलगुण—५ उदम्बर फल और ३ मकार त्याग अर्थात् बड़ फल, पीपल फल, ऊमर फल (गूलर)(कठूमर फल, जंगली अंजीर), पाकर फल (पिलखन या पकरिया), मधु, मांस, मद्य, इन अष्ट वस्तुओं के खाने का त्याग अथवा (१) पञ्च उदम्बर फल त्याग (२) मधु त्याग (३) मांस त्याग (४) मद्य त्याग (५) देव बन्दना (६) जीवदया (७) दुहरे उज्वल निर्मल वस्त्र से छना जलपान (८) रात्रि भोजन त्याग॥

३ शल्य—माया, मिथ्या, निदान॥

२२ अभक्ष्य—ओला, घोरबड़ा (द्विदल), निश भोजन, बहुबीजा, बैंगन, सन्धान

(अचार), बड़ फल, पीपल फल, ऊमर, कठूमर, पाकर फल, अज्ञान फल, कन्द मूल, मट्टी, विष, मांस, मधु, मद्य, माखन, अति तुच्छ फल, तुषार, चलित रस ॥

५३ क्रिया—उपर्युक्त १२ व्रत (५अणुव्रत, ३गुणव्रत.४ शिक्षाव्रत),८मूलगुण, ११ प्रतिमा (प्रतिज्ञा), १२ तप (अनशन, ऊनोदर, व्रत-परिसंख्यान,रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित, विनय, वैयाव्रत, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान), ४ दान (ज्ञान दान, अभय दान, आहार दान औषधि दान), ३ रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र), रात्रि भोजन त्याग, शुद्ध जल पान, और समता भाव ॥ (आगे देखो शब्द "अग्रनिवृति क्रिया" पृ० ७० और "क्रिया") ॥

२६ संस्कार—गर्भाधान, प्रीति क्रिया, सुप्रीति क्रिया, धृति क्रिया, मोद क्रिया, प्रियोद्भव क्रिया, नाम कर्म, बहिर्यान क्रिया, निषद्या क्रिया, अन्नप्राशन क्रिया, व्युष्टि क्रिया अथवा वर्षवर्द्धन क्रिया, चौल क्रिया अथवा केशवाय क्रिया, लिपिसंख्यान क्रिया, उपनीति क्रिया, व्रतचर्या, व्रतावतार क्रिया, विवाह क्रिया, वर्णलाभ क्रिया, कुलचर्या क्रिया, गृहीसिता क्रिया, प्रशान्तता क्रिया, गृहत्याग क्रिया, दीक्षाद्य क्रिया, जिनरूपता क्रिया, मौनाध्ययन व नत्व क्रिया, समाधि-मरण या मरण की क्रिया ।

५० दोष सम्यक्त को मलीन करने वाले और सम्यक्ती के ६३ गुण (देखो शब्द "अक-स्मात् भय" के नोट १, २, ३, पृ० १३,१४) ॥

२१ उत्तरगुण श्रावक के—लज्जावन्त, दयावन्त, प्रसन्नचित्त, प्रतीतिवन्त, पर दोषा-च्छादक, परोपकारी, सौम्यदृष्टि, गुणग्राही, मिष्टवादी, दीर्घविचारी, दानी, शीलवन्त, कृतज्ञ, तत्त्वज्ञ, धर्मज्ञ, मिथ्यात्व त्यागी, संतोषी, स्याद्वाद भाषी, अभक्ष्य त्यागी, षटकर्म प्रवीण ॥

१७ नित्यनियम श्रावक के—षटरस भोजन, कुमकुमादि विलेपन, पुष्पमाला, ताम्बूल, गीतश्रवण, नृत्यावलोकन, मैथुन, स्नान, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शयनासन, सचित वस्तु, दिशा गमन, औषध, गृहारम्भ, और संग्राम, इन १७ का यथाआवश्यक और यथाशक्ति नित्यप्रति परिमाण स्थिर करना ॥

७ मौन—देवपूजा, सामयिक, भोजन, वमन, स्नान, मैथुन, मलमूत्रत्याग, यह, अवसर मौन के हैं ।

४ प्रकार के ४४ अन्तराय भोजन समय के—

(१) ८ दृष्टि सम्बन्धी । जैसे, हाड़, मांस, रक्त, गीला चाम, विष्ठा, जीवहिंसा इत्यादि दृष्टिगोचर होने पर ॥

(२) २० स्पर्श सम्बन्धी । जैसे बिल्ली, कुत्ता आदि पञ्चेन्द्रियपशु, चाम, ऋतुवती स्त्री, नीच स्त्री पुरुष, रोम, नख, पक्ष (पंख) आदि के भोजन से छू जाने पर ॥

(३) १० श्रवण सम्बन्धी । जैसे देवमूर्ति भङ्ग होना, गुरु पर कष्ट या धर्म कार्य में विघ्न, हिंसक क्रूर वचन, रोने पीटने के शब्द, अग्निदाह या अन्यान्य उत्पात सूचक वचन सुनने पर ।

(४) ६ मनोविकार या स्मरण सम्बंधी । मांसादि ग्लानि दिलाने वाले पदार्थों के स्मरणही आनेपर या भूलसेकोई त्यागी हुई वस्तु खाने पर स्मरण आते ही । इत्यादि ॥

११ स्थान चन्दोवा लगाने के—(१) पूजन स्थान (२) सामायिक स्थान (३) स्वा-ध्याय या धर्म चर्चा स्थान (४) चूल्हा (५) चक्की (६) पन्हेड़ा (७) उखली (८) भोजन स्थान (९) शय्या (१०) आटा छानने का स्थान (११) व्यापार-स्थान ॥

नोट३—उपर्युक्त ११ प्रतिमा व १४ लक्षण, ५३ क्रिया आदि का अलग अलग स्वरूप यथा स्थान देखें ।

अगीत, अगीतार्थ—शास्त्रज्ञान रहित, जिनवाणी के अर्थ या रहस्य को न समझने वाला (अ० मा० अगीय, अगीयत्थ) ॥

अगुप्त—त्रिगुप्ति रहित; मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति, इन तीनों या कोई एक गुप्ति रहित पुरुष, मन वचन काय को दोषों से रक्षित या अपने वश में न रखने वाला, अरक्षित; जो गुप्त अर्थात् छिपा हुआ न हो, प्रत्यक्ष ॥

अगुप्तभय—प्रत्यक्ष भय; प्रकट भय; वह भय जो गुप्त अर्थात् छिपा न हो; सात प्रकारके भयों में से एक छठे प्रकार के भय का नाम जिसमें धन माल के लुटने या चोरी जाने आदि का भय रहता है। (पीछे देखो शब्द "अकस्मात भय" नोटों सहित पृ० १३) ॥

अगुप्ति—त्रिगुप्ति रहित पना, त्रिगुप्ति का अभाव ॥

अगुरु—गुरुतारहित, भारीपनरहित हलका गौरवशून्य; गुरुरहित, बिन उपदेशक; अगरु चन्दन, कालागरु; शीशम; लघुवर्ण, वह वर्ण या अक्षर जो अनुस्वार विसर्ग या दीर्घस्वर से युक्त, अथवा संयुक्त वर्ण से पूर्व न हो।

अगुरुक—अगुरुलघु नामकर्म (अ० मा० अगुरुअ) ॥

अगुरुलघु—(१) गुरुता और लघुता रहित न भारी न हलका।

(२) नामकर्म की ४२ अथवा अवान्तर भेदों सहित ९३ उत्तर प्रकृतियों में से एक प्रकृति का नाम जिसके उदय से किसी संसारी जीव का शरीर न अति भारी हो और न अति हलका हो ॥

नोट—देखो शब्द "अघातिया कर्म" के अन्तर्गत "नामकर्म"।

अगुरुलघुक—वे द्रव्य गुण, या पर्याय जिन में भारीपन या हलकापन नहीं है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, जीव यह ५ द्रव्य और चउफासियापुद्गल अर्थात् भाषा मन, और कर्म योग्य द्रव्य, भाव लेश्या, दृष्टि दर्शन, ज्ञान, अज्ञान, संज्ञा, मनोयोग, वचनयोग, साकार उपयोग, अनाकारउपयोग, यह सर्व अगुरुलघुक हैं। (अ० मा० अगुरुलघुग, अगुरुलहुय) ॥

अगुरुलघुचतुष्क—अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, यह ४ नामकर्म की प्रकृतियाँ। (अ० मा०) ॥

अगुरुलघुत्व—(१) गुरुता और लघुता का अभाव, भारीपन और हलकेपन का न होना ॥

(२) सिद्धों अर्थात् कर्मबन्धरहित मुक्तात्माओं के मुख्य अष्टगुणों में से एक गुण जो गोत्र कर्म के नष्ट होने से प्रकट होता है ॥

नोट—सिद्धों के मुख्य अष्टगुण—(१) क्षायिक सम्यक्त (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्तज्ञान (४) अनन्तवीर्य (५) सूक्ष्मत्व (६) अवगाहनत्व (७) अगुरुलघुत्व (८) अव्याबाधत्व ॥

अगुरुलघुत्व गुण—षट्द्रव्यों में से हर द्रव्य के छह सामान्य गुणों में का वह सामान्य गुण या शक्ति जिस के निमित्त से हर द्रव्य का द्रव्यत्व बना रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो जाता और न एक गुण दूसरे गुण रूप होता है और न द्रव्य के अनन्त गुण कभी बिखर कर अलग २ होते हैं, अथवा जिसशक्ति के निमित्त से द्रव्य की अनन्त शक्तियां एक पिंडरूप रहती हैं तथा एक शक्ति दूसरी शक्ति रूप नहीं परिणमन करती या एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप

नहीं बदलता उसे "अगुरुलघुत्व गुण" कहते हैं॥

नोट—षट द्रव्यों के ६ सामान्य गुण यह हैं:—(१) अस्तित्व (२) वस्तुत्व (३) द्रव्यत्व (४) प्रमेयत्व (५) अगुरुलघुत्व (६) प्रदेशत्व॥

अगुरुलघुत्वप्रतिजीवी गुण—जीव या अजीव के अनेक 'प्रतिजीवी' गुणों में से वह गुण जिस से उसके भारीपन व हलके पनके अभाव का अथवा उसकी उच्चता व नीचता के अभाव का बोध हो॥

नोट १—द्रव्य के अनुजीवी और प्रतिजीवी, यह दो प्रकार के गुण होते हैं। भाव स्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं, जैसे सम्यक्त्व, सुख, चेतना, स्पर्श, रस, गन्ध आदि। और अभाव स्वरूप गुणों को प्रतिजीवी गुण कहते हैं, जैसे नास्तित्व, अमूर्त्तत्व, अचेतनत्व, अगुरुलघुत्व आदि॥

अगृह—गृहहीन, घररहित; घर त्यागी वानप्रस्थ; गृहत्यागी मुनि (पीछे देखो शब्द "अकच्छ", पृ० ४)॥

अगृहीत (अग्रहीत)—न ग्रहण किया हुआ॥

अगृहीत मिथ्यात्व—न ग्रहण किया हुआ मिथ्यात्व; वह असत्य भाव और असत्य श्रद्धान जो किसी मिथ्या शास्त्र या मिथ्या श्रद्धानी गुरुआदि के उपदेशादि से न ग्रहण किया गया हो किन्तु आत्मा में स्वयम् उस की मलीनता के कारण पूर्वोपार्जित "मिथ्यात्व कर्म" के उदय से अनादि काल से सन्तान दर सन्तान प्रवाहरूप चला आया हो। इसी को "निसर्गज मिथ्यात्व" भी कहते हैं। यह मिथ्यात्व ३ प्रकार के मिथ्यात्वों—अगृहीत, गृहीत, सांशयिक—में से एक है॥

अगृहीतमिथ्यादृष्टि—अगृहीत मिथ्यात्व-ग्रसित जीव। (ऊपर देखो शब्द "अगृहीत-मिथ्यात्व")॥

अगृहीतार्थ—वह मुनि जो एकाविहारी न हो किन्तु दूसरे मुनियों के साथही विचरै॥

अग्गल (अर्गल)—(१) आगल, सांकल, हुड़का, बेंडा या चटकनी जो किवाड़ बन्द करने में लगाई जाती है॥

(२) ८८ ग्रहों में से एक ग्रह का नाम (अ० मा०)॥

अग्गलदेव (अर्गलदेव)—(१) कर्णाटक देशवासी एक सुप्रसिद्ध जैनाचार्य—इनका जन्म स्थान "इङ्गलेश्वर ग्राम" और समय वीर नि० सं० १६३४, वि० सं० ११४६ और ईस्वी सन् १०८९ है। पिता का नाम 'शान्तीश', माता का नाम 'पोचाम्बिका' और गुरु का नाम 'श्रुतकीर्तित्रैविद्य देव' था। यह अपनी गृहस्थावस्था में किसी राजदर्बार के प्रसिद्ध कवि थे। इनके रचे ग्रन्थों मेंसे आजकल केवल एक कर्णाटकीय भाषा का 'चन्द्रप्रभपुराण' ही मिलता है जिसकी रचना शक सं० १०११ (वि० सं० ११४६) में हुई थी। इस ग्रन्थ की भाषा बहुत ही प्रौढ़, प्रवीणतायुक्त और संस्कृत-पदबहुल है। इसमें १६ आश्वास अर्थात् अध्याय हैं। जैनजनमनोहरचरित, कविकुलकलभव्रातयूथाधिनाथ, काव्यकर्णधार, भारतीबालनेत्र, साहित्यविद्याविनोद, जिनसमयसरस्सारकेलमराल, और सुललितकवितानर्तकीनृत्यरङ्ग आदि अनेक इनके विरद अर्थात् प्रशंसा वाचक नाम या पदवी हैं जिनसे इन की विद्वता और योग्यता का ठीक पता लग जाता है। आचण्णदेवकवि, अण्डय्य, कमलभव, बाहुबलि और पार्श्व आदि अनेक बड़े बड़े कवियों ने अपने अपने ग्रन्थों में इनकी बड़ी प्रशंसा की है। यह आचार्य मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ, और कुन्दकुन्द आम्नाय में हुए हैं॥

(२) कर्नाटक देशीय वत्सगोत्री एक सुप्रसिद्ध ब्राह्मण का नाम भी "अग्गलदेव" था जिसके पुत्र "ब्रह्मशिव" ने वैदिक मत त्याग कर पहिले तो लिंगायत मत ग्रहण किया और फिर लिंगायत मत को भी निःसार जान कर "मेघचन्द्रत्रैविद्यदेव" के पुत्र "श्रीवीरनन्द" मुनि के उपदेश से जैनधर्म को स्वीकृत किया और "समय-परीक्षा" नामक ग्रन्थ रचा जिसमें शैव वैष्णवादिक मतों के पुराण ग्रन्थों तथा आचारों में दोष दिखा कर जैनधर्म की प्रशंसा की है। यह सुप्रसिद्ध महाकवि उभय भाषा (संस्कृत और कनड़ी) का अच्छा विद्वान था। इस का समय ईस्वी सन् ११२५ के लगभग का है॥

अग्नि—(१) आग, वह्नि, वैश्वानर, धनञ्जय, बीति होत्र, कृपीटियोनि, ज्वलन, पावक, अनल, अमरजिह्व, सप्तजिह्व, हुत, भुज, हुताशन, दहन, वायुसख, हव्यवाहन, शुक्र, शुचि, इत्यादि साठ सत्तर से अधिक इसके पर्याय वाचक नाम हैं।

नोट१—वर्तमान कल्पकाल के इस अवसर्पिणी विभाग में "अग्नि" का प्रादुर्भाव (प्रकट होना) श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर के समय में हुआ जब कि भोजनादि सामग्री देने वाले 'कल्पवृक्ष' नष्ट होजाने पर अन्नआदि उत्पन्न करने और उन्हें पका कर खाने की आवश्यकता पड़ी।

आवश्यक्ता पड़ने पर पहिले पहल श्री ऋषभदेव (आदि ब्रह्मा) ने अग्नि उत्पन्न करने की निम्नलिखित तीन विधियां सिखाई:—

१. अरणि, गनियारी, अनन्ता, अग्निशिखा आदि कई प्रकार के काष्ठ विशेष के नाम और उनकी पहिचान आदि बताकर और उनके सूखे टुकड़ों को रगड़ कर अग्नि निकालना।

२. सूर्य्यकान्तमणि (आतशी शीशा) बना कर और उसे सूर्य के सन्मुख करके अग्नि उत्पन्न करना॥

(१) वह्निप्रस्थर (चकमक पत्थर) की पहिचान बताकर और उसके टुकड़ों को बलपूर्वक टकराकर अग्नि निकालना॥

(२) चित्रकवृक्ष, स्वर्णधातु, पित्त, चिन्ता, कोप, शोक, ज्ञान, राज, गुल, भिलावा, नीब वृक्ष, ३ का अङ्क, तृतीयातिथि, कृत्तिकानक्षत्र॥

(३) कृत्तिका नक्षत्र के अधिदेवता का नाम; पूर्व और दक्षिण दिशाओं के मध्य की विदिशाओं के अधिपति देव का नाम तथा उसी विदिशा का भी नाम॥

आठों दिशा विदिशाओं के अधिपति देव अष्ट दिक्पाल—इन्द्र (सोम), अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, वायव्य, कुबेर, ईशान॥

नोट२—कृत्तिका नक्षत्र के अधिदेव का नाम "अग्नि" होने से ही "अग्नि" शब्द "कृत्तिका" नक्षत्र का भी वाचक है। तथा यह नक्षत्र 'अश्विनी' नामक प्रथम नक्षत्र से तीसरा होने के कारण ३ के अङ्क का और तृतीया तिथि का वाचक भी यह "अग्नि" शब्द है॥

(४) नाक से आने जाने वाले श्वास के तीन मूल भेदों इड़ा, पिंगला, और सुषम्णा में से तीसरे स्वर का भी नाम "अग्नि" है। इस स्वर को 'सरस्वती स्वर' भी कहते हैं जिस प्रकार 'इड़ा' का नाम 'चन्द्र' और 'यमुना', और पिंगला का नाम 'सूर्य' और 'गङ्गा' भी है। (देखो शब्द प्राणायाम)॥

अग्निकाय—अग्नि का शरीर; पाँच प्रकार के एक-इन्द्रिय अर्थात् स्थावर कायिक जीवों में से एक अग्निकायिक जीवों का शरीर॥

अग्निकायिक—अग्नि काय वाला, जिस प्राणी का शरीर अग्नि हो॥

अग्निकायिक जीव—६ काय के जीवों में से एक काय का जीव; ४ गति में से तिर्यञ्च गति का एक भेद; ५ स्थावर जीवों में से एक; यह सम्मूर्च्छन जन्मी, नपुंसक लिंगी, एक-इन्द्रिय अर्थात् केवल स्पर्शन इन्द्रिय धारक स्थावर-कायिक वह जीव है जिसका शरीर अग्निरूप हो। इस को तेजकायिक जीव भी कहते हैं। अग्निकायिक जीवों का शरीर निगोदिया जीवों से अप्रतिष्ठित होता है अर्थात् इस में निगोदिया जीव नहीं होते। इस प्रकार के जीवों के शरीर का आकर सुइयों के समूह की समान सूक्ष्म आकार का होता है जो नेत्र इन्द्रिय से दिखाई नहीं पड़ता। इस की उत्कृष्ट आयु ३ दिन की होती है। ८४ लक्ष योनि भेदों में से अग्निकायिक जीवों के ७ लक्ष भेद हैं (देखो शब्द "योनि")। जीव समास के ५७ अथवा ९८ भेदों में से इस के ६ भेद हैं—(१) सूक्ष्मपर्याप्त (२) सूक्ष्मनिर्वृत्यपर्याप्त (३) सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त (४) स्थूलपर्याप्त (५) स्थूल निर्वृत्यपर्याप्त (६) स्थूल लब्ध्यपर्याप्त (देखो शब्द "जीव समास"); १९७॥ लक्ष कोटि "कुल" के भेदों में इस काय के जीवों के ३ लक्ष कोटि (३०००००,००००००००) भेद हैं। (देखो शब्द "कुल")

{ गो० जी० गा० ७३-८०, ८९, ११३, ११६, १९९, २००, ··· }

नोट १—जाति नाम कर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की "पर्याय" को 'काय' कहते हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, यह पांच प्रकार के जीव एकेन्द्रिय जीव हैं अर्थात् यह केवल एक स्पर्शन-इन्द्रिय रखने वाले जीव हैं। यही स्थावर-जीव या स्थावर-कायिक-जीव कहलाते हैं। शेष द्विन्द्रिय आदि जीव "त्रस" या त्रसकायिक जीव कहलाते हैं। पांच स्थावरकायिक और एक त्रसकायिक यह छह "षटकायिक" जीव हैं।

नोट २—गति नामकर्म के उदय से जीव की नारकादि पर्याय को 'गति' कहते हैं। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, और देवगति, यह चार गति हैं, जिन में से तिर्यंच गति के जीवों के अतिरिक्त शेष तीनों गतियों के जीव सर्व ही 'त्रस जीव' हैं और तिर्यंचगति के जीव त्रस और स्थावर दोनों प्रकार के हैं॥

नोट ३—सर्व ही संसारी जीवों का जन्म (१) गर्भज (जेलज, अंडज, पोतज) (२) उपपादज और (३) सम्मूर्छन (स्वेदज, उद्भिज आदि), इन तीन प्रकार का होता है जिन में से सम्मूर्छन जन्मी वह जीव कहलाते हैं जिन के शरीर की उत्पत्ति किसी बाह्य निमित्त के संयोग से हो उस शरीर के योग्य पुद्गल-स्कन्धोंके एकत्रितहो जानेसे होती है॥

नोट ४—अङ्गोपांग-नामकर्म के उदय से उत्पन्न शरीर के आकर या चिन्ह विशेष को लिङ्ग या वेद कहते हैं। इसके पुरुष-लिङ्ग स्त्री-लिङ्ग और नपुंसक-लिङ्ग यह तीन भेद हैं जिन में से पूर्व के दो लिङ्गों से रहित जीव को 'नपुंसक-लिंगी' जीव कहते हैं॥

नोट ५—जो अपने अपने विषयों का अनुभव करने में इन्द्र की समान स्वतन्त्र हों उन्हें "इन्द्रिय" कहते हैं। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, यह पांच बाह्य द्रव्य-इन्द्रियां हैं इनही को "ज्ञानेन्द्रिय" भी कहते

हैं। इन में से शरीर-नामकर्म के उदय से उत्पन्न उन शरीराङ्गों को, जिनके द्वारा आत्मा को शीत, उष्ण, कोमल, कठिन आदि का स्पर्शयोग्य विषयों का ज्ञान हो, "स्पर्शन इन्द्रिय" कहते हैं॥

नोट ६—जिन धर्मोंके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकारकी जाति जानी जाय उन्हें अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाला होने से "जीव समास" कहते हैं॥

नोट ७—जीवों के शरीर की उत्पत्ति के आधार को "योनि" कहते हैं॥

नोट ८—अलग२ शरीरकी उत्पत्तिके कारणभूत नोकर्मवर्गणा के भेदों को "कुल" कहते हैं॥

{ गो० जी० गा० ७०, ७४, ८४, १४५, १६३, १७४, १८०, ... }

अग्निकुमार—(१) एक क्षुधावर्द्धक औषधि; महादेवजी के ज्येष्ठ पुत्र "कार्त्तिकेय" का दूसरा नाम; भवनवासी देवों के १० भेदों या कुलों में से एक कुल का नाम॥

(२) भवनवासी देवों के "अग्निकुमार" नामक कुल में 'अग्निशिखी' और 'अग्निवाहन' नामक दो इन्द्र और इनमें से हरेक के एक एक प्रतीन्द्र हैं। इन के मुकुटों, ध्वजाओं और चैत्यवृक्षों में 'कलश' का चिन्ह है। इनका चैत्यवृक्ष 'पलाश वृक्ष' है जिस के मूल भाग विषै प्रत्येक दिशा में पाँच २ चैत्य अर्थात् दिगम्बर प्रतिमाएँ पर्यंकासन स्थित हैं। हर प्रतिमा के सामने एक एक मानस्तम्भ है जिन के उपरिम भागमें ७, ७ प्रतिमाएँ हैं। उपर्युक्त दो इन्द्रों में से प्रथम दक्षिणेन्द्र है और दूसरा उत्तरेन्द्र है। प्रथम के ४० लक्ष और द्वितीय के ३६लक्ष भवन हैं। यह भवन रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में चित्राभूमि से बहुत नीचे हैं। हर भवन के मध्य भाग में एक एक पर्वत और हर पर्वत पर एक एक अकृत्रिम चैत्यालय है। आयु दक्षिणेन्द्र की डेढ़ पल्योपम, उत्तरेन्द्रकी कुछ अधिक डेढ़ पल्योपम, इन की देवांगनाओं की ३ कोटि वर्ष और अन्य अग्निकुमार कुल के देवोंकी उत्कृष्ट आयु १॥ पल्योपम और जघन्य ५० सहस्र वर्षहै। देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु तीन कोटि वर्ष और जघन्य १० सहस्र वर्ष है। अग्निकुमार देवों की शरीर की ऊँचाई १० धनुष अर्थात् ४० हाथ की है। इनका श्वासोश्वास ७॥ मुहूर्त अर्थात् १५ घटिका (घड़ी)के अन्तरसे और कंठामृत आहार साढ़ेसात दिनके अन्तरसे होताहै।

अग्निगति—प्रज्ञप्ति, रोहिणी आदि अनेक दिव्य विद्याओं में से एकका नाम। (देखो शब्द "अच्युता" का नोट १)।

अग्निगुप्त—श्रीऋषभदेव (प्रथम तीर्थङ्कर) के ८४ गणधरों या गणेशों में से १४ वें गणधर का नाम। यह महामुनि कई सौ मुनियों के नायक ऋद्धिधारी ऋषी थे। इन्होंने श्रीऋषभदेव के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् उग्रोग्र तपश्चरण के बल से कैवल्यज्ञान—निरावरण अतीन्द्रिय अनन्तज्ञान प्राप्त किया और निर्वाण पद पाया॥

नोट—श्रीऋषभदेव के ८४ गणधरोंके नाम (१) वृषभसेन (२) दृढ़रथ (३) सत्यन्धर (४) देवशर्मा (५) भावदेव (६) नन्दन (७) सोमदत्त (८) सुरदत्त (९) वायु (१०) शर्मा (११) यशोबाहु (१२) देवाग्नि (१३) अग्निदेव (१४) अग्निगुप्त (१५) अग्निमित्र (१६) महीधर (१७) महेन्द्र (१८) वसुदेव (१९) वसुन्धरा (२०) अचल (२१) मेरु (२२) मेरुधन (२३) मेरुभूति (२४)

सर्वयश (२५) सर्वयज्ञ (२६) सर्वगुप्त (२७) सर्वप्रिय (२८) सर्वदेव (२९) सर्वविजय (३०) विजयगुप्त (३१) विजयमित्र (३२) विजयल (३३) अपराजित (३४) वसुमित्र (३५) विश्वसेन (३६) साधुसेन (३७) सत्यदेव (३८) देवसत्य (३९) सत्यगुप्त (४०) सत्यमित्र (४१) सताम्ज्येष्ठ (४२) निर्मल (४३) विनीत (४४) संवर (४५) मुनिगुप्त (४६) मुनिदत्त (४७) मुनियज्ञ (४८) देवमुनि (४९) यज्ञगुप्त (५०) सत-गुप्त (५१) सत्यमि (५२) मित्रयज्ञ (५३) स्वयम्भू (५४) भगदेव (५५) भगदत्त (५६) भगफल्गु (५७) गुप्तफल्गु (५८) मित्रफल्गु (५९) प्रजापति (६०) सत्संग (६१) घरुण (६२) धनपाल (६३) मघवान (६४) तेजोराशि (६५) महावीर (६६) महारथ (६७) विशालनेत्र (६८) महावाल (६९) सुविशाल (७०) वज्र (७१) जयकुमार (७२) वज्रसार (७३) चन्द्रचूल (७४) महारस (७५) कच्छ (७६) महाकच्छ (७७) अनुच्छ (७८) नमि (७९) विनमि (८०) बल (८१) अतिबल (८२) भद्रबल (८३) नन्दी (८४) नन्दिमित्र ॥

(देखो ग्रन्थ "बृ० वि० च०")

अग्निजीव—अग्निकीट, अग्नि में रहने वाले जीव, अर्थात् वह त्रस जीव जो बहुत समय तक प्रज्वलित रहने वाली अग्नि में पैदा हो जाते हैं जिन्हें 'अग्निकीट' और फ़ारसी भाषा में 'समन्दिर' कहते हैं। तथा वह जीव जो अग्निकाय में जन्म लेने के लिये जाता हुआ विग्रह गति में हो ॥

अग्निजीविका—(१) आग के व्यापार से होने वाली आजीविका, जैसे भड़भूंजा, हलवाई, खिश्तपज़ (ईंट पकाने वाला) आहकगार (चूना बनाने वाला) कुम्हार, लुहार, सुनार, रसोइया आदि की आजीविका ॥

(२) भोगोपभोगपरिमाण नामक गुणव्रत के ५ मूल अतिचारों के अतिरिक्त कुछ विशेष अतिचारों में से एक "खरकर्म" नामक अतिचार सम्बन्धी १५ स्थूल भेदों के अंतर्गत यह "अग्निजीविका" है ॥

नोट—"खरकर्म" के १५ स्थूल भेद यह हैं:-(१) वनजीविका (२) अग्निजीविका (३) अनोजीविका (४) स्फोटजीविका (५) भाटकजीविका (६) यंत्रपीड़िन (७) निर्लांछन (८) असतीपोष (९) सरःशोष (१०) दवप्रद (११) विषवाणिज्य (१२) लाक्षावाणिज्य (१३) दन्तवाणिज्य (१४) केशवाणिज्य (१५) रसवाणिज्य। (प्रत्येक का स्वरूप यथा स्थान देखें) ॥

अग्निज्वाल—(१) अग्नि ज्वाला, आग की लपट, आंवले का वृक्ष, जल पिप्पली, कुसुम, धाये के फूल।

(२) ज्योतिष चक्र सम्बन्धी ८८ ग्रहों में से एक ७५ वें ग्रह का नाम। (देखो शब्द "अघ" का नोट) ॥

(३) जम्बु द्वीपके 'भरत' और 'ऐरावत' क्षेत्रों में से हर एक के मध्य में जो 'विजियार्द्ध' पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणी के ६० नगरों में से एक नगर का नाम जो हर 'विजियार्द्ध' के पश्चिम भाग से ३९ वां और पूर्व भागसे २२ वां है। (देखो शब्द 'विजियार्द्ध पर्वत') ॥

अग्निदत्त—१. श्री भद्रबाहु स्वामी (वर्तमान पंचम काल के पंचम और अन्तिम श्रुतकेवली जिन्होंने वीर निर्वाण सं०

१६२ में अर्थात् विक्रम जन्म से ३०८ वर्ष पूर्व और विक्रमाब्दके प्रारम्भसे ३२६ वर्ष पूर्व शरीर परित्याग कर स्वर्ग प्राप्त किया के ४ मुख्य शिष्य स्थविरों-(१) गोदास, (२) अग्निदत्त, (३) यज्ञदत्त, (४) सोमदत्त—में से द्वितीय स्थविर का नाम ॥

नोट—संघके आधार भूत (१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) प्रवर्तक, (४) 'स्थविर' या वृद्ध और (५) गणधर या गणरक्ष, यह ५ प्रकार के मुनि होते हैं। (प्रत्येक का लक्षण व स्वरूपादि यथा स्थान देखें) ॥

(मूलाचार १५५)

२. जम्बूद्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र की वर्तमान चौवीसी में से २३ वें तीर्थंकर का नाम भी अग्निदत्त है। (आगे देखो शब्द "अढ़ाईद्वीपपाठ" के नोट ४ का कोष्ठ३)।

नोट—"श्रीअग्निदत्त" तीर्थंकर का नाम कहीं कहीं "श्रीअग्रदत्त" और कहीं 'अग्निपुत्र' भी लिखा पाया जाताहै।

३. जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में होने वाली अनागत चौबीसी के अन्तिम तीर्थंकर का नामभी यही 'अग्निदत्त' होगा। (आगे देखो शब्द अढ़ाईद्वीप पाठके नोट ४का कोष्ठ३)॥

अग्निदेव—श्री ऋषभदेव के ८४ गणधरों में से १३ वें गणाधीश का नाम। यह भी "अग्निगुप्त" की समान कई सौ मुनियों के नायक ऋषि थे और श्री ऋषभदेव के पश्चात् तपोबल से कर्म बन्धन तोड़ संसार से मुक्त हुए ॥

(देखो ग्रन्थ "वृ० वि० च०")

अग्निनाथ—गत उत्सर्पिणी काल में हुए २४ तीर्थङ्करों में से दशवें का नाम ॥

नोट—आगे देखो शब्द "अढ़ाईद्वीपपाठ" के नोट ४ में कोष्ठ ३ ॥

अग्निपुत्र—पीछे देखो शब्द "अग्निदत्त २" का नोट (अ० मा०) ॥

अग्निप्रभ—वर्तमान अवसर्पिणी में जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में हुए २२वें तीर्थंकरका नाम। (आगे देखो शब्द "अढ़ाईद्वीपपाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अग्निप्रभा—श्री वासुपूज्य १२ वें तीर्थंकरके तपकल्याणक के समयकी पालकी का नाम जिसका दूसरा नाम 'पुष्पाभा' भी था (अ०म०) ॥

अग्निवेग—आगे देखो शब्द "अग्निवेग" ॥

अग्निभानु—आगे देखो शब्द "अग्रभानु" ॥

अग्निभूति—इस नाम के निम्निलिखित कई इतिहास प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं:-

(१) श्री 'महावीर' अन्तिम तीर्थङ्करके ११ गणाधीशोंमें से द्वितीय गणधर। यह प्रथम गणधर 'श्री इन्द्रभूति गोतम' के (जो "श्री गोतम स्वामी" या "श्री गोतम" के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं) लघु भ्राता थे। इनके एक लघु भ्राता 'वायुभूति' थे। अर्थात् इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति यह तीन सगे भाई थे जो गृहस्थाश्रम त्यागने के पश्चात् क्रम से गौत्तम, गार्ग्य और भार्गव नाम से भी प्रसिद्ध हुए। इन का पिता गोत्तम-गोत्री-ब्राह्मण "वसूभूति" (शांडिल्य) मगधदेश प्रान्त के "गौर्वर-ग्राम का रहने वाला एक सुप्रसिद्ध धनाढ्य प्रतिष्ठित विद्वान, और अपने ग्राम का मुखिया था। वसुभूति (शांडिल्य) की 'पृथ्वी'

(स्थंडिला) नामक पण्डिता, सुशीला और सुलक्षणा स्त्रीके उदरसे तो दो बड़े भाइयोंका जन्म सन् ईस्वीके प्रारम्भसे क्रमसे ६२५वर्ष और ५९८ वर्ष पहिले हुआ और तीसरे छोटे भाई 'वायुभूति' का जन्म उस की दूसरी बुद्धिमति, विदुषी स्त्री 'केशरी' नामक के उदर से ३ वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् ईस्वी से ५९५ वर्ष पूर्व हुआ। गौर्वरग्राम में प्रायः उस समय ब्राह्मण वर्ण के लोग ही बसते थे और उन ब्राह्मणों में गौतमी ब्राह्मण बल, वैभव, ऐश्वर्य और विद्वत्ता आदि के कारण अधिक प्रतिष्ठित गिने जाते थे। इसी लिये इस ग्राम का नाम 'ब्राह्मण' या 'ब्राह्मपुरी' तथा 'गौतमपुरी' भी प्रसिद्ध होगया था।

पिता ने इन तीनों ही प्रिय पुत्रों को विद्याध्ययन कराने में कोई कमी नहीं की जिस से थोड़ी ही वय में यह कोष, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, तर्क, ज्योतिष, सामुद्रिक, वैद्यक, और वेद वेदांगादि पढ़ कर विद्या निपुण हो गए। इन की विद्वता, बुद्धिपटुता और चातुर्यता लोक प्रसिद्ध हो गई और इस लिये दूर दूर तकके विद्यार्थी विद्याध्ययन करने के लिये इनके पास आने लगे जिस से थोड़े ही समय में कई कई सौ विद्यार्थी इनके शिष्य हो गए॥

सन् ई० से ५७५ वर्ष पूर्व मिती श्रावण कृ० २ को जब 'अग्निभूति' (गार्ग्य) के जेष्ठ भ्राता इन्द्रभूति अपनी लग भग ५० वर्ष की वय में श्री महावीर तीर्थङ्कर से, जिन्हें इसी मगध देशान्तरगत ऋजुकूटा नदी के पास इस मिती से ६६ दिन पूर्व मिती वैशाख शु० १० को तपोबल से ज्ञानावरणादि ४ घातिया कर्ममल दूर होकर कैवल्यज्ञान (असीम, आवरणादि रहित ज्ञान या त्रिकालज्ञता) प्राप्त हो चुका था शास्त्रार्थ करने के विचार से उन के पास पहुंचे और उनके तप, तेज और ज्ञान शक्ति से प्रवाहित होकर तुरन्त गृहस्थाश्रम त्याग मुनि-दीक्षा ग्रहण करली तो उसी दिन 'अग्निभूति' ने भी लग भग २३ वर्ष की वय में अपने लघु भ्राता और प्रत्येक भाई के कई कई शिष्यों सहित सहर्ष दीक्षा स्वीकृत की और यह तीनों ही भाई श्री वीर-वर्द्धमान जिन (महावीर तीर्थङ्कर) के क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय गणाधीश अर्थात् अनेक अन्य मुनि गण के अधिपत बने।

अग्निभूति गणधर दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् थोड़े ही दिनों में अन्य गणधरों की समान तपोबल, मनःशुद्धि और आत्मसंयम से अनेक ऋद्धियां प्राप्त कर शीघ्र ही द्वादशांग—(१) आचाराङ्ग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्या प्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृधर्मकथा, (७) उपासकाध्ययनांग, (८) अन्तःकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, (१०) प्रश्नव्याकरणांग, (११) विपाकसूत्रांग, (१२) दृष्टिवादाङ्ग, जिसके अन्तरगत अनेक भेदोपभेद हैं—केपाठी पूर्ण श्रुतज्ञानी बन गये और केवल ७४ वर्ष कुछ मास की युवावस्था ही में जड़ शरीर को परित्याग कर उत्तम देव गति को प्राप्त हुए। इन के शिष्य मुनि सब २१३० थे। जिन दीक्षा ग्रहण करने से पहले इन के शिष्य लग भग ५०० थे। [पीछे देखो शब्द अकम्पन (६) और उसका नोट]॥

(२) अग्निला ब्राह्मणी का पति—इस अग्निभूति की 'अग्निला' पत्नी से उत्पन्न तीन पुत्रियां (१) धनश्री, सोमश्री (मित्रश्री) और नागश्री इसकी बुआ (पितृस्वसृ, पितृभगनी, पिता की बहन, फूफी) केतीन पुत्रों (१) सोमदत्त (२) सोमिल और (३) सोमभूतिको चम्पापुरी में विवाही गई थीं जो कई जन्मान्तरमें क्रम से नकुल, सहदेव और द्रोपदी हुईं और उनके पति सोमदत्त आदि क्रमसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन हुए ॥

(३) कौशाम्बी नगरी (आज कल प्रयाग के पास उसके उत्तर-पश्चिम की ओर ३० मील पर कोसम नाम की प्रसिद्ध नगरी) निवासी 'सोमशर्मा' नामक राजपुरोहित का पुत्र—इस अग्निभूति का एक लघु भ्राता वायुभूति था। इस समय कौशाम्बी में राजा अतिबल का राज था इन दोनों भाइयों की माता "काश्यपी" एक सुशीला और विदुषी स्त्री थी। दोनों भाइयों ने अपने मातुल (मामा) 'सूर्यमित्र' के पास मगध देश की राजधानी राजगृह नगर में विद्याध्ययन कर के अपने पिता के पश्चात् कौशाम्बी नरेशसे राजपुरोहित पद पाया। अपने मातुल "सूर्यमित्र" के दिगम्बर मुनि हो जानेके पश्चात् यह 'अग्निभूति' भी अपने मामा के पास ही इन्द्रिय भोगों से विरक्त हो पञ्चमहाव्रत धारी, त्रयोदश चारित्र पालक और अष्टाविंशति मूलगुणसम्पन्न दिगम्बर मुनि हो गया। तपोबल से वाराणसी (बनारस नगरी) के उद्यान में गुरु शिष्य दोनों ही ने त्रैलोक्यव्यापी कैवल्यज्ञान प्राप्त किया और "अग्निमन्दिर" नामक पर्वत से निर्वाण पद पाया ॥

इस अग्निभूति ब्राह्मण का लघु भ्राता 'वायुभूति' जिसने अपने परम उपकारी और विद्या-गुरु मातुल "सूर्य-मित्र" से द्वेष कर उदम्बर कोढ़ से शरीर छोड़, तीन बार क्षुद्र पशु योनि धारण कर पांचवें जन्म में जन्मान्ध चाँडाल-पुत्री का जन्म पाया और जिसने इस पाँचवें जन्म में अपने पूर्व जन्म के ज्येष्ठ भ्राता और परम दयालु श्री "अग्निभूति" मुनि से जो विचरते हुए इधर आ निकले थे धर्मोपदेश सुन और मुनि के बताये हुए व्रतोपवास को ग्रहण कर मृत्यु समय शुभ ध्यान से शरीर छोड़ा, चम्पापुरी में "चन्द्रवाहन" राजा के पुरोहित "नागशर्मा" की "नागश्री" नामक पुत्री हुई जिसने अपने पूर्व जन्म के मातुल "सूर्यमित्र मुनि" से धर्मोपदेश सुन, देहभोगों को क्षण स्थायी और दुखदाई जान, गृहस्थधर्म से विरक्त हो आर्यिका के व्रत ग्रहण कर लिये और आयु के अन्त में धर्मध्यान पूर्वक शरीर परित्याग कर १६ वें देव लोक के उत्कृष्ट सुख भोग अवन्ति देश की राजधानी उज्जैन नगरी में "सुरेन्द्रदत्त" श्रेष्ठीकी यशोभद्रा सेठानी के उदर से पुराण प्रसिद्ध "सुकुमाल" नामक पुत्र हुआ। और फिर इन्द्रिय-विषयों को विष तुल्य और शारीरिक भोगों को रोग सम जान, इनसे उदासीन हो, महाव्रती संयमी बन, शरीरत्याग, सर्वार्थसिद्धि पद पाया जहां का आध्यात्मिक सुख चिरकाल भोग अयोध्या में सुकौशल नामक राजपुत्र हो अपने

पूर्व जन्म के भाई अग्निमित्र की समान त्रैलोक्य-पूज्य मुक्ति-पद प्राप्त किया ॥

(४) अग्निसह (अग्निविप्र) ब्राह्मण का पिता ॥

इस अग्निभूति का पुत्र 'अग्निसह' जिसका दूसरा नाम "अग्निविप्र" भी था अनेक बार देव मनुष्यादि योनियों में जन्म धारण कर अन्त में 'श्री महावीर' तीर्थङ्कर हुआ ॥

(५) उज्जयनी निवासी एक 'सोम श-र्म्मा' नामक ब्राह्मणकी "काश्यपि" नामक स्त्री के गर्भ से उत्पन्न एक पुत्र जिसके लघु भ्राताका नाम सोमभूतिथा। एकदा जब यह दोनों विद्याध्ययन करके अपने घरको आरहे थे तो मार्ग में एक "जिनदत्त" मुनि को अपनी माता जिनमती नामक आर्यिका से शरीर समाधान पूछते देखकर दोनों भाइयों ने श्री मुनिराज की हंसी उड़ाई कि देखो विधना ने इस तरुण पुरुष की इस वृद्धा स्त्री के साथ कैसी जोड़ी मिलाई है। फिर एकदा "एकजिनभद्र" मुनिको अपनी पुत्रवधु सुभद्रा नामक आर्यिका से शरीर-समाधान पूछते देख कर हास्य की कि दैवने इस वृद्ध पुरुष की जोड़ी इस तरुणी के साथ कैसी मिलाई है। इस प्रकार दो बार अखंड ब्रह्मचारी सुशील मुनियों की अज्ञात भाव से हास्य करने के पाप से इन दोनों भाइयों ने आयु के अन्त में शरीर छोड़कर इसी उज्जयनी नगर में एक सुदत्त नामक सेठ के वीर्य से और अनन्ततिलका नामक वेश्या के गर्भ से एक साथ जन्म लिया जिनका पालन पोषण देशान्तर में दो वणि-कों के घर अलग अलग होने से अज्ञात अवस्था में परस्पर विवाह सम्बन्ध होगया। अर्थात् जो सहोदर भाई बहन थे वही पति पत्नी हो गये। (आगे देखो शब्द "अठारह नाते") ॥

अग्निमंडल (तेजोमंडल या वह्निमंडल)—नासिका द्वारा निकलने वाले श्वास के मूलचार भेदों (मंडलचतुष्क या मंडल चतुष्टय) में से एक प्रकार का श्वास जो यथाविधि प्राणायाम का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को (१) उदय होते हुये सूर्य की समान रक्तवर्ण या अग्नि के फुलिङ्गों के समान पिङ्गलवर्ण (२) अति उष्ण (३) चार अंगुल तक बाहर आता हुआ (४) आवर्तों सहित उर्द्धगामी (५) स्वा-स्तिक सहित त्रिकोणाकार (६) वह्नि बीज से मंडित, दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार का पवन सामान्यतयः वश्य (व-शीकरण) आदि कार्यों में शुभ है। भय, शोक, पीड़ा, विघ्नादि का सूचक है ॥ (देखो शब्द "प्राणायाम") ॥

अग्निमानव—दक्षिण दिशा के अग्निकुमार देवों का एक इन्द्र (अ० मा०) ॥

अग्निमित्र—(१) श्रीऋषभदेव के ८४ गण धरों में से १५ वें का नाम ॥

यह अन्य प्रत्येक गणधर देवकी समान ऋद्धिधारी दिगम्बर मुनि द्वादशाँग श्रुत-ज्ञान के पाठी कई सौ शिष्य मुनियों के अधिपति थे ॥

(२) मन्दिर नगर निवासी गौतम नामक ब्राह्मण का पुत्र—इस "अग्निमित्र" की माता "कौशाम्बी" बड़ी चतुर, सुशीला और अनेक गुण सम्पन्न विदुषी थी। यह 'अग्निमित्र' उपर्युक्त "अग्निभूति (४)"

के पुत्र 'अग्निसह' (अग्निविप्र) का तृतीय जन्म धारी व्यक्ति है अर्थात् 'अग्निसह' के जीव ने बीच में एक पर्याय स्वर्ग की पाकर "गौतम" ब्राह्मण के घर उसकी स्त्री कौशाम्बी के उदर से जन्म लिया और यही अन्य बहु जन्म धारण कर अन्त में "श्री महावीर वर्द्धमान" तीर्थंकर हुआ। देखो शब्द "अग्निसह" और ग्र० "वृ०वि० च०") ॥

(३) मगधदेशका एक प्रसिद्ध राजा। यह अग्निमित्र शुङ्गवंशी राजा पुष्पमित्र का लघु पुत्र था जो अपने पिता के राज्यकाल में उसके राज्य के दक्षिणी भाग का अधिपति रहा। जब वीर नि०सं० ३७५ में (वि० सं० से ११३ वर्ष पूर्व) "खारबेल महामेघवाहन" नामक एक जैन राजा ने इस के पिता 'पुष्पमित्र' को युद्ध में हरा कर मथुरा की ओर भगा दिया तो १५ वर्ष तक मगध की गद्दी पर इस के ज्येष्ठ भ्राता वसुमित्र ने और फिर ६ वर्ष तक अग्निमित्र ने खारबेल की आज्ञा में रह कर और अपने पिता को अपना संरक्षक बना कर राज्य किया। फिर पिता की मृत्यु के पश्चात् ८ वर्ष और राज्य करके अग्निमित्र ने अपने पुत्र सुज्येष्ठ वसुमित्र (वसुमित्र द्वितीय) को अपना राज्याधिकारी बनाया।

प्रसिद्ध कवि कालिदास रचित 'मालविकाग्निमित्र" नामक नाटक में इसी अग्निमित्र और मालविका के प्रेम का वर्णन है ॥

नोट.१—इस अग्निमित्र का पिता पुष्पमित्र मौर्यवंशी अन्तिम राजा पुरुद्रथ (वृहद्रथ) का सेनापति था जिसने राजा के ८ वर्ष के राज्य काल के पश्चात् मारे जाने पर मगध का राज्य पाया और इस प्रकार १४० वर्ष के राज्य के पश्चात् मौर्यवंश का अन्त हुआ।

नोट २—इसी शुङ्गवंश में निम्न लिखित राजाओं ने मगध का राज्य कियाः—

(१) पुष्पमित्र ने वीर नि० सं० ३६० से ३७५ तक अर्थात् वि० सं० के प्रारम्भ से १२८ वर्ष पूर्वसे ११३ वर्ष पूर्व तक या सन् ईस्वी के प्रारम्भ से १८५ वर्ष पूर्व से १७० वर्ष पूर्व तक, १५ वर्ष।

(२) वसुमित्र ने (अपने पिता पुष्पमित्र के संरक्षण में) १५ वर्ष तक।

(३) अग्निमित्र ने (अपने पिता पुष्पमित्र के संरक्षण में) ६ वर्ष तक और पश्चात् ८ वर्ष तक, सर्व १४ वर्ष तक।

(४) वसुमित्र (द्वितीय या सुज्येष्ठ वसु) से देवभूति तक ८ राजाओं ने ८८ वर्ष तक ॥

इस प्रकार शुङ्गवंशी ११ राजाओं ने मगध की गद्दी पर वीर नि० सं० ३६० से ४७२ तक अर्थात् वि० सं० के प्रारम्भ से १६ वर्ष पूर्व तक या सन् ईस्वी से ७३ वर्ष पूर्व तक, सब ११२ वर्ष राज्य किया। (आगे देखो शब्द "अजातशत्रु" का नोट ५) ॥

अग्निमित्रा—गोशाला के शिष्य पोलासपुर निवासी शकदाल कुम्हार की स्त्री का नाम। (अ० मा०)

अग्निमुक्त—यह वर्तमान अवसर्पणी काल के गत-चतुर्थ भाग में हुये २४ कामदेव पदवी धारक पुराण प्रसिद्ध महत् पुरुषों में से ७ वें कामदेव हुये। इन का

समय १६ वें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथ से पूर्व का है। (देखो शब्द "कामदेव")

अग्निर (अङ्गिर)-तीर्थङ्कर पदवी धारक महान् पुरुषों की अतीत चौबीसी में से यह ९ वां तीर्थङ्कर पदवी धारक पुरुष था॥ (देखो शब्द "अतीत तीर्थङ्कर")॥

अग्निल (अगंल)—वर्तमान अवसर्पिणी काल के वर्तमान दुःखम काल नामक पञ्चम विभाग के अन्त में अब से लगभग साढ़े अठारह हज़ार (१८५००) वर्ष पश्चात् इस नाम का एक धर्मात्मा गृहस्थी उत्पन्न होगा और उस समय के "जलमन्थन" नामक कल्की राजा के उपद्रव से ३ दिनरात निराहार भगवद्भजन में बिताकर कार्तिक कृ०३० (अमावस्या) वीर निर्वाण संवत् २१००० (विक्रम सम्वत् २०५१२) के दिन पूर्वान्ह काल स्वाति नक्षत्र में शरीर परित्याग कर सौधर्म नामक प्रथम देवलोक (स्वर्ग) में जा जन्म लेगा॥

(देखो ग्र० वृ० वि० च०)

अग्निला—(१) एक पुराण प्रसिद्ध अग्निभूति ब्राह्मण की धर्मपत्नी (देखो पूर्वोक्त व्यक्ति "अग्निभूति")॥

(२) सौराष्ट्र देश (गुजरात) के गिरिनगरमें रहनेवाले एक "सोमशर्म्मा" नामक प्रसिद्ध धनी ब्राह्मण की धर्मपत्नी—यह 'अग्निला' ब्राह्मणी बड़ी धर्मात्मा, सुशीला, और दयालु हृदय थी। अतिथियों का सत्कार करना और विरक्त पुरुषों को पूज्य दृष्टि से देखना इस का स्वभाव था। यह नवम नारायण श्रीकृष्णचन्द्र के समय में विद्यमान थी। इसने एक बार पति की अनुपस्थिति में "अक्षीण महानस् ऋद्धि" धारी श्री 'वरदत्त' नामक एक दिगम्बर मुनि को जो विचरते उधर आनिकले थे, नवधा भक्ति से निरन्तराय आहारदान देकर महान् पुण्यबंध किया। पतिदेव जो स्वभाव के क्रोधी थे, उसके इस कार्य से बहुत अप्रसन्न हुए। अतः यह धर्मज्ञ विदुषी बहुत ही अपमानित और तिरस्कृत होकर गिरिनगर के समीप के गिरिनार पर्वत पर उन ही 'श्रीवरदत्त' मुनि के पास शरीर भोगों से विरक्त हो आर्यिका (साध्वी) के व्रत धारण करने के विचार से अपने दो पुत्रों शुभङ्कर और प्रभङ्कर सहित पहुँची। परन्तु श्री गुरु ने इसे पति की आज्ञा बिना क्रोधवश आई जान तुरंत दीक्षा नहीं दी। पश्चात् पतिदेव के भय से यह पर्वत से गिर कर प्राण त्याग अष्ट प्रकारी-व्यन्तर जाति की देव योनि में यक्षिणी देवी हुई और दोनों पुत्र, पिता की मृत्यु के पश्चात् जितेन्द्रिय दिगम्बर मुनियों के पक्के श्रद्धालु और परम भक्त हो गए और अन्त में श्री कृष्णचन्द्र के ज्येष्ठ-पितृव्य-पुत्र "श्री नेमिनाथ" (अरिष्टनेमि) २२ वें तीर्थङ्कर के समवशरण में जाकर दिगम्बर मुनि हो, उग्र तपश्चरण कर सर्वोत्कृष्ट सिद्धपद प्राप्त किया॥

(देखो ग्र० वृ० वि० च०)

अग्निवाहन (अग्निवेश्म)—भवनवासी देवों के अग्निकुमार नामक एक कुल के दो इन्द्रोंमें से एक इन्द्रका नाम। (देखो शब्द "अग्निकुमार")॥

अग्निवेग (रश्मिवेग)—श्री पार्श्वनाथ

तीर्थङ्कर के एक पूर्व भव का मनुष्य ।

यह अग्निवेग जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के पुष्कलावती देश में 'त्रिलोकोत्तम' नामक नगर के विद्याधर राजा 'विद्युद्गति' की रानी 'विद्युन्माला' के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । यह बड़ा सौम्यस्वभावी और धर्मज्ञ था । यह युवावस्था के प्रारम्भ ही से सांसारिक विषय भोगों से विरक्त और बाल ब्रह्मचारी रहा । श्री 'समाधिगुप्त' मुनि से दिगम्बरीदीक्षा लेकर उग्रोग्र तप करने लगा । अन्त में अब एक दिन हिमालय पर्वत की एक गुहा में यह मुनि ध्यानारूढ़ थे तो एक अजगर जाति के सर्प ने जो इनके पूर्व जन्म का भ्राता और शत्रु कमठ का जीव था इन्हें काट लिया, जिस से शुभ-ध्यान पूर्वक शरीर छोड़ कर यह 'अच्युत' नामक १६ वें स्वर्ग के पुष्कर नामक विमान के अधिपति हुए । वहां की आयु पूर्ण कर बीच में ४ जन्म और धारण करने के पश्चात् अन्त में काशी देश की 'वाराणसी' नगरी में श्री पार्श्वनाथ नामक २३ वें तीर्थंकर हो श्री वीरनिर्वाण से २४९ वर्ष २ मास २३ दिन पूर्व शुभ मिती श्रावण शु० ७ को विशाखा नक्षत्र में सायंकाल के समय विहार देशस्थ श्री सम्मेदशिखर के 'सुवर्णभद्र' कूट (श्री पार्श्वनाथ हिल) से ९९ वर्ष ७ मास ११ दिन की वय में निर्वाण पद पाया ॥

नोट १—श्री पार्श्वनाथ के ९ पूर्व जन्मों के नाम क्रम से निम्न लिखित हैं:—(१) ब्राह्मणपुत्र—मरुभूत (२) वज्रघोष हाथी (३) १२ वें स्वर्ग में 'शशिप्रभ' देव (४) विद्याधर कुमार 'अग्निवेग' (५) १६ वें स्वर्ग में देव (६) वज्रनाभ चक्रवर्ती (७) मध्य ग्रैवेयकत्रिक के 'सुभद्र' नामक मध्यम विमान में "अहमेन्द्र" (८) इक्ष्वाकु-वंशी अयोध्यापति 'आनन्द' नामक महा मांडलिक नरेश (९) १३ वें स्वर्गमें 'आनतेन्द्र'. फिर इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री वाराणसी नरेश 'विश्वसेन' की महारानी 'ब्रह्मदत्ता-वामादेवी' के गर्भ से जन्म लेकर २३ वें तीर्थंकर हो मोक्षपद पाया ॥

(पार्श्वनाथ चरित्र)

नोट २—श्री त्रिलोकसार ग्रन्थकी गाथा ८११ के अनुकूल "श्री पार्श्वनाथ" ने श्री वीरनिर्वाण से २४९ वर्ष ३ मास १५ दिन पूर्व निर्वाणपद प्राप्त किया ॥

अग्निवेश्म (प्रा० अग्गिवेस्स)—चतुर्दशी तिथि का नाम । दिन के २२ वें मुहूर्त का नाम । कृत्तिका नक्षत्र का गोत्र (अ० म०) (देखो शब्द 'अग्निवाहन') ॥

अग्निवेश्यायन (प्रा० अग्गिवेसायण)—गोशाला के ५ वें दिशाचर साधु: दिन के २३ वें मुहूर्त का नाम, सुधर्मा स्वामी का गोत्र: सुधर्मा स्वामी के गोत्र में उत्पन्न होनेवाला पुरुष (अ० मा०) ॥

अग्निशिख—नवें नारायण श्रीकृष्ण के अनेक पुत्रोंमें से एक का नाम । (देखो वृ० वि० च०)

भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, विष्णु, संजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गम्भीर, उदधि, गौतम, वसुधर्म, प्रसेनजित, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारु-कृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख, प्रद्युम्न, और शंबु आदि श्रीकृष्णके अन्य पुत्र थे ॥

अग्निशिखा—[१] अग्निज्वाला, प्रज्वलितअग्नि का ऊपरी भाग [२] चारणऋद्धि के ८ भेदों में से एक का नाम।

अग्निशिखाचारणऋद्धि—क्रियऋद्धिका एक उपभेद। क्रियऋद्धि के मूलभेद [१] चारणऋद्धि और [२] आकाशगामिनीऋद्धि, यह दो हैं। इनमें से पहिली चारणऋद्धि के [१] जलचारण [२] जंघाचारण [३] पुष्पचारण [४] फलचारण [५] पत्रचारण [६] लताचारण [७] तन्तुचारण और [८] अग्निशिखाचारण, यह आठ भेद हैं। इन आठ में से अष्टम 'अग्निशिखाचारणऋद्धि' वह ऋद्धि या आत्मशक्ति है जो किसी किसी ऋषि मुनि में तपोबल से व्यक्त होजाती है जिसके प्रकट होने पर इस ऋद्धिके धारक ऋषि अग्नि की शिखा ऊपर स्वयम् को या अग्निकायिक जीवों को किसी प्रकार की बाधा पहुँचाये बिना गमन कर सकते हैं॥

(देखो शब्द "अक्षीणऋद्धि" का नोट २)।

अग्निशिखी—भवनवासी देवोंके १० कुलों या भेदों में से "अग्निकुमार" कुल के जो दो इन्द्र अग्निशिखी और अग्निवाहन हैं उनमें से पहिला इन्द्र॥

नोट—देखो शब्द "अग्निकुमार (२)"

अग्निशिखेन्द्र—"अग्नि शिखी" नामक इन्द्र॥

अग्निशुद्धि (अग्निशौच)—लौकिकशुद्धि के आठ भेदों (अष्ट शुद्धि) में से एक प्रकारकी शुद्धि जो किसी अशुद्ध वस्तु को अग्नि संस्कार से अर्थात् अग्नि में तपाने आदि से मानी जाती है जिससे उस वस्तु में किसी अपवित्र मनुष्यादि के स्पर्श आदि से प्रविष्ट हुए अपवित्र परमाणु वाष्प के रूप में अलग हो जाते हैं॥

नोट—लौकिक अष्ट शुद्धि के नाम—(१) कालशुद्धि (२) अग्निशुद्धि (३) भस्मशुद्धि (४) मृत्तिकाशुद्धि (५) गोमयशुद्धि (६) जलशुद्धि (७) ज्ञानशुद्धि (८) अग्लानि शुद्धि॥

अग्निशेखर—यह काशी देश के एक इक्ष्वाकुवंशी राजा थे। वाराणसी (बनारस) इनकी राजधानी थी। इनका समय १९ वें तीर्थंकर "श्री मल्लिनाथ" का तीर्थ काल है जिसे आज से १२ लाख से कुछ अधिक वर्ष व्यतीतहो गये, अर्थात् यह राजा त्रेतायुग में रामावतार से कुछ वर्ष पूर्व हुए हैं जब कि मनुष्यों की आयु लगभग ३० या ३२ सहस्र वर्षों की होती थी॥

सप्तम बलभद्र 'नन्दिमित्र' इन ही काशी नरेश की महारानी "केशवती" के गर्भ से और सप्तम नारायण 'दत्त' इनकी दूसरी महारानी 'अपराजिता' के उदरसे पैदा हुए थे। इन दोनों भाइयों ने प्रतिनारायण पदवी धारक अपने शत्रु "बलिन्द्र" को, जो उस समय का त्रिखंडी विद्याधर राजा था और जिसकी राजधानी 'विजयार्द्ध' पर्वतकी दक्षिण श्रेणी में 'मन्दार पुरी' थी, भारी युद्ध में मार कर स्वयम् त्रिखंडी (अर्द्ध चक्रवर्ती) राज्य-वैभव प्राप्त किया॥ (देखो ग्रन्थ "वृ० वि० च०")

अग्निशौच—देखो शब्द "अग्निशुद्धि"॥

अग्निषेण—वर्त्तमान अवसर्पिणी में हुए जम्बुद्वीप के ऐरावत क्षेत्रके तीसरे तीर्थंकर का नाम। (अ० मा०-अग्गिसेण; आगे देखो शब्द "अढ़ाई-द्वीप-पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

अग्निसह—यह 'श्वेतिक' नगर निवासी "अग्निभूति" नामक ब्राह्मण की स्त्री 'गोतमी' के उदर से उत्पन्न हुआ था। परिव्राजक संन्यासी होकर उग्रतपोबल से इसने देवायु का बन्ध किया और शरीर परित्याग करने के पश्चात् सनत्कुमार नामक तृतीय स्वर्गमें जन्म लिया। चिरकाल स्वर्गसुख भोगकर "मन्दिर" नगरमें एक "गौतम" नामक ब्राह्मणका पुत्र 'अग्निमित्र' हुआ। त्रिदंडी सन्यस्थपद में दीक्षित हो कर और घोर तप कर आयु के अन्त में शरीर छोड़ 'महेन्द्र' नामक चतुर्थस्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ। पश्चात् अनेक जन्म धारण कर अन्त में श्री महावीर तीर्थङ्कर हुआ॥

नोट—अग्निसह के कुछ पूर्वभव और ५ आगामी भव, तथा निर्वाण प्राप्त तक के २० अन्तिमभवः—(१) 'पुरूरवा' नामक भीलराज (२) सौधर्म नामक प्रथम स्वर्ग में देव (३) प्रथम तीर्थंकर "श्रीऋषभदेव" का पौत्र और भरतचक्रवर्तीका पुत्र 'मरीचि' (४) ब्रह्म नामक पंचम स्वर्ग में देव (५) कपिल नामक ब्राह्मण का पुत्र 'जटिल' (६) प्रथम स्वर्ग में देव (७) 'भारद्वाज' ब्राह्मण का पुत्र 'पुष्पमित्र' (८) प्रथम स्वर्ग में देव (९) 'अग्निभूति' ब्राह्मण की 'गौतमी' नामक स्त्री से उत्पन्न 'अग्निसह' नामक पुत्र (१०) सनत्कुमार नामक तृतीय स्वर्ग में देव (११) 'गौतम' ब्राह्मण का पुत्र 'अग्निमित्र' (१२) महेन्द्र नामक चतुर्थ स्वर्ग में देव (१३) 'सालंकायन' ब्राह्मण का पुत्र 'भारद्वाज' (१४) 'ब्रह्म' नामक पंचम स्वर्ग में देव॥

ब्रह्म स्वर्ग की आयु पूर्ण करने के पश्चात् अनेक भवान्तरों में जन्म मरण करने पर इसी "अग्निसह" के जीव ने जो अन्तिम १८ भव धारण कर २० वें भव निर्वाणपद प्राप्त किया उनके नामः—

(१) 'शांडिल्य' ब्राह्मण का पुत्र 'स्थावर' (२) ब्रह्म स्वर्ग में देव (३) 'विश्वभूति' राजा का पुत्र 'विश्वनन्दी' (४) 'महाशुक्र' नामक १० वां स्वर्ग में देव (५) प्रजापति राजा का पुत्र 'त्रिपृष्ठ' नारायण (६) महातमप्रभा या माघवी नामक सप्तम पृथ्वी (नरक) में नारकी (७) सिंह (पशु) (८) रत्नप्रभा या घर्मा नामक प्रथम पृथ्वी (नरक) में नारकी (९) सिंह (पशु) (१०) सौधर्म स्वर्ग में देव (११) 'कनकपुंख' राजा का पुत्र 'कनकोज्वल' (१२) लान्तव नामक सप्तम स्वर्ग में देव (१३) 'वज्रसेन' राजा का पुत्र 'हरिषेण' (१४) महाशुक्र स्वर्ग में देव (१५) 'सुमित्र' राजा का पुत्र 'प्रियमित्र' चक्री, (१६) सहस्रार नामक १२ वें स्वर्गमें देव (१७) 'नन्दिवर्द्धन' राजाका पुत्र नन्द (१८) 'अच्युत' नामक १६ वें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र (१९) श्री वर्द्धमान महावीर तीर्थंकर (२०) निर्वाण। (देखो शब्द 'अग्निमित्र' और प्रत्येक का अलग अलग चरित्र जानने के लिये देखो ग्रन्थ "वृ० वि० च०")॥

अग्निसिंह (प्रा० अग्गिसीह)—वर्त्तमान अवसर्पिणी में भरतक्षेत्र में हुये ७ वें बलभद्र और नारायण के पिता का नाम। (अ० मा०)॥

अग्निसेन—पीछे देखो शब्द "अग्निषेण"

अग्न्याभ—१६ स्वर्गों में से ५ वें स्वर्ग (ब्रह्मस्वर्ग या ब्रह्मलोक) के लौकान्तिक नामक उपरिस्थ अन्तिम भाग में बसने वाले लौकान्तिक देवों का एक कुल जो पूर्व दिशा और ईशान कोन के बीच के

अन्तर कोन में रहता है। इस कुल में सर्व ७००७ देव हैं। इस कुल के देव जिस विमान में बसते हैं उस विमान का नाम भी "अग्न्याभ" है। इस कुल के देवों की आयु लगभग ८ सागरोपम वर्ष प्रमाणहै॥

नोट १—ब्रह्मलोक के लौकान्तिक पाड़े में बसने वाले लौकान्तिक देवोंके सर्व २४ कुल निम्न प्रकार हैं:—

(१) ईशान कोन में सारस्वत (२) पूर्व दिशा में आदित्य (३) अग्निकोन में वह्नि (४) दक्षिण में अरुण (५) नैऋत्यकोन में गर्दतोय (६) पश्चिम में तुषित (७) वायव्य कोन में अव्याबाध (८) उत्तरमें अरिष्ट (९,१०) ईशान व पूर्वके अन्तरकोनमें अग्न्याभ व सूर्याभ (११,१२) पूर्व व अग्निकोन के अन्तर कोन में चन्द्राभ व सत्याभ (१३, १४) अग्नि व दक्षिण के अन्तर कोनमें श्रेयस्कर व क्षेमङ्कर(१५,१६) दक्षिण व नैऋत्य के अन्तरकोन में वृषभेष्ट व कामचर (१७ १८) नैऋत्य व पश्चिम के अन्तरकोन में निर्माणरजा व दिगन्तरक्षित (१९,२०) पश्चिम व वायव्य के अन्तरकोन में आत्मरक्षित व सर्वरक्षित (२१,२२) वायव्य व उत्तर के अन्तरकोन में मरुत व वसु (२३ २४) उत्तर व ईशान के अन्तर कोन में अश्व व विश्व।

यह २४ कुल जिन २ विमानों में बसते हैं उन विमानों के नाम भी अपने अपने कुल के नाम पर ही बोले जाते हैं॥

नोट २—इन सर्व कुलों के लौकान्तिक-देव "एकाभवतारी" अर्थात् एक ही बार मनुष्य जन्म लेकर निर्वाण पद पाने वाले होते हैं। यह पूर्ण ब्रह्मचारी होते और सर्व विषयों से विरक्त रहते हैं। सर्व देवगण में ऋषि समान होने से यह "देवऋषि" कहलाते और अन्य इन्द्रादिक देवों कर पूज्य होते हैं। सर्व ही ११ अंग १४ पूर्व के पाठी श्रुतकेवली समान ज्ञान के धारक होते हैं। तीर्थङ्करों के तपकल्याणक के समय उन्हें वैराग्य में दृढ़ करने और उत्साह बढ़ाने के लिये जाने के अतिरिक्त यह सर्व लौकान्तिक देव अपने स्थान से बाहर कहीं भी अपने जीवन भर कभी जाते आते नहीं॥ इन में अरिष्ट कुल के देवों की आयु ९ सागरोपम वर्ष प्रमाण और अन्य २३ कुलके देवोंकी आयु ८ सागरोपम वर्षकी होतीहै। इनके शरीरकी ऊंचाई ५ हाथ प्रमाण है॥

[त्रि० गा० ५३४-५४०]

अग्र—(१) अगला, प्रथम, प्रधान, अगुआ, मुखिया, श्रेष्ठ, नोक, किनारा, वज़न, तोल माप, रत्न॥

(२) अघातियाकर्म (अ. मा. 'अग्ग')॥

अग्रचिन्ता--आगे की चिन्ता; आर्तध्यान के ४ भेदों—इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पीड़ा चिन्तवन और 'निदानचिन्ता'—मेंसे चतुर्थ भेद का अन्य नाम जिसे 'अग्रशोच' या 'अग्रसोच' भी कहते हैं। तप संयमादि द्वारा वा बिना इनके भी किसी इष्ट फल की प्राप्ति की आकाँक्षा व इच्छा करना॥ इसके अर्थात् "अग्रचिन्ता" या निदान चिन्ताके निम्न लिखित ५ भेद हैं:-

(१) विशुद्ध प्रशस्त (मौक्तिक)= समस्त कर्मों को शीघ्र क्षय कर के मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा॥

(२) अशुद्ध प्रशस्त (शुभसांसारिक)= इस जन्म या आगामी जन्मों में जिनधर्म (पूर्ण जितेन्द्रिय पुरुषों कर उपदिष्ट

मार्ग) की सिद्धि व वृद्धि के लिये उत्तम कुल, सुसंगत, निर्मल बुद्धि, आरोग्य शरीर आदि की प्राप्ति की आकाँक्षा ॥

(३) भोगार्थ अप्रशस्त = अनेक प्रकार के भोगोपभोग प्राप्ति के लिये इस जन्म या आगामी जन्मों में धन सम्पदादि व स्वर्गादि विभव प्राप्ति की कामना ॥

(४) मानार्थ अप्रशस्त = इसजन्म या परजन्म में मान कषाय पोषणार्थ दूसरों को नीचा दिखाने आदि अशुभ कार्यों के लिये ऊँचे २ अधिकार व बलादि पाने की इच्छा ॥

(५) घातकत्व अप्रशस्त = इस जन्म या परजन्म में क्रोधवश द्वेश भाव से किसी अन्य प्राणी को कष्ट पहुँचाने या मार डालने की दुर्वासना ॥

नोट—अग्रचिन्ता या निदान के मूल भेद तो दो ही हैं-प्रशस्त और अप्रशस्त। इन दो में से प्रशस्त के दो और अप्रशस्तके तीन, एवं सर्व पांच उपर्युक्त भेद हैं ॥

अग्रदत्त—पीछे देखो शब्द "अग्निदत्त" २ का नोट, (अ० मा० "अग्गदत्त") ॥

अग्रदेवी—पट्ट देवी, महादेवी, इन्द्रानी ॥

नोट—१६ स्वर्गों के १२ इन्द्रों में से हरेक की आठ आठ अग्रदेवी हैं इन में से ६ दक्षणेंद्रों में से हर एक की आठ अग्रदेवियों के नाम (१) शची (२)पद्मा (३) शिवा (४) श्यामा (५) कालिन्दी (६)सुलसा(७) अज्जुका (८) भानुरिति हैं॥ और ६ उत्तरेन्द्रों में से हर एक की आठ ८ अग्रदेवियों के नाम (१) श्रीमती (२) रामा (३) सुसीमा (४) प्रभावती (५) जयसेना (६) सुषेणा (७) वसुमित्रा (८) वसुन्धरा हैं॥

इन अग्रदेवियों के अतिरिक्त हर इन्द्र की बहुत २ सी परिवार देवियां हैं जिनके दो भेद हैं—(१) बल्लभिका देवियां (२) सामान्य देवियां ॥ इन देवाङ्गनाओं की आयु जघन्य १ पल्योपम वर्ष से कुछ अधिक और उत्कृष्ट ५५ पल्योपम वर्ष की है ॥

अग्नाथ (अद्वितीयनाथ, अपरनाथ)—धातकीद्वीप की पूर्व दिशा में विजयमेरु के दक्षिण भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें अनागत उत्सर्पिणी काल में होने वाली चौबीसीके आठवें तीर्थंकर का नाम। (आगे देखो शब्द "अढ़ाईद्वीपपाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अग्निवृत्ति—आगे के लिये छूट जाना, विश्राम, बन्धनमुक्ति, सर्वोच्च सुख प्राप्ति, निर्वाण प्राप्ति ॥

अग्निवृत्ति क्रिया—गर्भाधानादि ५३ गर्भान्वय क्रियाओं तथा अवतारादि ४८ क्रियाओं में से अन्तिम क्रिया जो 'कैवल्य-ज्ञान' प्राप्ति के पश्चात् चौधवें गुणस्थान में पहुँच कर शेष अघातिया कर्म निर्जरार्थ (कर्म क्षयार्थ) की जाती है और जिस के अनन्तरही नियमसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है॥ यह क्रिया आत्मस्वभावरूप है जो सर्व कर्मों के क्षय से आत्मा में स्वयम् प्रकट होती है। अतः इस क्रिया सम्बन्धी मंत्रादि का कोई विशेष विधान नहीं है ॥

नोट१—संसार भ्रमण के दुखों से छूटने और शीघ्र अनादि कर्म बंध तोड़कर मुक्तिपद प्राप्त कर लेने का सरल मार्ग प्राप्त करनेके लिये निम्न लिखित गर्भान्वय नामक ५३ क्रियाएं या संस्कार हैं जिन्हें भले प्रकार साधन करने से इस लोक

परलोक के सुख सम्पत्ति और आनन्द को भोगते हुए नियम से अति शीघ्र ही अभीष्टफल (मुक्ति सुख) की प्राप्ति होतीहै:—

(१) गर्भाधान क्रिया, (२) प्रीति क्रिया, (३) सुप्रीति क्रिया, (४) धृति क्रिया, (५) मोद क्रिया, (६) प्रियोद्भव क्रिया, (७) नाम कर्म, (८) बहिर्यान क्रिया (९) निषद्या क्रिया, (१०) अन्न प्राशन(११) व्युष्टि या वर्षवर्द्धन, (१२) चौलि या केशवाय या मुंडन, (१३) लिपी संख्यान (१४) उपनीति या यज्ञोपवीत [जनेऊ] (१५) व्रतचर्या (१६) व्रतावतरण (१७) विवाह (१८) वर्णलाभ (१९) कुल चर्या (२०) गृहीशिता (गृहस्थाचार्यपद) (२१) प्रशान्ति (२२) गृहत्याग (२३) दीक्षाद्य (२४) जिन रूपिता (२५) मौनाध्ययन वृत्ति (२६) तीर्थङ्कर पदोत्पादक भावना (२७) गुरुस्थापनाभ्युपगम (२८) गणोपग्रहण (२९) स्वगुरुस्थान संक्रान्ति (३०) निःसंगत्वात्म भावना (३१) योगनिर्वाण सम्प्राप्ति (३२) योग निर्वाण साधन (३३) इन्द्रोपपाद (३४) इन्द्राभिषेक (३५) विधि दान (३६) सुखोदय (३७) इन्द्र पद त्याग (३८) गर्भावतार (३९) हिरण्यगर्भ (४०) मन्दरेन्द्राभिषेक (४१) गुरुपूजन (४२) यौवराज (४३) स्वराज्य (४४) चक्रलाभ (४५) दिशाञ्जय (४६) चक्राभिषेक (४७) साम्राज्य (४८) निष्क्रान्ति (४९) योग संग्रह (५०) आर्हन्त्य (५१) विहार (५२) योगत्याग (५३) अग्निवृत्ति ॥

नोट २—किसी अजैन को जैनधर्म में दीक्षित करने के लिये जो आठ विशेष क्रियाएँ और ४० साधारण क्रियायें हैं उन्हें 'दीक्षान्वय क्रिया' कहते हैं। वे यह हैं—

(१) अवतारक्रिया (२) व्रतलाभक्रिया (३) स्थानलाभक्रिया (४) गणगृहक्रिया (५) पूजाराध्यक्रिया (६) पुण्ययज्ञक्रिया (७) दृढ़चर्याक्रिया (८) उपयोगिताक्रिया, (९-४८) 'उपनीति' या 'यज्ञोपवीत' आदि 'अग्रनिवृत्ति' पर्यन्त उपर्युक्त ५३ क्रियाओं में की अन्तिम ४० क्रियायें (नं० १४ से ५३ तक)। (आगे देखो शब्द 'अड़सठ क्रिया')॥

{आदि पु० पर्व ३८, श्लोक ५४-३०६, पर्व ३९, श्लोक १-१९९}

नोट ३—इन ५३ गर्भान्वय और ४८ दीक्षान्वय क्रियाओं या संस्कारों में से प्रत्येक का अर्थ व स्वरूप मंत्रों और व्याख्यादि सहित यथास्थान देखें (देखो शब्द "क्रिया" और शब्द "अगारि" के नोट १ में अन्य प्रकार की ५३ क्रियाओं के नाम)

अग्रभानु (अग्निभानु, अग्रभावी)—पुष्करार्द्धद्वीप की पश्चिम दिशामें विद्युन्मालीमेरु के दक्षिण भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्यखंड की अतीत चौबीसी में हुए १९ वें तीर्थंकर का नाम। (आगे देखो शब्द "अढ़ाईद्वीप-पाठ" के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

अग्रश्रुतस्कन्ध (प्रथम श्रुतस्कन्ध, अग्र सिद्धान्त ग्रन्थ)—षटखंडसूत्र और उनकी सर्व टीका, वृत्ति, और व्याख्या धवल, महाधवल, जयधवल, गोमट्टसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि, इन सर्व ग्रन्थ समूह को "अग्र श्रुतस्कन्ध" या "प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ" कहते हैं॥

नोट—इसके सम्बन्ध में विशेष जानने के लिये देखो शब्द "अग्रायणीपूर्व"॥

अग्रसेन—सूर्यवंशी महाराजा "महीधर" का पुत्र॥

इस अग्रसेन ने सुप्रसिद्ध अयोध्यापति महाराजा "मानधाता" की लगभग ५२वीं पीढ़ी में वीर निर्वाण से ४६८१ वर्ष पूर्व श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के तीर्थकाल में (द्वापरयुग के अन्तिम चरण में) जन्म लिया था। अपने पिता महीधर के लगभग २०० वर्ष की वय में राज्य त्याग कर कुलाम्नाय के अनुसार दिगम्बरी दीक्षा धारण करने के पश्चात् ३५ वर्ष की वय में वीरनिर्वाण से ४६४६ वर्ष पूर्व राजकुमार अग्रसेनको राजगद्दी मिली यह राजा ४२५ वर्ष राज्य सुख भोगकर ४६० वर्षकी वयमें वीर नि० से ४५२१ वर्ष पूर्व मिश्रदेश के जैनधर्मी राजा "कुरुपविन्दु" के साथ युद्ध में बड़ी वीरता से लड़ कर मारा गया।

सारे अग्रवंशी या अग्रवाल जाति के लोग इसी राजा के १८ सुपुत्रों की सन्तान हैं। इस राजा ने पिता से राजगद्दी पाने के पश्चात् "पातञ्जलि" नामक एक वेदानुयायी संन्यासी महानुभाव की संगति से अपने कुलधर्म को त्याग कर वैदिकधर्म को ग्रहण कर लिया था जो बहुत पीढ़ियों तक इस की सन्तान में पालन किया जाता रहा। पश्चात् अगरोहापति राजा "दिवाकरदेव" के राज्य में वीर नि० सं० ५१५ के पश्चात् और ५६५ के पूर्व (विक्रम सं० २७ और ७७ के अन्तर्गत) सप्ताङ्गपाटी दिगम्बराचार्य 'श्री लोहाचार्य जी' के उपदेश से जैनधर्म फिर इस वंश में राजधर्म बन गया जिसे बहुत से अग्रवाल जातीय लोग आजतक पालन कर रहे हैं॥

नोट—महाराजा अग्रसेन और उस की सन्तान का सविस्तार इतिहास जानने के लिये इस कोष के लेखक लिखित "अग्रवाल इतिहास" नामक ग्रन्थ देखें॥

अगसोच— देखो शब्द "अग्रचिन्ता"॥

अग्रहण—(प्रा० अगहण)-(१) अग्राह्य, नग्रहण करने योग्य, अस्वीकृत, अस्वीकार। (२) वह पुद्गल वर्गणा जिसका औदारिकादि शरीररूप से ग्रहण न होसके (अ. मा.)॥

(३) मार्गशिर मास का नाम जो अगवंश के मूल सूर्यवंशी महाराजा "अगसेन" के राज्याभिषेक का अग्रमास अर्थात् प्रथम मास होने से तथा उन्हीं के नाम पर विक्रम सं० से ४५३० वर्ष पूर्व से "अगहण" नाम से प्रसिद्ध हुआ॥

अगृहीत मिथ्यात्व—देखो शब्द "अगृहीत मिथ्यात्व"॥

अगृहीतार्थ—देखो शब्द "अगृहीतार्थ"॥

अग्रायणी पूर्व (आग्रायणीय पूर्व)—श्रुतज्ञान के १२ मूल भेदों या अङ्गों मेंसे अन्तिम भेद के अर्थात् बारहवें अंग "दृष्टिवाद" के चतुर्थ भेद "पूर्वगत" के जो १४ भेद हैं उनमें से दूसरे भेद का नाम "आग्रायणीय पूर्व" है॥

इस पूर्व में ७०० सुनय व दुर्नय, पञ्चास्तिकाय, षटद्रव्य, सप्ततत्व, नव पदार्थ आदि का सविस्तर वर्णन है। इस पूर्व में (१) पूर्वान्त (२) अपरान्त (३) ध्रुव (४) अध्रुव (५) अच्यवनलब्धि (६) अध्रुव संप्रणधि (७) कल्प (८) अर्थ (९) भौमावय (१०) सर्वार्थ कल्पक (११) निर्वाण (१२) अतीतानागत (१३) सिद्ध (१४) उपाध्याय, इन १४ वस्तुओं का सविस्तार कथन है। इन १४ वस्तु में से पञ्चम 'वस्तु' "अच्यवनलब्धि" में २० पाहुड़ [प्राभृत] हैं,

जिन में से "कर्म प्रकृति" नामक चौथे पाहुड़ अर्थात् प्राभृत में (१) कृति (२) वेदना (३) स्पर्श (४) कर्म (५) प्रकृति (६) बन्धन (७) निबन्धन (८) प्रक्रम (९) उपक्रम (१०) उदय (११) मोक्ष (१२) संक्रम (१३) लेश्या (१४) लेश्याकर्म (१५) लेश्या-परिणाम (१६) सातासात (१७) दीर्घह्रस्व (१८) भवधारण (१९) पुद्गलात्मा (२०) निधत्तानिधत्तक (२१) सनिकाचित (२२) अनिकाचित (२३) कर्मस्थिति (२४) स्कन्ध, यह २४ "योगद्वार" हैं ॥

इस पूर्व में ९६ लक्ष मध्यम पद हैं। एक मध्यम पद १६३४८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षरों का होता है।

नोट १—"पूर्वगत" के चौदह भेद (१) उत्पाद (२) आग्रायणीय (३) वीर्यानुप्रवाद (४) अस्तिनास्तिप्रवाद (५) ज्ञानप्रवाद (६) सत्यप्रवाद (७) आत्मप्रवाद (८) कर्मप्रवाद (९) प्रत्याख्यान (१०) विद्यानुवाद (११) कल्याणवाद (१२) प्राणानुवाद (१३) क्रिया-विशाल (१४) लोकबिन्दुसार। इन में क्रम से १०, १४, ८, १८, १२, १२, १६, २०, ३०, १५, १०, १०, १०, १०, सर्व १९५ वस्तु नामक अधिकार हैं। हर वस्तु नामक अधिकार में बीस बीस प्राभृत या पाहुड़ नामक अधिकार हैं जिन सर्व की गणना ३९०० है। हर प्राभृत या पाहुड़ में चौबीस २ 'प्राभृत-प्राभृत या पाहुड़ाङ्ग या योगद्वार नामक अधिकार हैं। जिन सर्व की संख्या ९३६०० है अर्थात् "पूर्वगत" के चौदहों भेदों में सर्व ९३६००पाहुड़ाङ्ग या प्राभृतप्राभृत या योगद्वार नामक अधिकार हैं और केवल "आग्रायणीय-पूर्व" में १४ वस्तु के सर्व २८० पाहुड़ या ६७२० पाहुड़ांग अर्थात् प्राभृतप्राभृत या योग्यद्वार नामक अधिकार हैं ॥

नोट २—इस 'आग्रायणीयपूर्व' सम्बंधी पूर्वोक्त १४वस्तु में से 'अच्यवन'नामक पञ्चम वस्तु के जो उपर्युक्त २० प्राभृत हैं उन में से 'कर्म प्राभृत' नामक चतुर्थ प्राभृतके चौबीसों योगद्वारों के अन्तिम पूर्ण ज्ञाता मुनि 'श्री-धरसेन' थे जो प्रथम अङ्ग 'आचारांग'के पाठी १९वर्ष रह कर वीर नि०सं० ६३३ में गिरनार पर्वत की चंद्रगुहा से स्वर्गवासी हुए। अपनी आयु के अन्तिम भाग में इन्होंने यह 'कर्मप्राभृत' 'श्री पुष्पदंत' और 'भूतबलि' शिष्योंको पढ़ाया जो शुभ मिती आषाढ़ शु० ११ को समाप्त हुआ। इन्होंने इस प्राभृत का उपसंहार करके (१) जीवस्थान (२) क्षुल्लक-बंध (३) बन्धस्वामित्व (४) भाववेदना (५) वर्गणा (६) महाबन्ध, इन छह खंडों में उसे रचकर लिपिबद्ध किया और उसकी ज्येष्ठ शुक्ल ५ को चतुर्विधसंघ सहित वेष्ठनादि में वेष्टित कर यथा विधि पूजा की। इसी लिये यह शुभ तिथि उसी दिन से 'श्रुत पञ्चमी' कहलाती है ॥

नोट ३—उपर्युक्त छह खंडों में से पहिले पांच खंड ६००० (छह सहस्र) सूत्रोंमें और छटा खंड ३०००० (तीस सहस्र) सूत्रों में रचे गये। यह छहों खंड मिलकर 'षट-खंडसूत्र' के नाम से तथा 'कर्मप्राभृत' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन्हीं को 'प्रथम श्रुत स्कंध' या 'प्रथमसिद्धांतग्रन्थ' भी कहते हैं ॥

नोट४—उपर्युक्त 'श्रीधरसेन'आचार्य के ही लगभग काल में एक 'श्री गुणधर' आचार्य थे जिन्हें उपर्युक्त १४ पूर्वों में से ५ वें 'ज्ञानप्रवाद' पूर्वके अन्तरगत जो १२ वस्तु हैं उनमें से दसवीं वस्तुके तीसरे 'कषाय-प्राभृत'

या 'कषायपाहुड़' का पूर्ण ज्ञान था। इन्होंने इस प्राभृत का सारांश १८३ मूल गाथाओं में और ५३ विवरण रूप गाथाओं में रचकर और १५महा अधिकारोंमें विभाजित करके'श्री नागहस्ति' और 'आर्यमंक्षु' मुनियोंको व्याख्या सहित सुनाया जिन्होंने उसे लिपिबद्ध भी करदिया। यह 'कषायप्राभृत'का सारांशरूप कथन 'दोष-प्राभृत' या 'कषायप्राभृत' दोनों नामों से प्रसिद्ध है। इसी को 'द्वितीयश्रुतस्कंध' या 'द्वितीयसिद्धान्तग्रन्थ' भी कहते हैं॥

नोट ५—पश्चात् 'प्रथम श्रुतस्कंध' की जो जो प्राकृत, संस्कृत, या कर्णाटकीय भाषाओं में टीकायें या वृत्तियां आदि रची गई वे भी "प्रथमश्रुतस्कंध" या प्रथम सिद्धान्तग्रन्थ ही कहलाई। इसी प्रकार 'द्वितीयश्रुतस्कन्ध' की टीका आदि भी "द्वितीय श्रुत स्कन्ध" या "द्वितीयसिद्धान्तग्रन्थ" की कोटि ही में गिनी गई॥

"प्रथम श्रुतस्कन्ध" पर निम्न लिखित टीका आदि लिखी गई:—

(१) "श्री पद्ममुनि" ने पहिले ३ खंडों की १२ हज़ार श्लोक प्रमाण टीका रची॥

(२) "श्री तुम्बुलूर" आचार्य (श्रीवर्यदेव) ने छटे खंड की ७ हज़ार श्लोक प्रमाण कर्णाटकीय भाषा में "पंजिकाटीका" रची॥

(३) तार्किकसूर्य "श्री स्वामी समन्तभद्र आचार्य" ने पहिले पाँच खंडोंकी संस्कृत टीका ४८ हज़ार श्लोकों में रची॥

(४) श्री वप्पदेव गुरुने पहिले प्रथम के ५ खंडों पर "व्याख्याप्रज्ञप्ति" नामक व्याख्या लिखी, जिस में छठे खंड का संक्षेप कथन भी सम्मिलित कर दिया, पश्चात् छठे खंड पर भी ८००५ श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी॥

(५) चित्रकूटपुर निवासी सिद्धान्त तत्वज्ञाता 'श्री एलाचार्य' के शिष्य 'श्री वीरसेनाचार्य' ने पूर्व खंडों पर १८ अधिकारों में "सत्कर्म" नामक ग्रन्थ लिखा फिर छहों खंडों पर ७२ हज़ार श्लोक परिमित संस्कृत प्राकृत भाषा मिश्रित "धवल" नाम की टीका रची॥

(६) पश्चात् श्री नेमचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती ने उपर्युक्त सिद्धान्त ग्रन्थों का साररूप "गोम्मटसार" "लब्धिसार" "क्षपणासार" आदि ग्रन्थ रचे॥

"द्वितीय श्रुतस्कन्ध" पर निम्न लिखित टीका आदि लिखी गई:—

(१) उपर्युक्त "श्रीनागहस्ति" और 'आर्यमंक्षु' मुनियों से "श्रीयतिवृषभ" (यतिनायक) मुनि ने "दोषप्राभृत" द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सूत्रों का अध्ययन करके उसकी "चूर्णवृत्ति" ६००० (छह हज़ार) श्लोक प्रमाण सूत्ररूप बनाई॥

(२) "श्री उच्चारण" (श्री समुद्धरण) आचार्य ने १२००० श्लोक प्रमाण 'उच्चारणवृत्ति' नामक एक विस्तृत टीका रची जिसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने गुरु "श्रीजिनचन्द्राचार्य" से पढ़कर नाटकत्रय (समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार) और ८४ पाहुड़ आदि ग्रन्थ रचे। यह अपने गुरुश्रीजिनचन्द्राचार्य के पश्चात वीर नि. सं. ६७२ से ७२४ (शाका ४६ से १०१) तक उनके पट्टाधीश रहे॥

(३) "श्री श्यामकुंड" आचार्य ने प्रथम श्रुतस्कन्ध के केवल छटे खंड को छोड़कर दोनों श्रुतस्कन्धों पर १२००० श्लोक प्रमाण टीका रची॥

(४) उपर्युक्त "तुम्बुलूर" नामक आ-

चार्य ने भी पहिले तो प्रथम श्रुतस्कन्ध के छठे खंड को छोड़कर शेष दोनों श्रुतस्कन्धों पर कर्णाटकीय भाषा में ८४००० श्लोक प्रमाण "चूड़ामणि" नामक व्याख्या रची। पश्चात् छठे खंड परभी ७००० श्लोक प्रमाण टीका लिखी॥

(५) उपर्युक्त 'श्रीवप्पदेव गुरु' ने प्राकृत भाषा में ६०००० (साठ हज़ार) श्लोक प्रमाण द्वितीय श्रुतस्कन्धकी व्याख्या रची॥

(६) उपर्युक्त 'धवल' नामक टीका के रचयिता 'श्रीवीरसेनाचार्य' ने कषायप्राभृत की चारों विभक्तियों पर 'जयधवल' नामक टीका २० हज़ार श्लोकों में रचकर स्वर्गारोहण किया। अतः उनके प्रिय शिष्य 'श्री जयसेनगुरु' ने ४०००० श्लोक और बनाकर इसे पूरे साठ हजार श्लोकों में पूर्णकर दिया॥

नोट ६—उपरोक्त 'श्रीधवल' और 'जयधवल' नामक टीकाओं का (या दोनों श्रुतस्कन्धों का) सारभूत एक 'महाधवल' नामक ४०००० (चालीस सहस्र) श्लोक प्रमाण ग्रन्थ 'श्री देवसेनस्वामी' ने रचा॥

नोट७—उपर्युक्त आचार्यों का चरित्र और समय आदि जानने के लिए देखो 'ग्रन्थ बृहत् विश्व चरितार्णव'॥

अग्राह्यवर्गणा—परमाणु से लेकर महास्कन्ध पर्यन्त पुद्गल द्रव्य की जो २३ वर्गणा हैं उनमें से नीचे लिखी चार प्रकार की वर्गणाएँ 'अग्राह्यवर्गणा' हैं:—

(१) अग्राह्य-आहार-वर्गणा—जो आहारयोग्य होने पर भी "ग्राह्य-आहारवर्गणा" की समान औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर और आहारकशरीर का कोई अंश नहीं बनती, किन्तु उनके बनने में ग्राह्यआहारक वर्गणा की केवल सहायक होती है॥

(२) अग्राह्य-तैजस-वर्गणा—जो "ग्राह्यतैजसवर्गणा" की समान तैजसशरीर तो नहीं बनती किन्तु 'ग्राह्यतैजसवर्गणा' को तैजसशरीर बनने में कुछ न कुछ सहायक होती है॥

(३) अग्राह्य-भाषावर्गणा-जो वचनरूप परिणवाने में "ग्राह्य-भाषावर्गणा" की सहायक तो होती है किन्तु स्वयम् वचनरूप नहीं परिणवती॥

(४) अग्राह्य-मनोवर्गणा—जो हृदयस्थ द्रव्यमन के बनने में "ग्राह्य-मनोवर्गणा" को सहायता तो देती है किन्तु स्वयम् द्रव्यमन नहीं बनती॥

नोट—२३ वर्गणाओं के नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) अणुवर्गणा (२) संख्याताणुवर्गणा (३) असंख्याताणुवर्गणा (४) अनन्ताणुवर्गणा (५) ग्राह्याहारवर्गणा (६) अग्राह्याहारवर्गणा (७) ग्राह्यतैजसवर्गणा (८) अग्राह्यतैजसवर्गणा (९) ग्राह्य भाषावर्गणा (१०) अग्राह्य भाषावर्गणा (११) ग्राह्य मनोवर्गणा (१२) अग्राह्य मनोवर्गणा (१३) कार्मणवर्गणा (१४) ध्रुववर्गणा (१५) सान्तरनिरन्तरवर्गणा (१६) सान्तरनिरन्तर शून्यवर्गणा (१७) प्रत्येकशरीरवर्गणा (१८) ध्रुव शून्यवर्गणा (१९) बादर निगोदवर्गणा (२०) बादर निगोदशून्यवर्गणा (२१) सूक्ष्म निगोदवर्गणा (२२) नभोवर्गणा (२३) महास्कन्धवर्गणा॥

(गो. जी. गा. ५९३-६०७ इत्यादि)

अग्रोदक (प्रा० अग्गोदय)—लवणसमुद्र के मध्यभाग की दो कोश ऊँची शिखा जो जल के उतार चढ़ाव से न्यूनाधिक होती रहती है। (अ० मा०)॥

अग्लानिशुद्धि—अष्ट लौकिक शुद्धियों में से एक प्रकार की शुद्धि जो किसी अपवित्र वस्तु के सम्बंध में ग्लानि न करने ही से या किसी साधारण उपाय द्वारा मन से ग्लानि दूर हो जाने पर लोक-मान्य हो; जैसे शर्करा (खांड, चीनी) जिसके बनने में असंख्य अगणित छोटे-बड़े त्रस (जङ्गम) जीवों का घात हो कर उनका कलेवर उसी में सम्मिलित हो जाने पर भी तथा चमारादि अस्पर्श्य शूद्रों द्वारा पददलित होने पर भी उसे अशुद्ध नहीं माना जाता; म्लेच्छ स्पर्शित दुग्ध, या मत्स्यजीवी मांसाहारी धीवर (कहार, महरा) का छुआ जल; अस्पर्श्य-अकारू से छू जाने पर सुवर्णस्पर्शित जल से छिड़कना, रोगी रजस्वला स्त्री को या जन्म मरण सम्बंधी लगे सूतक वाले रोगी मनुष्य को जिसे वैद्यक-शास्त्रानुकूल स्नान वर्जित हो कोई निरोगी मनुष्य यथानियम कई बार छू छू कर स्नान करे तो वह रोगी शुद्ध हुआ माना जाता है। इत्यादि ॥

अघ—पाप, व्यसन, दुःख, अधर्म ॥

ज्योतिषचक्र सम्बंधी ८८ ग्रहों में से ७६ वें ग्रह का नाम ॥

नोट—८८ ग्रहों के नाम जानने के लिये आगे देखो शब्द "अठासीग्रह" ॥

(त्रि० गा० ३६३—३७०)

अघकारीक्रिया (अघकारिणी क्रिया, अधिकरणक्रिया) —पापोत्पादक क्रिया, हिंसा के उपकरण शस्त्रादि ग्रहण करने का कार्य करना, साम्परायिक आस्रव सम्बन्धी २५ क्रियाओं में से आठवीं क्रिया का नाम ॥

नोट १—कषाय सहित जीवों के जो कर्मास्रव होता है उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं। यही आस्रव संसार परिभ्रमण का मूल कारण है। इसके मूल भेद (१) ५ इन्द्रिय [स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र] (२) ४ कषाय [क्रोध, मान, माया, लोभ] (३) ५ अव्रत अर्थात् हिंसा, अनृत [असत्य], स्तेय [चोरी], कुशील या अब्रह्म, परिग्रह और (४) २५ क्रिया, यह सर्व ३९ हैं। २५ क्रिया निम्न लिखित हैं:—

(१) सम्यक्त्ववर्द्धनी क्रिया (२) मिथ्यात्वपुष्टकारिणी क्रिया (३) प्रयोग क्रिया या असंयमवर्द्धनी क्रिया (४) समादान क्रिया (५) ईर्यापथ क्रिया (६) प्रादोषिक क्रिया (७) कायिक क्रिया (८) अधिकरण क्रिया (अघकारी क्रिया) (९) पारितापिक क्रिया (१०) प्राणातिपातिक क्रिया (११) दर्शन क्रिया (१२) स्पर्शन क्रिया (१३) प्रात्ययिक क्रिया (१४) समन्तानुपात क्रिया (१५) अनाभोग क्रिया (१६) स्वहस्त क्रिया (१७) निसर्ग क्रिया (१८) विदारण क्रिया (१९) आज्ञाव्यापादिक क्रिया (२०) अनाकांक्षा क्रिया (२१) प्रारम्भ क्रिया (२२) पारिग्रहिक क्रिया (२३) माया क्रिया (२४) मिथ्यादर्शन क्रिया (२५) अप्रत्याख्यान क्रिया ॥

नोट २—प्रत्येक क्रिया का स्वरूप यथा स्थान देखें ॥

अघटितब्रह्म (परमब्रह्म, ब्रह्मदेव)—पुष्करार्द्ध द्वीपकी पूर्वदिशा में मन्दरमेरु के दक्षिण-भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्यखण्ड की अनागत चौबीसी में होने वाले चौथे तीर्थंकर का नाम। (आगे देखो शब्द 'अढ़ाईद्वीपपाठ' के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अघन—[१] अघनपान, पतला, पेय अर्थात्

पीने योग्य। पेय पदार्थों के घन, अघन, लेपी, अलेपी, ससिक्थ, असिक्थ, इन ६ भेदों में से दूसरे प्रकार का पदार्थ जो दही आदि की समान गाढ़ा न हो॥

नोट१—दही आदि पीने योग्य गाढ़े पदार्थों को 'घन' और नारंगी, अनार आदि फलों के रस को व दुग्ध, जल आदि पतले पेय पदार्थों को 'अघन'; हथेली पर चिपकने वाले पेय पदार्थों को 'लेपी' और न चिपकने वालों को 'अलेपी'; भात के कण सहित माँड को तथा सागूदाना आदि अन्य पदार्थों के कण सहित पके जल को अथवा स्निग्ध पेय पदार्थों को 'ससिक्थ' और बिना कण के माँड (कांजी) को तथा औषधि आदि के पके जल को अथवा जो पेय पदार्थ स्निग्ध न हों उनको 'असिक्थ' कहते हैं॥

नोट२—सर्वभक्ष्य पदार्थ ४ भेदों में विभाजित हैं-(१) खाद्य (२) स्वाद्य (३) लेह्य (४) पेय, इनमें से 'पेय' के उपर्युक्त ६ भेद हैं॥

[२] गणित की परिभाषा में 'अघन' वह अङ्क है जो किसी पूर्णाङ्क का घन न हो अर्थात् जो किसी अङ्क को ३ जगह रख कर परस्पर गुणन करने से प्राप्त नहीं हुआ हो॥

नोट ३—किसी अङ्क को तीन जगह रख कर उन्हें परस्पर गुणन करने से जो अङ्क प्राप्त हो उसे उस प्रथम अङ्क का 'घन' कहते हैं, जैसे १ का घन (१×१×१=१) एक है अर्थात् एक के अङ्क को तीन जगह रखकर जब परस्पर गुणन किया तो एक ही प्राप्त हुआ; अतः १ का घन १ ही है। इसी प्रकार २ का घन (२×२×२=८) आठ है अर्थात् दो के अङ्क को तीन जगह रख कर परस्पर गुणन करने से (दो दुगुण ४ और ४ दुगुण ८) आठ का अङ्क प्राप्त हुआ; अतः २ का घन ८ है। ऐसे ही ३ का घन (३×३×३=२७ अर्थात् तीन तिये ९ और ९ तिये २७) सत्ताईस का अङ्क है। ४ का घन ४×४×४=६४ है; ५ का घन १२५, ६ का घन २१६, ७ का घन ३४३, ८ का घन ५१२, ९ का घन ७२९, १० का घन १०००, ११ का घन १३३१ इत्यादि। यहां उपर्युक्त अङ्क १, ८, २७, ६४, १२५, २१६, ३४३, ५१२, ७२९, १०००, १३३१ आदि घनाङ्क हैं जो क्रम से १, २, ३ आदि अङ्कों के 'घन' हैं। अतः जो अङ्क किसी अन्य अङ्क का घन न हो उसे अघन कहते हैं अर्थात् उपर्युक्त घनाङ्कों को छोड़ कर शेष सर्व अङ्क २, ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २८, २९, ३० आदि में से प्रत्येक अङ्क अघनाङ्क है॥

अघनधारा—लोकोत्तर गणित सम्बन्धी १४ धाराओं में से उस धारा का नाम जिसका हर अङ्क 'अघन' हो। "सर्वधारा" में से 'घनधारा' के सर्व अङ्कों को छोड़ कर जो शेष अङ्क रहें वे सर्व 'अघनधारा' के अङ्क हैं अर्थात् १ से प्रारम्भ करके उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक की पूर्ण संख्या (सर्वधारा) के अङ्कों में से घनधारा के सर्व अङ्क १, ८, २७, ६४, १२५, २१६, ३४३, ५१२, ७२९, १०००, १३३१ आदि छोड़ देने से जो २, ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २८, २९, ३० आदि उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक शेष अङ्क हैं उन सर्व के समूह को "अघनधारा" कहते हैं॥

इस धारा का प्रथम अङ्क २ है और *अन्तिम अङ्क "उत्कृष्ट अनन्तानन्त" है*

जिसकी संख्या अङ्कों द्वारा प्रकट किये जाने योग्य नहीं है केवल सर्वज्ञ-ज्ञानगम्य ही है। इस धारा के मध्य के अङ्क ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११ आदि एक कम उत्कृष्ट अनन्तानन्त पर्यंत अनन्तानन्त हैं। उत्कृष्ट अनन्तानन्त में से "घनधारा" के अङ्कों की 'स्थान-संख्या' घटा देने से जो संख्या प्राप्त होगी वह इस 'अघनधारा' के अङ्कों की "स्थान संख्या" है। (देखो शब्द 'अङ्कगणना' तथा 'अङ्कविद्या' और उसका नोट ५)॥

अघनपान—देखो शब्द "अघन"॥

अघनमातृकधारा—इसको "अघनमूल-धारा" भी कहते हैं। अलौकिक अङ्कगणित या लोकोत्तर संख्यामान सम्बन्धी १४ धाराओं में से वह धारा जिसका कोई अङ्क किसी अन्य अङ्क का 'घनमूल' न हो॥

सर्वधारा के अङ्कों में से घनमातृक (घनमूल) धारा के सर्व अङ्क छोड़ने से जो शेष अङ्क रहें उन सर्व के समूह को "अघनमातृकधारा" कहते हैं। अर्थात् जिस अङ्क का घन उत्कृष्ट अनन्तानन्त का आसन्न अङ्क है उससे आगे के उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक के सर्व ही अङ्क 'अघनमातृकधारा' के अङ्क हैं।

नोट १—किसी अङ्क को तीन जगह रख कर परस्पर गुणन करने से जो अङ्क प्राप्त हो वह अङ्क पूर्व अङ्क का 'घन' कहलाता है और वह पूर्व अङ्क उत्तर अङ्क का "घनमूल" या "घनमातृक" कहलाता है। जैसे २ का घन ८ है और ८ का घनमूल २ है, ३ का घन २७ है और २७ का घनमूल ३ है॥

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, आदि उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक के सर्व अङ्क 'सर्वधारा' के अङ्क हैं। १, २, ३, आदि उत्कृष्ट अनन्तानन्त के 'आसन्न-घनमूल' तकके सर्व अङ्क "घनमातृकधारा" के अङ्क हैं। इससे आगे के उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक के सर्व अङ्क "अघनमातृकधारा" के अङ्क हैं। अतः इस धारा का प्रथम अङ्क (प्रथम स्थान) उत्कृष्ट अनन्तानन्त के "आसन्न घनमूल" से १ अधिक है और अन्तिम अङ्क (अन्तिम स्थान) "उत्कृष्ट अनन्तानन्त" है। सर्व धारा की स्थान-संख्या (उत्कृष्ट अनन्तानन्त) में से 'घनमातृकधारा" की स्थान संख्या (घनमातृक धारा का अन्तिम अङ्क) घटा देने से जो संख्या प्राप्त हो वह इस अघनमातृकधारा के अङ्कों की अङ्कसंख्या या "स्थान संख्या" है। (देखो शब्द 'अङ्कविद्या का नोट ५)॥

नोट २—"आसन्न" शब्द का अर्थ है 'निकट'। उत्कृष्ट अनन्तानन्त की संख्या घनधारा का अङ्क नहीं है अर्थात् वह स्वयम् किसी भी अङ्क का घन नहीं है अतः उससे पूर्व उसके निकट से निकट जो अङ्क किसी अन्य अङ्क का घन हो वही अङ्क उस घन की अपेक्षा अनन्तानन्त की संख्या का "आसन्न-अङ्क" कहिलायगा और वह अन्य अङ्क उस का 'आसन्नघनमूल' कहिलायगा। जैसे १२८ की संख्या स्वयम् किसी अङ्क का घन नहीं है किन्तु उससे पूर्व निकट से निकट १२५ का अङ्क ५ का घन है। अतः यहां १२५ को १२८ का आसन्न अङ्क और ५ को १२८ का "आसन्न घनमूल" कहेंगे॥

अघभी—पापभीरु, पापों से भयभीत॥

गृहस्थधर्म को सुयोग्यरीति से पालन करने योग्य पुरुष के १४ मुख्य गुणों में से उस गुण को धारण करने वाला मनुष्य

जिस से वह सर्व प्रकार के पापों से डरता रहे।

(देखो शब्द "अगारी") ॥

अघातिया—न घात करने वाला, चोटादि दुःख न पहुँचाने वाला, नष्ट न करने वाला, कर्म प्रकृतियों के दो मूल भेदों—घातिया, अघातिया—में से एक का नाम ॥

अघातियाकर्म—वह कर्म प्रकृति जो जीव के अनुजीवी गुण को न घाते, किन्तु जीव के लिये बाह्य शरीरादि का सम्बन्ध मिलावे ॥

इस कर्म के मूलभेद चार (१) आयुकर्म (२) नामकर्म (३) गोत्रकर्म (४) वेदनीयकर्म हैं और उत्तर भेद १०१ अथवा १११ हैं ॥

(१)**आयुकर्म**—जो कर्म जीवको किसी पर्याय धारण कराने के लिये निमित्त कारण है उसे आयुकर्म कहते हैं। इस कर्म का स्वभाव लोहे की साँकल या काठ के यंत्र की समान है जिससे राजा आदि किसी अपराधी को नियत स्थान में रख कर अन्य स्थान में जाने से रोके रखते हैं। इस कर्म के (क) नरकायु (ख) तिर्यञ्चायु (ग) मनुष्यायु और (घ) देवायु, यह ४ भेद हैं ॥

(क) जिस कर्म के निमित्त से जीव नरक पर्याय (नरकशरीर) में स्थित रहे उसे "नरकायुकर्म" कहते हैं। इस कर्म की जघन्य स्थिति १० सहस्र वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपमकाल प्रमाण है ॥

(ख) जिसकर्म के निमित्तसे जीव तिर्यंच पर्याय (तिर्यञ्च शरीर) में स्थित रहे उसे "तिर्यञ्चायु कर्म" कहते हैं। इस कर्म की जघन्य स्थित अन्तरमुहूर्त्त काल और उत्कृष्ट स्थित ३ पल्योपम काल प्रमाण है। देव, मनुष्य और नारकी जीवों के अतिरिक्त शेष सर्व संसारी प्राणियों को तिर्यञ्च कहते हैं। (एक अन्तर मुहूर्त्त दो घड़ी या ४८ मिनट से कुछ कम काल को कहते हैं। जघन्य अन्तरमुहूर्त्त एक आवली से एक समय अधिक और उत्कृष्ट अन्तरमुहूर्त दो घड़ी से एक समय कम का होता है। मध्य के भेद एक आवली से दो समय अधिक, ३ समय अधिक इत्यादि दो समय कम दो घड़ी तक असंख्यात हैं)। [देखो शब्द "अङ्क विद्या" का नोट ८] ॥

(ग) जिस कर्म के निमित्त से जीव मनुष्य पर्याय में स्थित रहे उसे "मनुष्यायु कर्म" कहते हैं। इस कर्म की जघन्य व उत्कृष्ट स्थित "तिर्यञ्चायु कर्म" की स्थित के समान है ॥

(घ) जिस कर्म के निमित्त से जीव देव पर्याय में स्थित रहे उसे "देवायु कर्म" कहते हैं। इस कर्म की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति "नरकायु कर्म" की स्थिति के समान है ॥

सामान्यतयः आयुकर्म की जघन्य स्थित एक स्वास (बाल स्वासोच्छ्वास) के १८ वें भागमात्र अंतरमुहूर्त्त काल है और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम काल है ॥ तत्काल के उत्पन्न हुए स्वस्थ बालक के स्वासोच्छ्वासको 'बाल-स्वासोच्छ्वास' कहते हैं जो युवा स्वस्थ पुरुष के स्वासोच्छ्वास का ५ वाँ भाग मात्र और एक मुहूर्त्त का ३७७३ वां भाग होता है। स्वस्थ पुरुष की नाड़ी भी एक मुहूर्त्त में (दो घड़ी या ४८ मिनट में) ३७७३ बार फड़कती है ॥

विशेष—नरकायु और देवायु की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम और जघन्य १० सहस्र वर्ष है। मनुष्य और तिर्यञ्च की उत्कृष्ट स्थिति ३ पल्योपम और जघन्य अन्तरमुहूर्त्त काल है॥ उत्कृष्ट स्थिति केवल संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव ही को बँधती है। नरकायु की उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से केवल मिथ्यादृष्टी मनुष्य व तिर्यञ्च ही के बँधती है। देव आयु की उत्कृष्ट स्थिति जघन्य संक्लेश परिणामों से केवल सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही सातवें गुण स्थान चढ़ने को सन्मुख छठे गुणस्थान वाला ही बांधता है॥ शेष तिर्यञ्च और मनुष्य आयु की उत्कृष्ट स्थिति जघन्य संक्लेश परिणाम वाला मिथ्यादृष्टी जीव ही बांधता है॥

(२) नामकर्म—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारों पर्यायों सम्बंधी सर्व प्रकार के शरीरों की अनेक प्रकार की रचना के लिये जो कर्म निमित्त-कारण है उसे "नामकर्म" कहते हैं। इस कर्म का स्वभाव चितेरे (चित्रकार) की समान है जो अनेक प्रकार के चित्राम् बनाता है। इस कर्म के २ या ४२ या ९३ अथवा १०३ भेद हैं :—

२ भेद—(१) पिण्ड प्रकृति, अर्थात् कई २ भेद वाली प्रकृति (२) अपिण्ड प्रकृति, अर्थात् अभेद वाली प्रकृति॥

४२ भेद—१४ पिण्ड प्रकृतियां और २८ अपिण्ड प्रकृतियां॥

९३ भेद—६५ भेद चौदह पिण्डप्रकृतियों के और २८ अपिण्ड प्रकृतियां॥

१०३ भेद—७५ भेद चौदह पिण्ड-प्रकृतियों के और २८ अपिण्ड प्रकृतियां॥

चौदह पिंड प्रकृतियां अपने ६५ भेदों सहित निम्न प्रकार हैं:—

(१) गति ४—नरकगति, तिर्यञ्च गति, मनुष्यगति, देवगति॥

(२) जाति ५—एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रिय जाति, पञ्चेन्द्रियजाति॥

(३) शरीर ५—औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्माणशरीर॥

(४) आंगोपांग ३—औदारिकआंगोपांग, वैक्रियिक आंगोपांग, आहारकआंगोपांग॥

नोट१—दो जंघा, दो भुजा, नितम्ब, पीठ, हृदय, शिर, यह आठ अङ्ग कहलाते हैं और इन अंगों के अङ्ग या अवयव कान नाक, आँख, कंठ, नाभि, अँगुली, आदि उपांग कहलाते हैं॥

(५) बन्धन५—औदारिकशरीर बन्धन वैक्रियिकशरीर बंधन, आहारकशरीर बन्धन, तैजसशरीर बन्धन, कार्माणशरीर बन्धन॥

(६) संघात५—औदारिकशरीर संघात, वैक्रियिकशरीर संघात, आहारकशरीर संघात, तैजसशरीर संघात, कार्माणशरीर संघात।

(७) संस्थान६—समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वातिक संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामनसंस्थान, हुण्डक संस्थान।

(८) संहनन ६—वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलक संहनन, असंप्राप्तासृपाटिक संहनन, ॥

(९) स्पर्श ८—कठोर, कोमल, गुरु (भारी), लघु (हलका), रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्ण ॥

(१०) रस ५—तिक्त (चर्परा), कटु (कड़वा), कषायल, आम्ल (खट्टा), मधुर (मीठा) ॥

(११) गन्ध २—सुगन्ध, दुर्गन्ध ॥

(१२) वर्ण ५—कृष्ण (काला), नील, पीत, पद्म(लाल), शुक्ल (स्वेत) ॥

(१३) आनुपूर्वी ४—नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी ॥

(१४) विहायोगति २—प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति ॥

अट्टाईस अपिंड प्रकृतियां:—

(१) अगुरुलघु (२) उपघात (३) परघात (४) आतप (५) उद्योत (६) उच्छ्वास (७) निर्माण (८) प्रत्येक (९) साधारण (१०) त्रस (११) स्थावर (१२) सुभग (१३) दुर्भग (१४) सुस्वर (१५) दुःस्वर (१६) शुभ (१७) अशुभ (१८) सूक्ष्म (१९) स्थूल (२०) पर्याप्त (२१) अपर्याप्त (२२) स्थिर (२३) अस्थिर (२४) आदेय (२५) अनादेय (२६) यशःकीर्ति, (२७) अयशःकीर्ति (२८) तीर्थङ्कर ॥

इस प्रकार नामकर्मकी उपर्युक्त चौदह पिंडप्रकृतियों की ६५ प्रकृतियां और २८ अपिंड प्रकृतियां सर्व मिला कर ९३ प्रकृतियां हैं ॥

नोट २—इन २८ अपिंड प्रकृतियों में से ७वीं निर्माण प्रकृति के भी दो भेद (१) स्थाननिर्माण और (२) प्रमाणनिर्माण माने जाते हैं जिससे पिंडप्रकृतियों की संख्या १५ और अपिंडप्रकृतियों की २७ गिनी जाती है। किसी किसी आचार्य ने निर्माण प्रकृतिको पिंडप्रकृतियों में गिनाया है और विहायोगति प्रकृति को जो उपर्युक्त १४ पिंड प्रकृतियों में गिनाई गई है अपिंड में गिनाया है, अर्थात् निर्माण प्रकृति और विहायोगति प्रकृति को परस्पर एक दूसरे के स्थान में परिवर्तित करके गिनाया है ॥

चौदह पिंडप्रकृतियों में शरीर पिंडप्रकृति के जो उपर्युक्त ५ भेद हैं उनके निम्नलिखित १० संयोगी भेद और हैं जिससे १४ पिंडप्रकृतियों के ६५ के स्थान में ७५ भेद हो जाते हैं:—

(१) औदारिकतैजस (२) औदारिककार्माण (३) औदारिकतैजसकार्माण (४) वैक्रियिकतैजस (५) वैक्रियिककार्माण (६) वैक्रियिकतैजसकार्माण (७) आहारकतैजस (८) आहारककार्माण (९) आहारकतैजसकार्माण (१०) तैजसकार्माण ॥

इस प्रकार नामकर्म को उपर्युक्त ९३ प्रकृतियों में यह दश प्रकृतियां जोड़ देने से नामकर्म की सर्व ९३ प्रकृतियों के स्थानमें १०३ प्रकृतियां भी गिनी जाती हैं ॥

नामकर्म की जघन्य स्थिति ८ मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल प्रमाण है ॥

विशेष—नामकर्मकी जघन्य स्थिति केवल यशःकीर्ति की ८ मुहूर्त्त की १० वें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान ही में बँधती है। उत्कृष्ट स्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की हुण्डक संस्थान और असंप्राप्तासृपाटिक

संहनन की बँधती है। वामनसंस्थान और कीलक संहनन की १८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम की; कुब्जक संस्थान और अर्द्धनाराच संहनन की १६ कोड़ाकोड़ी सागरोपम की; स्वातिक संस्थान और नाराच संहनन की १४ कोड़ाकोड़ी सागरोपम की; न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान और वज्रनाराच संहनन की १२ कोड़ाकोड़ी सागरोपम की और समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन की १० कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति बँधती है। जाति नामकर्म में विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) की और अपिंड प्रकृतियों में सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन छह की १८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम की; तिर्यञ्चगति, नरकगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, नरकगत्यानुपूर्वी, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, औदारिकअङ्गोपांग, वैक्रियिकअङ्गोपांग, आतप, उद्योत, त्रस, स्थूल (बादर), पर्याप्त, प्रत्येक, वर्ण ५, रस ५, गंध २, स्पर्श ८, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, निर्माण, स्थावर, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, इन ३५ प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की बँधती है। स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, प्रशस्तविहायोगति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, इन ६ प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति १० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपांग, तीर्थङ्करत्व, इन तीन प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी (एक कोटि से अधिक और एक कोटाकोटि से कम) सागरोपम है। और मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी की उत्कृष्ट स्थिति १५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। इस प्रकार बंधयोग्य नामकर्म की सर्व ६७ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध है॥

नोट ३—शरीर नामकर्मकी पांच प्रकृतियों में अपनी अपनी बंधन नामकर्म की ५ और संघात नामकर्मकी ५ एवम् १० प्रकृतियों का अविनाभाव है। तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, इन ४ नामकर्म की पिंडप्रकृतियों के जो २० भेद हैं वह अभेदरूप बंध अपेक्षा ४ ही गिनी जाती हैं। अतः बंधन और संघात का १० और वर्णादि की यह १६ सर्व २६ प्रकृतियाँ ९३ प्रकृतियों में से कम हो जाने से नामकर्म की बन्धयोग्य सर्व उपरोक्त ६७ प्रकृतियाँ ही होती हैं॥

नोट ४—नामकर्म की सर्व बन्धयोग्य ६७ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध यथा सम्भव उत्कृष्ट संक्लेश (कषायसहित) परिणामों से और अजघन्य स्थितिबन्ध जघन्य संक्लेश परिणामों से होता है॥

नोट ५—नामकर्म की बन्धयोग्य ६७ प्रकृतियों में से आहारकशरीर, आहारकअङ्गोपांग, और तीर्थङ्करत्व इन ३ प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति केवल सम्यक्दृष्टी जीव ही बाँधता है। शेष ६४ प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टी जीव बांधता है॥

नोट ६—आहारकशरीर और आहारकअङ्गोपांग, इन दो की उत्कृष्ट स्थिति ७ वें अप्रमत्त गुणस्थान वाला मनुष्य जो छठे गुणस्थान में उतरने को सन्मुख हो बाँधता है। तीर्थंकर नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति चौथे

गुणस्थान वाला अविरत सम्यग्दृष्टी मनुष्यही, जो सम्यक्त्व प्राप्त करने से पहिले नरकगतिबंध कर चुकने से नरक में जाने के लिये सन्मुख हो, बांधता है। और शेष ६४ प्रकृतियों में से वैक्रियिकषट्क (अर्थात् देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआंगोपांग), विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, इन १२ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टी मनुष्य और तिर्यञ्च ही करते हैं। और औदारिकशरीर, औदारिकआंगोपांग, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, और असंप्राप्तासृपाटिक संहनन, इन छह प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मिथ्यादृष्टीदेव और नारकी ही करते हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर, इन तीन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टी देव ही करते हैं। शेष ४३ प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति यथासम्भव उत्कृष्टसंक्लेश परिणामी तथा ईषन्मध्यम (मन्द और मध्यम) संक्लेशपरिणामी चारों ही गतियों के जीव बांधते हैं॥

तीर्थंकरत्व, आहारकशरीर, आहारकआंगोपांग, इन तीन नामकर्म की प्रकृतियों की जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है जिसे ८वें अपूर्वकरण गुणस्थान वाला क्षपकश्रेणी चढ़ता हुआ मनुष्य ही बांधता है। वैक्रियिकषट्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकआंगोपांग) की जघन्यस्थिति को असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव बांधते हैं॥

(३) गोत्रकर्म—लोकपूजित व लोकनिन्दित कुल को अथवा जिस कुल में सन्तान क्रम से उच्च या नीच आचरण परिपाटीरूप चला आया हो उसे "गोत्र" कहते हैं। किसी ऐसी उच्च या नीच आचरण वाली पर्याय में प्राप्त कराने वाली जो कर्मप्रकृति है उसे "गोत्रकर्म" कहते हैं। इस कर्मप्रकृति का स्वभाव कुंभकार (कुम्हार) की समान है जो बढ़िया घटिया सर्व प्रकार के बासन बनाता है। इस कर्म प्रकृति के (१) उच्चगोत्र और (२) नीचगोत्र, यह दो भेद हैं। (गो. क. १३) ॥

इस कर्म की जघन्य व उत्कृष्टस्थिति 'नामकर्म' की समान है अर्थात् जघन्यस्थिति ८ मुहूर्त्त और उत्कृष्ट २० कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल प्रमाण है। यह जघन्य स्थिति उच्चगोत्र की और उत्कृष्ट स्थिति नीचगोत्र ही की बँधती है॥

विशेष—नीच गोत्रकर्म प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति २० कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल और उच्चगोत्र की १० कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल केवल मिथ्यादृष्टीजीव ही चारों गतियों में अजघन्य (उत्कृष्ट, मध्यम्, ईषत्) संक्लेश परिणामों से बांधते हैं। उच्चगोत्र की ८ मुहूर्त्त की जघन्य स्थिति को १०वें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वाला मनुष्य ही बांधता है॥

(४) वेदनीय कर्म—इन्द्रियों को अपने स्पर्शादि विषयों का सुख दुःख रूप अनुभव करने को 'वेदनीय' कहते हैं। ऐसे अनुभव को कराने वाली कर्मप्रकृति को 'वेदनीयकर्म' कहते हैं। इस कर्म प्रकृति का स्वभाव मधुलपेटी असिधारा (तलवार की धार) की समान है जिसे मधुस्थल से चखते समय प्रथम कुछ सुखा-

नुभव पश्चात जीभ कट जाने से अधिक दुःखानुभव होता है और मधुरहित स्थल पर जीभ जा लगने से प्रथम ही दुःखानुभव ही होता है। इस कर्मप्रकृति के (१) सातावेदनीय और (२) असातावेदनीय यह दो भेद हैं॥

इस कर्म की जघन्यस्थिति १२ मुहूर्त्त और उत्कृष्टस्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल प्रमाण है॥

विशेष—असाता वेदनीयकी उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल और सातावेदनीय की १५ कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल केवल मिथ्यादृष्टि जीव ही चारों गतियों में अजघन्य संक्लेश (कषाययुक्त) परिणामों से बांधते हैं। सातावेदनीय की जघन्यस्थिति १२ मुहूर्त्त की १०वें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वाला मनुष्य ही बांधता है॥

नोट ७—अघातियाकर्म की उपर्युक्त मूलप्रकृतियाँ ४ हैं और उत्तरप्रकृतियां जो १०१ या १११ हैं वह सत्ता की अपेक्षा से हैं। बन्ध और उदय की अपेक्षा से नामकर्म की उपर्युक्त ६७ और शेष तीन की ८, एवं सर्व ७५ ही हैं॥

(गो. क. ३५, ३६)॥

नोट ८—इस अघातियाकर्म की १०१ उत्तरप्रकृतियों में से ४८ प्रकृतियां 'प्रशस्त' हैं जिन्हें 'शुभप्रकृतियाँ' या 'पुण्यप्रकृतियाँ' भी कहते हैं। ३३ प्रकृतियां "अप्रशस्त" हैं जिन्हें 'अशुभप्रकृति' या 'पापप्रकृति' भी कहते हैं। शेष २० प्रकृतियां उभयरूप अर्थात् "प्रशस्ताप्रशस्त" हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है:—

प्रशस्तप्रकृतियां—(१) आयुकर्म की नरकायु छोड़ कर शेष ३

(२) नामकर्म की मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर आदि ५, बन्धन ५, संघात ५, आंगोपांग ३, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, प्रशस्तविहायोगति, अगुरुलघु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, निर्माण, त्रस, स्थूल, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्त्ति, तीर्थंकरत्व ४२

(३) गोत्रकर्म की उच्चगोत्र १

(४) वेदनीयकर्मकी सातावेदनीय ... १

इस प्रकार सर्व ४८

उभयप्रकृतियां—नामकर्म की स्पर्श ८, रस ५, गन्ध २, वर्ण ५, एवं सर्व २० प्रकृतियाँ २०

अप्रशस्तप्रकृतियां—शेष ३३ ....३३

१०१

(उभयप्रकृति २० शुभ भी हैं और अशुभ भी अतः दोनों ओर जोड़ लेने से प्रशस्तप्रकृतियाँ सर्व ६८ और अप्रशस्तप्रकृतियाँ सर्व ५३ हैं)॥

उपर्युक्त नोट ७ में बन्धोदय की अपेक्षा अघातियाकर्म की जो सर्व ७५ उत्तर प्रकृतियां बताई गई हैं उन में से प्रशस्त ३८, अप्रशस्त ३३, और उभय ४ हैं। यह ४ दोनों ओर जोड़ देने से प्रशस्त सर्व ४२ और अप्रशस्त सर्व ३७ हैं॥

नोट ९—अघातियाकर्म की सर्व १०१ उत्तर प्रकृतियों में (१) पुद्गलविपाकी ६२, (२) भवविपाकी ४, (३) क्षेत्रविपाकी ४, और

(४) जीवविपाकी ३१ प्रकृतियां हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है:—

(१) पुद्गल विपाकी ६२—शरीर ५, आङ्गोपांग ३, बन्धन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, स्पर्श ८, रस ५, गन्ध २, वर्ण ५, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, निर्माण, प्रत्येक, साधारण, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर, यह सर्व ६२ प्रकृतियां नामकर्म की ९३ प्रकृतियों में से हैं ॥

(२) भवविपाकी ४—आयुकर्म की चारों प्रकृतियां ॥

(३) क्षेत्रविपाकी ४—नामकर्म की प्रकृतियों में से आनुपूर्वी चारों प्रकृतियां ॥

(४) जीवविपाकी ३१—नामकर्म की शेष २७ और गोत्रकर्म की दोनों, और वेदनीयकर्म की दोनों प्रकृतियां ॥

(घातियाकर्म की ४७ उत्तर प्रकृतियां सर्व ही जीवविपाकी हैं । अतः सर्व १४८ उत्तरप्रकृतियों में से ७८ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं) ॥

नोट १०—जिन कर्म प्रकृतियों का फल या उदय पौद्गलिक शरीर में होता है उन्हें "पुद्गलविपाकी", जिनका उदय मनुष्यादि भवों में होता है उन्हें "भवविपाकी", जिनका उदय जीव को परलोक गमन करते समय मार्गक्षेत्र में होता है उन्हें "क्षेत्रविपाकी" और जिनका उदय जीवकी नारक आदि पर्यायों या अवस्थाओं में होता है उन्हें 'जीवविपाकी' कहते हैं ॥

{ गो. क. ९,११-१४,२१,४१-५१,८४,१२७, १४७, त.सू.अ.८-सू. ८,१०,११,१२,१४-२० }

अघोर—शान्ति, सौम्यता, घृणा या ग्लानि-त्याग, अतिघोर, अतिभयंकर, उग्रोग्र, शिव, एक शैवीसम्प्रदाय, भादों कृ० १४ तिथी ॥

अघोरगुणब्रह्मचर्य (घोरब्रह्मचर्य)—१८ सहस्र दूषणरहित अखंडब्रह्मचर्य, जिस में शान्तिपूर्वक तपोबल से चारित्र मोहिनीयकर्म का उत्कृष्ट क्षयोपशम होकर कभी स्वप्नदोष तक न हो और कामदेव को पूर्णतयः जीत लिया गया हो । यह अष्टऋद्धियों में से चौथी 'तपोऋद्धि' के ७ भेदों में से अन्तिम भेद है । इस ऋद्धिका स्वामी अपने "अखंडब्रह्मचर्यबल" से उग्रईतिभीति, मरी, दुर्भिक्ष, रोग, आदि उपद्रवों को अपनी इच्छामात्र से तुरन्त शान्त कर सकता है ॥

नोट १—तपोऋद्धि के सात भेद:—(१) उग्रतपोऋद्धि (२) दीप्ततपोऋद्धि (३) तप्ततपोऋद्धि (४) महातपोऋद्धि (५) घोरतपोऋद्धि (६) घोरपराक्रमऋद्धि (७) घोरब्रह्मचर्य या अघोरगुणब्रह्मचर्यऋद्धि ॥

(देखो शब्द "अक्षीणऋद्धि" के नोट २ में अष्टमूलऋद्धियों और उनके ६४ भेदों का विवरण) ॥

नोट २—ब्रह्मचर्यव्रत सम्बन्धी १८ सहस्र दोषों का विवरण जानने के लिये देखो शब्द "अठारहसहस्रमैथुन कर्म" ।

अघोरगुण ब्रह्मचर्यऋद्धि—देखो शब्द 'अघोरगुणब्रह्मचर्य' ॥

अघोरगुणब्रह्मचारी—वह ब्रह्मचारी जिसे 'अघोरगुणब्रह्मचर्यऋद्धि' प्राप्त होगई हो ॥

अङ्क (अंक)—(१) चिन्ह, संकेत, संख्या, संख्या का चिन्ह, शून्य सहित १ से ९ तक संख्या, दाग़, रेखा, लेख, अक्षर, नाटक का एक अंश या परिच्छेद, गोद, बार, अव-

सर, समीप, स्थान, अपराध, पर्वत, एक युद्धभूषण, दुःख, पाप, देह, एक प्रकार की श्वेतमणि, एक रत्न, संचितभूमि ॥

(२) नवअनुदिश विमानों में से एक विमान का नाम ॥

(३) प्रथम व द्वितीय स्वर्ग सौधर्म और ईशान के युग्म के ३१ इन्द्रकविमानों में से १७वें इन्द्रक विमान का नाम ॥

(त्रि० ४६५) ।

(४) 'कुंडलवर' नामक ११वें द्वीप के मध्य के कुंडलगिरिपर्वत पर के २० कूटों में से एक साधारण कूट का नाम अर्थात् पश्चिमदिशा के ४ कूटों में से प्रथम कूट जिसका निवासी 'स्थिरहृदय' नामक एक पल्य की आयु वाला नागकुमारदेव है ॥

(५) 'रुचकवर' नामक १३वें द्वीप के मध्य के 'रुचकगिरि' नामक पर्वत पर जो दिक्कुमारी देवियों के रहने के चारों दिशाओं में आठ २ कूट हैं, उनमें से उत्तर दिशा का एक कूट जिसमें 'मिश्रकेशी' नामक दिक्कुमारी देवी बसती है ॥

(६) सप्तनरकों में से प्रथम 'घर्मा' या 'रत्नप्रभा' नामक पृथ्वी के खरभाग का अङ्करत्नमय सहस्र महायोजन मोटा ११वां कांडक या उपभाग । (देखो शब्द 'अङ्का') ॥ (त्रि० गा० १४६-१४८)

नोट---श्वेताम्बराम्नाय के अनुकूल 'अङ्क' खरकांड का १४वां भाग १०० योजन चौड़ा है (अ० मा० कोष) ॥

अङ्कगणना--संख्यामान, गणिमान, अङ्कों की गिन्ती शून्यसे उत्कृष्ट अनन्तानन्त तक ॥

अङ्कगणना लौकिक और लोकोत्तर भेदों से दो प्रकार की है। इन में से "लौकिक अङ्कगणना" तो यथा आवश्यक हम अनेक देशवासी संसारी मनुष्यों ने कुछ अङ्कों(स्थानों)तक अपनी २ आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर अपनी अपनी बुद्धि वा विचारानुसार अनेक प्रकारसे नियत की है। उदाहरण के लिये कुछ विद्वानों की नियत संख्या निम्न प्रकार है:---

(१) अरबी फ़ारसी—इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दशहज़ार, लाख, दशलाख, केवल ७ अङ्क प्रमाण अर्थात् ७ स्थान तक (अरबी भाषा में अहाद, अशरात, मिआत, अल्फ़, उलूफ़, लक, लुकूक, और फ़ारसी भाषा में यक, दह, सद, हज़ार, दहहज़ार, लक, दहलक,) ॥

(२) लीलावती—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधि, अन्त्यज, मध्य, परार्ध, १८ अङ्क प्रमाण अर्थात् १८ स्थान तक ॥

(३) उर्दू हिन्दी—इकाई, दहाई, सैकड़ा, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि, दशकोटि, अर्ब, दशअर्ब, खर्ब, दशखर्ब, नील, दशनील, पद्म, दशपद्म, संख, दशशंख। १६ अङ्क प्रमाण ॥

(४) श्री महावीर जैनाचार्यकृत 'गणितसारसंग्रह'*-एक, दश, शत, सहस्र,

* गणकचक्रवर्ती श्री महावीराचार्य अपने समय के गणितविद्या के एक सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् थे । लीलावती और सिद्धान्त शिरोमणि आदि कई गणित व ज्योतिष ग्रन्थों के रचयिता गणकचक्रचूड़ामणि ज्योतिर्विद् श्री भास्कराचार्य से, जिनका समय सन् १११४-११८४ ई० है, यह श्री महावीराचार्य ३०० वर्ष पूर्व सन् ८१४--८७८ ई० में दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटवंशी महाराजा 'अमोघवर्षनृपतुंग' के शासनकाल में विद्यमान थे।

दशसहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि, दशकोटि, शतकोटि, अर्बुद, न्यर्बुद, खर्ब, महाखर्ब, पद्म, महापद्म, क्षोणी, महाक्षोणी, शंख, महाशंख, क्षित्य, महाक्षित्य, क्षोभ, महाक्षोभ । २४ अङ्क प्रमाण ॥

(५) अँग्रेज़ी भाषा—इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दशहज़ार, सौहज़ार, मिलियन, दशमिलियन, सौमिलियन, हज़ारमिलियन, दशहज़ार मिलियन, सौहज़ार मिलियन; बिलियन, दशबिलियन, सौबिलियन, हज़ारबिलियन, दशहज़ार बिलियन, सौहज़ारबिलियन; ट्रिलियन, दशट्रिलियन, सौट्रिलियन, हज़ारट्रिलियन, दशहज़ार ट्रिलियन, सौहज़ारट्रिलियन । २४ अङ्क प्रमाण है जो आवश्यकता पड़ने पर क्वाड्रिलियन आदि शब्दों द्वारा उपर्युक्त रीति से छह छह अङ्क प्रमाण २४ अङ्कों (स्थानों) से कुछ आगे भी बड़ी सुगमता से बढ़ाई जा सकती है ॥

(६) उत्संख्यक गणना—इस की इकाई दहाई १५० अङ्क प्रमाण (डेढ़सौ स्थान) से भी अधिक तक है जो एक एक

श्री महावीराचार्य रचित ग्रन्थों में से एक "गणितसारसंग्रह" नामक गणित ग्रन्थ संस्कृत श्लोकबद्ध मूल अङ्गरेज़ी अनुवाद सहित मद्रास सरकार की आज्ञा से मद्रास गवर्नमेंट प्रेस से सन् १९१२ में प्रकाशित हो चुका है। गणितविद्या का यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ जो प्राचीन महान जैनगणित ग्रन्थों का बड़ा उत्तम और उपयोगी सार है ११३१ संस्कृत छन्दों में संकलित है जो दो अङ्गरेज़ी भूमिकाओं और अङ्गरेज़ी अनुवाद सहित तथा विषयसूची, कठिन पारिभाषिक शब्दों के अर्थ, अङ्क संदृष्टिवाचक शब्दों की व्याख्या और बहुत से फ़ुटनोटों आदि सहित २०×२६ साइज़ के अठपेजी ५२० बड़े पृष्ठों पर सजिल्द प्रकाशित हुआ है। साइज़ और ग्रन्थ परिमाण आदि को देखते हुये इसका मूल्य केवल ४) बहुत कम रखा गया है। इसके अनुवादकर्ता हैं मि० रङ्गाचार्य एम० ए० रायबहादुर, जो मद्रास प्रेसीडेंसी कालिज के संस्कृत व दार्शनिक प्रोफ़ेसर व पूर्वी हस्तलिखित ग्रन्थों के सरकारी ग्रन्थालय के मुख्य ग्रन्थाध्यक्ष हैं। दो भूमिका लेखकों में से एक तो यही प्रोफ़ेसर महाशय हैं और दूसरे डाक्टर डेविड यूजीनस्मिथ (Dr. David Eugine Smith) हैं, जो उत्तरी अमरीकान्तर्गत न्यूयार्क की 'कोलम्बिया यूनिवर्सिटी' सम्बन्धी अध्यापकीय-महाविद्यालय में गणित के प्रोफ़ेसर हैं। यह दोनों महानुभाव इन २८ पृष्ठों में लिखी हुई सविस्तार दोनों ही भूमिकाओं में श्री 'ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त' के रचयिता श्री ब्रह्मगुप्त, सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार व अन्य कई गणित ज्योतिष ग्रन्थों के रचयिता श्री आर्यभट्ट, और सिद्धान्तशिरोमणि आदि कई ग्रन्थों के रचयिता श्री भास्कराचार्य आदि के समय आदि का निर्णय और उनके ग्रन्थों की तुलना श्रीमहावीराचार्य रचित 'गणितसारसंग्रह' से करते हुये कई स्थलों पर श्री महावीराचार्य के कार्य की अधिक सराहना करते और उदाहरण दे देकर गणित सम्बन्धी इनके कई नियमों को अधिक सुगम, अधिक सही और पूर्ण बतलाते हैं ॥

यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ निम्न लिखित एक अधिकार और आठ व्यवहारों में विभाजित है :—

(१) संज्ञाधिकार [Terminology]—इसमें मंगलाचरण, गणितशास्त्र प्रशंसा, संज्ञा, क्षेत्रपरिभाषा, कालपरिभाषा, धान्यपरिभाषा, इत्यादि १४ विभाग ७० श्लोकों में हैं।

शब्द द्वारा छह छह स्थान आगे बढ़ाई आने वाली अङ्गरेज़ी की इकाई दहाई के समान संख्यावाचक एक एक ही शब्द द्वारा बीस बीस स्थान बढ़ाकर १५० स्थानों से भी बहुत आगे यथा आवश्यक बढ़ाई जा सकती है ॥

जिस प्रकार अङ्गरेज़ी भाषा की इकाई दहाई के पहिले ६ स्थान "थाउज़ेंड्ज़" (Thousands) के हैं, दूसरे ६ स्थान 'मिलयन्ज़' (Millions) के, तीसरे ६ स्थान 'बिलियन्ज़' (Billions) के, चौथे ६ स्थान 'ट्रिलियन्ज़' (Trillions) के, इत्यादि हैं। इसी प्रकार 'उत्संख्यक' इकाई दहाई के प्रथम २० स्थान 'परार्द्ध' के, द्वितीय २० स्थान 'संख्य' के, तृतीय २० स्थान 'महासंख्य' के, चतुर्थ २० स्थान 'महामहासंख्य' के, पञ्चम २० स्थान 'महानसंख्य' के, षष्ठम २० स्थान 'महामहानसंख्य' के, सप्तम २० स्थान 'महानमहानसंख्य' के, अष्टम २० स्थान 'परमसंख्य' के, नवम २० स्थान 'महापरमसंख्य' के, दशम २० स्थान 'महामहापरमसङ्ख' के, एकादशम् २० स्थान 'महानपरमसङ्ख' के, द्वादशम २० स्थान 'महामहानपरमसङ्ख' के, त्रयोदशम २० स्थान 'महानमहानपरमसङ्ख' के, चतुर्दशम २० स्थान 'ब्रह्मसङ्ख' के, पञ्चदशम २० स्थान 'महाब्रह्मसङ्ख' के, इत्यादि हैं।

इस 'उत्संख्यक' इकाई दहाई में पहिले 'परार्द्ध' के २० स्थानों से २० अङ्क प्रमाण संख्या की गणना, दूसरे 'सङ्ख' के २० स्थानों से ४० अङ्क प्रमाण संख्या की गणना तीसरे 'महासङ्ख' के २० स्थानों से ६० अङ्क प्रमाण, चौथे 'महामहासङ्ख' के २० स्थानों से ८० अङ्क प्रमाण, पांचवें 'महान सङ्ख' के २० स्थानों से १०० अङ्क प्रमाण, छठे 'महा महानसङ्ख' के २० स्थानों से

---

(२) प्रथमः परिकर्म व्यवहार (Arithmetical Operations)—इसमें प्रत्युत्पन्न, भागहार, वर्ग, वर्गमूल आदि ८ विभाग ११५ श्लोकों में हैं।

(३) द्वितीयः कलासवर्ण व्यवहार (भिन्न परिकर्म Fractions)—इसमें भिन्न प्रत्युत्पन्न आदि ११ प्रकरण १४० श्लोकों में हैं ॥

(४) तृतीयः प्रकीर्णकव्यवहार [Miscellaneous Problems on fractions &c.]-इसमें भागजाति, शेषजाति, मूलजाति, शेषमूलजाति, द्विरग्रशेषमूलजाति, आदि नव प्रकरण ७२ श्लोकों में हैं।

(५) चतुर्थः त्रैराशिक व्यवहार (Rule of Three)-इसमें त्रैराशिक, व्यस्त त्रैपंचसप्तनवराशिक, गतिनिवृत्ति, और पंचसप्तनवराशिकोद्देशक, यह ४ प्रकरण ४३ श्लोकोंमें हैं।

(६) पंचमः मिश्रकव्यवहार (Mixed Problems &c.)--इस में संक्रमणसूत्र, पंचराशिकवधि, वृद्धिविधान, प्रक्षेपकुट्टीकार, आदि १० प्रकरण ३३७॥ श्लोकों में हैं।

(७) षष्टः क्षेत्रगणितव्यवहार (Measurement of Areas &c.)—इसमें व्यवहारिक गणित, सूक्ष्मगणित, जन्यव्यवहार, और पैशाचिक व्यवहार, यह ४ प्रकरण २३२॥ श्लोकोंमें हैं।

(८) सप्तमः खातव्यवहार (Calculations regarding excavations.)-इसमें खातगणित, चितिगणित, और क्रकचिकाव्यवहार, यह ३ प्रकरण ६८॥ श्लोकों में हैं।

(९) अष्टमः छायाव्यवहार (Calculations relating to Shadows.)--इसमें एक प्रकरण ५२॥ श्लोकों में वर्णित है। इस प्रकार इस महान गणितग्रन्थ में सर्व ११३१ श्लोक अनुष्टुप आदि कई प्रकार के छन्दों में हैं ॥

१२० अङ्क प्रमाण संख्या की गणना बड़ीसुगमतासे कीजासकतीहै; इत्यादि बीस २ स्थान आगे को बढ़ातेहुए सातवें, आठवें, नवें, दशवें आदि उपर्युक्त बीस बीस स्थानों से क्रम से १४०,१६०, १८०, २०० इत्यादि अङ्कप्रमाण संख्या की गणना हो सकती है। इसकी इकाई दहाई निम्न लिखित है:--

एक, दश, शत, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि, दशकोटि, अर्बुद, दशअर्बुद, खर्व, दशखर्व, नियल, दशनियल, पद्म, दशपद्म, परार्द्ध, दशपरार्द्ध, शतपरार्द्ध; शङ्ख, दशशङ्ख, शतशङ्ख, सहस्रशङ्ख, दशसहस्रशङ्ख, लक्षशंख, दशलक्षशंख, कोटिशङ्ख, दशकोटिशङ्ख, अर्बुदशंख, दशअर्बुदशंख, खर्वशङ्ख, दशखर्वशङ्ख, नियलशंख, दशनियलशंख, पद्मशङ्ख, दशपद्मशंख, परार्द्धशङ्ख, दशपरार्द्धशंख, शतपरार्द्धशंख; महाशङ्ख, दशमहाशङ्ख, शतमहाशङ्ख, सहस्रमहाशङ्ख, दशसहस्रमहाशंख, लक्षमहाशंख, दशलक्षमहाशङ्ख, कोटिमहाशङ्ख, दशकोटिमहाशङ्ख, अर्बुदमहाशङ्ख, दशअर्बुदमहाशङ्ख, खर्वमहाशङ्ख, दशखर्वमहाशङ्ख, नियलमहाशङ्ख, दशनियलमहाशङ्ख, पद्ममहाशङ्ख, दशपद्ममहाशङ्ख, परार्द्धमहाशङ्ख, दशपरार्द्धमहाशङ्ख, शतपरार्द्धमहाशङ्ख; महामहाशङ्ख, दशमहामहाशङ्ख, शतमहामहाशङ्ख, सहस्रमहामहाशङ्ख, दशसहस्रमहामहाशङ्ख, लक्षमहामहाशङ्ख, दशलक्षमहामहाशङ्ख, कोटिमहामहाशङ्ख, दशकोटिमहामहाशङ्ख, अर्बुदमहामहाशङ्ख, दशअर्बुदमहामहाशङ्ख, खर्वमहामहाशङ्ख, दशखर्वमहामहाशङ्ख, नियलमहामहाशङ्ख, दशनियलमहामहाशङ्ख, पद्ममहामहाशङ्ख, दशपद्ममहामहाशङ्ख, परार्द्धमहामहाशङ्ख, दशपरार्द्धमहामहाशंख, शतपरार्द्धमहामहाशंख; इत्यादि ॥

इसी प्रकार अब महामहाशंख शब्द लिखकर आगे को इसके पूर्व दश, शत, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, दशलक्ष आदि शतपरार्द्ध तक के शब्द जोड़ देने से १०० अङ्क प्रमाण इकाई दहाई बन जायगी; फिर इसी प्रकार महामहामहाशंख शब्द लिखकर आगे को इसके पूर्व भी दश, शत, सहस्र आदि शब्द जोड़ देने से १२० अङ्क प्रमाण, और फिर 'महामहामहाशंख', 'परमशङ्ख', 'महापरमशङ्ख' आदि उपर्युक्त शब्दों के पूर्व भी वही दश, शत, सहस्रादि शब्द जोड़ते जाने से १४०, १६०, १८०, २००, २२०, इत्यादि अङ्क प्रमाण इकाई दहाई बड़ी सुगमता से लिखी जा सकती है और छोटी बड़ी सर्व प्रकार की संख्याओं या उत्संख्याओंका उच्चारण इस इकाई दहाई की सहायता से बड़ी सुगम रीति से किया जा सकता है ॥

उदाहरण के लिये निम्न लिखित "श्री ऋषभनिर्वाण सम्वत्" की ७६ अङ्क प्रमाण संख्या को इसी इकाई दहाई द्वारा पढ़ने या उच्चारण करनेकी रीति नीचे लिखी जाती है:-

आज आश्विन मास विक्रम सम्वत् १९८१ और वीरनिर्वाण सम्वत् २४५१ में श्रीऋषभ निर्वाण संवत् ४१३४५२६३०३०८ २०३१७७७४९५१२१९१९९९९९९९९९९९९९९ ९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९ ९९०४९९ (७६ अङ्क प्रमाण) है ॥

४ पद्म, १३ नियल, ४५ खर्व, २६ अर्बुद, ३० कोटि, ३० लक्ष, ८२ सहस्र और ०३१ 'महामहाशंख'; ७७७ परार्द्ध, ४९पद्म, ५१ नियल, २१ खर्व, ९१ अर्बुद, ९९ कोटि, ९९ लक्ष, ९९ सहस्र, और ९९९ 'महाशंख'; ९९९ परार्द्ध, ९९ पद्म, ९९ नियल, ९९ खर्व ९९

अर्बुद, ६६ कोटि, ९९ सहस्र और ९९९ "शंख"; ६६६ परार्द्ध, ९९ पद्म, ६६ नियल, ६६ खर्ब, ६६ अर्बुद, ९९ कोटि, ९९ लक्ष, ६० सहस्र और ४६९ ॥

इस रीति से सर्व प्रकार की छोटी बड़ी संख्याओं या उत्संख्याओं को गिना पढ़ा जा सकता है ॥

इस प्रकार "लौकिकअङ्कगणना" तो यथाआवश्यक अनेक प्रकार की कुछ नियत स्थानों तक रची गई है। परन्तु दूसरी "लोकोत्तरअङ्कगणना" दो से अनन्तानन्त तक अनन्तानन्त अङ्क प्रमाण है ॥

इस "लोकोत्तरअङ्कगणना" के निम्न लिखित २१ विभाग हैं:—

[१] संख्यात ३ भेद—१जघन्यसंख्यात, २मध्यसंख्यात, ३उत्कृष्टसंख्यात;

[२] असंख्यात ९ भेद—४जघन्यपरीतासंख्यात, ५मध्यपरीतासंख्यात, ६उत्कृष्टपरीतासंख्यात, ७जघन्ययुक्तासंख्यात, ८मध्ययुक्तासंख्यात, ९उत्कृष्टयुक्तासंख्यात, १०जघन्यअसंख्यातासंख्यात, ११मध्यअसंख्यातासंख्यात, १२उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात;

[३] अनन्त ९ भेद—१३जघन्यपरीतानन्त, १४मध्यपरीतानन्त, १५उत्कृष्टपरीतानन्त, १६जघन्ययुक्तानन्त, १७मध्ययुक्तानन्त, १८उत्कृष्टयुक्तानन्त, १९जघन्यअनन्तानन्त, २०मध्यअनन्तानन्त, २१उत्कृष्टअनन्तानन्त ॥

नोट १—लोकोत्तरअङ्कगणना के इन जघन्यसंख्यात आदि २१ विभागों या भेदों का स्वरूप निम्न प्रकार है:—

(१) जघन्यसंख्यात—एक में एक का भाग देने अथवा एक को एक में गुणन करने से कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती। इस लिये अलौकिकगणना में संख्या का प्रारम्भ २ के अङ्क से ग्रहण किया जाता है। और १ के अङ्क को गणना शब्द का वाचक माना जाता है। इस लिये जघन्यसंख्यात का अङ्क २ है ॥

(२) मध्यमसंख्यात—३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ इत्यादि एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत ॥

(३) उत्कृष्टसंख्यात—जघन्यपरीतासंख्यात से एक कम ॥

(४) जघन्यपरीतासंख्यात—यद्यपि यह संख्या इतनी अधिक बड़ी है कि इसे अङ्कों द्वारा लिख कर बताना तो नितान्त अशक्य है (केवल अनेन्द्रियज्ञानगम्य है) परन्तु तौ भी इसका परिमाण हृदयाङ्कित करने के लिये गणधरादि महाऋषियों ने जो एक कल्पित उपाय बताया है वह निम्न लिखित है जिसे भले प्रकार समझ कर हृदयाङ्कित कर लेने से अलौकिक अङ्कगणना के शेष २० भेदों या विभागों को समझ लेना सुगम है:—

कल्पना कीजियेकि **(१) अनवस्था (२) शलाका (३) प्रतिशलाका और (४) महाशलाका** नाम के चार गोल कुंड हैं जिन में से प्रत्येक का व्यास (गोल वस्तु की एक तट से दूसरे तट तक की लम्बाई या चौड़ाई) एक लक्ष-महायोजन (४ कोश का १ योजन और ५०० योजन या २००० कोश का १ प्रमाण योजन या महायोजन),

और गहराई एक सहस्र महायोजन है। इनमें से पहिले अनवस्थाकुंड को गोल सरसों के दानों से शिखाऊ (पृथ्वी पर की अन्नराशि के समान शिखा बांध कर) भरें। गणितशास्त्र के नियमानुकूल हिसाब लगाने से इस अनवस्थाकुंड में १९९७११२९३-८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६-३६३६३६३६३६३६३६ (४६ अङ्कप्रमाण) सरसों के दाने समायेंगे। (गणितशास्त्रानुकूल इस संख्या को निकालने की विधि जानने के लिये देखो शब्द "अनवस्थाकुंड")॥

अब इस सरसोंको क्या किया जाय यह बताने से पहले यह बात ध्यान में रख लीजिये कि तीनलोक के मध्य भाग का नाम "मध्यलोक" है, और इस मध्यलोक के बीचों बीच एक लक्ष महायोजन के व्यास का स्थालीवत गोलाकार एक "जम्बूद्वीप" है। इस द्वीप की चारों ओर बलयाकार (कड़े के आकार) दो लक्ष महायोजन चौड़ा "लवणसमुद्र" है। इस लवणसमुद्र की चारों ओर ४ लक्ष महायोजन चौड़ा बलयाकार दूसरा "धातकीखंडद्वीप" है। इस द्वीप की चारों ओर बलयाकार ८ लक्ष महायोजन चौड़ा दूसरा "कालोदकसमुद्र" और इस समुद्र की चारों ओर बलयाकार १६ लक्ष महायोजन चौड़ा तीसरा "पुष्करद्वीप" है। इसी प्रकार आगे आगे को द्वीप से दूना चौड़ा अगला समुद्र और फिर समुद्र से दूना चौड़ा अगला द्वीप एक दूसरे को चारों ओर बलयाकार स्थित गिन्ती में असंख्यात हैं॥

स्मरण रहे कि किसी द्वीप या समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे ठीक साम्हने की दिशा के तट तक की चौड़ाई को "सूची" कहते हैं। अतः "जम्बूद्वीप" की सूची तो उसका व्यास ही है जो एक लक्ष महायोजन है और "लवणसमुद्र" की सूची ५ लक्ष महायोजन है। दूसरे द्वीप "धातकीखंड" की सूची १३ लक्ष महायोजन की, दूसरे समुद्र "कालोदध" की सूची २९ लक्ष महा योजनकी, तीसरे द्वीप "पुष्कर" की सूची ६१ लक्ष महायोजनकी और तीसरे समुद्र "पुष्करवर" की सूची १२५ लक्ष महायोजन की है। इसी प्रकार अगले २ प्रत्येक द्वीप या समुद्र की सूची अपने २ पूर्व के समुद्र या द्वीप की सूची से ३ लक्ष अधिक दूनी होती गई है। अतः अब यह भी भले प्रकार ध्यान में रखिये कि अब गणित करनेसे 'पहिले द्वीप' की सूची केवल एक लक्ष होने पर तीसरे ही द्वीप की सूची ६१ लक्ष और तीसरे समुद्रकी सूची १२५लक्ष महायोजन की हो जाती है तो सैंकड़ों, सहस्रों, लक्षों, सङ्खों या असंख्यों द्वीप समुद्र आगे बढ़कर उनकी सूची प्रत्येक बार दूनी दूनी से भी अधिक बढ़ती जाने से कितनी अधिक बड़ी होजायगी॥

अब उपर्युक्त दूसरे कुंड "शलाका"नामक में अन्य एक दाना

सरसों का डाल कर 'अनवस्थाकुंड' में शिखाऊ भरी हुई उपरोक्त ४६ अङ्कप्रमाण सरसों में से एक दाना जम्बूद्वीप में, एक दाना 'लवण-समुद्र' में, एक दाना दूसरे "धातकीखण्डद्वीप" में, एक दाना दूसरे "कालोदक" समुद्र में डालिये और इसी प्रकार अगले २ द्वीपों और समुद्रों में से प्रत्येक में वहां तक एक २ दाना डालते जाइये जहां तक कि वह "अनवस्थाकुंड" रीता हो जाय। सरसों का अन्तिम दाना किसी समुद्र में (न कि द्वीप में) गिराया जायगा, क्योंकि सरसों की संख्या का अङ्क 'सम' है 'विषम' नहीं॥

जिस अन्त के समुद्र में अन्तिम दाना गिराया जाय उस समुद्र की सूची बराबर व्यास वाला १००० महायोजन गहरा, अब 'दूसरा अनवस्थाकुंड' बनाइये और उसे भी पूर्वोक्त प्रकार शिखाऊ सरसों से भरिये। अब एक और दूसरा दाना सरसों का उपरोक्त शलाकाकुंड में डाल कर इस दूसरे "अनवस्थाकुंड" में शिखाऊ भरी हुई सरसों को भी निकाल कर जिस समुद्र में पहिले "अनवस्थाकुंड" की सरसों समाप्त हुई थी उससे अगले द्वीप से आरम्भ करके एक एक सरसों प्रत्येक द्वीप और समुद्र में पूर्ववत आगे आगे को डालते जाइये॥

जिस समुद्र या द्वीप पर पहुँच कर यह सरसों भी समाप्त हो जाय उस समुद्र या द्वीप की सूची समान व्यास वाला १००० महायोजन गहरा अब "तीसरा अनवस्थाकुंड" बना कर इसे भी पूर्ववत् सरसों से शिखाऊ भरिये और उपरोक्त "शलाकाकुंड" में फिर एक अन्य तीसरा दाना सरसों का डाल कर और तीसरे "अनवस्थाकुंड" की सरसों भी निकाल कर अगले अगले प्रत्येक द्वीप और समुद्र में पूर्ववत् एक एक सरसों डालते जाइये॥

जिस समुद्र या द्वीप पर यह सरसों भी समाप्त हो जाय उस समुद्र या द्वीप की सूची बराबर व्यास वाला १००० महायोजन गहरा "चौथा अनवस्थाकुंड" फिर सरसों से शिखाऊ भर कर एक अन्य 'चौथादाना' सरसों का उपरोक्त "शलाकाकुंड" में डालिये और पूर्ववत् इस चौथे 'अनवस्थाकुंड' को रीता कर दीजिये॥

पूर्वोक्त प्रकार एक से एक अगला अगला संख्यों गुना अधिक २ बड़ा नवीन नवीन "अनवस्थाकुंड" बना बना कर और सरसों से शिखाऊ भर भर कर रीते करते जाइये और प्रतिबार "शलाकाकुंड" में एक एक सरसों छोड़ते जाइये जब तक कि "शलाकाकुंड" भी एक एक सरसों पड़ कर शिखाऊ न भरे। इस रीति से जब "शलाकाकुंड" शिखाऊ पूर्ण भर जाय तब एक सरसों तीसरे कुंड 'प्रतिशलाका' नामक में डालिये॥

पूर्वोक्त प्रकार प्रत्येक अगले अगले अधिक २ बड़े अनवस्थाकुंड को सरसों से भर भर कर रीता करते समय एक एक सरसों अब 'दूसरे' नवीन उतनेही बड़े 'शलाकाकुंड' में फिर बार बार डालते जाइये । जब फिर यह दूसरा शलाकाकुंड भी शिखाऊ भर जाय तब दूसरा दाना सरसों का 'प्रतिशलाका' कुंड में डालिये। इसी प्रकार करते २ जब "प्रतिशलाकाकुंड" भी भर जाय तब एक सरसों चौथे कुंड 'महाशलाका' नामक में डालिये ॥

जिस क्रम से एक बार प्रतिशलाकाकुंड भरा गया है उसी क्रम से जब दूसरा उतना ही बड़ा प्रतिशलाकाकुंड भी भर जाय तब 'दूसरा दाना सरसों' का 'महाशलाका' कुंड में डालिये। इसी प्रकार जब एक एक सरसों पड़ कर महाशलाकाकुंड भी शिखाऊ भर जाय तब सर्व से बड़े अन्तिम अनवस्था कुंड में जितनी सरसों समाई उसके दानों की संख्या की बराबर "जघन्यपरीतासंख्यात" का प्रमाण है ॥

(त्रि. गा. २८-३५) ॥

(५) मध्यपरीतासंख्यात—जघन्यपरीतासंख्यात से १ अधिक से लेकर उत्कृष्टपरीतासंख्यात से १ कम तक की संख्या की जितनी संख्यायें हैं वे सर्व ही 'मध्यपरीतासंख्यात' की संख्यायें हैं ॥

(६) उत्कृष्टपरीतासंख्यात—"जघन्ययुक्तासंख्यात" की संख्या से १ कम ॥

(७) जघन्ययुक्तासंख्यात—इस संख्या का परिमाण जानने के लिये पहिले 'बल' शब्द का निम्नलिखित अर्थ गणित शास्त्र की परिभाषा में जान लेना आवश्यक है; 'बल' शब्द के लिये दूसरा पारिभाषिक शब्द 'घात' भी है:—

किसी अङ्क को २ जगह रख कर परस्पर गुणन करने को उस अङ्क का 'द्वितीयबल' या उस अङ्क का 'वर्ग' कहते हैं, ३ जगह रख कर परस्पर गुणन करने को उस अङ्क का 'तृतीयबल' या 'घन' कहते हैं, इसी प्रकार ४ जगह रख कर परस्पर गुणन करने को 'चतुर्थबल' ५ जगह रख कर परस्पर गुणन करने को 'पञ्चमबल' कहते हैं, इत्यादि.......... ॥ जैसे २ को २ जगह रख कर परस्पर गुणन किया तो (२×२=४) ४ प्राप्त हुआ अतः २ का द्वितीय बल ४ है। इसी प्रकार २ का तृतीय बल २×२×२=८ है; २ का चतुर्थ बल २×२×२×२=१६ है; २ का पञ्चम बल २×२×२×२×२ =३२ है, इत्यादि। इसी प्रकार ३ का द्वितीयबल ३×३=९; तृतीयबल ३×३ ×३=२७, चतुर्थबल ३×३×३×३= ८१, पञ्चमबल ३×३×३×३×३=२४३ इत्यादि ॥

अङ्कसंदृष्टि में इसे इस प्रकार लिखते हैं कि मूलअङ्क के ऊपर कुछ सीधे हाथ की ओर को हट कर 'बल' सूचक अङ्क रख देते हैं। जैसे २ का द्वितीयबल, तृतीयबल, चतुर्थबल, पञ्चमबल इत्यादि को क्रम से $२^{२}, २^{३}, २^{४}, २^{५}$, इत्यादि; और ३ के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चमबल

इत्यादि को क्रम से $३^२, ३^३, ३^४, ३^५$, इत्यादि।

उपर्युक्त नियमानुकूल,

$२^२ = २ \times २ = ४$ (एक अङ्क प्रमाण)

$३^३ = ३ \times ३ \times ३ = २७$ (दो अङ्कप्रमाण)

$४^४ = ४ \times ४ \times ४ \times ४ = २५६$ (तीन अङ्क प्रमाण)।

$५^५ = ५ \times ५ \times ५ \times ५ \times ५ = ३१२५$ (चार अङ्क प्रमाण)।

$६^६ = ६ \times ६ \times ६ \times ६ \times ६ \times ६ = ४६६५६$ (५ अङ्कप्रमाण)।

$१०^{१०} = १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० \times १० = १०००००००००००$ (११ अङ्क प्रमाण)।

$२०^{२०} = १०४८५७६००००००० ००००००० ०००००००$ (२७ अङ्क प्रमाण)।

$१००^{१००} = १००००००००००००००००$ ०००००००००००००००००००००००००० ००००००००००००००००००००००००००० ००००००००००००००००००००००००००० ०००००, ०००००००००००००००००००० ००००००००००००००००००००००००००० ००००००००००००००००००००००००००० ००००००००००००००००००००००००००००००

(१ के अङ्क पर २०० शून्य अर्थात् २०१ अङ्क प्रमाण)।

$१०००^{१०००}$ = १ के अङ्क पर ३००० शून्य अर्थात् ३००१ तीन हज़ार एक अङ्क प्रमाण।

$१००००^{१००००}$ = १के अङ्क पर ४०००० शून्य अर्थात् ४०००१ चालीस हज़ार एक अङ्क प्रमाण।

$१०००००^{१०००००}$ = १ के अङ्क पर ५००००० शून्य अर्थात् ५०००01 पाँच लक्ष एक अङ्क प्रमाण, इत्यादि॥

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रत्येक अङ्क का 'बल' उसी अङ्क प्रमाण लिया गया है। इन उदाहरणों पर साधारण ही दृष्टी डालने से यह भी प्रकट है कि प्रत्येक अङ्क के उसी अङ्क प्रमाण 'बल' की संख्या आगे २ को कितनी २ अधिक बढ़ती जाती है. यहां तक कि केवल १००००० (एक लाख) ही का उसी प्रमाण 'बल' ५०००01 (पाँच लाख एक) अङ्क प्रमाण हो जाता है, अर्थात् उपर्युक्त उदाहरणों की अन्तिम संख्या इतनी अधिक बड़ी है कि उसे लिखने में १ के अङ्क पर पाँच लाख शून्य रखने होंगे जो बहुत महीन महीन बनाने पर भी लग भग 'अर्द्ध मील लम्बी जगह में समावेंगे॥

उपर्युक्त रीति से 'बल' शब्द का अर्थ और उसका बल (शक्ति) भले प्रकार हृदयाङ्कित कर लेने पर अब जघन्ययुक्तासंख्यात की महान संख्या जो निम्नलिखित प्रमाण है उसके महत्व की कुछ झलक हृदय पर पड़ सकती है:—

जघन्य परीतासंख्यात की संख्या

का जघन्य परीता संख्यातकी संख्या प्रमाण बल = जघन्ययुक्तासंख्यात, जिसका अर्थ यह है कि उपर्युक्त 'जघन्यपरीतासंख्यात की महानसंख्या' का 'जघन्यपरीतासंख्यात की संख्या' प्रमाण ही 'बल' लैने से (अर्थात् जघन्यपरीतासंख्यात की महान संख्या को जघन्यपरीता संख्यात जगह अलग अलग रखकर फिर परस्पर सब को गुणन किया जावे) जो महामहानसंख्या प्राप्त होगी वह

'जघन्ययुक्तासंख्यात' की संख्या है।

(त्रि० गा० ३६)॥

नोट—इस जघन्ययुक्तासंख्यात ही को "आवली" भी कहते हैं, क्योंकि एक आवली प्रमाण काल में जघन्य युक्तासंख्यात की संख्या प्रमाण समय होते हैं॥

(त्रि० गा० ३७)॥

(८) मध्य युक्तासंख्यात—'जघन्ययुक्तासंख्यात की संख्या' से एक अधिक से लेकर 'उत्कृष्ट युक्तासंख्यात' की संख्या से १ कम तक की संख्या की जितनी संख्याएँ हैं वे सर्व मध्ययुक्तासंख्यात की संख्याएँ हैं॥

(९) उत्कृष्ट युक्तासंख्यात—'जघन्य असंख्यातासंख्यात' की संख्या से एक कम॥

(१०) जघन्यअसंख्यातासंख्यात—(जघन्ययुक्तासंख्यात)^2, अर्थात् 'जघन्ययुक्तासंख्यात' का 'द्वितीय बल या वर्ग' जो जघन्ययुक्तासंख्यात को 'जघन्ययुक्तासंख्यात' ही में गुणन कर लेने से प्राप्त होता है॥

(त्रि० गा० ३७)॥

(११) मध्य असंख्यातासंख्यात—'जघन्यअसंख्यातासंख्यात' से एक अधिक से लेकर "उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात" से १ कम तक की जितनी संख्याएँ हैं वे सर्व॥

(१२) उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात—"जघन्य परीतानन्त" की संख्या से १ कम॥

(१३) जघन्यपरीतानन्त—'जघन्यअसंख्यातासंख्यात' की उपर्युक्त संख्या का 'जघन्यअसंख्यातासंख्यात' की संख्या प्रमाण 'बल' लें। उत्तर में जो संख्या प्राप्त हो उसका उसी उत्तर प्रमाण फिर "बल" लें। उत्तर में जो संख्या प्राप्त हो उस का इस द्वितीय उत्तर प्रमाण फिर बल लें। इसी प्रकार प्रत्येक नवीन नवीन उत्तर की संख्याओं का उसी उसी प्रमाण बल इतनी बार लें जितनी 'जघन्यअसंख्यातासंख्यात' की संख्या है॥

इस प्रकार जो अन्तिम संख्या प्राप्त होगी वह अभी "असंख्यातासंख्यात' की एक मध्यम संख्या ही है। अब 'असंख्यातासंख्यात' की इस मध्यम संख्या का इसी संख्या प्रमाण फिर 'बल' लें उत्तर में जो संख्या प्राप्त हो उसका इस उत्तर प्रमाण फिर बल लें। इसी प्रकार प्रत्येक नवीन नवीन उत्तर की संख्या का उसी उसी प्रमाण बल इतनी बार लें जितनी उपर्युक्त "मध्यमअसंख्यातासंख्यात" की संख्या है॥

इस प्रकार कर चुकने पर जो अन्तिम उत्तर प्राप्त होगा वह भी "मध्यमअसंख्यातासंख्यात" ही का एक भेद है। इस अन्तिम संख्या का फिर इस अन्तिम संख्या प्रमाण ही 'बल' लें। और उपर्युक्त रीति से हर नवीन २ उत्तर का उसी २ प्रमाण इतनी बार बल लें जितनी द्वितीय बार प्राप्त हुई उपर्युक्त "मध्यमअसंख्यातासंख्यात" की संख्या है॥

इस रीति से ३ बार उपर्युक्त क्रिया कर चुकने पर भी जो अन्तिम संख्या प्राप्त होगी वह भी "मध्यमअसंख्यातासंख्यात" ही का एक भेद है। इस क्रमानुसार तीन बार किये हुए गुणन विधान को "शलाकात्रयनिष्ठापन" कहते हैं॥

उपर्युक्त "शलाकात्रयनिष्ठापन" विधान से जो अन्तिमराशि प्राप्त हुई उसमें नीचे लिखी छह राशियां और जोड़ें:—

(१) लोकप्रमाण "धर्मद्रव्य" के असंख्यात प्रदेश,

(२) लोकप्रमाण "अधर्म द्रव्य" के असंख्यात प्रदेश,

(३) लोकप्रमाण एक "जीव द्रव्य" के असंख्यात प्रदेश,

(४) लोकप्रमाण "लोकाकाश" के असंख्यात प्रदेश,

(५) लोक से असंख्यातगुणा "अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवों" का प्रमाण,

(६) असंख्यात लोक से असंख्यात लोक गुणा (सामान्यपने असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण,

इन सातों राशियों का जो कुछ जोड़ फल प्राप्त हो उस महाराशि का "शलाकात्रय निष्ठापन" उसी रीति से करें जिस प्रकार कि "जघन्यअसंख्यातासंख्यात" की संख्या का पहिले किया जा चुका है। तत्पश्चात इस महाराशि में निम्न लिखित चार राशियां और मिलावें:—

(१) २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण एक "कल्पकाल" के समयों की संख्या,

(२) असंख्यात लोकप्रमाण "स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान" (कर्म स्थितिबन्ध को कारणभूत आत्म-परिणाम),

(३) 'स्थिति बन्धाध्यवसाय' से असंख्यातगुणे (सामान्यपने असंख्यात लोकप्रमाण) "अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान" (अनुभागबन्ध का कारण आत्म-परिणाम),

(४) अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान से असंख्यातगुणे (सामान्यपने असंख्यातलोकप्रमाण) मन-वचन-काय योगों के उत्कृष्ट अविभाग-प्रतिच्छेद (गुणों के अंश)॥

इन पाँचों महान-राशियों के जोड़ फल का फिर उपर्युक्त विधि से "शलाकात्रयनिष्ठापन" करें। उत्तर में जो अन्तिम 'महानराशि' प्राप्त होगी वही 'जघन्यपरीतानन्त' की संख्या है॥

(त्रि० गा० ३८-४५)॥

(१४) मध्यपरीतानंत—जघन्य परीतानन्त से १ अधिक से लेकर 'उत्कृष्टपरीतानन्त' से १ कम तक की जितनी संख्यायें हैं वे सर्व॥

(१५) उत्कृष्टपरीतानन्त—'जघन्ययुक्तानन्त' की संख्या से १ कम॥

(१६) जघन्ययुक्तानन्त—$(\text{जघन्यपरीतानन्त})^{\text{जघन्यपरीतानन्त}}$, अर्थात् 'जघन्यपरीतानन्त' की संख्या का 'जघन्यपरीतानन्त' की संख्या प्रमाण बल (जघन्यपरीतानन्त की संख्या को जघन्यपरीतानन्त जगह अलग अलग रख कर सर्व को परस्पर गुणन करें)॥

(त्रि० गा० ४६)॥

नोट—सर्व अभव्य जीवों की संख्या 'जघन्ययुक्तानन्त' प्रमाण है॥

(त्रि. गा. ४६)॥

(१७) मध्ययुक्तानंत—'जघन्ययुक्तानन्त' से १ अधिक से लेकर 'उत्कृष्टयुक्तानन्त' से १ कम तक की जितनी संख्यायें हैं वे सर्व॥

(१८) उत्कृष्टयुक्तानंत—जघन्य अनन्तानन्त' की संख्या से १ कम॥

(१९) जघन्यअनंतानंत—$(\text{जघन्ययुक्तानन्त})^{2}$, अर्थात् 'जघन्ययुक्तानन्त' का वर्ग या द्वितीय बल (जघन्ययुक्तानन्त को जघन्य युक्तानन्त से गुणन करें)॥

(त्रि. गा. ४७)॥

(२०) मध्यअनन्तानन्त—'जघन्यअनन्तानन्त' से १ अधिक से लेकर 'उत्कृष्टअनन्ता-

नन्त' से १ कम तक की सर्व संख्यायें ॥

(२१) उत्कृष्टअनन्तानन्त—'जघन्य अनन्तानन्त' कीसंख्या का उपर्युक्त विधि से 'शलाकात्रयनिष्ठापन'करें। ऐसा करने से जो एक महाराशि प्राप्त होगी वह 'मध्यअनन्तानन्त' के अनन्तानन्त भेदों में से एक भेद है ॥

यहां तक के मध्यअनन्तानन्त' को 'सक्षयअनन्त' कहते हैं। इससे आगे निम्न लिखित 'मध्यअनन्तानन्त' के सर्व भेदों और 'उत्कृष्टअनन्तानन्त' को 'अक्षयअनन्त' कहते हैं। और इस प्रकार अनन्त के उपर्युक्त ६ भेदों की जगह दूसरी अपेक्षा से केवल यह दो ही सामान्य भेद हैं। (देखो शब्द 'अक्षयअनन्त') ॥

अब उपरोक्त मध्यअनन्तानन्त (उत्कृष्ट सक्षयअनन्त) में निम्नोक्त छह 'अक्षय-अनन्त' राशियाँ जोड़ें :—

(१) जीवराशि के अनन्तवें भाग सिद्धराशि,

(२) सिद्धराशि से अनन्तगुणी निगोदराशि,

(३) सिद्धराशि से अनन्तगुणी सर्व वनस्पतिकायिक राशि,

(४) सर्व जीवराशि से अनन्तगुणी पुद्गलराशि,

(५) पुद्गलराशिसे भी अनन्तानन्त गुणी व्यवहारकाल के त्रिकालवर्ती समय,

(६) सर्व अलोकाकाश के अनन्तानन्त प्रदेश ॥

इन उपर्युक्त सातों राशियोंका योगफल भी 'मध्यअनन्तानन्त' का ही एक भेद है। इस योगफल का फिर 'शलाकात्रयनिष्ठापन' पूर्वोक्त रीति से करके उसमें निम्न लिखित दो महाराशि और मिलावें:—

(१) धर्मद्रव्य के अगुरुलघु गुण के अनन्तानन्त अविभागी प्रतिच्छेद,

(२) अधर्मद्रव्य के अगुरुलघु गुण के अनन्तानन्त अविभागी प्रतिच्छेद ॥

इस योगफल का फिर 'शलाकात्रय-निष्ठापन' पूर्वोक्त विधि से करें। प्राप्त हुई यह महाराशि भी 'मध्यअनन्तानन्त' के अनन्तानन्त भेदों में का ही एक भेद है। इसे 'कैवल्यज्ञान' शक्ति के अविभागप्रतिच्छेदों के समूह रूपराशि में से घटावें और शेष में वही महाराशि (जिसे घटाया गया है) जोड़दें। जो कुछ योगफल प्राप्त हो वही 'उत्कृष्टअनन्तानन्त' का प्रमाण है, अर्थात् 'उत्कृष्टअनन्तानन्त' का परिमाण 'कैवल्यज्ञान' शक्ति के अविभागप्रतिच्छेदों के परिमाण की बराबर ही है। जिसका महत्व हृदयाङ्कित करने के लिये उपर्युक्त विधान से काम लिया गया है ॥

(त्रि. गा. ४८-५१)

नोट२—उपर्युक्त अङ्कगणना सम्बन्धी संख्यात के ३ भेद, असंख्यात के ६ भेद और अनन्त के ९ भेद, एवम् २१ भेदोंमें से संख्यात की गणना तो 'श्रुतज्ञान' का प्रत्यक्ष विषय, असंख्यात की गणना 'अवधिज्ञान' का प्रत्यक्ष विषय और अनन्त की गणना केवल 'कैवल्यज्ञान' ही का युगपत प्रत्यक्ष विषय है ॥

(त्रि. गा. ५२) ॥

नोट३—अलौकिक अङ्कगणना (संख्या लोकोत्तरमान) सम्बन्धी १४ धारा हैं ॥ (देखो शब्द 'अङ्कविद्या' का नोट ५) ॥

नोट ४—अङ्कगणना सम्बन्धी विशेष स्मरणीय कुछ गणनायें निम्न लिखित हैं जिन के जान लेने की अधिक आवश्यक्ता

'गोमट्टसारादि' करणानुयोग के ग्रन्थों की स्वाध्याय में पड़ती हैः—

(१) जिनवाणी के एक मध्यम पद के अपुनरुक्त अक्षरों की संख्या १६३४८३०७८८८ (ग्यारह अङ्क प्रमाण) है ॥

(२) चौदह प्रकीर्णक सहित द्वादशांग जिनवाणी या पूर्ण 'द्रव्यश्रुतज्ञान' के सर्व मध्यमपद ११२८३५८००५ (दश अङ्कप्रमाण) और अपुनरुक्त अक्षर ८०१०८१७५ (आठ-अङ्क प्रमाण) हैं। इन में से दश अङ्कप्रमाण जो पदों की संख्या है वह तो द्वादशांग की संख्या है और आठ अङ्कप्रमाण जो अपुनरुक्त अक्षरों की संख्या है वह १४ प्रकीर्णक (अङ्ग-बाह्य) की संख्या है जो एक पद से कम है ॥

(३) सम्पूर्ण जिनवाणी (अङ्ग और अङ्गबाह्य) के अपुनरुक्त अक्षरों की संख्या १८४४६७४४,०७३७०९५५१६१५ बीस अङ्क प्रमाण है ॥

(४) पर्याप्त मनुष्यों की संख्या ७९, २२,८१,६२५;१४२,६४,३३,७५,९३,५४,३९,५०, ३३६ (२९ अङ्कप्रमाण) है ॥

(५) पल्य के रोमों की संख्या ४१३४५२६३०३०८२०३,१७७७४९५१२१.९२००००००० ०००००००००००० (४५ अङ्क प्रमाण, २७ अङ्क और १८ शून्य) है ॥

(६) जघन्यपरीतासङ्ख्यात का प्रमाण जानने के लिये बनाये गये १००० महायोजन गहरे और जम्बूद्वीप समान गोल १ लक्ष महायोजन व्यास वाले प्रथम 'अनवस्था कुण्ड' की शिखाऊ भरी हुई सरसों के दानों की संख्या १९९७११.२९३८४५१३१६,३६३६ ३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ (४६ अङ्कप्रमाण) है। इस में से कुण्ड की सरसों १९७९१२०९२९९९६८००००००००००००००० ०००००००००००००००० (४५ अङ्क प्रमाण, १४ अङ्क और ३१ शून्य) और शिखा की सरसों १५९९.२००८४५४५१६३६३६३६३६३६३६३६ ३६३६३६३६२६३६३६३६ (४६अङ्क प्रमाण) है ॥

(७) जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल ७९०५६९४ १५० वर्ग महायोजन (१० अङ्क प्रमाण) है ॥

सूचना १—किसी गोल पदार्थ की परिधि (गोलाई) उसके व्यास से तृगुणी से कुछ अधिक होती है। जब किसी गोल पदार्थ का क्षेत्रफल जानना हो तो वहां व्यास और परिधि के इस पारस्परिक सम्बन्ध (अनुपात) को जानने की आवश्यका पड़ती है। यह पारस्परिक सम्बन्ध १:३, या १:३ १/३६ या १ : √१०, या १:१ १/७, या १:३ १६/११३ इन पांच प्रकार से गणितज्ञों ने नियत किया है। इन में से पहिला अत्यन्त स्थूल है और इससे अगला अगला अपने पूर्व पूर्व के से सूक्ष्म है। अन्तिम अर्थात् १ : ३ १६/११३ अत्यन्त सूक्ष्म है और १ : √१० मध्यम है। जहां जैसा स्थूल या सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालने की आवश्यकता होती है वहां गणितज्ञ उसी स्थूल या सूक्ष्म सम्बन्ध से यथाआवश्यक कार्य ले लेते हैं।

यहां जम्बूद्वीप का क्षेत्र फल निकालने में मध्यम सम्बन्ध १:√१० अर्थात् १:१० का वर्गमूल (३·१६२२७७६६०१६८३७९···) से काम लिया गया है। और पल्य के रोमों की संख्या निकालने के लिये जो पल्य का खातफल (घनफल) लिया गया है वहां १ : १ १/६ इस सम्बन्ध और अनवस्था कुंड' की सरसों की संख्या निकालने में अत्यन्त स्थूल सम्बन्ध १:३ से ही काम निकाला गया है ॥

सूचना २—एक 'महायोजन' ही को 'प्रमाणयोजन' कहते हैं और यह साधारण योजन से ५०० गुणा अर्थात् २००० कोश का होता है ॥

(८) सर्व वातवलयों का घनफल जगतप्रतर (अर्थात् ४६ वर्गराजू) गुणित १०२४१६८३४८७/१०९७६० महायोजन (९३३१२ ५८३६७/१०९७६० या लगभग ९३३१२॥ प्रमाणयोजन) है ॥

(त्रि. गा. १३९,१४०)॥

(९) एक कल्पकाल के 'सागरों' की संख्या २० कोड़ाकोड़ी अर्थात् २००००००००००००००० (१६ अङ्क प्रमाण, दो पद्म) है ॥

(१०) एक कल्पकाल के 'पल्योपमों' की संख्या सागरों की संख्यासे १०कोड़ाकोड़ी गुणित अर्थात् २,०००००००००००००००००००००००००००००० (३१ अङ्क प्रमाण, एक अङ्क और ३० शून्य) है ॥

(११) एक व्यवहार पल्योपम के वर्षों की संख्या एक पल्य के उपर्युक्त रोमों की संख्या से १०० गुणित अर्थात् ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००० (४७ अङ्क प्रमाण, २७ अङ्क और २० शून्य) है ॥

(१२) एक व्यवहार सागरोपम के 'वर्षों' की संख्या उपर्युक्त एक व्यवहार पल्योपम के वर्षों की संख्या से १० कोड़ाकोड़ी गुणित अर्थात् ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००००००००००००००००००० (६२ अङ्क प्रमाण, २७ अङ्क और ३५ शून्य) है ॥

(१३) लवणसमुद्र की उपरिस्थ धरातल का (समभूमि की सीध में जहां दो लाख महायोजन, चौड़ाई है) क्षेत्रफल जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल से २४ गुणा, अर्थात् १८९७३६६५९६०० वर्ग महायोजन (१२ स्थान प्रमाण) है और इसका घनफल या खातफल (पातालगर्त्तों को छोड़ कर) उसी के क्षेत्र फल से ५२'१ गुणा अर्थात् ९९६११७४६२९.०००० (१४ स्थान प्रमाण) घन महायोजन है ॥

सूचना ३—लवणसमुद्र जम्बूद्वीप की चारों ओर वलयाकार है, समभूमि की सीध में २ लाख महायोयन और तलभाग में केवल १० सहस्र महायोजन चौड़ा है। इसको गहराई दोनों छोरों पर मक्षिका (माखी) के पक्ष (पंख) की मुटाई की समान और क्रम से बढ़ती हुई मध्य भाग में (जहां का तल भाग १० सहस्र महायोजन चौड़ा है) एक सहस्र महायोजन है, इसके मध्य में चारों दिशाओं में एक एक पाताल गर्त्त प्रत्येक खड़े, मृदंगाकार गोल मध्यभाग में १ लाख महायोजन, तली में और शिरोभाग में १० सहस्र महायोजन व्यास का,और रत्नप्रभा पृथ्वी के पङ्क भाग तक एक लाख महायोजन गहरा है, चारों विदिशाओं में एक एक पाताल गर्त्त प्रत्येक खड़े मृदंगाकार गोल, मध्यभाग में १० सहस्र महायोजन, तलभाग और शिरोभाग में १ सहस्र महायोजन व्यास का, और १० सहस्र महायोजन गहरा है और आठों दिशा विदिशाओं के बीच में सवा सवा सौ पाताल गर्त्त प्रत्येक खड़े मृदंगाकार गोल, मध्यभाग में १ सहस्र महायोजन, तलभाग और शिरोभाग में १०० महायोजन व्यास का, और १ सहस्र महायोजन गहरा है; (यह सर्व १००८ पातालगर्त्त अपनी २ गहराई के नीचले तिहाई

भाग में वायु से, उपर के तिहाई भाग में जल से, और मध्य के तिहाई भाग में जल मिश्रित पवन से भरे रहते हैं); इस का जल समभूमि से ११ सहस्र महायोजन ऊँचा उठा रहता है जो प्रत्येक मास में शुक्ल पक्ष की पड़िवा तिथि से जब पाताल गर्त्तों की पवन ऊपर को उठने लगती है क्रम से बढ़ कर पूर्णिमा को समभूमि से १६ सहस्र महायोजन ऊँचा हो जाता है और फिर कृष्णपक्ष की पड़िवा से जब पाताल गर्त्तों की पवन नीचे को दबने लगती है क्रम से घट कर अमावस्या को समभूमि से ११ सहस्र महायोजन ऊँचा ही पूर्ववत रह जाता है। इस उठे हुये जल की चौड़ाई समभूमि की संधि पर दो लाख महा योजन है जो दोनों ओर क्रम से घटती हुई ११ सहस्र योजन की ऊँचाई पर ६९,३७५ महायोजन रह जाती है और शुक्लपक्ष में जब जल ऊँचा उठता है तो यह चौड़ाई क्रम से और भी कम होती हुई पूर्णिमा को १६ सहस्र योजन की ऊँचाई पर केवल १० सहस्र महायोजन रह जाती है॥

लवण समुद्र के १००० छोटे पाताल-गर्त्तों में से प्रत्येक गर्त्त का खातफल ३९९,२३७५५४५७५ (अर्थात् ३९९२३७५५४ और एक योजन के एक सहस्र भागों में से ५७५ भाग) घन महायोजन है और सर्व १००० गर्त्तों का खातफल ३९९,२३७५५४५७५ घन महायोजन है। चार विदिशा के पाताल गर्त्तों में से प्रत्येक गर्त्त का खातफल ३९९२ ३७५५४५७५ घन महायोजन और चारों का १५९६९५०२१८३०० घन महायोजन है। और चार दिशाओं के पातालगर्त्तों में से प्रत्येक गर्त्त का खातफल ३९९२३७५५४५७ ५००० घन महायोजन और चारों का खातफल १५९६९५०२१८३००००० घन महायोजन है। इन सर्व १००८ पातालगर्त्तों का मिला कर खातफल १५९८९४६४०६०७२८ ७५ (१६ अङ्क प्रमाण) घन महायोजन है॥

पूर्णिमा के दिन जब कि लवणसमुद्र का जल १६००० महायोजन ऊँचा उठा होता है प्रत्येक भाग के जल का प्रमाण निम्न लिखित है:—

[१] १००८ पाताल कुंडों में के बचे हुए पवन मिश्रित जल का घनफल ५१५८४ ६५४३२८७५ (१३ अङ्क प्रमाण) घन महा योजन॥

[२] पाताल कुंडों को छोड़ कर समभूमि तक के लवणसमुद्र के जल का घनफल ९९६११७४६२९०००० (१४ अङ्क प्रमाण) घन महायोजन॥

[३] समभूमि से ११००० महायोजन ऊँचे उठे हुए जल का घनफल १४० ५५३३१९८९९३१२५ (१६ अङ्क प्रमाम) घन महायोजन॥

[४] ११००० महायोजन ऊँचाई से ऊपर १६००० महायोजन ऊँचाई तक के अर्थात् शुक्लपक्ष में पाताल कुंडों से निकल कर ५००० महायोजन अधिक ऊँचा उठ जाने वाले जल का घनफल १८८२५४३४१९४६८७५ (१५ अङ्क प्रमाण) घन महा योजन॥

[५] सर्व पाताल कुंडों के और ऊँचे उठे रहने वाले सर्व जल सहित लवणसमुद्र के सम्पूर्ण जल का घनफल या खातफल १९९८५५८१५२३६९८७५ (१६ अङ्क प्रमाण) घन महायोजन॥

(१४) पाताल कुंडों के और समभूमि से ऊपर उठे हुए जल को छोड़ कर

लवणसमुद्र में के सारे जल के यदि सरसों के दाने की बराबर के छोटे छोटे जलविन्दु किये जावें तो उन की संख्या उपर्युक्त नं० (६) में वर्णित अनवस्था कुंड की सरसों की संख्या १९७९१२०९२९९९६८००००००००००००००००००००००००००००००० से १२ $\frac{३}{५}$ गुणित अर्थात् उसके ५ समभागों में से ३ भाग अधिक १२ गुणी २४९३६९२३७१७९५९६८ ०००००००००००००००००००००००००००००० (४६ स्थान प्रमाण, १६ अङ्क और ३० शून्य) है और यदि पाताल कुंडों के और समभूमि से ऊंचे उठे हुए जल सहित उस के सम्पूर्ण जल के ऐसे ही जलबिन्दु किये जावें तो उनकी संख्या इस उपर्युक्त संख्यासे कुछ अधिक १७ गुणी होगी ॥

(१५) लवणसमुद्र के सम्पूर्ण जल की तोल (१००८ पाताल कुंडों के और समभूमि से ऊँचे उठे हुये जल सहित की) १८३४४४२८०४५५१९ ०५०००००००००००००००००००००० (१६ अङ्क और २२ शून्य, सर्व ३८ स्थान प्रमाण) मन है ॥

सूचना ४—एक घ. फुट स्थान में ३० सेर ६ छटाँक नदी का जल और ३१ सेर ४ छटाँक समुद्री खारी जल (लवण समुद्र का जल) आता है; एक घनहस्त प्रमाण स्थान में २ मन २५ सेर ७॥ छटाँक, एक घन गज़ (बीख या किष्कु) अर्थात् एक गज़ लम्बे, एक गज़ चौड़े और एक गज़ गहरे स्थान में २१ मन ३॥ सेर और इसी रीति से एक घन महायोजन क्षेत्र में १०८०००००००००००००००००००००० (१०८ पर २० शून्य) मन जल समाता है। यहाँ ८० तोला (८० रुपये भर का एक सेर और ४० सेर का एक मन ग्रहण किया गया है ॥

(१६) $२^{१६}$ या $२५६^{२}$ अर्थात् २ का १६वां बल या २५६ का द्वितीय बल या २५६ का वर्ग ६५५३६ है। इसे 'पणट्ठी' या 'पण्णट्ठी' कहते हैं। यह द्विरूप वर्गधारा का चौथा स्थान है। पणट्ठी का वर्ग ४२९४ ९६ ७२९६ है। यह संख्या $२^{३२}$ अर्थात् २ का ३२वाँ बल है। इसे 'वादाल' कहते हैं। यह द्विरूप वर्गधारा का पाँचवां स्थान है। वादाल का वर्ग १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ है। यह संख्या $२^{६४}$ अर्थात् २ का ६४ वां बल है। इसे 'एकट्ठी' कहते हैं। यह द्विरूप वर्गधारा का छटा स्थान है। वादाल का घन ७९२२८१६२५,१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ (२९ अङ्क प्रमाण, अर्थात् उनासी करोड़, बाईस लाख, इक्यासी हज़ार, छह सौ पचीस महासंख; एक सौ बयालीस संख, चौंसठ पद्म, तेंतिस नील, पिछत्तर खर्व, तिरानवे अर्व, चव्वन करोड़, उन्तालीस लाख, पचास हज़ार, तीन सौ छतीस) है। यह संख्या $२^{९६}$ अर्थात् २ का ९६वां बल (घात) है ॥ यह संख्या अढ़ाईद्वीप के सर्व पर्याप्त मनुष्यों की है ॥

नोट ५—अङ्कगणना में कोई २ संख्या बड़ी अद्भुत और 'आश्चर्योत्पादक' है, जैसे

(१) १४२८५७; यह ऐसी संख्या है कि जिसे २,३,४,५ या ६ में अलग अलग गुणन करने से जो 'गुणनफल' की संख्यायें २८५७१४, ४२८५७१, ५७१४२८,७१४२८५,८५७१४२, प्राप्त होती हैं उनमें से प्रत्येक में गुण्य अर्थात् मूलसंख्या १४२८५७ के ही अङ्क केवल स्थान बदल कर आजाते हैं, तिस पर भी विशेष आश्चर्य जनक बात यह है कि

प्रत्येक गुणन फल की संख्या के अङ्क अपना क्रमभंग भी नहीं करते ॥

उसी मूलसंख्या को यदि ७ से गुणन किया जाय तो गुणनफल ९९९९९९ में सर्व अङ्क ९ ही ९ आजाते हैं। और यदि उपर्युक्त छहों गुणनफलों में से किसी ही गुणनफल को भी ७ से गुणन करें तो भी प्रत्येक नवीन गुणनफल १९९९९९८,२९९९९९७,३९९९९९६, ४९९९९९५,५९९९९९४ ६९९९९९३, में प्रथम और अन्तिम एक एक अङ्क के अतिरिक्त शेष सर्व ही अङ्क ९ ही ९ आते हैं और वह प्रथम और अन्तिम अङ्क भी प्रत्येक गुणनफलमें ऐसे आते हैं जिनका जोड़ भी ९ ही होता है ॥

उसी मूल संख्या को, या उसे २,३,४, ५,६, से गुणन करके जो उपर्युक्त गुणनफल प्राप्त हों उनमें से किसी को ८ या ९ से गुणन करें तौ भी प्रत्येक नवीन गुणनफल में ऐसे ७ अङ्क आजाते हैं कि यदि उनके केवल प्रथम और अन्तिम अङ्कों को जोड़कर इकाई के स्थान पर रक्खें जिससे प्रत्येक संख्या ६ अङ्क प्रमाण ही हो जाव तो भी मूलसख्या के वे ही छहों अङ्क केवल अपना स्थान बदल कर बिना क्रमभंग किये हुये पूर्व वत् ज्यों के त्यों आजाते हैं ॥

और यदि मूलसंख्या और ७ के गुणन फल ९९९९९९ को २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, या ९ में से किसी अङ्क से गुणन किया जाय तौ भी केवल प्रथम और अन्तिम अङ्क को जोड़ कर रख लेने से प्रत्येक गुणनफल में ९ ही ९ के अङ्क आजाते हैं ॥

(२) ९ का अङ्क भी उपर्युक्त संख्या १४२ ८५७ से कम "आश्चर्योत्पादक" नहीं है। इसे २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, में से किसी ही अङ्क से गुणन करने से प्रत्येक गुणनफल १८,२७,३६,४५,५४,६३, ७२, ८१, ९०, प्रत्येक ऐसी संख्या आती है जिसके अङ्कों को जोड़ लेने से मूल अङ्क ९ ही प्राप्त होता है ॥

केवल इतना ही नहीं, १० से आगे की भी उत्कृष्ट अनन्तान तककी चाहे जिस संख्या को इससे गुणें प्रत्येक अवस्था में ऐसा ही गुणनफल प्राप्त होगा जिसके सर्व अङ्कों को जोड़ने से (यदि जोड़ की संख्या १ अङ्क से अधिक अङ्कों की हो तो उसके अङ्कों को भी फिर जोड़ जोड़ लें जब तककि अन्तिम जोड़ एक अङ्क की संख्या न बन जाय) वही मूल अङ्क ९ प्राप्त होगा। जैसे ५२७ को ९ गुणित किया तौ ४७ ४३ प्राप्त हुआ, इसके अङ्कों ३, ४,७,४, को जोड़ने से १८, और फिर १८ के अङ्कों ८ और १ को जोड़ने से वहीं मूल अङ्क ९ प्राप्त हुआ ॥

इसके अतिरिक्त इस अद्भुत अङ्क ९ में अन्य भी कई निम्न लिखित 'आश्चर्यजनक' गुण हैं:—

१. यदि १२३४५६७८९, इस संख्या को (जो १ से लेकर ९ तकके अङ्कों को क्रमवार रखने से बनी है) ९ से गुणें तो गुणनफल ११ ११११११०१ में सर्व अङ्क १ ही १ आजाते हैं, केवल दहाई पर शून्य आता है। उसी संख्या को यदि ९ के दुने १८, तिगुने २७, चोगुने३६, पचगुने ४५, छह गुने ५४,सातगुने ६३, आठ-गुने ७२, या नवगुने ८१ से गुणें तौ भी प्रत्येक गुणनफल में सर्व ही अङ्क २ ही २, ३ ही ३, ४ ही ४, इत्यादि एक ही प्रकार के आते हैं और दहाई पर प्रत्येक अवस्था में शून्य आता है ॥

२. यदि ९८७६५४३२१ इस संख्या को जो पूर्व संख्या की 'विलोमसंख्या' है ९ या ९ के द्विगुण, त्रिगुण, चतुरगुण, आदिमें से किसी

से गुणें तो भी प्रत्येक गुणनफल ८८८८८८८८८८८६,१७७७७७७७७७८,२६६६६६६६६६६७,३५५५५५५५५५५६, इत्यादि में सर्व अङ्क ८ ही ८, ७ ही ७, ६ ही ६ त्यादि एक ही से आते हैं, केवल एक प्रथम अङ्क या प्रथम और अन्तिम एक एक अङ्क अन्य आते हैं। यह अन्य अङ्क भी प्रत्येक गुणनफल में ऐसे आते हैं जिनका जोड़ भी ९ ही है और पहिले गुणनफल में इकाई के स्थान पर जो अङ्क आता है वह स्वयम् ही ९ है। प्रत्येक गुणनफल में केवल इतनी ही बात नहीं है कि प्रथम और अन्तिम अङ्क ऐसे आते हैं जिनका जोड़ ९ है किन्तु इतनी और विशेषता है कि वे दोनों अङ्क पास पास यथाक्रम रखने से वही संख्या बन जाती है जो प्रत्येक गुणाकार में "गुणक"संख्या है। यदि गुणक संख्या दो अङ्कों से अधिक है अर्थात् ९९ से बड़ी है तो भी गुण्य में मध्य के समान अङ्कों के अतिरिक्त दोनों छोरों पर जो अङ्क आवेंगे वे भी ऐसे होंगे जो या तो उपरोक्त नियमबद्ध होंगे या उनका अन्तिम जोड़फल वही अङ्क होगा जो मध्य के 'समान अङ्क' हैं (देखो शब्द "अङ्कगणित" और "अङ्कविद्या" नोटों सहित)॥

अङ्कगणित—अङ्कविद्या या गणितविद्या के कई विभागों में से वह विभाग जिसमें शून्य सहित १ से ९ तक के मूल १० अङ्कों से तथा इन ही मूलअङ्कों के संयौगिक अङ्कों से काम लिया जाता है। (आगे देखो शब्द 'अङ्कविद्या')॥

इस अङ्कगणित के (१) मान (२) अवमान (३) गणिमान (४) प्रतिमान (५) तत्प्रतिमान (६) उन्मान, यह ६, या (१) द्रव्यमान (२) क्षेत्रमान (३) गणिमान (४) कालमान (५) तुलामान (६) उन्मान या अनुमान, यह ६ भेद हैं। इन ६ भेदों में से तृतीय भेद "गणिमान" अङ्कगणित का मुख्य भेद है जिसके परिकर्माष्टक, ज्ञाताज्ञातराशिक, व्यवहारगणित, दर, ब्याज आदिक अनेक भेद हैं। इन में से "परिकर्माष्टक" सर्व अन्य भेदों का मूल है। इसके (१) साधारणपरिकर्माष्टक (२)मिश्रपरिकर्माष्टक (३) भिन्नपरिकर्माष्टक (४) शून्यपरिकर्माष्टक (५) दशमलवपरिकर्माष्टक (६) श्रेढ़ीबद्धपरिकर्माष्टक आदि कई भेद हैं जिन में से प्रत्येक के आठ२ अङ्ग (१) संकलन अर्थात् जोड़ या योग (२) व्यवकलन अर्थात् बाक़ी या अन्तर (३) गुणा (४) भाग (५) वर्ग (६) वर्गमूल (७) घन (८) घनमूल हैं। और ज्ञाताज्ञातराशिक के त्रैराशिक, पंचराशिक, सप्तराशिक, आदि कई भेद हैं। इसी प्रकार व्यवहारगणित, दर और ब्याज के भी (१) साधारण (२) मिश्र, यह दो दो भेद हैं॥

नोट—देखो शब्द "अङ्कविद्या" नोटों सहित॥

अङ्कनाथपुर—दक्षिण भारत के मैसूर राज्यान्तर्गत मन्दगिरि स्टेशन से १४ मील पर एक "श्रवणबेलगुल" (जैनबद्री) ग्राम है जहां इसी नाम के पर्वत पर 'श्रीबाहुबली' या 'गोम्मटस्वामी' की बड़ी विशाल प्रतिमा ६० फिट या ४० हस्त ऊंची खड्गासन (उत्थितासन) विराजमान है। इसी के निकट यह 'अङ्कनाथपुर' नामक एक ऊजड़ ग्राम है जो प्राचीन समय में गङ्गवंशीय जैन राजाओं के राज्य में जैनों का एक प्रसिद्ध क्षेत्र था। यहां आजकल 'अङ्कनाथेश्वर' नाम से प्रसिद्ध एक हिन्दू मन्दिर है जिसकी कई छत्तों व सीढ़ी

आदि पर के लेखों को देखने से ज्ञात होता है कि यह नवीन हिन्दू मन्दिर जैनियों के १०वीं शताब्दी के बने मन्दिरों की सामग्री से बना है। इस मन्दिर के एक स्तम्भ पर कई छोटी छोटी जैनप्रतिमाएं भी अभी तक विराजमान हैं॥

अङ्कप्रभ—कुंडलगिरि नामक पर्वत पर के पश्चिम दिशा के एक कूट का नाम, जिस का निवासी 'अङ्कप्रभ' या 'महाहृदय' नामक एक पल्योपम की आयुवाला नागकुमार जाति का देव है।

यह पर्वत 'कुंडलवर' नामक ११वें द्वीप के मध्य में वलयाकार है। इस पर्वत की चारों दिशाओं में से प्रत्येक में चार २ साधारणकूट और एक एक 'सिद्धकूट' या 'जिनेन्द्रकूट' हैं॥

{ त्रि. गा. ९४४, ९४५, ९४६, ९६०;
हरि. सर्ग ५ श्लोक ६८४-६६४ }

नोट—किसी पर्वत की चोटी को 'शिखर' या 'कूट' कहते हैं। जिस कूट पर कोई जिनचैत्यालय हो उसे "सिद्धकूट" या 'जिनेन्द्रकूट' कहते हैं॥

अङ्कमुख (अङ्कमुह)—पद्मासन का अग्रभाग (अ० मा०)॥

अङ्कलेश्वर—यह एक अतिशययुक्त जैनतीर्थस्थान है जो बम्बई गुजरात प्रान्त में सूरत रेलवे जङ्क्शन से भरोंच होती हुई बड़ौदा जाने वाली लाइन पर सूरत से उत्तर और भरोंच से दक्षिण की ओर को है। भरोंच से लगभग ६ या ७ मील 'अङ्कलेश्वर' नामक रेलवे स्टेशन से १ मील पर यह एक प्रसिद्ध नगर है। यहां आज कल २० या २१ घर दिगम्बरजैनों के हैं और ४ बड़े बड़े विशाल जैनमन्दिर हैं जिन में सहस्रों जिनप्रतिमा विराजमान हैं। यहां एक भौंरे में चतुर्थकाल की प्राचीन जिनप्रतिमा श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर की श्यामवर्ण बालरेत की बनी हुई बड़ीही मनोहर है जो 'चिन्तामणिपार्श्वनाथ' के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसी लिये यह क्षेत्र भी 'श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ' ही के नाम से प्रसिद्ध है। यह भारतवर्ष के लगभग ५० जैन अतिशयक्षेत्रों में से एक अतिशयक्षेत्र और बम्बई इहाते के ३४ या केवल गुजरात प्रान्त के १३ प्रसिद्ध जैनतीर्थक्षेत्रों में से एक तीर्थक्षेत्र है। (देखो शब्द "अतिशयक्षेत्र" और 'तीर्थक्षेत्र')॥

अङ्कविद्या—गणितविद्या। वह विद्या जिसमें गणना के अङ्कों या रेखाओं या कल्पित चिन्हों या अन्यान्य आकारों आदि से काम लेकर अभीष्ट फल की प्राप्ति की जाय॥

नोट१—विद्या के दो मूल भेद हैं—(१) शब्दजन्य विद्या और (२) लिङ्गजन्य विद्या। इनमें से पहिली 'शब्दजन्य विद्या' अक्षरात्मक शब्दजन्य और अनक्षरात्मक शब्दजन्य इन दो भेद रूप है। और दूसरी 'लिङ्गजन्यविद्या' केवल अनक्षरात्मक ही होती है॥

अक्षरात्मक शब्दजन्यविद्यामें व्याकरण, कोष, छन्द, अलङ्कार तथा गणित, ज्योतिष, वैद्यक, इतिहास और गान आदि गर्भित हैं। जिनमें व्याकरणविद्या और गणित विद्या यह दो मुख्य हैं। 'गणितविद्या' का ही नाम 'अङ्कविद्या' भी है। (इस विद्या में अक्षरों की मुख्यता न होने से इसे

लिङ्गजन्य या अनक्षरात्मक विद्या का भेद भी कह सकते हैं) ॥

'अनक्षरात्मक शब्दजन्य विद्या' वह विद्या है जिस से अनक्षरात्मक शब्दों द्वारा कुछ ज्ञान प्राप्त हो। जैसे पशु पक्षियों के शब्द, मनुष्य की खांसी, छींक, ताली बजाना, थपथपाना, कराहना, रोना आदि के शब्द, अनेक प्रकार के बाजों के शब्द, इत्यादि से कोई शकुन या अपशकुन विचारने या उनका कोई विशेष प्रयोजन या फल या अर्थ पहचानना।

'लिङ्गजन्यविद्या' वह विद्या है जिससे बिना किसी अक्षरात्मक या अनक्षरात्मक शब्द के केवल किसी न किसी चिन्ह द्वारा ही कोई ज्ञान प्राप्त हो सके। जैसे हाथ, अँगुली, आँख, पलक आदि के खोलने, बन्द करने, फैलाने, सुकोड़ने, हिलाने आदि से बनी हुई भाषा (गूंगी या मूकभाषा), या कर्णइन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य किसी इन्द्रिय द्वारा विशेष ज्ञान प्राप्त करने की विद्या। सर्व प्रकार की हस्तकला और तैरना, व कुश्ती लड़ना आदि भी इसी प्रकार की विद्या में गिनी जा सकता हैं ॥

नोट २—उपर्युक्त दोनों प्रकार की मुख्यविद्या वर्त्तमान अवसर्पिणी काल में सर्व से प्रथम पहिले तीर्थंकर 'श्रीऋषभदेव' ने अपनी दो पुत्रियों को पढ़ाई थीं—बड़ी पुत्री 'ब्राह्मी' को 'व्याकरणविद्या' और छोटी पुत्री 'सुन्दरी' को 'अङ्कविद्या'—और अन्य अनेक विद्याएँ यथा आवश्यक अन्यान्य व्यक्तियों को सिखाईं। अतः वर्त्तमानकाल में इन दोनों मूलविद्याओं के तथा और भी बहुत सी अन्य विद्याओं के जन्मदाता 'श्रीऋषभदेव' ही हैं जो श्री आदिदेव, * आदिनाथ, आदिब्रह्मा, इत्यादि अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं और जिन के राज्यसमय को आज से साढ़ेउन्तालीस सहस्रवर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपमकाल से कुछ अधिक व्यतीत हो गया। (देखो 'अक्षर' और 'अक्षरविद्या' शब्द) ॥

नोट ३—यह "अङ्कविद्या" लौकिक और लोकोत्तर (अलौकिक) भेदों से दो प्रकार की है। इन में से प्रत्येक के (१) अङ्कगणित, (२) बीजगणित, (३) क्षेत्रगणित, (४) रेखागणित, (५) त्रिकोणमिति, इत्यादि अनेक भेद हैं और प्रत्येक भेद के कई कई अङ्ग हैं। इन भेदों में से प्रथम भेद 'अङ्कगणित' के निम्नलिखित कई अङ्ग और उपाङ्ग हैं:—

(क) परिकर्माष्टक अर्थात् (१) संकलन (जोड़), (२) व्यवकलन (अन्तर), (३) गुणा, (४) भाग, (५) वर्ग, (६) वर्गमूल, (७) घन, (८) घनमूल;

(ख) ज्ञाताज्ञातराशिक अर्थात् त्रैराशिक, पञ्चराशिक आदि;

(ग) व्यवहारगणित साधारण व मिश्र, दो प्रकार का;

(घ) व्याज साधारण व मिश्र या चक्रवृद्धि, दो प्रकार का;

(ङ) दर साधारण व मिश्र; श्रेढ़ीवद्धव्यवहार;

इत्यादि अनेक अङ्ग और उपाङ्ग हैं जिन सर्व का मूल 'परिकर्माष्टक' अङ्ग है। और जिससे यथा आवश्यक 'बीजगणित' आदि अन्य अङ्गों में भी कार्य लिया जाता है। (देखो शब्द 'अङ्कगणित') ॥

लौकिक 'अङ्कगणित' के मुख्य सहायक निम्न लिखित ६ प्रकार के मान (परिमाण) हैं:—

(१) द्रव्यमान—पाई, पैसा, अधन्ना,

इकन्नी, दुअन्नी, रुपया, मुहर, इत्यादि ॥

(२) क्षेत्रमान—अंगुल, पाद, वितस्ति, हस्त, बीख, धनुष योजन आदि व गट्ठा, जरीब, बिस्वा, बीघा आदि ॥

(३) कालमान—विपल, पल, घटि, मुहूर्त्त, प्रहर, इत्यादि ॥

(४) गणिमान—एक, दो, तीन आदि ॥

(५) तुलामान—चावल, रत्ती (चिर्मिटी), माशा, तोला, टंक, छँटाक, सेर आदि ॥

(६) अनुमान—बूंद, चुल्लू, चम्मच, मुट्ठी आदि ॥

इसी प्रकार अलौकिक या लोकोत्तर गणित के सहायक निम्न लिखित चार मान (परिमाण) हैं:—

(१) द्रव्यलोकोत्तरमान—

(क) २१ भेद युक्त संख्यालोकोत्तरमान……… (देखो 'अङ्कगणना' शब्द) ॥

(ख) ८ भेद युक्त उपमालोकोत्तरमान—१. पल्य, २. सागर, ३. सूच्यंगुल, ४. प्रतरांगुल, ५. घनांगुल, ६. जगच्छ्रेणी, ७. जगत्प्रतर, ८. जगत्घन अर्थात् लोक। (देखो आगे नोट ६) ॥

(२) क्षेत्रलोकोत्तरमान—एक प्रदेश से लेकर लोक और अलोक के अनन्तानन्त प्रदेश समूह तक के सर्व भेद। (आगे देखो नोट ७) ॥

(३) काललोकोत्तरमान—एक समय से भूत, भविष्यत, वर्त्तमान, तीनों काल के अनन्तानन्त समय समूह तक के सर्व भेद। (देखो आगे नोट ८) ॥

(४) भावलोकोत्तरमान—सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि-अपर्याप्तक जीवका लब्धि-अक्षरज्ञान अर्थात् शक्तिके एक अविभाग प्रतिच्छेद से पूर्णशक्ति 'केवलज्ञान' तक के सर्व भेद ॥

नोट ४—प्रकारान्तर से अलौकिक गणित सम्बन्धी केवल दो ही मान अर्थात् (१) संख्यालोकोत्तरमान और (२) उपमालोकोत्तरमान, कहे जा सकते हैं जिन में से पहिले में 'द्रव्यलोकोत्तरमान' और 'भावलोकोत्तरमान' और दूसरे में 'काललोकोत्तरमान' और 'क्षेत्रलोकोत्तरमान' गर्भित हैं ॥

नोट ५—संख्यालोकोत्तरमान के अन्तर्गत २१ प्रकार की लोकोत्तरअङ्कगणना (देखो शब्द 'अङ्कगणना') के अतिरिक्त निम्न लिखित १४ धारा भी हैं:—

(१) सर्वधारा (२) समधारा (३) विषमधारा (४) कृतिधारा या वर्गधारा (५) अकृतिधारा या अवर्गधारा (६) घनधारा (७) अघनधारा (८) कृतिमातृकधारा या वर्गमातृकधारा (९) अकृतिमातृकधारा या अवर्गमातृकधारा (१०) घनमातृकधारा (११) अघनमातृकधारा (१२) द्विरूपवर्गधारा या द्विरूपकृतिधारा (१३) द्विरूपघनधारा (१४) द्विरूपघनाघनधारा ।

(इन में से प्रत्येक का स्वरूपादि यथास्थान प्रत्येक शब्द के साथ देखें) ॥

नोट ६—उपमालोकोत्तरमान—इसके निम्न लिखित ८ भेद हैं:—

[१] पल्य—पल्य शब्द का अर्थ है 'खलियान', 'खत्ता' या 'गढ़ा' जिसमें अनाज भरा जाता है। अतः वह परिमाण जो किसी पल्य विशेष की उपमा से नियत किया गया हो उसे 'पल्यउपमालोकोत्तरमान' या 'पल्योपममान' कहते हैं।

पल्य के ३ भेद हैं—(१) व्यवहारपल्य (२) उद्धारपल्य (३) अद्धापल्य। इन में से प्रत्येक का स्वरूप निम्न लिखित है:—

एक प्रमाण योजन (एक प्रमाण-

योजन या महायोजन २००० कोश का होता है) गहरा और इतने ही व्यास वाला कुंए के आकार का एक गोल गर्त (गढ़ा) खोद कर उसे उत्तमभोग भूमि के मेढ़े के बालाग्रों से पूर्णठोस भरें। (इस बालाग्र का परिमाण जानने के लिये देखो अगला नोट ७) ॥

इस गढ़े में जितने बालाग्र या रोम समावेंगे उनकी संख्या गणितशास्त्र के नियमानुसार गणित करने से ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००० (२७ अङ्क और १८ शून्य, सर्व ४५ अङ्कप्रमाण) है ॥

इस गर्त्त के एक एक रोम को सौ सौ वर्ष में निकालने से जितने काल में वह गर्त्त रीता हो जाय उस काल को एक 'व्यवहारपल्योपमकाल' कहते हैं। अतः इस 'व्यवहारपल्योपमकाल' के वर्षों की संख्या उपर्युक्त रोमों की संख्या से सौगुणी ४७ अङ्कप्रमाण है ॥

उद्धारपल्य के रोमों की संख्या व्यवहारपल्य के रोमों की संख्या से और 'उद्धारपल्योपमकाल' के वर्षों की संख्या 'व्यवहारपल्योपमकाल' के वर्षों की संख्या से असंख्यात कोटि गुणी है और अद्धापल्य के रोमों की संख्या उद्धारपल्य के रोमों की संख्या से और 'अद्धापल्योपमकाल' के वर्षों की संख्या 'उद्धारपल्योपमकाल' के वर्षों की संख्या से असंख्यात गुणी है ॥

यहां असंख्यात की संख्या 'मध्यअसंख्यात' का कोई मुख्य भेद है जो केवल्यज्ञान गम्य है। क्योंकि मध्यअसंख्यात के भेद इतने अधिक (असंख्यात) हैं कि उन सर्व की अलग २ संज्ञा शब्दद्वारा नियत करना नितान्त असम्भव है। इसी लिये यहां सामान्यसंज्ञा 'असंख्यात' का प्रयोग किया गया है। यहां इस असंख्यात शब्द से इतना अवश्य जान लेना चाहिये कि यह संख्या जघन्य असंख्यात से अधिक और जघन्यपरीतानन्त से कम है। इसकी ठीक २ संख्या प्रत्यक्षज्ञान (अवधिज्ञान, मनःपर्य्ययज्ञान और कैवल्यज्ञान) गम्य ही है, परोक्षज्ञान (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान) गम्य नहीं है ॥

इन उपर्युक्त तीन प्रकार के पल्यों में से व्यवहारपल्य से तो संख्या या गणना बताने में, उद्धारपल्य से द्वीप या समुद्रों की संख्या बताने में और अद्धापल्य से कर्मों की स्थिति आदि बताने में काम लिया जाता है ॥

यहां इतना जान लेना और भी आवश्यक है कि यह उपर्युक्त कथन सामान्य है। इसमें विशेष इतना है कि अद्धापल्य से जो कर्मों की स्थिति बताई जाती है उसमें आयुकर्म के अतिरिक्त शेष सर्व कर्मों की बताई जाती है। आयुकर्म की स्थिति और कल्पकाल या उसके विभागों का परिमाण व्यवहारपल्य * से बताया गया है ॥

[२] सागर—यह भी पल्य की समान तीन प्रकार का होता है, अर्थात् (१) व्यवहारसागर (२) उद्धारसागर (३) अद्धासागर। इनमें से प्रत्येक का परिमाण निम्न लिखित है :—

१. दश कोड़ाकोड़ी (१० करोड़ का करोड़ गुणा अर्थात् १ पद्म) व्यवहारपल्योपमकाल का १ 'व्यवहारसागरोपमकाल' ॥

२. दश कोड़ाकोड़ी उद्धारपल्योपम-

* कई आचार्यों की सम्मति में आयुकर्म और कल्पकाल का परिमाण भी अद्धापल्य ही से है ॥

काल का १ 'उद्धारसागरोपमकाल' ॥

३. दश कोड़ाकोड़ी अद्धापल्योपम-काल का १ 'अद्धासागरोपमकाल' ॥

'सागर' शब्द का अर्थ है समुद्र। अतः वह परिमाण जो किसी सागर (समुद्र) विशेष की उपमा रखता हो उसे 'सागरउपमालोकोत्तरमान' या 'सागरोपममान' कहते हैं। यहां इस मान को जिस सागर से उपमा देकर इसका परिमाण नियत किया गया है वह 'लवणसमुद्र' है जिसके छटे भागाधिक चौगुणे की बराबर उसका परिमाण है, अर्थात् 'लवणसमुद्र' के छटे भागाधिक चतुर्गुणे समुद्र का परिमाण या घनफल (खातफल) उपर्युक्त 'पल्य' के परिमाण या घनफल (खातफल) से पूरा दश कोड़ाकोड़ी गुणा ही है ॥

[३] सूच्यांगुल—एक प्रमाणांगुल (८यव की मध्यमुटाई का १ उत्सेधांगुल और ५०० उत्सेधांगुल का १ प्रमाणांगुल—भरतचक्रवर्ती का अंगुल) लम्बे, एक प्रदेश चौड़े और १ प्रदेश मोटे क्षेत्र को १ "सूच्यांगुल" कहते हैं, अर्थात् सूच्यांगुल केवल लम्बाई (रेखा) मात्र का एक 'मान' है जिसकी चौड़ाई मोटाई नाममात्र १ प्रदेश है। इस लम्बाई में जितने आकाशप्रदेश समावेंगे उतनी संख्या को "सूच्यांगुलउपमालोकोत्तरमान" कहते हैं ॥

अद्धापल्योपमकाल के जितने समय हैं उनकी संख्या का उनके अर्द्धच्छेदों की संख्याप्रमाण 'बल' (घात) लेने से (अद्धापल्य के समयों की संख्या को उसके अर्द्धच्छेदों की संख्याप्रमाण स्थानों में रख कर परस्पर उन्हें गुणन करने से) जितनी संख्या प्राप्त हो उतने आकाशप्रदेश एक 'सूच्यांगुल' लम्बाई में समावेंगे।

(किसी संख्या को जितनी बार आधा करते करते १ शेष रहे उसे उस मूलसंख्या की 'अर्द्धच्छेदसंख्या' कहते हैं। जैसे १२८ का पहिला अर्द्ध ६४, दूसरा ३२, तीसरा १६, चौथा ८, पांचवां ४, छटा २ और सातवाँ १ है, अतः १२८ के अर्द्धच्छेदों की संख्या या ७ है)। देखो शब्द 'अर्द्धच्छेद' ॥

[४] प्रतरांगुल—सूच्यांगुल के वर्ग को, अर्थात् एक प्रमाणांगुल लम्बे, एक प्रमाणांगुल चौड़े और एक प्रदेशमात्र मोटे क्षेत्र को 'प्रतरांगुल' कहते हैं। 'प्रतरांगुल' केवल लम्बाई चौड़ाई (धरातल) का एक 'मान' है जिसकी मुटाई नाममात्र केवल एक प्रदेश है। इस धरातलक्षेत्र में उपर्युक्त सूच्यांगुल के प्रदेशों की संख्या का वर्गप्रमाण प्रदेश समावेंगे। अतः इस वर्गप्रमाण संख्या को 'प्रतरांगुलउपमालोकोत्तरमान' कहते हैं ॥

[५] घनांगुल—सूच्यांगुल के घन को, अर्थात् एक प्रमाणांगुल लम्बे, इतने ही चौड़े और इतने ही मोटे क्षेत्र को 'घनांगुल' कहते हैं। इसमें उपर्युक्त सूच्यांगुल के प्रदेशों की संख्या के घनप्रमाण प्रदेश समावेंगे। अतः इस घनप्रमाण संख्या को 'घनांगुल उपमालोकोत्तरमान' कहते हैं ॥

(उपर्युक्त अन्तिम तीनों प्रकार के 'मान' नियत करने में भरतचक्रवर्ती के अंगुल को उपमा में गृहण किया गया है) ॥

[६] जगच्छ्रेणी (जगत्श्रेणी)—लोकाकाश की अर्द्ध ऊँचाई को, अर्थात् ७ राजू लम्बी रेखा को (जिसकी चौड़ाई और मुटाई नाम मात्र केवल एक प्रदेश हो)

जगच्छ्रेणी कहते हैं। घनांगुल के प्रदेशों की संख्या का अद्धापल्य की अर्द्धच्छेदों की संख्या के असंख्यातवें भागप्रमाण 'बल' (घात) लेने से, अर्थात् घनांगुल के प्रदेशों की संख्या को अद्धापल्य की अर्द्धच्छेदसंख्या के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थानों में रखकर परस्पर गुणन करने से जितनी संख्या प्राप्त हो उतने प्रदेश एक जगच्छ्रेणीप्रमाण लम्बाई में समावेंगे। अतः इस संख्या को "जगतश्रेणी-उपमालोकोत्तरमान" कहते हैं॥

[७] जगत्प्रतर—जगच्छ्रेणी के वर्ग को, अर्थात् ७ राजू लम्बे, ७ राजू चौड़े धरातल क्षेत्र को (जिसकी मुटाई नाममात्र केवल १ प्रदेश हो) "जगत्प्रतर" कहते हैं। इसके प्रदेशों की संख्या 'जगच्छ्रेणी' के प्रदेशों की संख्या के वर्गप्रमाण है। अतः इस संख्या प्रमाण राशि को "जगत्प्रतरउपमालोकोत्तरमान" कहते हैं॥

[८] जगत्घन या लोक—जगच्छ्रेणी के घन को, अर्थात् ७ राजू लम्बे, ७ राजू चौड़े और ७ राजू मोटे घनक्षेत्र को 'जगत्घन' कहते हैं। इतना ही अर्थात् ७ राजू का घन ३४३ घनराजू सर्व लोकाकाश या त्रिलोकरचना का घनफल (खातफल) है। अतः 'जगत्घन' को 'घनलोक' या 'लोक' भी कहते हैं। इसके प्रदेशों की संख्या जगच्छ्रेणी के प्रदेशों की संख्या के घनप्रमाण है। अतः इस संख्या प्रमाण राशि को "जगत्घनउपमालोकोत्तर मान" कहते हैं॥

(उपर्युक्त अन्तिम तीनों प्रकार के मान नियत करने में 'लोक' या जगत् से उपमा दी गई है)॥

नोट ७—'क्षेत्रलोकोत्तरमान' का जघन्यमान १ प्रदेश है। आकाश के जितने क्षेत्र को एक परमाणु घेरे उतने अत्यन्त सूक्ष्मक्षेत्र को 'प्रदेश' कहते हैं। पुद्गलद्रव्य का ऐसा छोटे से छोटा अंश जिसको कोई तीक्ष्ण से तीक्ष्ण शस्त्र या जल या अग्नि अथवा संसार भर की कोई प्राकृतिकशक्ति भी दो खंडों में विभाजित न कर सके उसे 'परमाणु' कहते हैं। ऐसे अनन्तानन्त परमाणुओं का समूह रूप स्कन्ध एक "अवसन्नासन्न" नामक स्कन्ध है॥

८ अवसन्नासन्न का १ सन्नासन्न।
८ सन्नासन्न का १ तृटरेणु
८ तृटरेणु का १ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु का १ रथरेणु
८ रथरेणु का १ उत्तम भोग भूमिया मेढ़े का बालाग्र
८ उत्तम भोगभूमिया मेढ़े के बालाग्र का १ मध्यम भोगभूमिया का बालाग्र
८ मध्यम भोगभूमिया के बालाग्र का १ जघन्य भोग भूमिया का बालाग्र।
८ जघन्य भोग भूमिया के बालाग्र का १ कर्म भूमिया का बालाग्र।
८ कर्म भूमिया के बालाग्र की १ लीख।
८ लीख की मुटाई की १ सरसों या जूं।
८ सरसों की मुटाई की १ जौ (यव) के मध्य भाग की मुटाई।
८ जौ की मुटाई का १ अङ्गुल (१ उत्सेधाङ्गुल)।
५०० उत्सेधाङ्गुल का १ प्रमाणाङ्गुल।
६ उत्सेधाङ्गुल लम्बाई का १ पाद।
२ पाद लम्बाई की १ वितस्ति (बालिश्त)
२ वितस्ति लम्बाई का १ हस्त।
२ हस्त लम्बाई का १ बीख, या किष्कु (गज़)
२ बीख लम्बाई का १ धनुष या दंड।

२००० धनुष लम्बाई का १ क्रोश ।

४ क्रोश लम्बाई का १ योजन ।

५०० योजन लम्बाई का १ महा योजन या प्रमाण योजन ।

असंख्यात महायोजन लम्बाई का १ राजू ।

७ राजू लम्बाई की १ जगच्छ्रेणी ।

४९ वर्गराजू (७ राजू लम्बा और ७ राजू चौड़ा क्षेत्र) का १ जगत्प्रतरक्षेत्र ।

३४३ घनराजू (७ राजू लम्बा, ७ राजू चौड़ा और ७ राजू मोटा क्षेत्र) का १ जगत्घन या लोक ।

अनन्तानन्त लोक का सर्व अलोक ।

लोक और अलोक मिलकर लोकालोक ।

नोट८—काल लोकोत्तर मान का जघन्य मान १ समय है। जिस प्रकार पुद्गल के छोटे से छोटे अंश का नाम "परमाणु" और आकाश क्षेत्र के छोटे से छोटे अंश का नाम "प्रदेश" है, इसी प्रकार काल के छोटे से छोटे अंश का नाम समय है ॥

* जघन्य युक्तासंख्यात संख्या प्रमाण समय की १ आवली ।

एक समय अधिक १ आवली का १ जघन्य अन्तरमुहूर्त ।

संख्यात् आवली का १ प्रतिविपलांश ।

६० प्रतिविपलांश का १ प्रतिविपल ।

६० प्रतिविपल का १ विपल ।

६० विपल या २४ सैकंड का १ पल या विनाड़ी ।

६० पल या २४ मिनिट की १ घटिका (घड़ी या नाड़ी या नाली)

२ घटिका या ४८ मिनट या ७७ लव या ५३६ स्तोक या ३७७३ बालस्वासोच्छ्वास (तत्काल के जन्मे स्वस्थ्य बालक को स्वासोच्छ्वास जो स्वस्थ्य युवा पुरुष के एक स्वासोच्छ्वास का एक पञ्चम भाग या जिसका काल स्वस्थ्य पुरुष की प्रत्येक नाड़ी-गति या नाड़ी-फड़कन कालकी समान है) का १ मुहूर्त ।

१ समय कम १ मुहूर्त का १ उत्कृष्ट अन्तरमुहूर्त ।

२॥ घटिका या ६० मिनिट का १ घंटा ।

३ घंटा या ७॥ घटिका का १ प्रहर ।

८ प्रहर या २४ घंटा या ६० घटिका का १ अहोरात्रि (दिन रात्रि) ।

७ अहोरात्रि का १ सप्ताह ।

१५ अहोरात्रि का १ पक्ष ।

२ पक्ष या ३० अहोरात्रि का १ मास (साधारण) ।

२९॥ अहोरात्रि का १ स्थूल चान्द्र मास ।

२९ अहोरात्रि, ३१ घटिका, ५० पल, ७ विपल (२९.५३०५८७९४६०७ अहोरात्रि) का १ सूक्ष्म चान्द्र मास ।

३०॥ अहोरात्रि का १ स्थूल सौरमास ।

३० अहोरात्रि, २६ घटिका, १७ पल, ३७॥ विपल (३०.४३८२२९१६६६६ अहोरात्रि) का १ सूक्ष्म सौरमास ।

२ मास (साधारण) की १ ऋतु ।

३ ऋतु का १ अयन ।

२ अयन या १२ मास (साधारण) या ३६० दिन का १ वर्ष साधारण) ।

३५४॥ दिन का १ स्थूल चान्द्रवर्ष ।

३५४ दिन, २२ घड़ी, १ पल, २४ विपल (३५४.३६७०५५३५२८४ दिन) का १ सूक्ष्म चान्द्रवर्ष ।

३६५। दिन का १ स्थूल सौरवर्ष ।

* जघन्य युक्तासंख्यात की संख्या का परिमाण जानने के लिये देखो शब्द "अङ्कगणना के नोट १ के अन्तर्गत (७)" ।

३६५ दिन, १५ घड़ी, ३१ पल, ३० विपल (३६५·२५८७५ दिन) का १ सूक्ष्म सौरवर्ष।

३६५ दिन, १५ घड़ी, २२ पल, ५४।।। विपल का १ सूक्ष्म सौरवर्ष (नवीन खोजसे)।

३६५ दिन, १४ घड़ी, ३२ पल, ४। विपल या ३६५ दिन, १४ घड़ी, ३१ पल, ५६ विपल (३६५·२४२२४२ या ३६५·२४२२१८ दिन) का १ ऋत्विक् वर्ष (फ़सली वर्ष)।

१२ वर्ष का १ युग (साधारण)।

१०० वर्ष की १ शताब्दी।

८४ सहस्र शताब्दी या ८४ लक्ष वर्ष का १ पूर्वाङ्ग।

८४ लक्ष पूर्वांग का १ पूर्व।

८४ लक्ष पूर्व का १ पर्वांग।

८४ लक्ष पर्वांग का १ पर्व।

८४ लक्ष पर्व का १ नियुतांग।

८४ लक्ष नियुतांग का १ नियुत।

८४ लक्ष नियुत का १ कुमुदांग।

८४ लक्ष कुमुदांग का १ कुमुद।

८४ लक्ष कुमुद का १ पद्मांग।

८४ लक्ष पद्मांग का १ पद्म।

८४ लक्ष पद्म का १ नलिनांग

(एक नलिनांग की वर्ष संख्या १४६ ९१७०३२१६३४२३९७,०९१८४०००००००००००००००,००००००००००००००००००००००,०००००००००००००००००००००० (२२ अङ्क और ५५ शून्य सर्व ७७ स्थान या ७७ अङ्क प्रमाण) है॥

८४ लक्ष नलिनांग का १ नलिन।

८४ लक्ष नलिन का १ कमलांग (अक्षनिकुराङ्ग)

८४ लक्ष कमलांग का १ कमल(अक्षनिकुर)।

८४ लक्ष कमल का १ त्रुट्यांग।

८४ लक्ष त्रुट्यांग का १ त्रुट्य।

८४ लक्ष त्रुट्य का १ अटटांग।

८४ लक्ष अटटांग का १ अटट।

८४ लक्ष अटट का १ अममांग।

८४ लक्ष अममांग का १ अमम।

८४ लक्ष अमम का १ ऊहांग।

८४ लक्ष ऊहांग का १ ऊह।

८४ लक्ष ऊह का १ लतांग।

८४ लक्ष लतांग की १ लता।

८४ लक्ष लता का १ महालतांग।

८४ लक्ष महालतांग की १ महालता (कालवस्तु)।

८४ लक्ष महालता का १ शिरःप्रकम्पित।

८४ लक्ष शिरःप्रकम्पित की १ हस्त प्रहेलिका।

८४ लक्ष हस्तप्रहेलिका का १ चर्चिक।

अतः (८४ लक्ष वर्ष)[२८] अर्थात् ८४ लाख का २८वां बल (घात) प्रमाण वर्षों का एक चर्चिक काल होताहै। गणित फैलाने से अर्थात् ८४ लक्ष को २८ जगह रख कर परस्पर गुणन करने से जो वर्षों की संख्या प्राप्त होगा वह २०१ अङ्क प्रमाण होगी। अर्थात् उस संख्या में ५६ अङ्क और १४५ शून्य, २०१ स्थान होंगे॥

४१३४५२६, ३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००० (२७ अङ्क और २० शून्य, सर्व ४७ अङ्क प्रमाण) वर्ष का १ व्यवहार पल्योपम काल।

* असंख्यातकोटि व्यवहार पल्योपमकाल का १ उद्धार पल्योपमकाल।

* असंख्यात उद्धार पल्योपमकाल का १ अद्धापल्योपमकाल।

१० कोड़ाकोड़ी (१ पद्म) व्यवहार पल्योपम काल का १ व्यवहारसागरोपमकाल।

१० कोड़ाकोड़ी (१ पद्म) उद्धारपल्योपम काल का १ उद्धारसागरोपमकाल।

* देखो उपर्युक्त नोट६ में (१) 'पल्य' की व्याख्या।

१० कोड़ाकोड़ी (१ पद्म) अद्धापल्योपमकाल का १ अद्धा सागरोपमकाल ।

१० कोड़ाकोड़ी (१ पद्म) * व्यवहारसागरोपमकाल का १ उत्सर्पिणी काल ।

१० कोड़ाकोड़ी (१ पद्म) * व्यवहारसागरोपम काल का १ अवसर्पिणीकाल ।

२० कोड़ाकोड़ी (२ पद्म) * व्यवहारसागरोपमकाल (या एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी दोनों) का १ कल्प काल ।

२० कोड़ाकोड़ी (२ पद्म) अद्धासागरोपम काल (या असंख्यात उत्सर्पिणीअवसर्पिणी) का १ महाकल्प काल ।

अनन्तानन्त महाकल्पों का भूतकाल ।

एक समय मात्र का वर्तमान काल ।

अनन्तानन्त महाकल्पों का भविष्य काल ।

भूत, भविष्यत, वर्तमान, इन तीनों के समूह का त्रिकाल = कैवल्यज्ञान ।

नोट ९—उपर्युक्त मान से गणना करने पर १ उत्सर्पिणी या १ अवसर्पिणी काल में वर्षों की संख्या ४१३४५२६३०३०८२०३१७,७७ ४९५१२१९२००००००००००,००००००००००००० ००००००००,००००००००००००००००००००(२७ अङ्क और ५० शून्य, सर्व ७७ अङ्क प्रमाण) है ॥

अतः एक कल्प काल के वर्षों की संख्या इस से दूनी अर्थात् ८२६९०५२६०६१६५० ६३५,५४९९०२४३८४००००००००००,०००००० ०००००००००००००००, ००००००००००००००००० ०००० (२७ अङ्क और ५० शून्य, सर्व ७७ अङ्क प्रमाण) है ॥

---

* कई आचार्यों की सम्मति में अद्धा सागरों से उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी और कल्प काल की गणना महाकल्प की गणना की समान है। (देखो इसी शब्द के नोट ६ में शब्द 'पल्य' की व्याख्या)

नोट १०—कई प्राचीन अन्य मतावलम्बी ज्योतिर्विद गणितज्ञों ने एक 'ब्रह्मकल्प' का जो परिमाण निम्न लिखित रीति से बताया है उसके वर्षों की संख्या भी उपर्युक्त नोट ९ में दी हुई संख्या की समान पूरी ७७ अङ्कों ही में है:—

४३२००० वर्ष (सौरवर्ष) का १ कलियुग ।
८६४००० वर्ष (सौरवर्ष) का १ द्वापरयुग ।
१२९६००० वर्ष (सौरवर्ष) का १ त्रेतायुग ।
१७२८००० वर्ष (सौरवर्ष) का १ सत्ययुग ।
४३२०००० वर्ष (सौरवर्ष) की १ चतुर्युगी ।
१००० चतुर्युगी का १ सामान्यकल्पकाल ।
१२ सामान्यकल्पकाल (१२००० चतुर्युगी) का १ देवयुग ।
२००० देवयुग की १ ब्रह्मअहोरात्रि ।
३६० ब्रह्मअहोरात्रि का १ ब्रह्मवर्ष ।
४३२०००० ब्रह्मवर्ष की १ ब्रह्मचतुर्युगी ।
२००० ब्रह्मचतुर्युगी की १ विष्णुअहोरात्रि ।
३६० विष्णुअहोरात्रि का १ विष्णुवर्ष ।
४३२०००० विष्णुवर्ष की १ विष्णुचतुर्युगी ।
२००० विष्णुचतुर्युगी की १ शिवअहोरात्रि ।
३६० शिवअहोरात्रि का १ शिववर्ष ।
४३२०००० शिववर्ष की १ शिवचतुर्युगी ।
२००० शिवचतुर्युगी की १ परमब्रह्मअहोरात्रि
३६० परमब्रह्मअहोरात्रि का १ परमब्रह्मवर्ष ।
४३२०००० परमब्रह्मवर्ष की १ परमब्रह्मचतुर्युगी ।
१००० परमब्रह्मचतुर्युगी का १ महाकल्प ।
१००० महाकल्प का १ महानकल्प ।
१००००० महानकल्प का १ परमकल्प ।
१००००० परमकल्प का १ ब्रह्मकल्प ।

उपर्युक्त परिमाण के अनुकूल गणित फैलाने पर १ "ब्रह्मकल्प" के वर्षों की संख्या ४८५२१०२९९०४४१३३५७०१५०४००००००००

०००००००,०००००००००००००००००००००,००
०००००००००००००००००० (२२ अङ्कों पर ५५ शून्य, सर्व ७७ अङ्क प्रमाण) है ॥

यह ज्योतिर्विद् गणकों की रीति से निकाली हुई संख्या यद्यपि पूर्णतयः ज्यों की त्यों वही नहीं है जो नोट ६ में बताई हुई संख्या है तथापि अङ्कों की 'स्थानसंख्या' ७७ दोनों में समान होने से परस्पर कोई बड़ा अन्तर नहीं है ॥

अङ्क संदृष्टि—अङ्कसहनानी, अङ्कसङ्केत ॥

किसी महान संख्या या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि के परिमाण आदिक को सुगमता के लिये जिस सहनानी या संकेत या चिन्ह द्वारा प्रकट किया जाता है उसे 'संदृष्टि' कहते हैं। संदृष्टियां कोई अङ्करूप, कोई आकाररूप, कोई अक्षररूप, कोई किसी पदार्थ के नामरूप, कोई अङ्क और आकार उभयरूप, कोई अङ्क और अक्षर उभयरूप, कोई आकार और अक्षर उभयरूप, इत्यादि कई प्रकार से नियत हैं। इन में से अङ्क द्वारा प्रकट किये हुये संकेत को 'अङ्कसंदृष्टि' और अन्य किसी प्रकार से प्रकट किये हुए संकेत को 'अर्थसंदृष्टि' कहते हैं ॥

संदृष्टियों के कुछ उदाहरणः—

(१) अङ्करूप—

जैसे जघन्यसंख्यात की संदृष्टि ··· ······ २
उत्कृष्टसंख्यात की संदृष्टि ··· ··· १५
जघन्यपरीतासंख्यात की संदृष्टि ··· १६
जघन्यपरीतानन्त की संदृष्टि ··· २५६
घनांगुल की संदृष्टि　६

(२) आकाररूप—

जैसे संख्यात की संदृष्टि ··· ··· ··· २
असंख्यात की संदृष्टि ······ ······ [illegible]
जगत्प्रतर की संदृष्टि ··· ··· ··· =
घनलोक की संदृष्टि ··· ··· ··· ··· ≡
प्रभृत या इत्यादि की संदृष्टि ··· =.
संकलन की संदृष्टि ··· ··· ··· +
व्यवकलन की संदृष्टि ······ ··· ··· −
गुणा की संदृष्टि ······ ··· ······ ×
भाग की संदृष्टि ··· ··· ······ ··· ÷
अन्तर की संदृष्टि ······ ~ या ~

(३) अक्षररूप—

जैसे लक्ष की संदृष्टि ··· ··· ··· ··· ··· ल
कोटि की संदृष्टि ··· ··· ···को
जघन्य की संदृष्टि ··· ··· ··· ज
अनन्त की संदृष्टि ··· ··· ··· ··· ख
सूच्यांगुलके अर्द्धछेदोंकी संदृष्टि ··· छे छे

(४) किसी पदार्थ के नामरूप—

जैसे ० की संदृष्टि आकाश
१ की संदृष्टि विधु, इन्दु, चन्द्र
२ की संदृष्टि उपयोग
३ की संदृष्टि काल, लोक, गुप्ति, योग
४ की संदृष्टि कषाय, गति

(५) अङ्क और आकार उभयरूप—

जैसे ६५५३६ (पणट्ठी) की संदृष्टि ··· ··· ··· ··· ६५ =.
४२९४९६७२९६ (बादाल) की संदृष्टि ··· ··· ··· ··· ४२ =.
१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ (एकट्ठी) की संदृष्टि ······ १८ = .
रज्जु (राजू) की संदृष्टि ······ ७
रज्जु प्रमाण प्रतरक्षेत्र की संदृष्टि ··· ४९

(६) अङ्क और अक्षर उभय रूप—

जैसे सर्व पुद्गलराशि की संदृष्टि ··· १६ख
त्रिकाल समय की संदृष्टि ··· १६खख
आकाश प्रदेश की संदृष्टि ··· १६खखख
प्रतरांगुल के अर्द्धछेदों की संदृष्टि ··· ··· ··· ··· ···छे छे २

घनाङ्गुल के अर्द्धछेदों की संदृष्टि ... ... छेछे३

(७) आकार और अक्षर उभयरूप—

जैसे जघन्य की संदृष्टि ज =.

पल्य के अर्द्धछेदराशि के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि ... ... छे / ()

घनलोक अधिक अनन्त की संदृष्टि ... ख

किञ्चित अधिक अनन्त की संदृष्टि ... ख

किञ्चित ऊन अनन्त की संदृष्टि ... ख—

(८) अङ्क, आकार और अक्षर, तीनों रूप—

जैसे एक अधिक कोटि की संदृष्टि ... को १—

एक कम कोटि की संदृष्टि ... को या को—१

या को या को या को) या को — — १

तीन कम अनन्त की संदृष्टि ... ख या ख—३

या ख या ख या ख) या ख — — ३

उत्कृष्ट परीतानन्त की संदृष्टि ... जजुअ १—

या उजुअ १—

प्रतरांगुल के वर्गशलाका-राशि की संदृष्टि ... व २ १—

नोट—अन्यान्य संदृष्टियाँ जानने के लिये देखो शब्द "अर्थ संदृष्टि" ॥

अङ्का (अङ्क)—(१) अधोलोक (पाताललोक) में की ७ पृथ्वीयों (नरकों) में से सर्व से ऊपर के पहिले नरक के एक भाग का नाम ॥

घर्मा (घम्मा) अर्थात् रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक के खरभाग, पङ्क भाग और अब्बहुल भाग।, इन तीनों भागों में से सर्व से ऊपर के "खरभाग" में (१) चित्रा, (२) वज्रा, (३) वैडूर्या, (४) लोहिताख्या, (५) असारकल्पा, (६) गोमेदा (७) प्रवाला, (८) ज्योतिरसा, (९) अञ्जना, (१०) अञ्जन मूलिका, (११) अङ्का, (१२) स्फटिका, (१३) चन्द्रा, (१४) सर्वार्थका, (१५) वकुला, (१६) शैला, यह १६ पृथ्वी हैं। यह सर्व क्रम से ऊपर से नीचे नीचे को प्रत्येक एक एक सहस्र महायोजन मोटी हैं। इन में से ११वीं का नाम 'अङ्का' है। इस में भवनवासी और व्यन्तर देवों के निवास स्थान हैं ॥

नोट—प्रथम नरक सम्बन्धी १६ सहस्र महायोजन मोटे 'खरभाग' की उपर्युक्त सर्व १६ पृथ्वीओं में तथा ८४ सहस्र महायोजन मोटे "पङ्कभाग" में भवनवासी और व्यन्तरदेवों के निवास स्थान हैं और शेष ८० सहस्र मोटे नीचे के तीसरे "अब्बहुल भाग" में नारकियों के उत्पन्न होने के "बिल" हैं ॥

(२) विदेहक्षेत्र के पूर्व भाग सम्बन्धी जो १६ विदेह देश हैं उन में से सीतानदी के दक्षिणतट पर के ८ विदेह देशों में से पञ्चम "रम्या" नामक देश की राजधानी का नाम "अङ्का" है जो १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी है। इस का नाम "अङ्कावती" भी है ॥

(त्रि. गा. १४६-१४८,६८८,७१३)

अङ्कावतंसक—ईशान इन्द्र के मुख्य विमान का नाम (अ. मा.) ॥

अङ्कावती—(१) पूर्व विदेह के "रम्यादेश" की राजधानी [देखो शब्द 'अङ्का'(२)]॥

(२) पश्चिम महाविदेह के दक्षिण खंड की पहिली विजय की सीमा पर का वखारा (वक्षार) पर्वत। इसका दूसरा नाम "श्रद्धावान" भी है॥

(अ. मा., त्रि. ६६८)

अंकुरारोपण—बीज से नई उत्पन्न होने वाली कोंपल जो मट्टी को फाड़ कर निकले उसका स्थापन या रचन या एक स्थान से दूसरे स्थान में लगाना॥

अंकुरारोपण विधान—वेदी प्रतिष्ठा व इन्द्रध्वज आदि पूजन विधानों के प्रारम्भ में योग्य मंत्रादि से "अंकुरारोपण" करने की एक विशेष विधि॥

नोट—इस नाम का एक संस्कृत ग्रन्थ भी है जो विक्रम सं० ६६० के लगभग "नन्दिसंघ" में होने वाले श्री "इन्द्रनन्दी" नामक एक दिगम्बर मुनि रचित है जो शान्तिचक्र पूजा, मुनिप्रायश्चित, प्रतिष्टापाठ, पूजाकल्प, प्रतिमासंस्कारारोपण पूजा, मातृकायंत्र पूजा, औषधिकल्प, भूमिकल्प, समयभूषण, नीतिसार, और इन्द्रनन्दिसंहिता आदि ग्रन्थों के रचयिता और श्री नेमचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के एक गुरु थे॥

(वृ. द्रव्य०, प्रस्तावना)

अंकुश—(१) आँकड़ा, नियन्त्रण करने वाला, दंड देने वाला, अधिकार में रखने वाला, वश में रखने वाला, हाथी को वश में रखने का एक शस्त्र विशेष॥

(२) अयोध्याधीश श्री रामचन्द्र का एक पुत्र—इस का पूर्ण नाम 'मदनांकुश' था। लवण ("अनङ्गलवण") इस का ज्येष्ठ भ्राता था। यह दोनों भाई श्री रामचन्द्र की पट्टरानी सीता के उदर से युगल (जौड़े) उत्पन्न हुए थे। यह दोनों भाई (अनङ्गलवण और मदनांकुश) लवणांकुश या "लवकुश" नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। इन का जन्म सीता महारानी के बनवास के समय श्रावण शुक्ला १५ को श्रवण नक्षत्र में अयोध्या से १६० योजन दक्षिण को राजा वज्रजङ्घ की राजधानी "पुण्डरीकिणी" नगरी में हुआ था। इन के विद्यागुरु एक "सिद्धार्थ-वाल्मीकि" नामक गृहत्यागी क्षुल्लक थे जो कृष्णा (तमसा) नदी के तट पर अपना समय धर्म्मध्यान में तथा लवकुश को विद्याध्ययन कराने में बिताते थे। बड़े भाई 'लव' को 'वज्रजङ्घ' ने अपनी पुत्री "शशिचूला" अन्य ३२ पुत्रियों सहित विवाही और छोटे भाई 'कुश' को पृथ्वीपुरनरेश 'पृथु' को पुत्री "कनकमाला" भारीयुद्ध में उसे नीचा दिखा कर और इन दोनों वीरों के बल पराक्रम और उच्च कुल का प्रत्यक्ष परिचय दिलाकर विवाही पश्चात् इन वीरों ने अपने बल से थोड़े ही समय में दक्षिण देशीय अनेक राजाओं को परास्त कर के अपने आधीन किया और फिर अपने पूज्य पिता और पितृव्य को उनके साथ गुप्त युद्ध कर के और इस प्रकार अपना बल पराक्रम दिखा कर उनके सम्मान-पात्र बने। इन की पूज्य माता महाराणी सीता ने जब अपने पूज्य प्राणपति श्री रामचन्द्र की आज्ञानुकूल अपने पूर्ण पतिव्रता होने की साक्षी सर्व अयोध्या वासियों को "अग्निपरीक्षा"

द्वारा देकर और फिर तुरन्त ही संसार स्वरूप विचार गृहस्थाश्रम से विरक्त हो कर "पृथ्वीमती" आर्यिका (साध्वी) के समीप आत्मकल्याणार्थ दीक्षा धारण करली तो इन दोनों ही भाइयों को मातृ-वियोग का कुछ दिन तक बड़ा शोक रहा। अन्त में जब माघ कृ० ३० (अमावस्या) को अपने पितृव्य लक्ष्मण के शरीर परित्याग करने पर अपने पिता को भ्रातृ-स्नेहवश अति शोकातुर देखा तो इन दोनों ही भाइयों को इस असार संसार के क्षणभंगुर विषय सुख अति विरस दिखाई पड़े। पिता से किसी न किसी प्रकार आज्ञा लेकर और अयोध्या के समीप ही के महेन्द्रोदय वन में जाकर "श्री अमृतस्वर" मुनि से दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। चिरकाल उग्र तपश्चरण के बल से त्रिकालदर्शी और त्रैलोक्य व्यापी, आत्मस्वभावी कैवल्य-ज्ञान का आविर्भावकर पावागिरि से निर्वाणपद प्राप्त किया। अयोध्या का राज्य श्री रामचन्द्र के विरक्त होकर राज्य-विभव त्यागने पर लक्ष्मण के ज्येष्ठ पुत्र 'अङ्गद' को दिया गया जो राजगद्दी पाकर "पृथ्वीचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध हुआ और युवराजपद अनंगलवण (लव) के पुत्र को मिला॥

(३) महाशुक्र नामक देवलोक के एक विमान का नाम जहां १६ सागरोपम की आयु है (अ. मा.)॥

अंकुशा—चौदहवें तीर्थंकर 'श्री अनन्तनाथ' की एक शासन देवी (अ. मा.)॥

अंकुशित दोष—दिगम्बर मुनि के षटावश्यक कर्म में वन्दना-नियुक्ति (कृति-कर्म) सम्बन्धी ३२ दोषों में से एक दोष का नाम जो हाथ के अंगुष्ठ को अंकुश समान मोड़ कर वन्दना करने से लगता है॥

नोट १—वन्दना-नियुक्ति सम्बन्धी ३२ दोष—(१) अनादृत (२) स्तब्ध (३) प्रविष्ट (४) परिपीड़ित (५) दोलायित (६) अंकुशित (७) कच्छपरिङ्गित (८) मत्स्योद्वर्त (९) मनोदुष्ट (१०) वेदिकाबद्ध (११) भय (१२) बिभ्य (१३) ऋद्धिगौरव (१४) गौरव (१५) स्तेनित (१६) प्रतिनीत (१७) प्रदुष्ट (१८) तर्जित (१९) शब्द (२०) हीलित (२१) त्रिवलित (२२) कुंचित (२३) दृष्ट (२४) अदृष्ट (२५) संघकर-मोचन (२६) आलब्ध (२७) अनालब्ध (२८) हीन (२९) उत्तर चूलिका (३०) मूक (३१) दर्दुर (३२) चुलुलित॥ (प्रत्येक का स्वरूप आदि यथास्थान देखें)॥

नोट २—इस दोष के सम्बन्ध में अन्य भी भिन्न भिन्न कई मत हैं—(१) रजोहरण को अंकुश की समान दोनों हाथों में रखकर गुरु आदि को वन्दना करना (२) सोये हुए गुरु आदि को उनके वस्त्रादि खेंच कर जगाना और फिर वन्दना करना (३) अंकुश लगाने से जैसे हाथी सिर ऊँचा नीचा करता है वैसे ही ऊंचा नीचा सिर वन्दना के समय करना (अ. मा.)॥

अङ्ग—(१) शरीर या अन्य किसी वस्तु का एक भाग, अवयव, शरीर, जोड़, मित्र, उपाय, कर्म, प्रधानअवयव, एक प्रकार का वाक्यालङ्कार;

(२) वेदाङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द और निरुक्त;

(३) एक देश (उत्तरी विहार) का

नाम जो भारत वर्ष में गंगा और सरयू के संगम के निकट संयुक्त प्रान्त और बंगाल प्रान्त के मध्य है जिस की राजधानी भागलपुर के निकट 'चम्पापुरी' थी ॥

(४) चम्पापुर नरेश "बलिराज" के एक क्षेत्रज पुत्र का नाम जो बलि की स्त्री "सुदेष्णा" के गर्भ से एक जन्मान्ध तपस्वी "दीर्घतमा" के वीर्य से जन्मा था। इस के चार सहोदर लघु भ्राता (१) वङ्ग (२) कलिङ्ग (३) पुंड्र और (४) सूक्ष्म थे ॥

(५) श्री रामचन्द्र के मित्र वानरवंशी किष्कन्धानरेश 'सुग्रीव' का बड़ा पुत्र जिस का लघुभ्राता अङ्गद था। यह दोनों भाई सुग्रीव की रानी सुतारा के गर्भ से जन्मे थे। श्री रामचन्द्र के राज्य-वैभव त्याग करने के समय 'अङ्ग' ने अपने पिता 'सुग्रीव' के साथ ही मुनि-दीक्षा ग्रहण करली और इस लिये किष्कन्धापुरी का राज्य इसके छोटे भाई अङ्गद को दिया गया ॥

(६) निमित्त ज्ञान के आठ भेदों अर्थात् अन्तरीक्ष, भौम, अङ्ग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यञ्जन, छिन्न, में से तीसरे भेद का नाम जिस से किसी के अंगोपांग देख कर या स्पर्श कर या कोई अंग फरकने को देखकर उस के त्रिकाल सम्बन्धी सुख दुखादि का ज्ञान हो जाय ॥

(७) अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के 'आचाराङ्ग' आदि द्वादश भेदों में से प्रत्येक का नाम ॥

द्वादशांग के नाम—(१) आचाराङ्ग (२) सूत्रकृताङ्ग (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग (५) व्याख्याप्रज्ञप्त्याङ्ग (६) धर्मकथाङ्ग (७) उपासकाध्ययनाङ्ग (८) अन्तःकृद्दशाङ्ग (९) अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग (१०) प्रश्न व्याकरणाङ्ग (११) विपाकसूत्राङ्ग (१२) दृष्टि वादाङ्ग। (देखो शब्द "अक्षरात्मक श्रुतज्ञान" और 'अंग प्रविष्ट-श्रुतज्ञान' और "अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान") ॥

अङ्गचूलिका—द्वादशाङ्ग ग्रन्थों का परिशिष्ट भाग (श्वेताम्बर) ॥

अङ्गज—(१) पुत्र, पुत्री, रुधिर, केश, फोड़ा, काम, मद, मोह, शरीर से उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु।

(२) आगामी उत्सर्पिणीय काल के तृतीय भाग "दुःखम सुखम" नामक में होने वाले ११ रुद्रों में से अन्तिम रुद्र का नाम।

(३) आगामी २४ काम देवों में से एक कामदेव का नाम।

(४) रामरावण युद्ध के समय लड़ने वाले अनेक योद्धाओं में से राम की सेना के एक वीर योद्धा का नाम ॥

(देखो प्र. वृ. वि. च.)

अङ्गजित्—एक गृहस्थ का नाम जिस ने श्री पार्श्वनाथ के समीप दीक्षा ली थी ॥

अङ्गद—(१) बाजू, बाजूबन्द, बाहु-भूषण, अङ्गदान करने वाला, दक्षिण दिशा के हाथी की हथनी ॥

(२) आठवें बलभद्र श्री रामचन्द्र के मित्र वानर वंशी राजा "सुग्रीव" का छोटा पुत्र जिस का बड़ा भाई अंग था। इसनाम के अन्य भी कई पुराणप्रसिद्ध पुरुष हुए हैं (देखो ग्रन्थ "बृहत विश्वचरितार्णव) ॥

अङ्गन्यासक्रिया—तान्त्रिक क्रिया विशेष; किसी देवता की आराधना या

उपासना में मंत्रों द्वारा अंग स्पर्श करना; दोनों हाथों की कनिष्ठा आदि अंगुलियों में पंच नमस्कार मंत्र का न्यास कर के दोनों हाथ जोड़ कर दोनों अंगूठों से

"ॐ ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये", यह मंत्र बोलकर हृदय स्थान में न्यास अर्थात स्पर्शन करे;

'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे', यह मंत्र बोल कर ललाट स्थान में न्यास करे;

"ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा शिरसि दक्षिणे", यह मंत्र बोलकर शिर के दक्षिण भाग में न्यास करे;

"ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे", यह मंत्र बोलकर शिर के पश्चिम भाग में न्यास करे;

"ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा वामे", यह मंत्र बोल कर शिर के वाम भाग में न्यास करे ॥

इसप्रकार अंग स्पर्श करने को अंगन्यास-क्रिया कहते हैं । यह क्रिया "सकली-करण विधान" का एक अंग है जो देवाराधना आदि में विघ्नशान्ति के लिये किया जाता है। (देखो शब्द "सकली करण विधान") ॥

अंगपण्णत्ती—देखो शब्द 'अंगप्रज्ञप्ति' ॥

अङ्गपाहुड़—श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित ८४ पाहुड़ग्रन्थों में से एक का नाम ॥

नोट १—श्री कुन्दकुन्दाचार्य तत्वार्थ-सूत्र के रचयिता श्री 'उमास्वामी' (उमा-स्वाति) के गुरु थे। इनका जन्म मालवादेश में बूंदीकोटा के पास बारापुर स्थान में विक्रम-जन्म से ५ वर्ष पीछे वीरनिर्वाण सम्वत् ४७५ में हुआ। इन के पिता का नाम 'कुन्दश्रेष्ठि' और माता का नाम कुन्दलता था। ११ वर्ष की वय में इन्होंने मुनिदीक्षा धारण की। ३३ वर्ष के उग्रतपश्चरण के पश्चात् ४४ वर्ष की वय में मि० पौष शु० ८ विक्रमजन्म सम्वत् ४९ में अपने गुरु 'श्रीजिनचन्द्रस्वामि' के स्वर्गारोहण के पश्चात् उन की गद्दी के पट्टा-धीश हुए। ५१ वर्ष १० मास १० दिन पट्टा-धीश रह कर और ५ दिन समाधिमरण में बिता कर ९५ वर्ष १०॥ मास की वय में मिती कार्त्तिकशुक्ला ८ विक्रमजन्म सम्वत् १०१ में स्वर्गारोहण किया। इसी दिन श्री 'उमा-स्वामि' इनके पट्टाधीश हुये। श्री कुन्दकुन्दा-चार्य (१) पद्मनन्दि (२) एलाचार्य (३) गृद्ध-पिच्छ (४) वक्रग्रीव (५) कुन्दकुन्द, इन ५ नामों से प्रसिद्ध थे। यह जाति के पल्लीवाल थे। यह नन्दिसंघ, पारिजातगच्छ और बलात्कारगण में थे। इनके रचे (१) अंगपाहुड़ (२) अग्रपाहुड़ (३) आचार पाहुड़ (४) आलाप पाहुड़ (५) आहारणा पाहुड़ (६) उद्यात पाहुड़ (७) उत्पाद-पाहुड़ (८) एयंम पाहुड़ (९) कर्मविपाक पाहुड़ (१०) क्रम पाहुड़ (११) क्रियासार पाहुड़ (१२) क्षपण पाहुड़ (१३) चरण पाहुड़ (१४) चूर्णी-पाहुड़ (१५) चूली पाहुड़ (१६) जीव पाहुड़ (१७) जोणीसार पाहुड़ (१८) तत्वसार पाहुड़ (१९) दिव्य पाहुड़ (२०) दृष्टि पाहुड़ (२१) द्रव्य पाहुड़ (२२) नय पाहुड़ (२३) निताय पाहुड़ (२४) नियमसार पाहुड़ (२५) नोकर्म पाहुड़ (२६) पञ्चवर्ग पाहुड़ (२७) पञ्चास्तिकाय पाहुड़ (२८) पयड्ड पाहुड़ (२९) पुण्य पाहुड़ (३०) प्रकृति पाहुड़ (३१) प्रमाण पाहुड़ (३२) प्रवच-नसार पाहुड़ (३३) बन्ध पाहुड़ (३४) बुद्धि-पाहुड़ (३५) बोधि पाहुड़ (३६) भावसार पा-हुड़ (३७) रत्नसार पाहुड़ (३८) लब्धि पाहुड़

(३९) लोक पाहुड़ (४०) वस्तु पाहुड़ (४१) विद्या पाहुड़(४२) विहिया पाहुड़(४३) शिक्षा-पाहुड़ (४४) षट पाहुड़ (४५) षटदर्शन पाहुड़ (४६) समयसार पाहुड़ (४७) समवाय पाहुड़ (४८) संस्थान पाहुड़(४९)सालमी पाहुड़ (५०) सिद्धान्त पाहुड़ (५१) सूत्र पाहुड़ (५२) स्थान-पाहुड़,·········इत्यादि ८४ पाहुड़ ग्रन्थ तथा द्वादशानुप्रेक्षा आदि अन्य कई ग्रन्थ प्राकृत-भाषा में हैं। पाहुड़ को प्राभृत भी कहते हैं जिसका अर्थ 'अधिकार' है ॥

नोट २.—श्री कुन्दकुन्द स्वामि के जन्म के समय मालवादेश में जिसे उस समय 'अवन्तिदेश' कहते थे शकवंशी जैनधर्मी राजा 'कुमुदचन्द्र' का राज्य था जिसे धारा-नगराधीश 'धार' के दौहित्र और 'गन्धर्वसेन' के पुत्र 'विक्रमादित्य' ने किसी न किसी प्रकार अवसर पाकर अपनी १८ वर्ष की वय में अपने अधिकार में कर लिया और उज्जैन-नगरी को अपनी राजधानी बना कर 'वीरविक्रमादित्य शकारी' के नाम से अपना राज्याभिषेक कराया और इसी दिन से इस विजय की स्मृति में अपने नाम का एक सम्वत् प्रचलित किया। पश्चात् थोड़े ही दिनों में इसने अपने बाहुबल से गुजरात, मगध, बंगाल, उड़ीसा आदि अनेक देशों को अपने राज्य में मिला कर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की और २२ वर्ष की वय में राजाधिराजपद प्राप्त कर लिया। यह पक्का शैवी और जैनधर्म का द्वेषी था। अतः इसके राज्य में शिवसम्प्रदाय का बल इतना अधिक बढ़ गया कि जैनधर्म प्रायः लुप्त सा दिखाई पड़ने लगा। इसके राज्य-अभिषेक के समय 'श्री कुन्दकुन्दाचार्य' की वय केवल १३ वर्ष की थी। शैवों का दल और बल अनौचित्त रीति से दिन प्रतिदिन बढ़ता हुआ और पवित्र जिनधर्म व जैनधर्मियों पर अनेक अत्याचार होते हुये देख कर इनका मन दुखित था। अब ११ वर्ष की वय में मुनिदीक्षा लेने के पश्चात् गुरु के सन्मुख यह भले प्रकार विद्याध्ययन कर चुके और उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा इन्होंने आत्मबल बहुत उच्च श्रेणी का प्राप्त कर लिया तो गुरुआज्ञा लेकर शैवों तथा अन्य धर्मावलम्बियों से भी बड़े बड़े शास्त्रार्थ कर भारतवर्ष भर में अपनी विजयपताका फैरा दी। अन्यमती बड़े २ दिग्गज विद्वान इनकी विद्वता और तपोबल के चमत्कार को देख कर इन के चरणसेवक बन गये जिस से लुप्त सा होता हुआ पवित्र दयामय जिनधर्म प्राणीमात्र के भाग्योदय से फिर से सम्हल गया ॥

नोट ३.—श्री कुन्दकुन्दाचार्य या वीरविक्रमादित्यशकारी का विशेष चरित्र जानने के लिये देखो ग्रन्थ "बृहतविद्व-चरितार्णव" ॥

अङ्गप्रविष्ट—अंग में प्रवेश पाया हुआ, अंग के अन्तर्गत, द्वादशांगश्रुतज्ञान, अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो मूलभेदों में से एक भेद जो १२ 'अंगों' में विभाजित है ॥

अङ्गप्रविष्टश्रुतज्ञान—पूर्ण 'अक्षरात्मक-श्रुतज्ञान' के दो विभागों अर्थात् (१) अंगप्रविष्ट और (२) अंगबाह्य में से प्रथम विभाग। (देखो शब्द "अक्षरात्मक श्रुतज्ञान") ॥

पूर्ण अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का यह विभाग निम्न लिखित १२ अङ्गों में विभाजित है जिस में सर्व अपुनरुक्त अक्षरों की संख्या १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ (बीस अङ्कप्रमाण) है जिस के ११२८३५८००५

(दश अङ्कप्रमाण) मध्यमपद हैं । एक मध्यमपद में १६३४८३०७८८८ (ग्यारह अङ्कप्रमाण) अपुनरुक्तअक्षर होते हैं:-- .

[१] आचाराङ्ग—यह अंग १८००० मध्यमपदों में है। इस में 'अनागारधर्म' अर्थात् मुनिधर्म के २८ मूलगुण, ८४ लक्ष-उत्तरगुण आदि समस्त आचरण का सविस्तार पूर्ण वर्णन है ॥

[२] सूत्रकृताङ्ग—यह अङ्ग ३६००० मध्यमपदों में है । इस में 'ज्ञानविनय' आदि परमागम की निर्विघ्न अध्ययनक्रिया का तथा प्रज्ञापना, कल्पाकल्प, छेदोपस्थापना आदि व्यवहारधर्मक्रिया का और स्वसमय, परसमय आदि का स्वरूप सूत्रों द्वारा सविस्तार वर्णित है ॥

[३] स्थानाङ्ग—यह अङ्ग ४२००० मध्यमपदों में है। इस में सर्व द्रव्यों के एक, दो, तीन, चार, पाँच इत्यादि असंख्य या अनन्त पर्यन्त जितने जितने विकल्प अनेक अपेक्षाओं या नयों उपनयों द्वारा हो सकते हैं उन सर्व विकल्पों का क्रम से एक एक स्थान बढ़ते हुये अलग अलग वर्णन है। यह 'अङ्ग' स्थान-क्रम से निरूपण किये हुये सर्व द्रव्यों के एकादि अनेक विकल्पों या भेदों को बताने वाला एक प्रकार का "महानकोष" है। (देखो ग्रन्थ 'लघुस्थानाङ्गार्णवसार') ॥

[४] समवायाङ्ग—यह १६४००० मध्यमपदों में है । इस में सम्पूर्ण द्रव्यों का वर्णन किसी अपेक्षा द्वारा परस्पर की समानता की मुख्यता से है अर्थात् कौन कौन द्रव्य या पदार्थ किस २ द्रव्य या पदार्थ के साथ किन किन गुणों या धर्मों में समानता रखता है, यह इस अङ्ग में वर्णित है। जैसेः—

(क) द्रव्यतुल्यता—धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, लोकाकाश द्रव्य और एक जीव द्रव्य, ये प्रदेशों की संख्या में समान हैं।

सामान्यनयः कर्मबन्ध की अपेक्षा सर्व संसारी जीव समान हैं ॥

बन्ध रहित होने की अपेक्षा सर्व सिद्धात्मा समान हैं।

स्वाभाविक गुण अपेक्षा सर्व संसारी और सिद्ध जीव समान हैं ॥

इत्यादि.......................

(ख) क्षेत्र तुल्यता-मध्यलोक में "अढ़ाईद्वीप," १६ स्वर्गों में से प्रथम स्वर्ग का 'ऋजु-विमान', ७ नरकों में से प्रथम नरक के प्रथम पाथड़े का "सीमन्तक" इन्द्रक बिल, मुक्तशिला या सिद्ध क्षेत्र, यह सर्व क्षेत्र विस्तार में समान हैं ॥

सातवें नरक का "अवधस्थान" या "अप्रतिष्ठितस्थान" नामक इन्द्रकबिल, जम्बूद्वीप और "सर्वार्थ सिद्धि" विमान, यहभी विस्तार में समान हैं ॥

मध्य के सुदर्शन मेरु को छोड़कर शेष चारों मेरु ऊँचाई में समान हैं ॥

इत्यादि.......................

(ग) काल तुल्यता-उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल, यह दोनों काल मर्यादा में समान हैं ॥

प्रथम नरक के नारकियों, भवनवासी और व्यन्तर देवों की जघन्य आयु समान है ॥

सप्तम नरक और सर्वार्थ सिद्धि की उत्कृष्ट आयु समान है।

उत्कृष्ट तथा जघन्य आयु स्थिति की

नोट—उपर्युक्त ११ अङ्गों के सर्व मध्यम पदों का जोड़ ४१५०२००० है ॥

[१२] दृष्टिवादाङ्ग—यह अंग १०८६ ८५६००५ मध्यम पदों में है। इस अंग के (१) परिकर्म (२) सूत्र (३) प्रथमानुयोग (४) पूर्वगत और (५) चूलिका, यह पांच उपांग हैं जिन में से प्रत्येक का सामान्य वर्णन निम्न प्रकार है:—

(१) परिकर्म-इसउपांगमें १८१०५००० मध्यम पद हैं।

यह उपांग निम्न लिखित ५ भागों में विभाजित है:—

१. चन्द्र प्रज्ञप्ति—यह विभाग ३६० ५००० मध्यम पदों में है। इसमें चन्द्रमा की आयु, गति, ऋद्धि, कला की हानि-वृद्धि, उस का विभव, परिवार, पूर्ण या अपूर्ण ग्रहण, और उस सम्बन्धी विमान संख्या आदि का सविस्तार वर्णन है ॥

२. सूर्य प्रज्ञप्ति—यह विभाग ५०३००० मध्यम पदों में है। इस में सूर्य की आयु, गति, ऋद्धि, उस का विभव, परिवार, ग्रहण, तेज, परिमाणादि का सविस्तार वर्णन है ॥

३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—यह विभाग ३२५००० मध्यम पदों में है। इस में जम्बूद्वीप सम्बन्धी नदी, पर्वत, हृद, क्षेत्र, खंड, बन, वेदी, व्यन्तरों के आवास आदि का सविस्तार निरूपण है ॥

४. द्वीप-सागर प्रज्ञप्ति—यह विभाग ५२३६००० मध्यम पदों में है। इसमें मध्य-लोक के सम्पूर्ण द्वीप-समुद्रों सम्बन्धी सर्व प्रकार का कथन तथा समस्त ज्योतिष-चक्र, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवों के आवास आदि का सविस्तार निरूपण है ॥

५. व्याख्या प्रज्ञप्ति—यह विभाग ८४ ३६००० मध्यम पदों में है। इस में जीव पुद्गलादि द्रव्यों की सविस्तार व्याख्या अनेकान्त रूप से है ॥

नोट—इस "परिकर्म" नामक उपाङ्ग के उपर्युक्त पाँचों ही विभागों में यथा स्थान और यथा आवश्यक गणित सम्बन्धी अनेकानेक "करणसूत्र" भी दिये गये हैं ॥

(२) सूत्र—यह उपाङ्ग ८८००००० मध्यमपदों में है।

इस में जीव अस्तिरूप ही है, नास्तिरूप ही है, कर्त्ता ही है, अकर्ता ही है, बद्ध ही है, अबद्ध ही है, सगुण ही है, निर्गुण ही है, स्वप्रकाशक ही है, पर प्रकाशक ही है, इत्यादि कल्पनायुक्त सर्व पदार्थों के स्वरूपादि को एकान्त पक्ष से मिथ्या श्रद्धान करने वाले १८० क्रियावाद, ८४ अक्रियावाद, ६७ अज्ञानवाद, और ३२ विनयवाद सम्बन्धी ३६३ प्रकार के एकान्तवादियों के स्वीकृत पक्ष और अपने पक्ष के साधन में उनकी सर्व प्रकार की कुयुक्तयों आदि का सविस्तार निरूपण करके और फिर दृढ़ नय प्रमाणों द्वारा उनका मिथ्यापना भले प्रकार दिखा कर कथञ्चित जीव अस्तिरूप भी है, नास्तिरूप भी है, कर्त्ता भी है, अकर्त्ता भी है, सबन्ध भी है, अबन्ध भी है, सगुण भी है, निर्गुण भी है, स्वप्रकाशक भी है, पर प्रकाशक भी है, एक भी है, अनेक भी है, अल्पज्ञ भी है, सर्वज्ञ भी है, एक देशी भी है, सर्व व्यापी भी है, जन्म मरण सहित भी है, जन्म मरण रहित भी है, इत्यादि अनेकान्तात्मक सर्व पदार्थों

के स्वरूपादि का यथार्थ निरूपण है॥

नोट १-देखो शब्द "अक्रियावाद"

नोट २—१८० भेद युक्त क्रियावाद के प्रचारक प्रसिद्ध आचार्यों में कौत्कल, कण्ठी, अविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, अन्धपिक, रोमश, हारीत, मुंड, आश्वलायन, इत्यादि हुए। ८४ भेद युक्त अक्रियावाद के प्रचारक प्रसिद्ध आचार्य मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, बाड्वलि (बाद्वलि), माठर, मौद्गलायन, इत्यादि हुए। ६७ भेद युक्त अज्ञानवाद के प्रचारक प्रसिद्ध आचार्य शाकल्य, वल्कल, कुथुमि, सत्यमुग्रि, नारायण, कठ, माध्यन्दिन, भोज (मौद), पैप्पलायन, बादरायण, स्विष्टिकय, दैत्यकायन, वसु, जैमिन्य, इत्यादि हुए। और ३२ भेद युक्त 'विनयवाद' के प्रचारक प्रसिद्ध आचार्य वसिष्ठ (वशिष्ट), पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोमहर्षणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, उपमन्यु, ऐन्द्रदत्त, अगस्ति, इत्यादि हुए॥

(३) प्रथमानुयोग—यह उपांग ५००० मध्यमपदों में वर्णित है।

इस में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र, ९ प्रतिनारायण, इन ६३ शलाका पुरुषों के चरित्र का सविस्तार निरूपण है॥

(४) पूर्वगत—यह उपांग ९५५०००००५ मध्यमपदों में वर्णित है।

इस के निम्न लिखित १४ विभाग हैं:—

१. उत्पादपूर्व—यह पूर्व १ करोड़ मध्यमपदों में वर्णित है। इस में प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और उन के अनेक संयोगी धर्मों का अनेक प्रकार नयविवक्षा कर सविस्तार निरूपण है॥

२. आग्रायणीयपूर्व—यह पूर्व ९६ लाख मध्यमपदों में वर्णित है। इस में द्वादशांग का सारभूत पञ्चास्तिकाय, षट्द्रव्य, सप्ततत्व, नवपदार्थ आदि का तथा ७०० सुनय और दुर्नय आदि के स्वरूप का सविस्तार निरूपण है॥

नोट—इस पूर्व के सम्बन्ध में विशेष कथन जानने के लिये देखो शब्द "अग्रायणीपूर्व"॥

३. वीर्यानुवादपूर्व—यह पूर्व ७०००००० (सत्तर लाख) मध्यमपदों में वर्णित है। इस में स्ववीर्य (आत्मवीर्य), परवीर्य (पुद्गलादि अनात्मवीर्य), उभयवीर्य, द्रव्यवीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपवीर्य, इत्यादि द्रव्य, गुण, पर्याय की शक्तिरूप अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ) का निरूपण है॥

४. अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व—यह पूर्व ६० लाख मध्यमपदों में है। इस में प्रत्येक द्रव्य या वस्तु के अनेकान्तात्मक स्वरूप का साधन सप्तभंगी न्याय द्वारा अनेकानेक नयविवक्षा कर सात सात प्रकार से किया गया है; यथा 'जीव द्रव्य' स्वचतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) की अपेक्षा 'अस्तिरूप' है; परचतुष्टय की अपेक्षा 'नास्तिरूप' है, जीवद्रव्य में अस्ति और नास्ति यह दोनों धर्म सापेक्ष युगपत् उपस्थित हैं इस लिये वह कथञ्चित् 'अस्तिनास्ति' रूप है; जीवद्रव्य का यथार्थ और पूर्ण स्वरूप बताना वचन अगोचर है—केवल स्वानुभवगम्य या ज्ञानगम्य ही है—अतः वह कथञ्चित् अनिर्वचनीय या "अवक्तव्य" है; जीवद्रव्य में उपर्युक्त अलग अलग अपेक्षाओं से अस्तिपना और अवक्तव्यपना दोनों ही धर्म युगपत्

अपेक्षा नारकी और देव समान हैं तथा मनुष्य और तिर्यञ्च समान हैं।

इत्यादि..

(घ) भाव तुल्यता—कैवल्यज्ञान और कैवल्य-दर्शन समान हैं।

इत्यादि..

(ङ) अन्यान्य तुल्यता-अरूपी गुणकी अपेक्षा एक पुद्गल द्रव्य को छोड़ कर शेष५ द्रव्य जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल समान हैं॥

काय अपेक्षा एक काल द्रव्य को छोड़कर शेष ५ द्रव्य सकाय होने से समान हैं॥

जड़त्व गुण की अपेक्षा एक जीव द्रव्य को छोड़कर शेष ५ द्रव्य समान हैं॥

स्थावर होने की अपेक्षा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक, यह पांचों प्रकार के जीव समान हैं॥

त्रसपने की अपेक्षा दो इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय, यह चारों प्रकार के जीव समान हैं॥

असंज्ञीपने की अपेक्षा सर्व प्रकार के स्थावर (या एकेन्द्रिय जीव) और दो-इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय तथा अमनस्क-पञ्चेन्द्रिय जीव समान हैं॥

गति की अपेक्षा सातों ही नरकों के नारकी समान हैं; चारों निकाय के देव समान हैं; आर्य व म्लेच्छ या भूमिगोचरी व विद्याधर या स्त्री व पुरुष या राजा व रंक इत्यादि सर्व प्रकार के मनुष्य समान हैं; और सर्व प्रकार के पशु पक्षी, कीड़े मकोड़े और वनस्पति आदि पञ्च स्थावर, यह सर्व तिर्यंच जीव समान हैं॥

इत्यादि इत्यादि........................

[५] व्याख्याप्रज्ञप्ति (विपाकप्रज्ञप्ति)--यह अंग २२८००० मध्यम पदों में है। जीव अस्ति है या नास्ति, एक है या अनेक, नित्य है या अनित्य, वक्तव्य है या अवक्तव्य, इत्यादि ६० सहस्र प्रश्न उठाकर इनके उत्तर-रूप सविस्तर व्याख्यान इस अङ्ग में है॥

[६] ज्ञातृधर्मकथाङ्ग—यह अङ्ग ५५६००० मध्यम पदों में है। इसमें जीवादि द्रव्योंका स्वभाव, तीर्थङ्करों का माहात्म्य, तीर्थङ्करों की सहज स्वाभाविक दिव्यध्वनि का समय पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपरान्ह, और अर्द्ध-रात्रि की छहछह घटिकाएँ, रत्नत्रय व दश-लक्षणरूप धर्म का स्वरूप, तथा गणधर, इन्द्र, चक्रवर्ती आदि ज्ञानी पुरुषों सम्बन्धी धर्म कथाओं का निरूपण है॥

[७] उपासकाध्ययनाङ्ग—यह अंग ११७०००० मध्यमपदों में है। इस में उपासकों अर्थात् श्रावकों या धार्मिक गृहस्थों की सम्यग्दर्शनादि ११ प्रतिमाओं (११ प्रकार की प्रतिज्ञारूप श्रेणियों) सम्बन्धी व्रत, गुण, शील, आचार, क्रिया, मन्त्र आदि का सविस्तार प्ररूपण है॥

[८] अन्तःकृद्दशांग--यह अङ्ग २३२८००० मध्यमपदों में है। इसमें प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थकाल में जिन दश दश मुनीश्वरों ने चार प्रकार का घोर उपसर्ग सहन करके कैवल्यज्ञान प्राप्त कर सिद्ध पद (मुक्तिपद) प्राप्त किया उन सर्व का सविस्तार वर्णन है॥

नोट१—अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी के तीर्थकालमें (१) नमि (२) मतङ्ग (३) सोमिल (४) रामपुत्र (५) सुदर्शन (६) यम-लिक (७) बलिक (८) विष्कम्बिल (किष्कम्बल) (९) पालम्बष्ट (१०) पुत्र, इन दश

मुनीश्वरों ने तीव्र उपसर्ग सहन किया ॥

(भग० आ० पत्र २०३॥)

नोट२—जिन्हें घोर उपसर्ग सहन करते हुए कैवल्यज्ञान प्राप्त होता और तुरन्त ही अन्तर्मुहूर्त में मुक्ति पद मिल जाता है उन कैवल्य-ज्ञानियों को "अन्तःकृतकेवली" कहते हैं॥

नोट३—एक तीर्थङ्कर के जन्मसे अगले तीर्थङ्कर के जन्म तक के काल को पूर्व तीर्थङ्कर का "तीर्थकाल" कहते हैं ॥

[९] अनुत्तरौपपादिकदशांग—यह अङ्ग ९२४४००० मध्यम पदों में है। इस में प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थकाल में जिन दश दश मुनियों ने महा भयङ्कर उपसर्ग सहन कर और समाधि द्वारा प्राण त्याग कर "विजय" आदि पांच अनुत्तर विमानोंमें से किसी न किसी में जा जन्म धारण किया उन सर्वका विस्तार सहित वर्णन है ॥

नोट—श्री महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्कर के तीर्थकाल में (१) ऋजुदास (२) धन्यकुमार (३) सुनक्षत्र (४) कार्त्तिकेय (५) नन्द (६) नन्दन (७) शालिभद्र (८) अभयकुमार (९) वारिषेण (१०) चिलातिपुत्र, इन दश ने दारुण उपसर्ग सहन किया ॥

(भग० आ० पत्र २०४)

[१०] प्रश्नव्याकरणाङ्ग—यह ६३१ १६००० मध्यम पदों में है। इसमें नष्ट, मुष्टि, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, चिन्ता, भय, जय, पराजय, आदि त्रिकाल सम्बन्धी अनेकानेक प्रकार के प्रश्नोंका उत्तर देने की विधि और उपाय बताने रूप व्याख्यान है, तथा प्रश्नानुसार आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेजनी, निर्वेजनी, इन चार प्रकार की कथाओं का भी इसमें निरूपण है ॥

नोट—जिस कथा में तीर्थङ्करादि पुराण-पुरुषों का चरित्ररूप "प्रथमानुयोग", लोकालोक का तथा कर्मादि के स्वरूपादि का वर्णनरूप "करणानुयोग," गृहस्थधर्म और मुनिधर्म का निरुपण रूप "चरणानुयोग", और षट द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, सप्ततत्व, नव पदार्थ आदि की व्याख्या रूप "द्रव्यानुयोग", इन चार अनुयोगों का कथन सतमार्ग में प्रवृति और असत् मार्ग से निवृत्ति करा देने वाला हो उसे "आक्षेपिणी कथा" कहते हैं ॥

जिस कथन में गृहीतमिथ्यात्वजन्य भाव सम्बन्धी 'एकान्त वाद' के अन्तर्गत जो ३६३ मिथ्यात्व हैं उन का खंडन नय प्रमाणान्वित दृढ़ युक्तियों द्वारा न्याय पद्धति से किया जाय उसे "विक्षेपिणी कथा" कहते हैं ॥

जिस कथा में यथार्थ धर्म और उसके उत्तम फल में अनुराग उत्पन्न करानेवाला कथन हो उसे "संवेजनी कथा" कहते हैं ॥

जिस कथा में सांसारिक भोगविलासों और पञ्चेन्द्रियजन्य विषयों की असारता, क्षण भंगुरता, और अन्तिम अशुभ फल आदि निरूपण करके उन से विरक्तता उत्पन्न कराने वाला कथन हो उसे "निर्वेजनी कथा" कहते हैं ॥

[११] विपाकसूत्राङ्ग—यहअंग१८४००००० मध्यम पदों में है। इसमें सर्व प्रकारकी शुभाशुभ कर्म प्रकृतियों के उदय, उदीरणा, सत्ता आदि का फल देने रूप विपाक का वर्णन तीव्र, मन्द, मध्यम अनुभाग के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टय की अपेक्षा से है ॥

उपवास विधि, उपवास की भावना, सपञ्च समिति, तीनगुप्ति आदि का सविस्तार निरूपण है ॥

१०. विद्यानुवादपूर्व—यह पूर्व १ करोड़ १० लाख मध्यमपदों में है। इस में 'अंगुष्टप्रसेन' आदि ७०० अल्प विद्या और 'रोहिणी' आदि ५०० महाविद्याओं का स्वरूप, सामर्थ्य और उन के साधनभूत मंत्र, तंत्र, यंत्र, पूजा विधानादि का, तथा सिद्धविद्याओं के फल का और (१) अन्तरीक्ष (२) भौम (३) अङ्ग (४) स्वर (५) स्वप्न (६) लक्षण (७) व्यञ्जन (८) छिन्न, इन अष्टभेद युक्त 'निमित्तज्ञान' का सविस्तार निरूपण है ॥

११. कल्याणवादपूर्व—यह पूर्व २६ करोड़ मध्यमपदों में वर्णित है। इसमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री—बलभद्र नारायण, प्रति नारायण—, इन शलाका पुरुषों के गर्भ जन्मादि के महान् उत्सव और इन पदों की प्राप्ति के कारणभूत १६ भावना, तपश्चरण या विशेष क्रिया आचरणादि का, तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रों के गमन, ग्रहण आदि से और शुभाशुभ शकुनों से फल निश्चित करने की अनेकानेक विधियों का सविस्तार वर्णन है ॥

१२. प्राणप्रवादक्रियापूर्व—यह पूर्व १३ करोड़ मध्यम पदों में है। इस में काय चिकित्सा आदि अष्टाङ्ग आयुर्वेद (वैद्यक); भूतादि व्यन्तरकृत व्याधि दूर करने के उपाय, मन्त्र यंत्रादि सर्व प्रकार के विषों को उतारने वाला जाङ्गुलिक प्रतीकार; इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना नाड़ियों तथा स्वरों का साधन और उनकी सहायता से त्रिकाल सम्बन्धी कुछ ज्ञान व शरीर को आरोग्य रखनेके उपाय आदि; और गति के अनुसार १० प्रकार के प्राणों के उपकारक, अनुपकारक या अपकारक द्रव्यों का सविस्तार निरूपण है ॥

१३. क्रियाविशालपूर्व—यह पूर्व ९ करोड़ मध्यम पदों में है। इस में संगीत, छंद, अलङ्कारादि ७२ कला, स्त्रियों के ६४ गुण, शिल्प आदि विज्ञान, गर्भाधानादि ८४ क्रिया, सम्यग्दर्शनादि १०८ क्रिया, देव वन्दना आदि २५ क्रिया, तथा अन्यान्य नित्य नैमित्तिक क्रियाओंका निरूपण है ॥

१४. त्रिलोकबिन्दुसारपूर्व—यह पूर्व १२ करोड़ ५० लाख मध्यम पदों में है। इस में तीन लोक का स्वरूप; २६ परिकर्म, अष्ट व्यवहार, चार बीज, इत्यादि गणित; और मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष गमन की कारणभूत क्रिया, मोक्ष सुख, इत्यादि कथन का निरूपण है ॥

नोट—देखो शब्द "अग्रायणी पूर्व" का नोट १ ॥

(५) चूलिका—इस उपाङ्ग में १०४९४६००० मध्यमपद हैं।

यह निम्न लिखित ५ विभागों में विभाजित है जिन में से प्रत्येक में मध्यमपदों की संख्या २०९८९२०० है:—

१. जलगता—इस में जलगमन, जलस्तम्भन, अनेक प्रकार के जलयान-रचना, जलयंत्र-निर्माण, तथा अग्नि-स्तम्भन, अग्नि भक्षण, अग्नि प्रवेश आदि की क्रियाएँ और उन में निर्भय होकर तैरने, चलने, फिरने, बैठने आदि के उपाय, आसन, तथा मंत्र, तंत्र, यंत्र, तपश्चरण आदि का सविस्तार निरूपण है ॥

२. स्थलगता—इसमें अनेक प्रकार के

प्रज्ञापयुक्त (५) रतिकारक (६) अरतिकारक (७) उपधि या परिग्रहवर्द्धक (८) निकृति (९) अप्रणति (१०) मोषक (११) सम्यक् (१२) मिथ्या ॥

वचन भेद ४--(१) सत्य (२) असत्य (३) उभय (४) अनुभय ॥

सत्य १० प्रकार-(१) जनपद सत्य (२) सम्मति सत्य (३) स्थापना सत्य (४) नाम सत्य (५) रूप सत्य (६) प्रतीत्य सत्य या आपेक्षिकसत्य (७) व्यवहार सत्य (८) संभावना सत्य (९) भाव सत्य (१०) उपमा सत्य ॥

अनुभयवचन ९ प्रकार (१) आमन्त्रणी (२) आज्ञापनी (३) याचनी (४) आपृच्छनी (५) प्रज्ञापनी (६) प्रत्याख्यानी (७) संशयवचनी (८) इच्छानुलोम्नी (९) अनक्षरात्मिका ॥

असत्य वचन के चार भेद-(१) सद्भूत निषेधक (२) असद्भूत विधायक (३) परिवर्तित (४) गर्हित, जिस के अन्तर्गत किसी को सताने या देशमें उपद्रव फैलाने वाले या हिंसोत्पादक आरम्भादि में फँसाने वाले सावद्य वचन, तथा कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, परकोपिनी, मध्यकृशा, अभिमानिनी, अनयंकरी, छेदंकरी, भूतबन्धकरी, यह दश प्रकार की अथवा अनेक प्रकार की अप्रिय भाषा गर्भित है ॥

७. आत्मप्रवादपूर्व—यह पूर्व २६ करोड़ मध्यमपदों में है। आत्मा जीव है पुद्गल है, कर्त्ता है अकर्त्ता है, भोक्ता है, अभोक्ता है, प्राणी है अप्राणी है, वक्ता है अवक्ता है, सर्वज्ञ है अल्पज्ञ है, ज्ञानी है अज्ञानी है, चेतन है अचेतन है, व्यापी है अव्यापी है, संसारी है सिद्ध है, शरीरी है अशरीरी है, रूपी है अरूपी है, साकार है निराकार है, मूर्त्तीक है अमूर्त्तीक है, सक्त है असक्त है, जन्तु है अजन्तु है, कषाय युक्त है अकषायी है, रागीद्वेषी है वीतरागी है, इच्छुक है निरिच्छुक है, योगी है अयोगी है, संकुट है असंकुट है, नारकी है, तिर्यंच है, मानव है, देव है, बहिरात्मा है अन्तरात्मा है, परमात्मा है, वेद है, ब्रह्मा है, विष्णु है, शिव है, महेश है, स्वयंभू है, इत्यादि इत्यादि अपने असंख्य नैमित्तिक या अनन्त स्वाभाविक गुणोंकी अपेक्षा से आत्मा अनेकानेक रूप है। आत्मा के इन सर्व धर्मों का निरूपण इस 'पूर्व' में किया गया है ॥

८. कर्मप्रवादपूर्व—यह पूर्व १ करोड़ ८० लाख मध्यम पदों में है। इस में द्रव्यकर्म, भावकर्म, द्रव्यकर्म की ८ मूलप्रकृति, १४८उत्तरप्रकृति और अनेकानेक उत्तरोत्तर प्रकृति रूप भेदों सहित उनके बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, उपशमन, संक्रमण, निधत्ति, निःकाचन, इन दश करणों या अवस्थाओं का और उन का १४ गुणस्थानों में यथासम्भव होने न होने का तथा गुणस्थान अपेक्षा कर्मों के बन्ध, उदय,सत्ता की संख्या और उनकी व्युच्छित्ति, इत्यादि इत्यादि कर्म सम्बन्धी सर्व ही बातों का सविस्तार निरूपण है ॥

९. प्रत्याख्यानपूर्व--यह पूर्व ८४ लाख मध्यमपदों में है। इस में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपेक्षा मनुष्यों के बल और संहनन आदि के अनुसार यावज्जीव या कालमर्यादा से (यम या नियमरूप) सर्व प्रकार की सदोष वस्तुओं और क्रियाओं का त्याग,

रचयिता विक्रम की ११वीं शताब्दी के श्री 'शुभचन्द्र' आचार्य से तथा इन से पीछे विक्रम सं० १४५० में हुए इसी नाम के एक 'अग्रवाल' जाति के भट्टारक से अङ्गप्रज्ञप्ति के रचयिता श्री शुभचन्द्राचार्य भिन्न थे ॥

नोट २—श्री शुभचन्द्र नाम से प्रसिद्ध कई आचार्यों और भट्टारकों का समय या उन की ग्रन्थ रचनादि जानने के लिये देखो ग्रन्थ 'वृहत् विश्व चरितार्णव' ॥

अङ्गरक्षक—शरीर की रक्षा करने वाला ॥

कल्पवासी, ज्योतिषी, भवनवासी और व्यन्तर, इन चारों निकाय के देवों में से एक विशेष प्रकार के देव जो राजा के अङ्गरक्षकों की समान प्रत्येक इन्द्र के अङ्गरक्षक (तनुरक्षक, आत्मरक्षक) होते हैं ॥

नोट १—कल्पवासी अर्थात् १६ स्वर्गवासी देवों के और भवनवासी देवों के, पदवी की अपेक्षा (१) इन्द्र (२) प्रतीन्द्र (३) दिक्पाल (लोकपाल) (४) त्रायस्त्रिंशत् (५) सामानिक (६) अंगरक्षक (७) पारिषद (अन्तःपरिषद् या समिति, मध्यपरिषद् या चन्द्रा, वाह्यपरिषद् या जतु) (८) अनीक (९) प्रकीर्णक (१०) आभियोग्य (११) किल्विषिक, यह ११ भेद हैं। और व्यन्तर देवों और ज्योतिषी देवों के भेद त्रायस्त्रिंशत् और लोकपाल, इन दो को छोड़ कर शेष ९ हैं ॥

(त्रि० गा० २२३, २२४, २२५)।

नोट २—१६ कल्पों (स्वर्गों) और भवनत्रिक में अङ्गरक्षक देवों की संख्या निम्न प्रकार है:—

(१) प्रथम स्वर्ग में ३३६००० (२) द्वितीय स्वर्ग में ३२०००० (३) त्रितीय में २८८००० (४) चतुर्थ में २८००००(५) पञ्चम षष्ठम युगल में २४०००० (६) सप्तम अष्टम युगल में २००००० (७) नवम दशम में १६०००० (८) एकादशम् द्वादशम् में १२०००० (९) त्रयोदशम्, चतुर्दशम्, पञ्चदशम और षोडशम, इन ४ स्वर्गों में ८००००, एवम् १६ स्वर्गों में सर्व अङ्गरक्षक देव२०२४००० हैं।

(त्रि० गा० ४९४)।

दश भवनवासी देवों के २० इन्द्रों में (१) चमरेन्द्र के अङ्गरक्षक देव २५६००० (२) वैरोचन के २४०००० (३) भूतानन्द के २२४००० और (४) शेष १७ इन्द्रों के २०००००, एवम् सर्व ९२०००० हैं ॥

(त्रि० गा०२२७,२२८)।

अष्ट व्यन्तर देवों के १६ इन्द्रों में से प्रत्येक के अङ्गरक्षक देव १६०००, एवम् सर्व २५६००० हैं ॥

(त्रि० गा० २७९)।

ज्योतिषी देवों के २ इन्द्रों में से प्रत्येक के १६००० एवम् सर्व ३२००० अङ्गरक्षक हैं ॥

इन सर्व की आयु, काय, आवास आदि जानने के लिये देखो ग्रन्थ "त्रिलोकसार" गाथा २४४, ५००, ५१८, ५३०, ५७५ ॥

अङ्गवती—चम्पापुरी के एक सेठ प्रियदत्त की सुशीला धर्मपत्नी। नारीरत्न धर्मपरायण सती "अनन्तमती" जिसने आजन्म कुमारी रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रीति से अखंड पालन किया इसी महिला "अंगवती" की पुत्री थी ॥ (देखो शब्द 'अनन्तमती')।

अङ्गबाह्य—अङ्ग से बाहर, द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान से बाहर, अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो मूल भेदों में से एक भेद जो १४ प्रकीर्णक नामक उपभेदों में विभाजित है

अङ्गबाह्य श्रुतज्ञान—पूर्ण अक्षरात्मक

श्रुत ज्ञान के दो विभागों (अङ्गप्रविष्ट और अङ्गवाह्य) में से दूसरा विभाग ।

(देखो शब्द 'अङ्गप्रविष्ट')

पूर्ण अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान का यह विभाग निम्न लिखित १४ उपविभागों में विभाजित है, जिन्हें १४ प्रकीर्णक इस लिये कहते हैं कि यह पूर्ण 'अक्षरात्मक श्रुतज्ञान' के एक कम एकट्ठी १८४४६७४४०-७३७०९५५१६१५ अक्षरों में से बने हुए अंगप्रविष्ट या द्वादशांगके ११२८३५८००५ मध्यमपदों के अतिरिक्त जो एक मध्यमपद से कम शेष अक्षर ८०१०८१७५ रह जाते हैं अर्थात् जिन से पूरा एक मध्यमपद जो १६३४८३०७८८८ अक्षरों का होता है नहीं बन सकता, उन्हीं शेष अक्षरों की संख्याप्रमाण 'अंगवाह्य' के यह नीचे लिखे १४ प्रकीर्णक या १४ फुटकर विभाग हैं:—

१. सामायिक—इस में सर्व प्रकार के मिथ्यात्व और विषय कषायों से चित्त को हटाने के लिये नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, इन छह भेदों युक्त 'सामायिक' का सविस्तार वर्णन है ॥

२. स्तवन—इस प्रकीर्णक में तीर्थंकरों के ५ कल्याणक, ३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य, परमौदारिक दिव्य देह, समवशरणसभा, धर्मोपदेश, इत्यादि तीर्थंकरत्व की महिमा का प्रकाशनरूप स्तवन का निरूपण है ॥

३. वन्दना—इस में किसी एक तीर्थङ्कर के अवलम्बन कर चैत्यालय, प्रतिमा आदि की स्तुति का निरूपण है ॥

४. प्रतिक्रमण—इस में पूर्वकृत् प्रमाद वश लगे दोषों के निराकरणार्थ (१) दैवसिक (२) रात्रिक (३) पाक्षिक (४) चातुर्मासिक (५) साम्वत्सरिक (६) ऐर्यापथिक और (७) उत्तमार्थ, इन सात प्रकार के प्रतिक्रमण का भरत आदि क्षेत्र, दुःखमा सुखमादि काल, वज्रवृषभ आदि संहनन, इत्यादि अपेक्षा सहित निरूपण है ॥

५. वैनयिक—इस प्रकीर्णक में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप, इन चार का विनय और पांचवां उपचार विनय, इन पञ्च प्रकार विनय का सविस्तार वर्णन है ॥

६. कृतिकर्म—इस प्रकीर्णक में अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि नव-देव-वन्दना के लिये तीन शुद्धता, तीन प्रदक्षिणा, दो साष्टांग नमस्कार, चार शिरोनति, १२ आवर्त्त का, तथा देवपूजन, गुरुवन्दन, त्रिकालसामायिक, शास्त्रस्वाध्याय, दान, संयम, आदि सर्व नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के विधान का निरूपण है ॥

७. दशवैकालिक—इस प्रकीर्णक में १० प्रकार के विशेष अवसरों पर जिस प्रकार साधुओं को अपने आचार और आहार आदि की शुद्धता रखनी आवश्यक है उस की विधि आदि का निरूपण है ॥

८. उत्तराध्ययन—इस प्रकीर्णक में चार प्रकार का उपसर्ग, २२ परीषह आदि सहन करने का विधान और उन के फल का तथा श्री महावीर स्वामी के उपसर्ग सहन और परीषहजय और मोक्षगमन का सविस्तार निरूपण है ॥

९. कल्पव्यवहार—इस प्रकीर्णक में मुनीश्वरों के योग्य आचरण का विधान और अयोग्य सेवन से लगे दोषों को दूर

करने के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार यथा योग्य प्रायश्चित् देने की विधि आदि का सविस्तार निरूपण है ॥

१०. कल्पाकल्प—इस प्रकीर्णक में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुकूल साधुओं के लिये योग्य और अयोग्य दोनों प्रकार के आचार का वर्णन है ॥

११. महाकल्प—इस प्रकीर्णक में उत्कृष्ट संहनन आदि युक्त जिनकल्पी महा मुनियों के योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुकूल उत्कृष्ट आचार, वृतचर्या, कायक्लेशतप—प्रतिमा योग, आतापन योग, अभ्रावकाश, त्रिकालयोग—इत्यादि, तथा स्थविरकल्पी मुनियोंकी दीक्षा, शिक्षा, संघ या गणपोषण, यथायोग्य शरीर-समाधान या आत्मसंस्कार, सल्लेखना, उत्कृष्ट स्थानगत या उत्तमार्थ स्थान-प्राप्ति, उत्तम आराधना आदि का निरूपण है ॥

१२. पुण्डरीक—इस प्रकीर्णक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी देवों के विमानों में जन्म धारण करने के प्रथक प्रथक कारणों—दान, पूजा, तप, संयम, सम्यक्त, अकामनिर्जरा आदि—का विधान तथा उन स्थानों के विभव आदिक का सविस्तार वर्णन है ॥

१३. महापुण्डरीक—इस प्रकीर्णक में इन्द्र प्रतीन्द्र और कल्पातीत विमानों के अहमिन्द्रादि महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होने के कारणभूत विशेष तपश्चरणादि का तथा उनके विभव आदिका सविस्तार निरूपण है।

१४. निषिद्धिका—इस प्रकीर्णक में प्रमादजन्य दोषों के निराकरणार्थ अनेक प्रकार के प्रायश्चित का पूर्णरूप से निरूपण है ॥

अङ्गस्पर्शनदोष (अङ्गामर्श दोष)—छह प्रकार के अन्तरंग तप का जो पाँचवा भेद "व्युत्सर्ग" नामक तप है उसके अन्तर्गत "कायोत्सर्ग तप" सम्बन्धी ३२ दोषों में से अन्तिम दोष का नाम "अंगस्पर्शन" या 'अंगामर्श' (कायोत्सर्ग तप के समय शरीर के किसी अंगको छूना या मसलना) है ॥

नोट—कायोत्सर्ग के ३२ दोष यह हैं—(१) घोटकपाद (२) लतावक्र (३) स्तंभावष्टंभ (४) कुड्याश्रित (५) मालिकोद्वहन (६) शबरी गुह्य गूहन (७) शृंखलित (८) लंबित (९) उत्तरित (१०) स्तन दृष्टि (११) काकालोकन (१२) खलीनित (१३) युगकन्धर (१४) कपित्थ मुष्टि (१५) शीर्ष प्रकम्पित (१६) मूक संज्ञा (१७) अंगुलि चालन (१८) भ्रूक्षेप (१९) उन्मत्त (२०) पिशाच (२१-२८) पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, यह अष्ट दिशावलोकन (२९) ग्रीवोन्नमन (३०) ग्रीवावनमन (३१) निष्ठीवन और (३२) अङ्गस्पर्शन ॥

(देखो शब्द "अंगुलि चालन दोष" और उस के नोट २, ३)

अंगामर्श दोष—देखो शब्द "अङ्गस्पर्शन-दोष" ॥

अंगार—(१) जलता हुआ कोयला या लकड़ी का टुकड़ा या उपला; लालरंग; रागभाव; आसक्तता या विषय-लम्पटता; नरकासुर ॥

(२) मंगलवार; ८८ ग्रहों में से एक ग्रह का नाम जिसे मङ्गल, भौम, महीसुत, कुज, अंगारक, लोहितांग भी कहते हैं।

(देखो शब्द 'ग्रह' का नोट)

(३) नभस्तिलकपुर के विद्याधर राजा त्रिशिखर का एक पुत्र जो "श्रीकृष्णचन्द्र" के पिता 'वसुदेव' की एक 'मदन-

वेगा नामक स्त्री के भाई चंडवेग के हाथ से युद्ध में परास्त हुआ था जब कि 'वसुदेव' ने उसी युद्ध में उसके पिता 'त्रिशिखर' को मार कर और 'मदनवेगा' के पिता को त्रिशिखर के कारागार से छुड़ा कर 'मदनवेगा' से विवाह किया था जिससे प्रथम पुत्र "अनावृष्टि" नामक उत्पन्न हुआ। (अंगार सम्बन्धी विशेष कथा जानने के लिये देखो ग्रन्थ 'बृहत् विश्वचरितार्णव' या हरिवंश पुराण, सर्ग२४, श्लोक ८४-८६, व सर्ग २५, श्लोक ६२ आदि) ॥

अङ्गारक—(१) चिङ्गारी; मंगल ग्रह; एक तेल जो सर्व प्रकार के ज्वरों को दूर करता है; भीमराज नाम से प्रसिद्ध एक कुरंटक वृक्ष जिसे भृङ्गराज भी कहते हैं ॥

(२) श्रीकृष्णचन्द्र के पिता 'वसुदेव' की एक 'श्यामा' नामक स्त्री के पिता 'अशनिवेग' के बड़े भाई राजा 'ज्वलनवेग' का एक पुत्र, जिसने श्यामा के पिता को बन्दीगृह में डाल रखा था और पति 'वसुदेव' को भी जब सोते समय एक बार हरण कर लिया तो श्यामा ने बड़े साहस के साथ उससे युद्ध करके उसकी आकाशगामनी विद्या (वायु-यान या विमान) छेद दी थी ॥ (देखो ग्रन्थ 'बृहत् विश्वचरितार्णव' या हरिवंश पुराण, सर्ग १९ श्लोक ६७ से १०९ तक; व सर्ग २२ श्लोक १४४ आदि; सर्ग २४ श्लोक ३१-३४)।

(३) दक्षिण देशीय एक विद्याधर राजा का पुत्र, जिसने दक्षिण भारत के एक 'दधि मुख' नामक बन में क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो अग्नि लगा दी थी जहां उसी बन के निकटवर्ती 'दधमुख' नामक नगर के विद्याधर राजा 'गन्धर्वसेन' की तीन अविवाहित पुत्रियाँ, 'चन्द्ररेखा', 'विद्युतप्रभा' और 'तरङ्गमाला' मनोगामनी विद्या सिद्ध कर रही थीं और दो चारण ऋद्धिधारी मुनि ध्यानारूढ़ थे और जिस अग्नि को 'पवन-अंजय' के पुत्र 'हनुमान' ने, जब कि वह श्रीरामचंद्र की ओर से दूत पद पर नियुक्त हो कर किष्कन्धापुरी से लङ्का को जा रहा था, वर्षायंत्र की सहायता से बुझाई थी ॥

(देखो ग्रन्थ 'बृहत् विश्वचरितार्णव' या पद्मपुराण सर्ग ५१)

अङ्गारदोष—अति आसक्तता या लोलुपता से किसी वस्तु को ग्रहण करना। भोजन सम्बन्धी एक प्रकार का दोष; अनिगृद्धता से भोजन करने का दोष; निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों के आहार सम्बन्धी त्याज्य दोषों के जो मूलभेद ७ और उत्तरभेद ४६ हैं उन में से एक उस दोष का नाम जो लोलुपता के साथ भोजन करने से लगता है। वसतिका अर्थात् दिगम्बर मुनियों के लिये आवश्यकतानुसार ठहरने के स्थानसम्बन्धी जो त्यागने योग्य ४६ दोष हैं उन में से वह दोष जो मोहवश वसतिका को ग्रहण करने या उस में अधिक समय तक ठहरे रहने से लगता है ॥

नोट १—आहारसम्बन्धी दोषों के ७ मूलभेद और उन के ४६ उत्तरभेद निम्न प्रकार हैं:—

(१) १६ भेदयुक्त उद्गम दोष (२) १६ भेदयुक्त उत्पादन दोष (३) १० भेदयुक्त एषण (अशन) दोष (४) संयोजन दोष (५) प्रमाणातिरेक दोष (६) अङ्गार दोष और (७) धूम्रदोष ॥

नोट २—यही उपर्युक्त ४६ दोष वसतिका सम्बन्धी भी हैं ॥

नोट ३—इन ४६ उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त एक "अधःकर्म" जिस के ४ भेद हैं और एक 'अकारण' जिस के ६ भेद हैं, यह दो मूलभेद या दश उत्तर भेद रूप त्याज्य दोष और भी हैं। यह अधिक निकृष्ट होने से अलग गिनाए गए हैं ॥

(इन सर्व दोषों के अलग अलग नामादि जानने के लिये देखो शब्द 'आहार दोष') ॥

अङ्गारमर्दक—इस नाम से प्रसिद्ध 'रुद्रदेव' नामक एक अभव्य जैनाचार्य ।

(अ. मा.)

अङ्गारवती—स्वर्णनाभपुर के एक विद्याधर राजा 'चित्तवेग' की स्त्री जिस के पुत्र का नाम 'मानसवेग' और पुत्री का नाम 'वेगवती' था जो 'श्रीकृष्ण' के पिता 'श्री वसुदेव' की एक पत्नी थी ॥

(देखो ग्रन्थ बृहत् विश्वचरितार्णव' या हरिवंशपुराण सर्ग २४, ३०)

अङ्गारिणी—प्रज्ञप्ति, रोहिणी आदि अनेक दिव्य विद्याओं में से एक विद्या का नाम ।

(देखो शब्द 'अच्युता' नोटों सहित)

अङ्गिर—देखो शब्द 'अगिर' ॥

अङ्गुल—हाथ या पांव की शाखा अर्थात् अंगुलि, अँगुली या उँगली; एक अंगुलि की चौड़ाई बराबर माप, ८ यव (जव या जौ) की मध्य-भाग की मुटाई बराबर माप; विक्रम की सातवीं शताब्दी में विद्यमान कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन मुनि का अपर नाम; उड़ीसा प्रान्त का एक देशीराज्य (महानदी के उत्तर) जो सन् १८४७ से अँगरेज़ी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया है। इस की मुख्य नगरी का नाम भी 'अंगुल' ही है ॥

नोट १—अंगुल निम्न लिखित तीन प्रकार का होता है:—

(१) उत्सेधांगुल—यह ८ यव या ६४ सरसों की मुटाई बराबर का एक माप है जो 'श्री महावीर' तीर्थंकर के हाथ की अंगुली की चौड़ाई से ठीक अर्द्धभाग और उन के निर्वाण की सातवीं शताब्दी में विद्यमान 'श्री पुष्पदन्ताचार्य' और 'श्री भूतवल्याचार्य' के हाथ की अँगुलि की चौड़ाई की बराबर है जब कि कंठस्थ जिनवाणी का कुछ भाग वर्त्तमान पञ्चम काल में सब से प्रथम षट्खंड सूत्रों (प्रथम श्रुतस्कन्ध) में लिपिबद्ध किया गया था । यह अंगुल-माप आजकल के साधारण शरीरवाले मनुष्यों की अंगुलि से कुछ बड़ा है । (देखो शब्द "अङ्गविद्या" का नोट ७ और "अग्रायणीपूर्व" के नोट २, ३) ॥

(२) प्रमाणांगुल—यह माप उपर्युक्त उत्सेधांगुल के माप से ५०० गुणा बड़ा है जो इस भरत क्षेत्र के वर्त्तमान अवसर्पिणीकाल के चतुर्थ विभाग में हुए प्रथम तीर्थङ्कर "श्री ऋषभदेव स्वामी" की या उन के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती "भरत" की अंगुलि की चौड़ाई की बराबर है ॥

(३) आत्मांगुल—इस का प्रमाण कोई एक नियत नहीं है । 'भरत' व 'ऐरावत' आदि क्षेत्रों के मनुष्यों की अपने अपने समय में जो जो अंगुलि है उसी के बराबर के माप का नाम "आत्मांगुल" है जो प्रत्येक समय में शरीर की ऊँचाई घटने से घटता और बढ़ने से बढ़ता रहता है अर्थात् हर समय के हर मनुष्य का अपने अपने अंगुलि की

चौड़ाई का माप ही "आत्मांगुल" है ॥

नोट २—जिनवाणी में नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारों ही गति के जीवों के (अर्थात् त्रिलोक और त्रिकाल सम्बन्धी सर्व ही जीवों के) शरीर का और देवों व मनुष्यों के नगरादि का परिमाण 'उत्सेधांगुल' से, महापर्वत, महानदी, महाद्वीप, महासमुद्र, नरकबिलों, स्वर्गविमानों, आदि का परिमाण 'प्रमाणांगुल से, और प्रत्येक तीर्थङ्कर या चक्रवर्ती आदि के छत्र, चमर, कलश आदि मंगलद्रव्यों या अनेक उपकरणों व शस्त्रों आदि का तथा समवशरणादि का परिमाण आत्मांगुल से निरूपण किया गया है ॥

नोट ३—एक अंगुल लम्बाई को 'सूच्यंगुल', एक अंगुल लम्बी और इतनी ही चौड़ी समधरातल को 'प्रतरांगुल' और एक अंगुल लम्बे, इतने ही चौड़े और इतने ही मोटे (या ऊँचे या गहरे) क्षेत्र को 'घनांगुल' कहते हैं ॥

अष्ट उपमालोकोत्तरमान में सूच्यंगुल आदि का मान प्रमाणांगुल से ग्रहण किया गया है। (देखो शब्द 'अङ्कविद्या' के नोट ३ और ६) ॥

अंगुलपृथक्त्व—दो अंगुल से नव अंगुल तक (अ. मा.) ॥

अंगुलिचालन दोष (अंगुलिभ्रमण दोष, अंगुलिभ्रूदोष, अंगुलि दोष)—व्युत्सर्ग नामक अन्तरंग तप के अन्तर्गत या षटावश्यक नियुक्ति का छटा भेद जो 'कायोत्सर्गतप' या 'कायोत्सर्गनियुक्ति' है उस के ३२ त्याज्य अतीचारों या दोषों में से एक का नाम 'अंगुलिदोष' है जो 'कायोत्सर्ग' के समय किसी अँगुली को हिलाने चलाने से लगता है ॥

नोट १—कायोत्सर्ग सम्बन्धी ३२ दोषों के नाम जानने के लिये देखो शब्द 'अङ्गस्पर्शनदोष' का नोट ॥

नोट २—षटआवश्यक नियुक्ति—(१) सामायिक (२) स्तव (३) बन्दना (४) प्रतिक्रमण (५) प्रत्याख्यान (६) कायोत्सर्ग ॥

नोट ३—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान, यह अन्तरंग तप के ६ भेद हैं। इन छह भेदों में से व्युत्सर्गतप के (१) बाह्योपधि व्युत्सर्ग और (२) अभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग, यह दो मूल भेद हैं। इस 'अभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग' के (१) यावत्जीव अभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग और (२) नियतकालाभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग, यह दो भेद हैं। इन दो में से भी प्रथम के तीन भेद (१) भक्तप्रत्याख्यान (२) इंगिनीमरण और (३) प्रायोपगमन हैं और द्वितीय के दो भेद (१) नित्य-नियतकालाभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग और (२) नैमित्तिक-नियतकालाभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग हैं ॥

इन अन्तिम दो भेदों में से पहिले भेद 'नित्यनियतकालाभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग' ही के उपर्युक्त 'सामयिक' आदि षटावश्यक क्रिया (या कर्म या नियुक्ति) हैं जिन में 'कायोत्सर्ग' छटा भेद है। (प्रत्येक भेद उपभेद आदि का स्वरूप और व्याख्या आदि प्रत्येक शब्द के साथ यथा स्थान देखें) ॥

अङ्गुलिदोष
अंगुलिभ्रमणदोष
अङ्गुलिभ्रूदोष　} देखो शब्द 'अंगुलिचालनदोष' ॥

अंगुष्ठप्रदेशन } आगे देखो शब्द 'अंगुष्ठप्रसेन'
अङ्गुष्टप्रश्न }

अंगुष्टप्रसेन (अंगुष्ठप्रदेशन या अंगुष्ठप्रश्न)—अंगुष्ठ अर्थात् अँगूठे में किसी देवता का आह्वानन करके या आत्मिक विद्युत्तरंगें उत्पन्न करके अँगूठे से ही प्रश्नों का उत्तर देने की एक विद्या। यह विद्या ७०० अल्प विद्याओं में से सर्व से पहिली है। इस विद्या का स्वरूप, सामर्थ, और प्राप्त करने की विधि—मंत्र, तंत्र, पूजा, विधानादि—इत्यादि का सविस्तार पूर्ण निरूपण 'विद्यानुवाद' नामक दशवें पूर्व में है जहां शेष अल्प विद्याओं तथा 'रोहिणी' आदि ५०० महा विद्याओं का और अष्ट महानिमित्तज्ञान का भी पूर्ण वर्णन है। 'प्रश्नव्याकरण' नामक १०वें अङ्ग में भी इस विद्या का निरूपण है॥

[देखो शब्द 'अंगप्रविष्टश्रुतज्ञान' में (१२) दृष्टिवादांग का भेद (४) पूर्वगत और उस का विभाग १० विद्यानुवादपूर्व और (१०) प्रश्नव्याकरणांग]

अंगुष्टिक—आगे देखो शब्द 'अंगोस्थित'॥

अङ्केरियक—भरतक्षेत्र के एक पर्वत का प्राचीन नाम॥

भरत चक्रवर्त्ती की दिग्विजय के समय मार्ग में जो अनेक नदी, पर्वत, वन, नगरादि पड़े उनमें से एक पर्वत यह भी था॥

अङ्गोपाङ्ग—(१) शरीर के अङ्ग और उपाङ्ग। शरीर के अवयव या भाग दो पग दो हाथ, नितम्ब (कमर के नीचे का भाग, चूतड़), पीठ, हृदय, और मस्तक या शिर, यह आठ 'अंग' हैं। इन अंगों के जो मुख, नाक, कान, आँख, गर्दन, पहुँचा, हथेली, अँगुली, नाभि, जंघा, घटना, एड़ी आदि अनेक अङ्ग या अवयव हैं उन्हें 'उपाङ्ग' कहते हैं॥

नोट—नितम्बों सहित दो पग दो हाथ, शिर और धड़ (शरीर का मध्यभाग), इस प्रकार अङ्गों की गणना ६ भी मानी जाती है। आठों या छहों अङ्गों से नमस्कार करने को 'अष्टाङ्गनमस्कार' या 'साष्टाङ्गनमस्कार' या 'षडाङ्गनमस्कार' बोलते हैं॥

(२) नामकर्म की ४२ उत्तर प्रकृतियों में से जो १४ पिंड प्रकृतियां (भेदयुक्त प्रकृतियां) हैं उन में से एक का नाम 'अङ्गोपाङ्ग' है जिस के उदय से शरीर के अनेक अवयवों की रचना होती है। इस पिंडप्रकृति के शरीरभेद अपेक्षा तीन भेद (१) औदारिक शरीराङ्गोपांग (२) वैक्रयिक शरीरांगोपांग (३) आहारक शरीरांगोपांग हैं। शेष दो प्रकार के शरीरों अर्थात् तैजसशरीर और कार्माण शरीर के अङ्गोपांग नहीं होते। [देखो शब्द 'अघातियाकर्म' में (५) नामकर्म]॥

अङ्गोस्थित—एक तीर्थङ्कर का नाम॥

जम्बूद्वीपके सुदर्शनमेरु की उत्तरदिशा में स्थित ऐरावतक्षेत्र की गत चौबीसी के यह ९वें तीर्थङ्कर हैं। (आगे देखो शब्द 'अढ़ाईद्वीपपाठ' के नोट ४ का कोष्ठ ३)॥

अंघ्रिक्षालन—'अङ्घ्रि' या 'अंघ्रि' शब्द का अर्थ है 'चरण', और 'क्षालन' का अर्थ है 'प्रक्षालन' या 'धोना', अतः नवधाभक्ति (नव प्रकार की भक्ति) में से एक प्रकार की भक्ति 'अङ्घ्रिक्षालन' है जो किसी मुनि को आहार देने के समय उदारहृदय दातार प्रकट करता है अर्थात् 'अङ्घ्रिक्षा-

लन' यह हृदयस्थित भक्ति है जो दातार आहार दानादि के समय मुनि के चरण धोकर और उस चरणोदक (चरणामृत) को निज मस्तकादि पर लगा कर प्रकट करता है ॥

नोट—नवधाभक्ति—(१) प्रतिग्रह या पड़गाहन अर्थात् किसी अतिथि (मुनि) को आते देख कर "स्वामिन् ! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, अत्र तिष्ठ, तिष्ठ तिष्ठ, अन्न जल शुद्ध" ऐसे वचन दोनों हाथ जोड़े हुए मस्तक नमा कर बड़ी विनय से कहना, (२) उच्च स्थानप्रदान, (३) अङ्घ्रि क्षालन (चरण प्रक्षालन), (४) अर्चा (पूजन), (५) आनति (साष्टाङ्ग नमस्कार), (६) मनःशुद्धि, (७) वचन शुद्धि, (८) कायशुद्धि, (९) अन्न शुद्धि॥

अचक्षु—चक्षुरहित, बिना नेत्र; चक्षु के अतिरिक्त अन्य ४ इन्द्रियें और मन ॥

अचक्षु दर्शन—दर्शन के ४ भेदों में से एक भेद, चक्षु (आंख, नेत्र) के अतिरिक्त अन्य चार इन्द्रियों में से किसी ज्ञानेन्द्रिय से या मन से होने वाला दर्शन या अवलोकन या सामान्य निर्विकल्प ज्ञान ॥

नोट—आत्मा को स्वयम् बिना किसी इन्द्रियादि की सहायता के या पांचों ज्ञानेन्द्रियों में से प्रत्येक के या मन के द्वारा जो अपने अपने विषय का सामान्य निर्विकल्प ज्ञान होता है उसे "दर्शन" कहते हैं। अर्थात् वह सामान्य ज्ञान जिस में किसी वस्तु या पदार्थ की केवल सत्ता मात्र का निर्विकल्प रूप से आभास या ग्रहण हो उसे 'दर्शन' कहते हैं। इस दर्शन के चार भेद (१) चक्षु दर्शन (२) अचक्षु दर्शन (३) अवधि दर्शन और (४) केवल दर्शन हैं ॥

अचक्षु दर्शनावरण—चक्षु के अतिरिक्त अन्य किसी इन्द्रिय या मन की दर्शन शक्ति का आवरण या आच्छादन (ढकना), दर्शनावरणीय कर्म के ९ भेदों में से एक का नाम, जिसके उदय से जीव को चक्षु के अतिरिक्त अन्य किसी एक या अधिक इन्द्रियों द्वारा दर्शन न होसके अथवा जिसके उदय से जीव के पौद्गलिक शरीर में रसना, घ्राण, श्रोत्र और मन, इन चार द्रव्येन्द्रियों में से किसी एक या अधिक की रचना ही न हुई हो, या नेत्र को छोड़ कर अन्य किसी द्रव्येन्द्रिय की रचना होते हुए भी उनमें से किसी एक या अधिक में किसी प्रकार का विकार होने से उस के द्वारा उसके योग्य विषय का दर्शन न हो सके ॥

नोट—दर्शनावरणीय कर्म के ९ भेद—(१) चक्षु-दर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण (३) अवधि-दर्शनावरण (४) केवल-दर्शनावरण (५) निद्रोत्पादक-दर्शनावरण (६) निद्रानिद्रोत्पादक दर्शनावरण (७) प्रचलोत्पादक-दर्शनावरण (८) प्रचलाप्रचलोत्पादक दर्शनावरण (९) स्त्यानगृद्ध्युत्पादक-दर्शनावरण ॥

अचक्षुदर्शनि—चक्षुदर्शन रहित जीव, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, और त्रीन्द्रिय जीव ॥

अचङ्कारितभट्टा—धन्य नामक एक सेठ की पुत्री, जिस का विवाह उसकी आज्ञा उठाने वाले के साथ हुआ था। यह सदा अपने पति को दबाव में रखती थी। एक बार राजा के दबाव डालने से पति स्त्री की आज्ञा का पालन न कर सका तो यह रुष्ट होकर भाग निकली। रास्ते में चोरों ने लूटा और रंगेरे के यहां बेचा। इस प्रकार

जब बहुत कष्ट उठाया तब उसे उस के पति ने छुड़ाया। तब से उसने क्रोध मान आदि करना छोड़ दिया। मुनिपति नामक एक साधु के जले हुए शरीर की दवा के लिए लक्षपाक (लाक्षादि) नामक तेल लेने के लिए एक साधु इस के घर आया। उस समय उस तेल की तीन शीशियां दासी के हाथ से फूट गईं तौ भी उसे क्रोध न आया। चौथी बार वह स्वयं शीशी लेकर आई और साधु को तेल दिया। इस का विस्तृत वर्णन मुनिपतिचरित्र में है। (अ० मा०)॥

नोट—इसी कथा से बहुत कुछ मिलती हुई एक कथा श्री शुभचंद्र भट्टारककृत 'श्रेणिक चरित्र' के ११वें सर्ग में 'तुंकारी' की है जो उज्जैनी निवासी सोमशर्मा भट्ट की धर्मपत्नी थी। (आगे देखो शब्द 'तुंकारी')॥

अचर—(१) अचल, दृढ़, स्थिर; (२) जो अपनी इच्छा से चल फिर न सके अर्थात् सर्व अचेतन या जड़ पदार्थ (जीव के अतिरिक्त शेष ५ द्रव्य) (३) जीव और पुद्गल के अतिरिक्त शेष चार द्रव्य, अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल और आकाश; (४) अचर जीव अर्थात् पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक, और वनस्पति कायिक, यह ५ प्रकार के स्थावर जीव, अर्थात् सर्व प्रकार के एकेन्द्रिय, जीव॥

अचरम—संसार की चरमावस्था (अन्तिम-अवस्था) को न पहुँचा हुआ, जन्म मरण युक्त संसारी जीव॥

अचल—(१) अटल, स्थिर, धीर, पर्वत, वृक्ष, खूंटा॥

(२) धातुकीखंड नामक द्वितीय महाद्वीप की पश्चिम दिशा के मेरु-गिरि का नाम॥

यह 'अचल' नामक मेरुगिरि मीनार या शिखर के समान गोल गृञ्जन (गाजर) के आकार का लगभग गावदुम ८४ सहस्र प्रमाणयोजन ऊंचा और एक सहस्र प्रमाणयोजन समभूमि से नीचे चित्रा पृथ्वी तक मूलरूप गहरा है। इसके मूल के तल भाग का व्यास साढ़े नव हज़ार (९५००) योजन और चोटी का व्यास एक हज़ार (१०००) योजन है। मूल से एक सहस्र योजन ऊपर समभूमि पर इस का व्यास ९४०० योजन है। यहां से ५०० योजन ऊपर जाकर इस में ५०० योजन चौड़ी चारों ओर एक कटनी है जहां मेरु की गोलाई का व्यास कटनी के बाह्य किनारे पर ९३५० योजन और अभ्यन्तर किनारे पर ८३५० योजन है। यहां से दश सहस्र (१००००) योजन की ऊँचाई तक मेरुगिरि गृञ्जनाकार गावदुम नहीं है किंतु समान चौड़ा (समान व्यासयुक्त) चला गया है जिस से इस ऊँचाई पर पहुँच कर भी उस का व्यास ८३५० योजन ही है। यहां से साढ़े पैंतालीस सहस्र (४५५००) योजन की ऊँचाई तक फिर गृञ्जनाकार गावदुम जाकर उस में एक कटनी ५०० योजन चौड़ी चारों ओर है जहां मेरु की गोलाई का व्यास कटनी के बाह्य किनारे पर तो ३८०० योजन और अभ्यन्तर किनारे पर २८०० योजन है। यहां से दशसहस्र (१००००) योजन की ऊँचाई तक मेरुगिरि फिर समान व्यासयुक्त चला गया है जिस से इस ऊँचाई पर पहुँच

कर भी उस की गोलाई का व्यास २८०० योजन ही है। यहां से शेष अठारह सहस्र (१८०००) योजन की ऊँचाई तक अर्थात् चोटी तक फिर गावदुम आकर चोटी की गोलाई का व्यास एक सहस्र (१०००) योजन है॥

चोटी पर उसके मध्य में एक चूलिका गोल गावदुम ४० योजन ऊँची है जिस की गोलाई का व्यास नीचे मूल में १२ योजन और ऊपर शिरोभाग में ४ योजन है। इस चूलिका के मूलमें चारों ओर कटनी के आकार का जो स्थान शेष रहा उस की चौड़ाई ४६४ योजन है॥

इस मेरु के मूल में सम भूमि पर जो मूल के तल भाग से १००० योजन ऊपर है एक "भद्रशाल" नामक वन उस की चारों ओर उत्तर दक्षिण १२२५ $\frac{७२}{८८}$ योजन और पूर्व पश्चिम १०७८७६ योजन चौड़ा है। यहां से ५०० योजन ऊँचाई पर जो उपर्युक्त ५०० योजन चौड़ी कटनी मेरु के चारों ओर है उसमें "नन्दन" नामक वन ५०० योजन चौड़ा है। यहां से ५५५०० योजन ऊपर आकर जो उपर्युक्त दूसरी कटनी ५०० योजन चौड़ी है उसमें तीसरा 'सौमनस' नामक वन ५०० योजन चौड़ा है। यहां से २८००० योजन ऊपर मेरु की चोटी पर "चूलिका" के मूल में उसके चारों ओर जो उपर्युक्त ४९४ योजन चौड़ा कटनी के आकार का स्थान है उसमें चौथा "पाण्डुक" नामक वन ४९४ योजन चौड़ा है।

उपर्युक्त प्रत्येक वन की पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण प्रत्येक दिशा में एक एक अकृत्रिम जिनचैत्यालय है; अतः सर्व १६ चैत्यालय हैं। इन में से 'भद्रशाल' और 'नन्दन' वनों के चैत्यालय ज्येष्ठ हैं, 'सौमनस' के मध्यम और 'पाण्डुक' के लघु हैं। ज्येष्ठ चैत्यालयों की लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई क्रम से १००, ५०, ७५ योजन है, मध्यम की ५०, २५, ३७॥ योजन और लघु की २५, १२॥, १८॥। योजन है॥

पाण्डुक वन में उस के ईशान कोण (उत्तर पूर्व के मध्य) में 'पाण्डुक' नामक शिला स्वर्ण के रंग की, अग्निकोण (पूर्व दक्षिण के मध्य) में "पाण्डु-कँवला" नामक शिला रूपावर्ण की, नैऋत्य (दक्षिण पश्चिम के मध्य) में 'रक्ता' नामक शिला ताये स्वर्णवर्ण की, और वायव्य (पश्चिम उत्तर के मध्य) में 'रक्तकँवला' नामक शिला रक्तवर्ण की, यह चार 'अर्द्धचन्द्राकार' शिलाएँ प्रत्येक १०० योजन लम्बी (१०० योजन व्यास का), बीच में ५० योजन चौड़ी, और ८ योजन मोटी हैं। इन में से प्रत्येक पर तीन तीन गोलाकार पूर्व-मुख सिंहासन हैं, जिन में से मध्य का तीर्थंकर देव सम्बन्धी, इसके दक्षिण दिशा का सौधर्मेन्द्र सम्बन्धी और उत्तर दिशा का ईशानेन्द्र सम्बन्धी है। प्रत्येक आसन की ऊंचाई ५०० धनुष (१००० गज़), तलव्यास ५०० धनुष और मुखव्यास २५० धनुष है॥

उपर्युक्त 'पाण्डुक' आदि चारों शिलाओं पर 'धातुकीखंड' महाद्वीप के पश्चिमीय भाग के भरत,* पश्चिमविदेह, ऐरावत, और पूर्वविदेह-क्षेत्रों में जन्मे तीर्थंकरों का क्रम से जन्माभिषेक होता है, अर्थात् 'पाण्डुक' शिला पर भरतक्षेत्र

के, 'पाण्डुक-कँवला' शिला पर पश्चिम विदेहक्षेत्र के, 'रक्ता' शिला पर ऐरावतक्षेत्र के और 'रक्त-कँवला' शिला पर पूर्व विदेह-क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक होता है॥

नोट १.—अढ़ाईद्वीप में (१) सुदर्शन (२) विजय (३) अचल (४) मन्दर (५) विद्युत्-माली (विद्युन्माली), यह पाँच मेरु हैं। इन में से पहिला १०००० (एक लाख) योजन ऊंचा 'जम्बूद्वीप' में है, दूसरा और तीसरा प्रत्येक ८५ हज़ार योजन ऊँचा 'धातुकी-खंड' द्वीप में क्रम से पूर्वभाग और पश्चिम-भाग में हैं, और चौथा, पांचवां भी प्रत्येक ८५ सहस्र योजन ऊंचा 'पुष्करार्द्धद्वीप' में क्रम से पूर्वभाग और पश्चिमभाग में हैं। प्रत्येक की यह उपर्युक्त ऊंचाई मूलभाग सहित है।

नोट २.—पांचों मेरुओं की मूल की गहराई १०००योजन, भद्रशाल बन की ऊंचाई ५०० योजन, शेष नन्दन आदि तीनों बनों की चौड़ाई क्रम से ५००, ५००, ४६४ योजन, चोटी का व्यास १००० योजन और चूलिका का तलव्यास १२ योजन, मुखव्यास ४ योजन और ऊंचाई ४० योजन, तथा पाण्डुक आदि शिलाओं सम्बन्धी रचना आदि जो ऊपर अचल मेरु की बतलाई गई हैं वही शेष चारों मेरुओं की हैं। शेष बातों में प्रथम 'सुदर्शन-मेरु' से तो अन्तर है। परन्तु अन्य तीन से प्रायः कोई अन्तर नहीं है, अर्थात् छोटे चारों मेरुओं की सर्व रचना प्रायः समान है॥

(देखो शब्द 'पञ्चमेरु' और 'अढ़ाईद्वीप')

(३) वर्तमान अवसर्पिणीकाल के गत चतुर्थकाल में हुए २४ तीर्थङ्करों में प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव के ८४ गणधरों में से एक गणधर का नाम; ९ बलभद्रों में से द्वितीय बलभद्र का नाम; अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के ११ गण-धरों में से नवें गणधर का नाम; ११ रुद्रों में से छटे रुद्र का नाम; शौर्यपुर के राजा अन्धकवृष्णि के समुद्रविजय आदि १० पुत्रों में से छोटे पुत्र का नाम जो श्री नेम-नाथ तीर्थङ्कर का एक चचा और श्रीकृष्ण का एक ताऊ था; इसी अचल के ७ पुत्रों में से एक पुत्र का नाम भी अचल ही था जो श्री नेमनाथ का चचेरा भाई था; आ-गामी उत्सर्पिणीकाल के तृतीय भाग में होने वाले ९ नारायण पदवीधारक पुरुषों में से पञ्चम का नाम; श्री मल्लिनाथ तीर्थं-कर के पूर्वभव (महाबल) का एक मित्र॥

नोट ३.—इन सर्व प्रसिद्ध पुरुषों का चरित्रादि जानने के लिये देखो 'बृहत्विश्व-चरितार्णव' नामक ग्रन्थ॥

(४) मल्लिनाथ के पूर्वभव का एक मित्र; १० दशार्हों में से छटा दशार्ह; अन्तगड्सूत्र के दूसरे वर्ग के ५वें अध्याय का नाम (अ. मा.)॥

अचलकीर्ति—एक भट्टारक का नाम जिन्हों ने हिन्दी भाषा में "विषापहार स्तोत्र" को छन्दोबद्ध किया॥

अचलगढ़—यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान सिरोही राज्य में है जहां पहुँचने के लिये अजमेर से दक्षिण-पश्चिमीय कोण को 'मा-रवाड़' जङ्क्शन होते हुए या अहमदाबाद से उत्तर-पूर्वीय कोण को महसाना जङ्क्शन होते हुए "आबू-रोड" स्टेशन पर पहुँच कर इसी स्टेशन से "दैलवाड़ा-आबू" की पहाड़ी तक २० मील पक्की सड़क जाती है जहां से अचलगढ़ पहुँचने के लिये केवल

४ मील का पहाड़ी रास्ता है । यहां गढ़ के नीचे एक तालाब, एक मैदान और कई हिन्दुओं के शिवमन्दिर हैं। तालाब के किनारे पर एक दर्शनीय गऊ की मूर्त्ति है । राह में एक स्वेताम्बरी जैन मंदिर है। यहाँ से अर्द्ध मील की चढ़ाई पर "अचलगढ़" नामक ग्राम है जिसमें दो स्वेताम्बरी धर्मशाला और इन धर्मशालाओं में ३ जैन मंदिर देखने ही योग्य हैं। इन में से एक तो अत्यन्त विस्तृत और विशाल है जिस में बहुत बड़ी बड़ी १४ स्वेताम्बरी प्रतिमायें १४४४ मन स्वर्ण की बड़ी मनोहर हैं। इस मन्दिर के नीचे दूसरा मन्दिर है जिसमें २४ देहरी हैं। इन मन्दिरों और उन की प्रतिमाओं का निर्माण गुजरात देश निवासी एक "भेपा शाह" नामक प्रसिद्ध धनकुवेर ने कराया था जिसका बनवाया हुआ 'दैलवाड़ाआबू-पहाड़ी' पर १८ करोड़ रुपयों की लागत का एक विशाल दर्शनीय जैन मन्दिर है जिसमें चहुँ ओर २४ बड़ी बड़ी और २८ छोटी देहरी एक से एक बढ़िया और मनोहारिणी तथा मंदिर के सामहने की ओर पाषाण के सिंह, हस्ती, घोटक आदि सर्व देखने ही योग्य हैं यह मन्दिर अपनी रचना और शिल्पकला आदि के लिये इतना लोक-प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष से बाहर के दूर दूर देशों के यात्री भी इसे देखने आते और इसकी प्राचीन अद्भुत रचना को देख कर चकित हो जाते हैं ॥

नोट.—किसी किसी लेख से ऐसा जाना जाता है कि दैलवाड़ा आबू पहाड़ी पर के जगत प्रसिद्ध जैन मन्दिर को गुजरात देश निवासी पोरवाल जाति भूषण "वस्तुपाल" और "तेजपाल", इन दो भाइयों ने 'तेजपाल' की धर्मपत्नी 'अनुपमादेवी' की इच्छा से चालुक्य वंशीय राज्य के अन्त होने पर 'वीरधवल वाघेला' के राज्य कालमें सन् १२५० ई० के लगभग निर्माण कराया था। इसी आबू पहाड़ी के मन्दिरों में से एक मन्दिर पोरवाल जातिरत्न 'विमलशाह' ने भी 'भीमदेव' के शासन काल में सन् १०३१ ई० में 'श्रीआदिनाथ' प्रथम तीर्थंकर का बनवाया था ॥

अचलग्राम—प्राचीन समय के एक प्रसिद्ध ग्राम का नाम जिस के निवासी एक प्रसिद्ध श्रेष्ठी (सेठ) की पुत्री "वनमाला" और राजपुत्री 'मित्रश्री' श्रीकृष्ण के पिता 'श्री वसुदेव' को विवाही गई थीं ॥

अचलद्रव्य—षट द्रव्यों में से एक रूपी द्रव्य पुद्गलको छोड़ कर शेष पांचों अरूपी द्रव्य अर्थात् (१) शुद्ध जीव द्रव्य (२) धर्मद्रव्य (३) अधर्म द्रव्य (४) आकाश द्रव्य (५) कालद्रव्य अचल हैं। इन के प्रदेश सदैव स्थिर हैं। जीव द्रव्य जब तक कार्मण आदि पौद्गलिक शरीरों के बन्धन में फँस रहा है तब तक यह भी रूपी है और इसीलिये विग्रहगति में इस के प्रदेश चल हैं, चौथवें अयोग गुणस्थान में (केवलि समुद्घात के काल को छोड़कर) अचल हैं और शेष अवस्थाओं में चलाचल हैं ॥

अचलपद—मोक्षपद, अक्षयपद, अभयपद, अविनाशीपद, शुद्धात्मपद, निकल परमात्म पद निर्वाणपद, सिद्धपद, पञ्चमगति, अष्टमधराप्राप्ति ॥ (देखो शब्द 'अक्षयपद')

अचलपुर—ब्रह्मद्वीप के पास के आभीर देश का एक नगर, जिसमें रैवती नक्षत्राचार्य के शिष्यों ने दीक्षा ली थी। (अ० मा०) ॥

अचलभ्राता—श्री महावीर तीर्थङ्कर के ११ गणधरों में से धवल नामक ९वें गणधर का द्वितीय नाम। [पीछे देखो शब्द अकम्पन (६) का नोट २]॥

अचलमेरु—देखो शब्द "अचल (२)" ॥

अचलस्तोक—वर्तमान अवसर्पिणी काल के गत चतुर्थ विभाग में हुए ९ बलभद्रों में से दूसरे का नाम ॥

[देखो शब्द "अचल (३)"]

अचला—शक्रेन्द्र की ७ वीं अग्र-महिषी (अ० मा०)॥

अचलावती (अचला)—एक व्यन्तरी देवी का नाम जिसका निवास स्थान जम्बूद्वीप के मध्य सुदर्शन मेरु के नैऋत्य कोण के 'विद्युत्प्रभ' नामक गजदन्त पर्वत के एक शिखर (स्वस्तिक नामक कूट) पर है ॥

अचलितकर्म—वह कर्म जिसका उदय न हुआ हो (अ० मा०, अचलियकम्म)॥

अचाम्ल (आचाम्ल)—अल्पाहार, तक्र (छाछ), भात मिला हुआ अनपका कांजी रस, अर्थात् पके चावलों से निकला हुआ पतला मांड जो फिर पका कर गाढ़ा न किया गया हो उस में मिलाये हुए पके चाँवल। इमली-रस मिला भात या भात का मांड ॥

अचाम्लतप (आचाम्लवर्द्धनतप)—सर्वतोभद्र, बसन्तभद्र, महासर्वतोभद्र, त्रिविध-सिंहनिष्क्रीड़ित, त्रिविध-शातकुम्भ, मेरु-पंक्ति (मन्दर पंक्ति), विमान पंक्ति, नन्दीश्वर पंक्ति, दिव्य-लक्षण-पंक्ति, जिनगुण-सम्पत्ति, श्रुतज्ञान-सम्पत्ति, एकावली, द्विकावली, रत्नावली, महारत्नावली, कनकावली, मुक्तावली, रत्नमुक्तावली, मृदङ्गमध्य, वज्रमध्य, मुरजमध्य, कर्मक्षपण, त्रैलोक्य-सार, चान्द्रायण, सप्तसप्तम कवल, सौवीर भुक्ति, दर्शनशुद्धि, तपःशुद्धि, चारित्रशुद्धि, पञ्चकल्याणक, शीलकल्याण, पञ्चविंशति-भावना, पञ्चविंशतिकल्याण-भावना, दुःख हरण, धर्मचक्र, परस्पर कल्याण (परम कल्याण), परिनिर्वाण, सूर्यप्रभ, चंद्रप्रभ, कुमारसम्भव, सुकुमार, इत्यादि अनेक प्रकार तपोविधियों में से एक प्रकार की तपो विधि का नाम 'आचाम्ल वर्द्धन तप' है। इसे 'सौवीर भुक्ति' भी कहते हैं। इस की विधि निम्न प्रकार है:—

पहिले एक षष्ठक और एक चतुर्थक अर्थात् एक बेला और एक उपवास निर्विकृत आहार पूर्वक करे जिनमें ६ दिवस लगेंगे। पश्चात् सातवें दिन इमली या अन्य कोई शुद्ध अचित अम्ल (तुर्श, खट्टा) पदार्थ युक्त भात या केवल भात का एक ग्रास अथवा भात से निकला हुआ माँड या तक्र का एक घूंट ले। अगले दिन दो ग्रास या दो घूंट ले। इसी प्रकार एक एक ग्रास या घूंट प्रति दिन बढ़ा कर १० ग्रास या १० घूंट तक १० दिन में बढ़ावे। फिर १७ वें दिन से एक एक ग्रास या घूंट प्रति दिन घटा कर दश ही दिन में एक ग्रास या घूंट पर आजाय। तत्पश्चात् २७ वें दिन निर्विकृत अल्पाहार से एकाशन कर के एक उपवास और एक बेला या तेला करे। इस प्रकार यह आचाम्ल-व्रत (आचाम्ल वर्द्धनतप) ३३ या ३४ दिन में पूर्ण हो जाता है ॥

नोट१—विकृत रहित आहारको 'निर्विकृताहार' कहते हैं। जो जिह्वा(जीभ)और मन में विकार या चटोरपन या जिह्वा लम्पटता आदि अवगुण उत्पन्न करे उसे 'विकृत' कहते हैं। ऐसा विकृत भोजन ५ प्रकार का होता है—(१) गोरस (२)इक्षुरस (३) फलरस (४) धान्य रस और (५) सर्व प्रकारके चटपटे मसालेदार या कामोद्दीपक या अति स्वादिष्ट संयोगिक पदार्थ॥

नोट २—मध्यान्ह (दुपहर) से कुछ देर पश्चात् शुद्ध अल्पाहार केवल एक बार ग्रहण करने को 'एकाशन' कहते हैं। पहिले और पिछले दिन 'एकाशन' और मध्य के एक दिन निराहार (निर्जल) रहने को एकोपवास कहते हैं। इसी का नाम 'चतुर्थक' भी है, क्यों कि इस व्रत में पूरे ३ दिन रात्रि में ६ बार के स्थान केवल दो बार भोजन ग्रहण किया जाने से चार बार के भोजन का त्याग हो जाता है। इसी प्रकार दो दिन निराहार (निर्जल) रहने और पूर्व व उत्तर दिवसों में एक एक दिन एकाशना करनेको 'बेला'(छट्ठला) कहते हैं जिस में पूर्वोक्त रीति से छह बार का आहार त्याग हो जाने के कारण उसे 'षष्ठक' भी कहते हैं। ऐसे ही तीन दिन निराहार और पूर्वोत्तर दिन एक एक 'एकाशन' करने को तेला' (त्रेला) या 'अष्टम' कहते हैं॥

अचित—चितरहित अर्थात् चैतन्य या चेतना या जीव प्रदेश रहित, निर्जीव, प्राशुक॥

अचित-उष्ण-विवृत
अचित-उष्ण-संवृत
अचित-उष्ण-संवृतविवृत
} देखोशब्द "अचित-योनि"

अचितक्रीत—दाम पास न होने के कारण घी, दुग्ध, गुड़, शक्कर, वस्त्र, भाजन, भूषण, आदि कोई अचित द्रव्य बेचकर या बदले में देकर मोल लिया हुआ कोई पदार्थ।

अचितक्रीतदोष (अचितद्रव्य क्रीत-दोष).—मुनियों के आहार या वसतिका (वस्तव्य स्थान, वसने योग्य या ठहरने योग्य कोई मकान) सम्बन्धी १६ प्रकार के "उद्गम दोषों" में से एक "क्रीत"नामक दोष का एक भेद जो अचित क्रीत सामग्री से बना हुआ आहार या वसतिका ग्रहण करने से किसी निर्ग्रन्थ साधुको लगता है।

नोट—१६ प्रकार के उद्गम दोष यह हैं—(१) औद्देशिक, (२) अध्यधि (३) पूति (४) मिश्र (५) स्थापित (६) बलि (७) प्रावर्तित (प्राभृतक) (८) प्राविष्करण (प्रादुष्कार) (९) क्रीत (१०) प्रामृष्य (११) परिवर्तक (१२) अभिघट (१३) उद्भिन्न (१४) मालारोहण (१५) अच्छेद्य (१६) अनिसृष्ट (अनीषार्थ) ॥ इन १६ में से नवें "क्रीतदोष" के दो भेद द्रव्यक्रीत और भावक्रीत हैं जिन में से 'द्रव्यक्रीत' दोष के भी दो भेद, सचितद्रव्यक्रीत दोष और अचितद्रव्यक्रीत दोष हैं, अर्थात् क्रीतदोष के सर्व तीन भेद (१) सचितद्रव्यक्रीत दोष या सचितक्रीत दोष (२) अचितद्रव्यक्रीत दोष या 'अचितक्रीत दोष' और (३) भावक्रीत दोष हैं। (देखो शब्द 'अङ्गारदोष' और 'अहारदोष')॥

अचितजल—जो जल छान कर इतना गर्म (उष्ण) कर लिया गया हो कि उस में चावल गल जाय या जिस में लवँग, इलायची आदि कोई तिक्त अथवा कषैली वस्तु मिला दी गई हो।

सूर्य्य की किरणों से आतापित या तीव्र वायु या पाषाण आदि से ताड़ित नदी, सरोवर, वापिका आदि का जल भी किसी किसी आचार्य की सम्मति में 'अचित' है ॥

अचितद्रव्य—वह द्रव्य जिस में उस द्रव्य का स्वामी चैतन्य या अधिष्ठाता जीवात्मा या उस में व्यापक रहने वाला कोई जीव न हो, अर्थात् वह द्रव्य जो किसी विद्यमान जीवद्रव्य का पौद्गलिक शरीर न हो और जिस में कोई सजीव स्थावर शरीर (सप्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित) अथवा सजीव या निर्जीव त्रसशरीर भी विद्यमान न हो। ऐसे अचितद्रव्य ही को 'प्रासुक-द्रव्य' भी कहते हैं ॥

नोट १.—जिस अन्न के दाने में या किसी फल के बीज में चाहे वह सूखा हो या हरा हो जब तक पृथ्वी आदि में बोने से उपजने की शक्ति विद्यमान है तब तक वह दाना या बीज या गुठली 'सचित' है। और जब अति जीर्ण होने, अग्नि में भूनने, पकाने या टूक टूक करदेने आदि से उस की वह शक्ति नष्ट हो जाय तब वह 'अचित' है। किसी पूर्ण पके फल का गूदा अचित है परन्तु कच्चे फल का गूदा तथा कच्चाजल, सर्व कन्द, मूल, फल, पत्र, शाक, आदि सचित हैं जो मिर्च, खटाई, लवँग, इलायची या किसी अन्य तिक्त या कषायले पदार्थ के मिला देने से या अग्नि पर पका लेने से या सुखा लेने से अचित हो जाते हैं ॥

नोट २.—विशेष जानने के लिये देखो शब्द 'अभक्ष्य' और 'सचित्तत्याग प्रतिमा' ॥

अचितद्रव्यपूजा—पूजाके षट भेदों अर्थात् नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में से 'द्रव्यपूजा' का एक भेद। श्री अरहन्तदेव के साक्षात् परमौदारिक, दिव्य, निर्विकार, वीतराग मुद्रायुक्त 'शरीर' का तथा 'द्रव्यश्रुत' (जिनवाणी या जिनवाणी गुंथित ग्रन्थ अथवा अक्षरात्मक या 'शब्द जन्य श्रुतज्ञान') का जल चन्दनादि अष्ट द्रव्यों में से किसी एक या अधिक सचित या अचित या उभय शुद्ध द्रव्यों से पूजन करना 'अचित द्रव्यपूजा' है ॥

नोट १.—प्रकारान्तर से 'अचित द्रव्य पूजा' में दो विकल्प हैं—१. अचित 'द्रव्य पूजा' अर्थात् द्रव्यपूजा के तीन भेदों (१) अचित (२) सचित और (३) सचिताचित या मिश्र, इन में से प्रथम भेद जिस का स्वरूप उपर्युक्त है ॥

२. 'अचितद्रव्य' पूजा जिसके दो अर्थ हैं.—(१) अचितद्रव्य की पूजा और (२) अचितद्रव्य से पूजा ॥

प्रथम अर्थ ग्रहण करने से इस में तीन विकल्प उत्पन्न होते हैं—(१) अचितद्रव्य की पूजा अक्षतादि अचितद्रव्य से (२) अचितद्रव्य की पूजा पुष्प फल आदि सचितद्रव्य से (३) अचितद्रव्य की पूजा पक्के फल या अक्षत पुष्पादि सम्मिलित मिश्रद्रव्य से। इनमें से प्रत्येक विकल्प के पूज्य द्रव्य के भेद से निम्न लिखित ४ भेद हैं:—

१. मुक्तिगमन अर्थात् निर्वाणप्राप्ति पीछे अरहन्त के शेष निर्जीव शरीर (अचित शरीर) की पूजा। २. अर्हन्तादि पञ्चपरमेष्ठी की सद्भावस्थापना पूजा अर्थात् उनकी वीतराग मुद्रायुक्त अचितधातु या पाषाण की तदाकार प्रतिमा में उन की कल्पना कर उनकी पूजा करना। ३. अर्हन्तादि पञ्चपर-

मेष्ठी की या षोड़श-कारण-भावना, दश-लक्षणधर्म, रत्नत्रयधर्म, इत्यादि की असद्भाव स्थापना पूजा अर्थात् अचित कमलगट्टा, सूखे पुष्प, अक्षत आदि अतदाकार पवित्र अचित पदार्थों में उनकी कल्पना कर उनका पूजन करना। ४. द्रव्यश्रुत या जिनवाणी प्रतिपादित ग्रन्थों का पूजन ॥

'अचितद्रव्य पूजा' का द्वितीय अर्थ 'अचितद्रव्य से पूजा' ग्रहण करने से इस में भी तीन विकल्प उत्पन्न होते हैं—(१) अचितद्रव्य से पूजा उपर्युक्त अर्हन्त शरीरादि में से किसी अचितद्रव्य की (२) अचितद्रव्य से पूजा सचितद्रव्य अर्थात् 'साक्षात' अर्हन्तादि (सिद्धों के अतिरिक्त) ४ परमेष्ठी की अथवा सचित पुष्पादि द्वारा असद्भाव स्थापना से परोक्षरूप पूजा पञ्चपरमेष्ठी आदि की (३) अचित द्रव्य से पूजा मिश्रद्रव्य अर्थात् अष्ट प्रातिहार्य आदि युक्त साक्षात अरहन्त देव की अथवा द्रव्य श्रुत या पीछी कमंडल उपकरणयुक्त आचार्यादि की ॥

इन में से प्रत्येक विकल्प के भी पूजन की अचित सामग्री के भेदों से—(१) अचित जल से पूजा (२) अचित चंदन से पूजा (३) अचित तन्दुल से पूजा, इत्यादि—कई विकल्प हो सकते हैं ॥

नोट २.—मनुष्य शरीरों में केवल श्री-अर्हन्त देव (केवली भगवान) के शरीर में निगोद राशि नहीं होती और न उसमें किसी समय त्रस जीव ही पड़ते हैं। इसी लिये उन का औदारिक शरीर 'परमौदारिक अप्रतिष्ठत प्रत्येक' होता है। अतः निर्वाण प्राप्ति पश्चात् वह परम पवित्र अचित है। परन्तु शेष सर्व मनुष्य-शरीर छद्मस्थ (असर्वज्ञ या अल्पज्ञ) अवस्था में निगोद राशि सहित 'सप्रतिष्ठत प्रत्येक' होते हैं जिन में (तीर्थङ्कर शरीर के अतिरिक्त शेष में) त्रस जीव भी आश्रय पाते हैं।

(देखो शब्द 'अष्ट स्थाननिगोद रहित')

नोट ३—पूजन के सम्बन्ध में विशेष बातें जानने के लिये देखो शब्द 'अर्चन' ॥

अचितपरिग्रह—परिग्रह के मूल दो भेदों (१) अन्तरङ्ग या अभ्यन्तर परिग्रह और (२) बाह्यपरिग्रह में से "बाह्यपरिग्रह' के जो तीन विकल्प हैं अर्थात् (१) अचित-परिग्रह (२) सचितपरिग्रह और (३) मिश्र-परिग्रह, इनमें से रुपया पैसा, सोना चांदी, वर्तन वस्त्र, आदि 'अचितपरिग्रह' हैं। देखो शब्द 'परिग्रह' ॥

अचितफल—पीछे देखो शब्द 'अचित-द्रव्य' और उसका नोट ॥

अचितयोनि—आत्मप्रदेश रहित योनि। गुणयोनि के मूल तीन भेदों में से एक भेद ॥

इस के गुण अपेक्षा निम्न लिखित छह भेद हैं:—

(१) अचित-शीत-संवृत योनि—वह अचित योनि जो शीतगुण युक्त ढकी हुई हो। जैसे कुछ देव और नारकियों की तथा कुछ एकेन्द्रिय जीवों की योनियां ॥

(२) अचित-शीत-विवृत योनि—वह अचित योनि जो शीतगुण युक्त खुली हुई हो। जैसे कुछ विकलत्रय और सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रिय जीवों की योनियां ॥

(३) अचित-उष्ण-संवृत योनि—वह अचित योनि जो उष्ण गुणयुक्त ढकी हुई हो।

जैसे कुछ देव और नारकियों की तथा कुछ एकेन्द्रिय जीवों की योनियां ॥

(४) अचित्त-उष्ण-विवृत योनि—वह अचित्त योनि जो उष्णगुण युक्त खुली हुई हो। जैसे कुछ विकलत्रय और सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रिय जीवों की योनियां ॥

(५) अचित्त-शीतोष्ण-संवृत योनि—वह अचित्त योनि जो शीतोष्ण मिश्रगुण युक्त ढकी हुई हो । जैसे कुछ एकेन्द्रिय जीवों की योनियां ॥

(६) अचित्त-शीतोष्ण-विवृत योनि—वह अचित्त योनि जो शीतोष्ण मिश्रगुण युक्त खुली हुई हो। जैसे कुछ विकलत्रय और सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रिय जीवों की योनियां ॥

नोट१—पैदा होने या उपजने के स्थान विशेष को 'योनि' कहते हैं जिस के मूल भेद दो हैं:—

(१) आकार योनि और (२) गुणयोनि।

योनि के आकार अपेक्षा तीन भेद हैं—

(१) शंखावर्त्त-जिस के भीतर शङ्ख की समान चक्र हों।

(२) कूर्मोन्नत—जो कछवे की पीठ समान उठी हुई हो।

(३) वंशपत्र—जो बांस के पत्र की समान लम्बी हो ॥

इन में से प्रथम प्रकार की योनि में नियम से गर्भ नहीं रहता और यदि रहता भी है तो नष्ट हो जाता है। दूसरी में तीर्थङ्करादि पदवी धारक महान पुरुष तथा साधारण पुरुष भी उत्पन्न होते हैं और तीसरी में तीर्थङ्करादि महान पुरुष जन्म नहीं लेते, साधारण मनुष्यादि जन्म लेते हैं ॥

योनि के गुण अपेक्षा भी मूल भेद तीन ही हैं—(१) अचित्त (२) सचित्त और (३) सचित्ताचित्त मिश्र । इन में से प्रत्येक के (१) शीत (२) उष्ण और (३) शीतोष्ण मिश्र, यह तीन तीन भेद होने से योनि के नौ भेद हैं। इन नव में से (१) सचित्ताचित्त-शीत (२) सचित्ताचित्त-उष्ण और (३) सचित्ताचित्त-शीतोष्ण, इन तीन में से प्रत्येक के (१) संवृत (२) विवृत और (३) संवृत-विवृतमिश्र, यह तीन तीन भेद हैं और शेष ६ में से प्रत्येक के (१) संवृत और (२) विवृत, केवल यह दो ही भेद हैं जिस से योनि के सर्व भेद गुण अपेक्षा २१ हो जाते हैं जिन के अलग अलग नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) अचित्त-शीत-संवृत (२) अचित्त शीत-विवृत (३) अचित्त-उष्ण-संवृत (४) अचित्त-उष्ण-विवृत (५) अचित्त-शीतोष्णसंवृत (६) अचित्त-शीतोष्ण-विवृत (७) सचित्त-शीत-संवृत (८) सचित्त-शीत-विवृत (९) सचित्त-उष्ण-संवृत (१०) सचित्त-उष्णविवृत (११) सचित्त-शीतोष्ण-संवृत (१२) सचित्त-शीतोष्ण-विवृत (१३) सचित्ताचित्त-शीत-संवृत (१४) सचित्ताचित्त-शीत-विवृत (१५) सचित्ताचित्त-शीत-संवृत-विवृत (१६) सचित्ताचित्त उष्ण-संवृत (१७) सचित्ताचित्त-उष्ण-विवृत (१८) सचित्ताचित्त-उष्ण-संवृतविवृत (१९) सचित्ताचित्त-शीतोष्ण-संवृत (२०) सचित्ताचित्त-शीतोष्ण-विवृत (२१) सचित्ताचित्त-शीतोष्ण-संवृत विवृत ॥

गुणअपेक्षा योनिके इन २१ भेदों में से प्रथम के ६ भेद "अचित्तयोनि" के हैं। इन से अगले ६ भेद "सचित्तयोनि" के हैं और शेष ९ भेद सचित्ताचित्त मिश्र योनि के हैं॥

योनि के इन २१ भेदों को उपर्युक्त

आकारापेक्षित तीन भेदों अर्थात् शंखावर्त, कूर्मोन्नत और वंशपत्र में से प्रत्येक पर और गर्भज, उत्पादज, सम्मूर्च्छन, इन तीन प्रकार के जन्मों में से प्रत्येक पर तथा सर्व संसारी जीवों में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि के अनेक जाति भेदों पर यथासम्भव लगाने से सर्व योनियों के विशेष भेद ८४ लक्ष हो जाते हैं जिन का विवरण "योनि" शब्द के साथ यथास्थान मिलेगा ॥

(गो० जी० गा० ८१—८८)

नोट २.—उत्पाद जन्म वाले सर्व जीवों की, अर्थात् सर्व देव गति और नरक गति में उत्पन्न होने वालों की और कुछ सम्मूर्च्छन जीवों की "अचित्तयोनि" होती है। गर्भज जीवों में (जिनके पोतज, जरायुज या जेलज, और अण्डज, यह तीन भेद होते हैं) "अचित-योनि" किसी की भी नहीं होती ॥

योनि के उपर्युक्त २१ भेदों में से (१) अचित्त-शीत-संवृत और (२) अचित्त-उष्ण-संवृत, केवल यह दो ही भेद उत्पाद जन्म वालों के—देव और नारकियों के—होते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म वाले एकेन्द्रिय जीवों की योनि उपर्युक्त २१ भेदों में से १,३,५,७,९,११ १३, १६, १९ इन संख्या वाले केवल नव भेदों की और शेष द्वीन्द्रियादि की योनि २,४,६, ८,१०,१२, १४,१७,२०, इन संख्या वाले केवल नव ही भेदों की होती है। और गर्भज जीवों की योनि उपर्युक्त २१ भेदों में से १५,१८,२१ इन संख्या वाले, अर्थात् (१) सचित्ताचित्त-शीत-संवृतविवृत (२) सचित्ताचित्त उष्ण-संवृत विवृत और (३) सचित्ता-चित्त शीतोष्ण-संवृत विवृत केवल इन तीन ही भेदों की होती है ॥

(गो०जी० ८५—८७)

अचित-शीत-विवृत
अचित-शीत-संवृत
अचित-शीतोष्ण-विवृत
अचित-शीतोष्ण-संवृत
} देखो शब्द "अचित-योनि" ॥

अचिरा (अइरा, ऐरा)—१६वें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ की माता का नाम (देखो शब्द 'अइरा' और 'ऐरा')। (अ. मा.) ॥

अचेतन—चेतनारहित पदार्थ, अजीव या जड़ पदार्थ। षट द्रव्यों में से एक जीवद्रव्य को छोड़ कर अन्य पाँचों द्रव्य अर्थात् पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य' अचेतनद्रव्य' हैं ॥

अचेल—(१) चेलरहित अर्थात् वस्त्ररहित, वस्त्रत्यागी ॥

(२) अल्प वस्त्रधारी (अ. मा.) ॥

अचेलक—(१) विजयार्द्ध पर्वत पर के एक नगर का नाम जिसका स्वामी 'अमितवेग' नामक राजा था। इसी राजा की पुत्री 'मणिमती' ने लङ्कानरेश 'रावण' द्वारा अपनी १२ वर्ष में सिद्ध की हुई विद्या हरण किये जाने से निदान बन्ध युक्त शरीर त्याग करके 'रावण' की पटराणी 'मन्दोदरी' के उदर से जन्म लिया और मिथिलानरेश 'जनक' की रानी 'विदेहा' की पुत्री 'सीता' नाम से प्रसिद्ध होकर और श्री 'रामचन्द्र' की स्वयम्वर द्वारा विवाही जाकर अन्त में रावण के नाश का कारण हुई ॥

(उ० पु० पर्व ६८, श्लोक १३—२७) ॥

(२) वस्त्ररहित या कुत्सित-अल्पमूल्य के वस्त्र वाला (अ. मा. अचेलअ) ॥

(३) वस्त्र न रखने का या श्वेत मानोपेत अल्पवस्त्र रखने का आचार; प्रथम

और अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं का आचार (अ. मा. अचेलग)॥

अचेलकव्रत—सर्व प्रकार के वस्त्र त्याग देने का व्रत । दिगम्बर मुनियों के २८ मूलगुणों में से एक गुण का नाम 'आचेलक्य' है। इस 'आचेलक्य' नामक मूलगुण को धारण करने का नाम ही 'अचेलक व्रत' है ॥

नोट.—२८ मूलगुण आदि का विवरण जानने के लिये देखो शब्द 'अनगारधर्म' ॥

अचेलक्य (आचेलक्य)—अचेलकपना, वस्त्रत्याग, दिगम्बरत्व ॥

अचौर्य—चोरीत्याग, चोरीवर्जितकर्म, अदत्तग्रहणत्याग, स्तेयत्याग; प्रमत्त-योग पूर्वक अर्थात् लोभादि कषाय वश या इन्द्रियविषय-लम्पटतावश बिना दी हुई किसी की वस्तु को ग्रहण करना 'स्तेय' या 'चोरी' है । इसके आठ भेद हैं—(१) ग्राम (२) अरण्य (३) खलियान (४) एकान्त (५) अन्यत्र (६) उपधि (७) अमुक्तक (८) पृष्ठग्रहण, इन आठों प्रकार की चोरी का त्याग 'अचौर्य' है ॥

(हरि० पु० सर्ग ३४, श्लोक१०३) ।

अचौर्य-अणुव्रत (अचौर्याणुव्रत)—गृहस्थधर्म सम्बन्धी ५ अणुव्रतों ('अनुव्रतों' अर्थात् महाव्रत या पूर्णव्रत के सहायक या अनुवर्ती व्रतों) में से तीसरे अणुव्रत का नाम जिसमें स्थूल चोरी का त्याग किया जाता है। इसी के नाम 'अदत्तादानविरति' या 'अदत्तादानविरमण' या 'अदत्तग्रहणत्यागाणुव्रत' या 'स्तेयत्यागाणुव्रत' या 'अस्तेयाणुव्रत' भी कहते हैं ।

(आगे देखो शब्द 'अणुव्रत')॥

इस व्रत को धारण करने वाला मनुष्य किसी अन्य प्राणी की कहीं रखी हुई, पड़ी हुई, गिरी हुई, भूली हुई, धरोहर रखी हुई, आदि किसी प्रकार की कोई वस्तु लोभादि कषायवश नहीं ग्रहण करता, न किसी से ग्रहण कराता है और न उठा कर किसी को देता, न उठवाकर किसी को दिलवाता है । किसी वस्तु को उस के स्वामी की आज्ञा बिना उस के सन्मुख भी न बलात् लेता, न किसी से छिनाता ही है और न उठा कर किसी अन्य को देता, न दिलाता ही है। इस व्रत को धारण करने वाला मनुष्य कोई ऐसी वस्तु जिस का कोई स्वामी न हो या कोई ऐसी वस्तु भी जिस के विषय में यह सन्देह हो कि यह मेरी है या किसी अन्य की है न स्वयम् ग्रहण करता, न अन्य किसी से ग्रहण करने को कहता ही है ॥

अचौर्याणुव्रती गृहस्थ किसी कूप, सरोवर आदि जलाशय का जल, खान की मिट्टी, घास, वृक्ष, फल आदि ऐसा कोई पदार्थ जिसे उस के स्वामी राजा आदि ने सर्व साधारण के लिये छोड़ रखा हो और जिसके लेने में किसी की कोई रोक टोक आदि न हो उसे ग्रहण कर सकता है। अथवा माता, पिता, भाई, बन्धु, आदि का वह माल जिस का दायेदार कोई अन्य मनुष्य धर्मशास्त्रानुकूल या राज्य नियमानुकूल या रीति रिवाज के अनुसार न हो, बिना दिये भी उन की मृत्यु के पश्चात् ले सकता है ॥

इस अचौर्याणुव्रत के निम्न लिखित ५ अतिचार दोष हैं जिनसे इस व्रत के पालन

करने वाले को सदैव बचना चाहिये :—

(१) चौर-प्रयोग या स्तेन-प्रयोग—किसी को चोरी करने के उपाय आदि बताना या स्वयम् सीखना या चौर्य कर्म के लिये उत्तेजना उत्पन्न कराने वाली कोई अनुमति या सहायता आदि देना या चौर कर्म के साधन या सहायक पदार्थ 'कमन्द' आदि बनाना, बेचना या मांगे देना, इत्यादि ॥

(२) चौरार्थदान या चौराहृत-ग्रह या तदाहृतादान—चोरी का माल धरोहर रखना, या मोल लेना, या किसी अनजान या भोले मनुष्यादि से लोभ आदि कषायवश बहु मूल्य की वस्तु बहुत कम मूल्य में लेना या उत्कोच(अर्थात् घूंस या रिशवत) लेना, इत्यादि ॥

(३) विरुद्धराज्यातिक्रम या विरुद्धराज्यव्यतिक्रमण—राजा की किसी आज्ञा का चोरी से उलङ्घन करना, राजस्व (राजा का नियत "कर" या महसूल) चोरी से (गुप्त रीति से) न देना या कम देना, राज भंग होने पर नीति का उलंघन करके अनुचित व्यापार करना, राजाज्ञा बिना अपने राजा के विरोधी राज्य में जाना अर्थात् शत्रु राजा के राज्य में जाना, अपने राजा के शत्रुसे गुप्त रीति से मिलना या उसे किसी प्रकार की सहायता देना, इत्यादि ॥

(४) हीनाधिक मानोन्मान या हीनाधिक मानतुला या मानोन्मानवैपरीत्य या मानव्यूनताधिक्य—तौलने नापने के बांट या गज़ आदि कम बढ़ रखना या ताखड़ी (तुला या तराज़ू) की डंडी में कान रखना या डंडी मारकर तोलना जिससे गुप्त रूपमें अपना माल कम दिया जाय और पराया माल अधिक लिया जाय ॥

(५) प्रतिरूपक व्यवहार या प्रतिरूपकव्यवहृति या कृत्रिमव्यवहार—बहु मूल्य की वस्तु में उसी की सदृश अल्प मूल्य की कोई वस्तु गुप्त रूपसे मिलाकर बहु मूल्यकी वस्तु के भाव बेचना या नक़ली वस्तु को असली या घटिया को बढ़िया बताकर बेचना, इत्यादि ॥

यह पाँचों तथा इसी प्रकार के अन्य भी ऐसे कार्य जो लोभादि वश गुप्त रीति से या बलात् करने पड़ें वे सर्व चोरी ही का रूपान्तर या उसके "अतिचार" हैं ॥

(सागार० अ०४ श्लोक ५०) ॥

नोट—किसी ग्रहण किये हुए व्रत का एक अंश भंग होना अर्थात् अन्तरङ्ग या बहिरङ्ग इन दोनों में से किसी एक रूप से भङ्ग होना "अतिचार" या "अतीचार" दोष कहलाता है जिस से उस व्रत में शिथिलता और कुछ असयंमपना आ जाते हैं। और अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोनों प्रकार से जब कोई व्रत भंग हो जाय तो वह "अनाचार" कहलाता है । "अतिचार दोष" लगने में व्रत टूटने से बचने के लिये चित्त में कुछ न कुछ भय बना रहता है परन्तु "अनाचार" में हृदय में निर्भयता आजाती है ॥

(सा. अ. ४, श्लोक १८; भ. गा. १०८६) ॥

इस "अचौर्याणुव्रत" को निर्मल रखने के लिये निम्न लिखित ५ भावनाओं को भी अवश्य ध्यान में रखना और हरदम उनके अनुकूल प्रवर्तना चाहिये :—

(१) शून्यागारवास—दुर्व्यसनी, तीव्र कषायी, भ्रष्टाचरणी मनुष्यों से शून्य स्थान में निवास करने का सदा ध्यान रखना ॥

(२) विमोचितावास—किसी अन्य मनुष्य के झगड़े टंटे से रहित स्थान में निवास

करने का सदैव विचार रखना ॥

(३) अपरोपरोधाकरण—किसी अन्य मनुष्य के स्थान में जहाँ आने की रोक टोक हो बलात् प्रवेश न करने का सदैव ध्यान रखना ॥

(४) आहार शुद्धि—न्यायोपार्जितधन से प्राप्त की हुई शुद्ध भोजन-सामग्री से बने हुए आहार को लोलुपता रहित सन्तोष सहित ग्रहण करने का सदैव ध्यान रखना।

(५) सधर्माविसंवाद—साधर्मी मनुष्यों से किसी वस्तु के सम्बन्ध में "यह मेरी है यह तेरी है" इत्यादि कहन सुनन द्वारा कोई कलह विसंवाद आदि न रख कर परस्पर कार्य निकालने का सदा विचार रखना ॥

अचौर्य-महाव्रत—मुनि धर्म सम्बन्धी ५ महाव्रतों में से तीसरा महाव्रत, तथा २८ मूलगुणों में से एक मूलगुण जिस में स्थूल और सूक्ष्म सर्व ही प्रकार की चोरी का, अर्थात् बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करने का मन, वचन और काय से कृत, कारित, अनुमोदना युक्त पूर्णतयः त्याग किया जाता है ॥

इस व्रत को धारण करने वाले मुनि, ऋषि, साधु सर्व प्रकार के परिग्रह के अर्थात् धन, धान्य, वस्त्र, कुटुम्ब आदि १० प्रकार के सर्व पदार्थों और क्रोध, मान, माया, लोभादि १४ प्रकार की सर्व कषायों के तथा निज पौद्गलिक शरीर तक से ममत्व भाव रखने के त्यागी होते हैं। अतः धर्मोपकरण और भोजन के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु दी हुई भी ग्रहण नहीं करते ॥

नोट १.—ज्ञानोपकरण "शास्त्र", संयमोपकरण "पीछी", और शौचोपकरण 'कमंडल', यह तीन उपकरण (साधन या उपकारी पदार्थ) धर्म्मोपकरण हैं ॥

नोट२.—जो स्वयम् महान हैं, जिनके ग्रहण करने से ग्रहण करने वाला व्यक्ति महान हो जाता है अथवा जिन्हें महान शक्तिवान पुन्यवान पुरुष ही धारण कर सकते हैं तथा जिन का आचरण अत्यन्त पने संसार की निवृत्ति और मोक्ष महा-पद की प्राप्ति के लिये ही किया जाय उन्हें "महाव्रत" कहते हैं ॥

इस अचौर्य महाव्रत के निम्न लिखित ५ अतिचार दोष हैं जो इस व्रत के पालक मुनियों को बचाने चाहियेः—

(१) अयाच्य—आचार्य आदि से प्रार्थना पूर्वक आज्ञा लिये बिना किसी धर्मोपकरण को ग्रहण करना या किसी अन्य साधर्मी मुनि के उपकरण को अपने काम में लाना ॥

(२) अननुज्ञापन—किसी अन्य मुनि के उपकरण को बिना उसकी अनुमति के अपने काम में लाना ॥

(३) अन्यथाभाव—धर्मोपकरणों या शिष्यादि में ममत्व भाव रखना ॥

(४) प्रति सेवा या त्यक्त सेवा—आचार्यादि की यथार्थ सेवा से मन को प्रतिकूल रखना अर्थात् सेवा से जी चुराना ॥

(५) अननुर्वीचिसेवन—अन्य किसी साधर्मी मुनि के किसी उपकरण को उस की अनुमति से लेकर योग्य रीति से काम में न लाना ॥

(मू० गा० ३३९)

इस अचौर्य-महाव्रत को निर्मल रखने के लिये निम्न लिखित ५ भावनाओं को भी

हुए इस ध्यान में रखना और तदनुकूल प्रवर्तना आवश्यक है:—

(१) शून्यागार वास—पर्वतों की गुहाओं या वृक्षों के कोटरों आदि सूने स्थानों में निर्ममत्वभाव से निवास करने की भावना रखना ॥

(२) विमोचितावास—दूसरे के छोड़े हुए स्थान में अर्थात् ऐसे आवास में निर्ममत्व भाव से निवास करने की भावना रखना जो किसी गृहस्थ ने निज कार्य के लिये बनवा कर पश्चात् अतिथियों के आकर ठहरने या धर्म साधन करने के ही लिये छोड़ दिया हो ॥

(३) अनुपरोधाकरण—अन्य मनुष्य या पशु पक्षी आदि को अपने ठहरने के स्थान में आने से या आकर ठहरने या बसने से न रोकने की भावना रखना। इस भावना के अन्य नाम "परानुपरोधा करण", "अपरोपरोधाकरण", "अन्यानुपरोधाकरण", "अन्यानुपरोधिता" भी हैं ॥

(४) भैक्ष्यशुद्धि या आहार शुद्धि—शास्त्रानुकूल आहार सम्बन्धी ४६ दोष और ३२ अन्तराय बचा कर 'भिक्षा शुद्धि' की भावना रखना ॥

(५) सधर्माविसंवाद—अन्य किसी साधर्मी मुनि के साथ उपकरणों के सम्बन्ध में "यह मेरा है यह तेरा है" इत्यादि विसंवाद न रखने की भावना रखना ॥

अचौर्यव्रत—देखो शब्द 'अचौर्य अणुव्रत' और "अचौर्य महाव्रत" ॥

अचौर्यव्रतोपवास—अचौर्यव्रत के उपवास ॥

"अचौर्यव्रत" में आठ प्रकार की चोरी में से प्रत्येक का त्याग (१) मनः कृत (२) मनः कारित (३) मनःअनुमोदित (४) वचन कृत (५) वचन कारित (६) वचन अनुमोदित (७) काय कृत (८) काय कारित (९) काय अनुमोदित, इन नव विधि से किया जाता है जिसे "नवकोटि त्याग विधि" कहते हैं. जिस से प्रत्येक प्रकार की चोरी के नव नव भेद होने से आठों प्रकार की चोरी के सर्व ७२ भेद हो जाते हैं। अतः इस व्रत को परम शुद्ध और निर्मल बनाने के लिये जो "उपवास" किये जाते हैं उनकी संख्या भी ७२ ही है। प्रत्येक उपवास से अगले दिन 'पारणा' किया जाता है। अतः पारणों की संख्या भी ७२ ही है। उपवास प्रारम्भ करने से पूर्व के दिन 'धारणा की जाती है। अतः इस अचौर्यव्रतोपवास' में लगातार सर्व १४५ दिन लगते हैं॥

नोट १.—एकोपवास, या बेला, या तेला आदि या पक्षोपवास, मासोपवास आदि व्रत पूर्ण होने पर जो भोजन किया जाता है उसे 'पारण' या 'पारणा' कहते हैं और उपवास के प्रारम्भ से पूर्व के दिन जो प्रतिज्ञा सूचक भोजन किया जाता है उसे धारणा' कहते हैं। पारणा और धारणा के दिन प्रायः 'एकाशना' ही किया जाता है॥

नोट २.—यह "अचौर्यव्रतोपवास-विधि" 'चारित्रशुद्धि विधि' के अन्तर्गत है जिस के १२३४ उपवास, १२३४ पारणा और ८ धारणा में सर्व २४७६ दिन निम्न प्रकार से लगते हैं:—

(१) अहिंसा व्रतोपवास—१२६ उपवास, १२६ पारणा, १ धारणा, सर्व २५३ दिन॥

(२) सत्य व्रतोपवास—७२ उपवास, ७२ पारणा, १ धारणा, सर्व १४५ दिन ॥

(३) अचौर्य व्रतोपवास—७२ उपवास, ७२ पारणा, १ धारणा, सर्व १४५ दिन ॥

(४) ब्रह्मचर्य व्रतोपवास—१८० उपवास, १८० पारणा, १ धारणा, सर्व ३६१ दिन ॥

(५) परिग्रहत्याग या परिग्रहपरिमाण व्रतोपवास—२१६ उपवास, २१६ पारणा, १ धारणा, सर्व ४३३ दिन ॥

(६) रात्रिभुक्तित्याग व्रतोपवास—१० उपवास, १० पारणा, १ धारणा, सर्व २१ दिन ॥

(७) त्रिगुप्ति व्रतोपवास—२७ उपवास, २७ पारणा, १ धारणा, सर्व ५५ दिन ॥

(८) पञ्चसमिति व्रतोपवास—५३१ उपवास, ५३१ पारणा, १ धारणा, सर्व १०६३ दिन ॥

इन सर्व व्रतोपवासों का विवरण उन के वाचक शब्दों में से प्रत्येक शब्द की व्याख्या में यथास्थान देखें ॥

अचौर्याणुव्रत—पीछे देखो शब्द "अचौर्य-अणुव्रत" ॥

अच्चण्ण (आच्चण्ण)—समय ई० सन् ११९५। यह कवि भरद्वाज गोत्री जैन ब्राह्मण था। इसके पिता का नाम केशवराज, माता का मल्लाम्बिका, गुरु का नन्दियोगीश्वर और ग्राम का पुरीकरनगर (पुलगिर) था। इसके पिता केशवराज ने और रेचण नाम के सैनापति ने जो कि वसुधैकबान्धव के नाम से प्रसिद्ध था वर्द्धमान पुराण नामक ग्रन्थ का प्रारम्भ किया था; परन्तु दुर्दैव से उनका शरीरान्त हो गया और तब इस ग्रन्थ को आच्चण्ण ने समाप्त किया। इस कवि की पार्श्वकवि ने अपने पार्श्वनाथपुराण में जो कि ई० सन् १२०५ में रचा गया है प्रशंसा की है। इससे स्पष्ट है कि यह ई०सन् १२०५ से पहिले होगया है और इसने अपने पूर्वकालीन कवियों की स्तुति करते समय "अग्गलकवि" की जो कि ई० सन् १०८९ में हुआ है, प्रशंसा की है, इससे यह ई० सन् १०८९ के पीछे हुआ है। इसके सिवाय रेचण नामक सेनापति राजा कलचुरि का मंत्री था और शिला लेखों से मालूम होता है कि आहवमल्ल (११८१—११८३) के और नवीन हयशाल बंश के वीर वल्लाल (११७२—१२१९) के समय में भी वह जीवित था। इससे इस कवि का समय ११९५ के लगभग निश्चित होता है। वर्द्धमान पुराण में महावीर तीर्थङ्कर का चरित है। इसमें १६ आश्वास हैं। इसकी रचना अनुप्रास यमक आदि शब्दालंकारों से युक्त और प्रौढ़ है। इस कवि का और कोई ग्रन्थ नहीं मिलता ॥

(क्र. ४१)

अच्चुतावतंसक—आगे देखो शब्द "अच्युत (२)" और "अच्युतावतंसक"

अच्छ—निर्मल, मेरु पर्वत, एक आर्य देश, स्फटिक मणि (अ. मा.) ॥

अच्छवि—काययोग को रोकने वाला स्नातक, १४ वें गुणस्थानवर्ती साधु ॥ (अ. मा.)

अच्छिद्र—छिद्र रहित; गोशाला के ६ दिशाचर साधुओं में से चौथा (अ. मा. अच्छिद्र) ॥

अच्छुप्ता—२० वें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत

नाथ की शासन देवी (अ. मा.) ॥

अच्छेद्य दोष (आछेद्य दोष)—किसी राजा आदि के भय या दबाव से दिया हुआ भोजन ग्रहण करना। मुनिव्रत सम्बन्धी अष्ट-शुद्धियों के अन्तर्गत जो "भिक्षा-शुद्धि" या "आहार शुद्धि" और "शयनासन शुद्धि" या "वसतिका शुद्धि" नामक भेद हैं उन्हें निर्दोष पालनार्थ जो ४६ दोषों से बचने का उपदेश है उन में से एक दोष का नाम 'अच्छेद्य दोष' है। यह उन ४६ दोषों के अन्तर्गत १६ 'उद्गम दोषों' में से एक प्रकार का दोष है जो साधुओं को ऐसे आहार या स्थान के जान बूझकर ग्रहण करने में लगता है जिसे किसी गृहस्थ ने राजा आदि किसी बलवान पुरुष के भय या दबाव से दिया हो।

नोट—पीछे देखो शब्द "अक्ष मृक्षण", "अङ्गार दोष" और "अचितक्रीत दोष" ॥

अच्यवन—च्युत न होना, च्युत न होने वाला, न गिरने वाला ॥

अच्यवनलब्धि—वह लब्धि या प्राप्ति जो एक बार प्राप्त होकर फिर कभी च्युत न हो; आत्मा के वह परिणाम या भाव जो प्रगट होकर फिर लुप्त न हों ॥

अग्रायणी पूर्व में जो "१४ वस्तु" नामक महा अधिकार है उस में से पांचवीं वस्तु का नाम 'अच्यवन लब्धि' है जिस में २० प्राभृत या पाहुड़ हैं। इन २० पाहुड़ों में से "कर्म प्रकृति" नामक चौथे पाहुड़ में कृति, वेदना, आदि २४ योगद्वार हैं।

(देखो शब्द 'अग्रायणीपूर्व') ॥

अच्युत—(१) च्युत न होने वाला, अमर, अचल, स्थिर ॥

(२) श्री ऋषभदेव के "भरत" आदि १०० पुत्रों में से एक का नाम ॥

(३) १६ (सोलह) स्वर्गों या कल्पों में से सोलहवें कल्प का नाम ॥

(४) सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र का नाम ॥

(५) अन्तिम चार स्वर्गों अर्थात् आनत, प्राणत, आरण, अच्युत सम्बन्धी ६ इन्द्रक विमानों में से सब से ऊपर के छटे इन्द्रक विमान का नाम जो १६ स्वर्गों के ५२ पटलों में से सर्व से ऊपर के अन्तिम पटल के मध्य में है ॥

(६) उपर्युक्त 'अच्युत' नामक इन्द्रक विमान की उत्तर दिशा के ११ (हरि० पु० १२) श्रेणीबद्ध विमानों में से मध्य के छटे (हरि० पु० चौथे) श्रेणीबद्ध विमान का नाम जिस में 'अच्युतेन्द्र' का निवास स्थान है। इसी विमान को 'अच्युतावतंसक' विमान भी कहते हैं ॥

नोट १—अच्युत स्वर्ग के निवासी देवों के मुकुट का चिन्ह 'कल्पवृक्ष' है। यहां जघन्य आयु २० सागरोपम वर्ष और उत्कृष्ट २२ सागरोपम वर्ष प्रमाण है। देवाङ्गनाओं की जघन्य आयु कुछ समयाधिक ४८ पल्योपम वर्ष की और उत्कृष्ट ५५ पल्योपम वर्ष की है। शरीर का उत्सेध (ऊंचाई) कुछ कम ३ हस्त (३ अरत्नि) प्रमाण है। अच्युत स्वर्ग सम्बन्धी सर्व विमान शुक्ल वर्ण के हैं।

(त्रि० ५३१, ५४२, ५४३)

नोट २—अच्युतेन्द्र की आज्ञा स्वर्गों के सबसे ऊपर के तीन प्रतरों या पटलों के उत्तर दिशा के सर्व श्रेणीबद्ध और वायव्य (उत्तर पश्चिम के मध्य की विदिशा) और ईशान (उत्तर पूर्व के मध्य की विदिशा) कोणों के सर्व प्रकीर्णक विमानों में प्रवर्तित है। इन तीन

प्रतरों (पटलों) के इसी उत्तरी भाग का नाम (जहां अच्युतेन्द्र की आज्ञा का प्रवर्त्तन है) 'अच्युतस्वर्ग' है जिस के प्रत्येक पटल की भूमि की मुटाई ५२७ महा योजन प्रमाण है ॥

१४ वें स्वर्ग 'प्राणत' नामक की चोटी या ध्वजा दण्ड से ऊपर असंख्यात महायोजन प्रमाण अन्तराल (रचना रहित शून्य आकाश) छोड़ कर इस स्वर्ग के प्रथम पटल की रचना का प्रारम्भ है। फिर इसी प्रकार असंख्यात असंख्यात महायोजन ऊपर ऊपर को अन्तराल छोड़ छोड़ कर दूसरे तीसरे और चौथे पटल की रचनाओं का प्रारम्भ है। इन चारों अन्तरालों सहित इस स्वर्ग की रचना अर्द्ध राजू प्रमाण ऊँचाई में है अर्थात् १४वें स्वर्ग की चोटी से इसकी चोटी तक का अन्तर अर्द्ध राजू प्रमाण है। और 'सुदर्शन-मेरु' के तल भाग या मूल की तली से इसकी चोटी या ध्वजा दंड की नोक का अन्तर छह राजू प्रमाण है ॥

इस अच्युत स्वर्ग सम्बन्धी जो उपर्युक्त ३ पटल हैं उनमें से प्रत्येक के दक्षिण भाग की रचना "आरण" नामक १५ वें स्वर्ग की है। इस "आरणाच्युत" युगल की चोटी से असंख्यात असंख्यात महायोजन का अन्तराल छोड़ छोड़ कर नव "ग्रैवेयक" विमानों के ९ पटल, नव अनुदिश विमानों का १ पटल और पञ्च अनुत्तर विमानों का भी १ पटल, एवं सर्व ११ पटल हैं। १६ स्वर्गों के उपर्युक्त ५२ पटल हैं। अतः ऊर्द्धलोक के सर्व पटलों की संख्या ६३ है। १६ स्वर्ग सम्बधी ५२ पटलों के विमानों को "कल्प विमान" और ऊपर के ग्रैवेयक आदि सम्बन्धी ११ पटलों के विमानों को "कल्पातीत विमान" कहते हैं। कल्प विमानों में सबसे ऊपर के ५२ वें पटल के मध्य के इन्द्रक विमान का नाम "अच्युत", और कल्पातीत विमानों में सब से ऊपर के ११ वें पटल के मध्य के विमान का नाम "सर्वार्थसिद्धि" है ॥

इस "सर्वार्थसिद्धि" नामक इन्द्रक विमान से केवल १२ महायोजन प्रमाण अन्तराल छोड़कर "ईषत्प्रभार या ईषत्प्राग्भार" नामक "अष्टमधरा" या अष्टम भूमि ८ महा योजन मोटी, ७ राजू लम्बी, १ राजू चौड़ी चौकोर लोक के अन्त तक है जिसके बीचों बीच इतनी ही मुटाई का, और मनुष्य क्षेत्र या अढ़ाई द्वीप समान ४५ लाख योजन प्रमाण व्यास वाला गोल ऊर्द्ध मुख उल्टे छाते के आकार का श्वेतवर्ण "सिद्धक्षेत्र" है। यह क्षेत्र ८ योजन मोटा मध्य में है। किनारों की ओर को इसकी मुटाई कम से घटती घटती अन्त में बहुत कम रह गई है। इसी क्षेत्र को "सिद्ध शिला" या "मुक्ति शिला" भी कहते हैं। इसके ऊपर इस से स्पर्श करती हुई "घनोदधिवात" अर्द्ध योजन मोटी, इसके ऊपर "घन वात" चौथाई योजन मोटी, और इसके ऊपर १५७५ महाधनुष (२ गज़ × ५०० = १००० गज़ या ५०० धनुष का १ महाधनुष) मोटी "तनुवात" है। अर्थात् एक महा योजन से कुछ कम (४२५ महा धनुष कम) मुटाई में यह तीनों प्रकार की वायु हैं जिनके अन्त में लोक का भी अन्त होजाता है। अतः सर्वार्थ सिद्धि विमान से ऊपर को लोक के अन्त तक सवा चार सौ महा धनुष कम २१ महा योजन की और "अच्युत" नामक इन्द्रक विमान से पूरे एक राजू की ऊँचाई है ॥

यह ध्यान रहे कि उपर्युक्त अष्ट योजन मोटे "सिद्ध क्षेत्र" में अथवा इस सिद्ध क्षेत्र पर (सिद्धशिला पर) सिद्धों (मुक्ति पद

प्राप्त जीवों) का निवास स्थान नहीं है, किन्तु इसके ऊपर पौन महायोजन मुटाई की घनोदधि वात और घनवात से ऊपर आकर जो १५७५ महा धनुष मोटी "तनुवात" है उसकी मुटाई का भी १५७३ $\frac{१९}{२०}$ महाधनुष मोटा नीचे का भाग छोड़ कर इस की मुटाई के उपरिम शेष भाग १ $\frac{१}{२०}$ महाधनुष (५२५ धनुष) में अनन्तानन्त सिद्धों (मुक्त जीवों) का निवास स्थान है। यही "सिद्धालय" है। यह भी विस्तार में सिद्धक्षेत्र समान ४५ लाख महा योजन प्रमाण व्यास युक्त वृत्ताकार है और उसी की ठीक सीध में उस के ऊपर कुछ कम एक महा योजन प्रमाण अन्तराल छोड़कर है ॥

नोट ३.—अच्युत स्वर्ग सम्बन्धी जो उपर्युक्त ३ पटल हैं उनमें से सबसे नीचे के पटल की उत्तर दिशा में श्रेणीबद्ध विमान १३, इससे ऊपर के पटल की उत्तर दिशा में १२ और सब से ऊपर के तीसरे पटल की उत्तर दिशा में ११ हैं, अर्थात् उत्तर दिशा के सर्व श्रेणीबद्ध विमान ३६ (हरिवंश पुराण में ३९) असंख्यात असंख्यात योजन विस्तार के हैं। और वायव्य व ईशान कोणों के सर्व प्रकीर्णक विमान ५६ हैं जिनमें कुछ असंख्यात असंख्यात और कुछ संख्यात संख्यात योजन विस्तार के हैं। अतः सर्व विमानों की संख्या जिनमें अच्युतेन्द्र की आज्ञा प्रवर्तती है ९२ है। इन तीनों पटलों में से प्रत्येक के मध्य में जो एक एक इन्द्रक विमान है उनमें अच्युतेन्द्र का आज्ञापन नहीं है किन्तु "आरणेन्द्र" का है जिसकी आज्ञा में यह तीनों इन्द्रक विमान और इन तीनों पटलों की शेष तीन दिशा— पूर्व,दक्षिण और पश्चिम—के १०८ श्रेणीबद्ध विमान, और शेष दो विदिशा—आग्नेय, नैऋत्य—के ५७ प्रकीर्णक विमान, एवम् सर्व १६८ विमान हैं। इन्हीं १६८ विमानों के समूह का नाम "आरण" स्वर्ग है जो १६ स्वर्गों में १५वां है ॥

नोट ४.—तिर्यक्‌रूप बराबर क्षेत्र में अर्थात् समधरातल में जहां जहां विमानों की रचना है उसे "प्रतर" या "पटल" कहते हैं ॥

हर पटल के मध्य के विमान को 'इन्द्रक विमान' कहते हैं ॥

हर इन्द्रक के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, इन चारों दिशाओं के पंक्ति रूप विमानों को "श्रेणीबद्ध" विमान कहते हैं ॥

चारों दिशाओं के मध्य के आग्नेय आदि ४ कोणों (विदिशाओं) में के अनुक्रम रहित जहां तहां फैले हुए विमानों को 'प्रकीर्णक' विमान कहते हैं ॥

नोट ५—१६ स्वर्गों के नाम यह हैं—(१) सौधर्म (२) ईशान (३) सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्म (६) ब्रह्मोत्तर (७) लान्तव (८) कापिष्ट (९) शुक्र (१०) महाशुक्र (११) शतार (१२) सहस्रार (१३) आनत (१४) प्राणत (१५) आरण (१६) अच्युत ॥

इन १६ स्वर्गों के ८ युगल (जोड़े) हैं। पहिले युगल सौधर्म ईशान में से सौधर्म की रचना दक्षिण दिशा को, और ईशान की रचना उसकी बराबर ही में उत्तर दिशा को है। इस युगल की रचना जम्बूद्वीप के मध्यस्थित सुदर्शन मेरु की चूलिका (चोटी) से केवल एक बाल की मुटाई का अन्तर छोड़ कर ऊपर की ओर को ३१ पटलों (खंडों, मंज़िलों या दर्जों) में एक लाख और चालीस (१०००४०) महा योजन कम डेढ़ राजू प्रमाण ऊँचाई में फैली हुई है। प्रत्येक पटल की

रचना ऊपर ऊपरको एक दूसरे से असंख्यात महा योजन का अन्तराल छूट छूट कर है। जहां से इस युगल का आरम्भ है वहां ही से "ऊर्द्ध लोक" का प्रारम्भ है॥

इसी प्रकार क्रम से दो दो स्वर्गों का एक एक युगल एक दूसरे से ऊपर ऊपर है और प्रत्येक युगल का पहिला पहिला स्वर्ग दक्षिण की ओर का भाग है और दूसरा दूसरा स्वर्ग उत्तर की ओर का भाग है। अर्थात् १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५ संख्यक स्वर्गों की रचना दक्षिण भाग का है और २, ४, ६, ८, १०, १२ १४, १६ संख्यक स्वर्गों की रचना उत्तर भाग की है। सौधर्म-ईशान आदि ८ युगलों के क्रम से ३१, ७, ४ २, १, १, ३, ३, एवम् सर्व ५२ पटल १६ स्वर्गों में हैं। प्रत्येक पटल के मध्य में एक एक इन्द्रक विमान है। अतः ५२ ही इन्द्रक विमान हैं॥

नोट ६—पांचवें छठे अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर इन दो स्वर्गों का एक ही इन्द्र "ब्रह्मेन्द्र" है जिसका निवास स्थान दक्षिण भाग में ब्रह्म स्वर्ग में है। सातवें अठवें अर्थात् लान्तव और कापिष्ट, इन दो स्वर्गों का भी एक ही इन्द्र 'कापिष्टेन्द्र' है, जिसका निवास स्थान उत्तर दिशा की ओर 'कापिष्ट' स्वर्ग में है। नवें दसवें अर्थात् शुक्र और महाशुक्र, इन दो स्वर्गों में भी एक ही इन्द्र 'शुक्रेन्द्र' है जिसका निवास स्थान दक्षिण भाग में शुक्र स्वर्ग में है। इसी प्रकार ग्यारहें बारहें अर्थात् शतार और सहस्रार, इन दो स्वर्गों का इन्द्र भी एक ही 'सहस्रारेन्द्र' है जिस का निवास स्थान उत्तर भागमें 'सहस्रार स्वर्ग'में है। इस प्रकार ५वें से बारहें तक के ८ स्वर्गों के जो ४ युगल हैं उनके शासक ४ इन्द्र हैं और शेष ८ स्वर्गों के जो ४ युगल हैं उनमें प्रत्येक स्वर्ग का शासक एक एक इन्द्र होने से उन में ८ इन्द्र हैं जिस से १६ स्वर्गों के सर्व १२ ही इन्द्र हैं। अतः इन्द्रों की अपेक्षा स्वर्गों या कल्पों की संख्या केवल १२ ही है और इसी अपेक्षा से 'अच्युत स्वर्ग' १२ वां स्वर्ग या १२ वां कल्प है॥

नोट ७—'अच्युत' स्वर्ग सम्बन्धी कुछ अन्यान्य ज्ञातव्य बातें निम्न लिखित हैं:—

१. इस स्वर्ग के सर्व विमान जिन की संख्या ६२ है शुक्ल वर्ण के हैं।

२. इस स्वर्ग में बसने वाले सर्व ही इन्द्रादिक देवों के भाव शुक्ललेश्या रूप हैं।

३. इस स्वर्ग के 'अच्युतावतंसक' नामक श्रेणीबद्ध विमान की पूर्वादि चार दिशाओं में क्रम से रुचक, मन्दर, अशोक, सप्तच्छद नामक विमान हैं।

४. इस स्वर्ग के इन्द्रादिक देवों के मुकट का चिन्ह कल्पवृक्ष है।

५. इस स्वर्ग के इन्द्र का 'अमरावती' नामक नगर २० सहस्र योजन लम्बा और इतना ही चौड़ा समचतुरस्र चौकोर है जिस के प्राकार (कोट या चार दीवारी) की ऊंचाई ८० योजन की, गाध (नींव) और चौड़ाई (आसार) प्रत्येक अढ़ाई (२॥) योजन है॥ नगर के प्राकार में जो गोपुर अर्थात् द्वार या दरवाजे हैं उन की संख्या १०० है जिन में से प्रत्येक की ऊँचाई १०० योजन (दीवार की ऊँचाई से २० योजन अधिक) और चौड़ाई ३० योजन की है॥

६. सर्व ही स्वर्गों के देवों के जो इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र या लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत्, सामानिक, अङ्गरक्षक, पारिषत्, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, किल्विषिक, यह ११

भेद हैं इन में से इस सोलहवें स्वर्ग में १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र, ४ लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), ३३ त्रायस्त्रिंशत्, २० सहस्र सामानिक, ८० सहस्र अङ्गरक्षक, २५० समित् नामक अभ्यन्तर परिषद् के पारिषत्, ५०० चन्द्रा नामक मध्य परिषद् के पारिषत्, १००० जतु नामक बाह्य परिषद् के पारिषत्; सात प्रकार की अनीक (सेना) में से प्रत्येक के प्रथम कक्ष में २० सहस्र और द्वितीय आदि सप्तम कक्ष पर्यन्त प्रत्येक प्रकार की अनीक में आगे आगे को अपने अपने पूर्व के कक्ष से दुगुण दुगुण संख्या; शेष प्रकीर्णक आदि ३ की संख्या असंख्यात है ॥

{ त्रि० गा० २२३-२२६, २२९, ४९४, ४९५, ४९८ }

७. सात प्रकार की सेना (१) वृषभ (२) अश्व (३) रथ (४) गज (५) पदाति (पयादे) (६) गन्धर्व और (७) नर्त्तकी है जिन में से प्रत्येक के सात सात कक्ष (भाग या समूह) एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा, इत्यादि दुगुण दुगुण संख्या युक्त हैं। यह वृषभादि पशु जाति के नहीं हैं किन्तु इन इन जाति के देवगण ही अपनी वैक्रियिक ऋद्धि की शक्ति से वृषभादि रूप आवश्यकता होने पर बन जाते हैं ॥

इन वृषभादि सात प्रकार की सेना के नायक (सेनापति) क्रम से (१) महादामयष्टि (२) अमितिगति (३) रथमन्थन (४) पुष्पदन्त (५) सलघुपराक्रम (६) गीतरति, यह छह महत्तर (अध्यक्ष) और महासेना नामक एक महत्तरी (अध्यक्षिणी) हैं ॥

(त्रि० ४९४, ४९७)

८. 'अमरावती' नामक राजधानी के गिर्द जो उपर्युक्त प्राकार (कोट) है उसके चारों ओर उस से १३ लाख योजन के अन्तर पर दूसरा कोट, दूसरे से ६३ लाख योजन के अन्तर पर तीसरा कोट, तीसरे से ६४ लाख योजन के अन्तर पर चौथा कोट और चौथे से ८४ लाख योजन के अन्तर पर पांचवाँ कोट है। प्रथम अन्तराल में अङ्गरक्षक देव और सेनानायक बसते हैं। दूसरे अन्तराल में तीनों प्रकार के परिषदों के पारिषत् देव और तीसरे अन्तराल में सामानिक देव बसते हैं। चौथे अन्तराल में वृषभादि पर चढ़ने वाले आरोहक देव तथा आभियोग्य और किल्विषिक आदि देव यथायोग्य आवासों में बसते हैं ॥

पांचवें कोट से ५० सहस्र योजन अन्तराल छोड़ कर पूर्वादि दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्रवनखंड प्रत्येक १००० योजन लम्बे और ५०० योजन चौड़े हैं। प्रत्येक वन में एक एक चैत्यवृक्ष जम्बूद्वीप के जम्बूवृक्ष समान विस्तार वाला है ॥

इन वनखंडों से बहु योजन अन्तराल देकर पूर्वादि दिशाओं में क्रम से सोम, यम, वरुण और कुबेर, इन लोकपालों के निवास स्थान हैं। आग्नेय आदि चार विदिशाओं में क्रम से कामा, कामिनी, पद्मगन्धा और अलम्बुषा नामक गणिका महत्तरी देवाङ्गनाओं के निवास स्थान हैं ॥

(त्रि० ४९९, ५०६)

९. इस स्वर्ग के इन्द्रादिक देवों के महलों की ऊँचाई, लम्बाई, और चौड़ाई क्रम से २५०, ५०, २५ योजन और देवांगनाओं के महलों की ऊँचाई आदि २००, ४०, २० योजन है ॥

(त्रि० ५०७, ५०८)

१०. इस स्वर्ग के इन्द्र की अग्र-देवियां आठ हैं जिन में से प्रत्येक की परिवार देवियां अग्रदेवी सहित २५०, २५० हैं जिन में से इन्द्र की वल्लभिका देवियां ६३ हैं ॥

आठ अग्रदेवियों के नाम—(१) श्रीमती (२) रामा (३) सुसीमा (४) प्रभावती (५) जयसेना (६) सुषेणा (७) वसुमित्रा (८) वसुन्धरा। (देखो शब्द 'अग्रदेवी') ॥

(त्रि० ५०६,५११, ५१३) ॥

११. इस स्वर्ग के इन्द्र की प्रत्येक अग्रदेवी अपनी वैक्रियिक शक्ति से मूल शरीर सहित अपने १०२४००० (दशलाख २४ हज़ार) शरीर बना सकती है ॥

(त्रि० ५१२) ॥

१२. अमरावती नामक इन्द्रपुरी में इन्द्र के रहने के महल से ईशान कोण की ओर को 'सुधर्मा' नामक आस्थान-मंडप अर्थात् 'सभास्थान' १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और ७५ योजन ऊँचा है ॥

(त्रि० ५१५) ॥

१३. सर्व देवांगनाएँ केवल प्रथम और द्वितीय स्वर्गों ही में जन्म लेती हैं। अतः इस १६वें स्वर्ग की अग्र-देवी आदि देवियां भी यहां नहीं जन्मतीं किन्तु यह दूसरे स्वर्ग 'ईशान' में जन्म लेती हैं जहां ४ लाख विमान तो केवल देवियों ही के जन्म धारण करने के लिये हैं। शेष २४ लाख विमानों में देव और देवियां दोनों ही उत्पन्न होते हैं ॥

(त्रि० ५२४,५२५) ॥

१४. इस स्वर्ग के इन्द्रादिक देव और देवियों में काम-सेवन न तो परस्पर रमण क्रिया द्वारा है न शरीर स्पर्शन द्वारा है, न रूप देख कर है और न रसीले शब्द श्रवण कर ही है किन्तु राग की मन्दता और इन्द्रिय भोगों की ओर बहुत अल्प रुचि होने से केवल मन की प्रसन्नता या मानसिक कल्पना ही से मन की तृप्ति हो जाती है॥

(त्रि० ५२६) ॥

१५. इस स्वर्ग के इन्द्रादिक देवों की "अवधिज्ञान" शक्ति तथा गमनागमन की 'वैक्रियिक' शक्ति नीचे को तो अरिष्टा' नामक पाँचवें नरक की 'धूम-प्रभा' नामक पञ्चम पृथ्वी तक और ऊपर को निज स्वर्ग के ध्वजा दण्ड तक की है ॥

(त्रि० ५२७) ॥

१६. इस स्वर्ग में उत्कृष्ट 'जन्मान्तर' तथा 'मरणान्तर' काल ४ मास है और उत्कृष्ट 'विरहकाल' इन्द्र, इन्द्र की अग्रदेवी (इन्द्राणी) और लोकपाल का तो ६ मास, और त्रायस्त्रिंशत, अङ्गरक्षक, सामानिक और पारिषत् भेद वाले देवों का ४ मास है ॥

(त्रि० ५२९, ५३०) ॥

१७. इस स्वर्ग में इन्द्रादिक देवों के श्वासोच्छ्वास का अन्तराल काल जघन्य २० पक्ष और उत्कृष्ट २२ पक्ष है और आहार ग्रहण करने का अन्तराल काल जघन्य २० सहस्र वर्ष और उत्कृष्ट २२ सहस्र वर्ष है इन का आहार 'निजकंठामृत' है। (आयु जघन्य २० सागरोपम काल और उत्कृष्ट २२ सागरोपम काल है) ॥

(त्रि० ५४४) ॥

१८. इस स्वर्ग में प्रथम के ४ संहनन वाले केवल कर्मभूमि के कोई कोई सम्यग्दृष्टी मनुष्य या तिर्यञ्च ही आकर जन्म लेते हैं। काँजी आदि सूक्ष्म और अल्प आहार लेने वाले अति मन्द कषाय युक्त सत्योगी मनुष्य जो 'आजीवक' नाम से प्रसिद्ध हैं उनमें से भी कोई कोई इस स्वर्ग तक पहुँच सकते हैं ॥

(त्रि० ५४५) ॥

१६. इस स्वर्ग से आयु पूरी करके यहां के इन्द्रादिक देव कर्म भूमि के ६३ शलाका पुरुषों में या साधारण मनुष्यों में ही यथा योग्य जन्म धारण करते हैं ॥

२०. देवगति में आकर उत्पन्न होने वाले सर्व ही जीव 'भवप्रत्यय अवधिज्ञान' सहित उत्पाद शैय्या से एक अन्तरमुहूर्त में षट पर्याप्ति पूर्ण सुगन्धित शरीर युक्त जन्म धारण कर लेते हैं ॥

नोट ८—देखो शब्द 'कल्प' ॥

अच्युत-कल्प } पीछे देखो शब्द 'अच्युत'
अच्युत-स्वर्ग } नोटों सहित ॥

अच्युता—(१) अनेक दिव्य विद्याओं में से एक विद्या का नाम ॥

नोट १—अष्ट गन्धर्व विद्या—मनु, मानव, कौशिक, गौरिक, गान्धार, भूमितुण्ड, मूलवीर्यक, शंकुक। इन अष्ट विद्याओं का नाम आर्य, आदित्य, व्योमचर आदि भी है ॥

अष्ट दैत्य विद्या—मातङ्ग, पाँडुक, काल, स्वपाक, पर्वत, वंशालय, पांशुमूल, वृक्षमूल। इन अष्ट विद्याओं को पन्नग-विद्या और मातङ्ग विद्या भी कहते हैं ॥

यह १६ दिव्य विद्याएं अनेक अन्य दिव्य विद्याओं की मूल हैं जिनमें से कुछ के नाम यह हैं—प्रज्ञप्ति, रोहिणी, अङ्गारिणी, गौरी, महागौरी, सर्व विद्या प्रकर्षिणी, श्वेता, महाश्वेता, मायूरी, हारी, निर्वज्ञ-शाड्वला, तिरस्कारिणी, छाया, संक्रामिणी, कूष्मांडगणमाता, सर्व विद्याविराजिता, आर्यकूष्मांडा, अच्युता, आर्यवती, गान्धारी, निर्वृति, दंडाध्यक्षगणा, दंडभूत-सहस्रक, भद्रा, भद्रकाली, महाकाली, काली, कालमुखी, एकपर्वा, द्विपर्वा, त्रिपर्वा, दश पर्विका, शत पर्विका, सहस्र पर्विका, लक्ष पर्विका, उत्पातिनी, त्रिपातिनी, धारिणी, अन्तर्विचारिणी, जलगता, अग्निगति, सर्वार्थसिद्धा, सिद्धार्था, जयंती, मङ्गला, जया, प्रहारिणी, अशय्याराधिनी, विशल्याकारिणी, संजीवनी, व्रणसंरोहिणी, शक्तिविषमोचनी, सवर्णकारिणी, मृत संजीवनी, इत्यादि ॥

(हरि० पु० सर्ग २२ श्लोक ५६-७३) ॥

नोट २—रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृङ्खला, वज्रांकुशा, जाम्बुनन्दा, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गान्धारी, ज्वालामालिनी, मानवि शिखंडिनी, वैरोटी, 'अच्युता', मानसी, महामानसी, यह १६ भी विद्या देवियां हैं जिनमें से अच्युता चौदहवीं विद्या का नाम है ॥

(प्रतिष्ठासारोद्धार) ॥

(२) छठे और १७वें तीर्थङ्कर श्री पद्मप्रभु और श्री कुन्थनाथ की शासन देवी (अ० मा० अच्चुया)। आगे देखो शब्द 'अजिता' ॥

अच्युतावतंसक—अच्युत स्वर्ग के उस श्रेणीबद्ध विमान का नाम जिस के मध्य में अच्युतेन्द्र की 'अमरावती' नामक राजधानी (इन्द्रपुरी) बसती है। (देखो शब्द 'अच्युत' नोटों सहित) ॥

अच्युतेन्द्र—'अच्युत' नामक १६वें स्वर्ग का इन्द्र। देखो शब्द "अच्युत" नोटों सहित ॥

अज—(१) जन्मरहित, अंकुर उत्पन्न करने की शक्तिरहित, त्रिवार्षिक यव या तुषरहित शालि, बकरा, मेंढ़ा। (आगे देखो शब्द 'अजैर्यष्टव्यं') ॥

(२) २८ नक्षत्रों में से पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्र के अधिदेवता का नाम। (देखो शब्द 'अट्ठाईस नक्षत्राधिप') ॥

(३) अष्टम बलभद्र श्री रामचन्द्र के पितामह जो 'अनरण्य' नाम से भी प्रसिद्ध थे और जिनके पिता का नाम 'रघ' था ॥

प्रतापी महाराजा 'रघु' के गृहत्यागी हो जाने पर इन्हीं के वंशज 'सगर' ने 'रघु' के पुत्र युवराज 'अनरण्य' को अयोध्या की गद्दी से वंचित रख कर बलात् वहां अपना अधिकार जमा लिया और 'अरण्य' को वाराणसी की गद्दी पर सुशोभित किया। पश्चात् सगर की मृत्यु पर अवसर पाकर अनरण्य के पुत्र वाराणसी नरेश दशरथ ने अयोध्या को फिर अपनी राजधानी बना लिया। दशरथ के दो पुत्रों राम और लक्ष्मण का जन्म वाराणसी में और दो पुत्रों 'भरत' और 'शत्रुघ्न' का जन्म अयोध्या में हुआ। राम के प्रपितामह महाराजा 'रघु' के नाम पर ही 'अयोध्या' की गद्दी की सूर्यवंशी शाखा 'रघुवंश' के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥

अजय—(१) मगधदेश का एक सुप्रसिद्ध जैन राजा जो महा मंडलेश्वर राजा 'श्रेणिक बिम्बसार' के पुत्र 'कोणिक अजातशत्रु' का पौत्र था। आगे देखो शब्द 'अजातशत्रु' ॥

नोट १—इस का चरित्र व राज्यकाल आदि जानने के लिये देखो ग्रन्थ 'बृहत् विश्वचरितार्णव' ॥

(२) श्री ऋषभदेव के चार क्षेत्रपाल यक्षों में से पहिले यक्ष का नाम ॥

नोट २—अन्य तीन क्षेत्रपालों के नाम विजय, अपराजित और मानभद्र हैं ॥

(३) चलाचार रहित, गृहस्थ के समान साधु, अविरत सम्यग्दृष्टी, चतुर्थ गुणस्थानी। (अ० मा०) ॥

अजयपाल—चालुक्यवंशी सुप्रसिद्ध महाराजा 'कुमारपाल' का पुत्र ॥

अजयपाल अपने पिता के ३० वर्ष ६ मास २७ दिन का राज भोगकर लगभग ८१ वर्ष की वय में वि० सं० १२३० में परलोक सिधारने के पश्चात् अणहिलपाटण (अनहिलवाड़ा-गुजरात) की गद्दी पर बैठा। कुमारपाल ने इसे राज्यासन पाने के लिये अयोग्य देख कर अपने परम पूज्य गुरु 'श्री हेमचन्द्राचार्य' की सम्मति से अपने बहनेज 'प्रतापमल्ल' को राज्य सिंहासन देने का निश्चय किया था। पर इस दुराचारी 'अजयपाल' ने इस विचार का पता लग जाने पर 'श्री हेमचन्द्र' के स्वर्गारोहण से लगभग छह मास पीछे अवसर पाकर अपने पूज्य धर्मज्ञ, परोपकारी, परमदयालु पिता को राज पाने की लोलुपतावश विष दिला कर मृत्यु के गाल में पहुँचा दिया।

'मोहपराजय' नामक एक नाटक ग्रन्थ इसी अजयपाल' के मंत्री 'यशःपाल' कृत है जो 'कुमारपाल' की मृत्यु के पश्चात् वि० सं० १२३२ के लगभग लिखा गया था। इस में 'श्री हेमचन्द्र' और उन के अनन्य भक्त 'कुमारपाल' का ऐतिहासिक चरित्र नाटक के रूप में सविस्तार वर्णित है ॥

नोट १.—गुजरातदेश के चौलुक्यवंशी राज्य का प्रारम्भ लगभग वि० सं० ९९७ से हुआ जिस के संस्थापक सोलङ्की

'मूलराज' ने चावड़ावंशियों से गुजरात छीन कर अणहिल्लपाटन को अपनी राजधानी बनाया। यहां इस वंश का राज्य वि० सं० १२६२ तक लगभग ३०० वर्ष रहा। पश्चात् यहां बघेलों ने अपना राज्य जमा कर वि० सं० १३५३ तक शासन किया। वि० सं० १३५३ या १३५४ में यह राज्य दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के अधिकार में चला गया॥

नोट २.—इन चालुक्यवंशियों में कई राजा जैनधर्मी हुए जिन में 'कुमारपाल' सब से अधिक प्रसिद्ध है। इस का जन्म वि० सं० ११४९ में और राज्य अभिषेक वि० सं० ११९९ में ५० वर्ष की वय में हुआ। इस ने 'श्री हेमचन्द्र' के तात्विक सत्-उपदेशों पर मुग्ध होकर और वैदिक धर्म को त्याग कर अपनी युवा-अवस्था ही में जैनधर्म को ग्रहण कर लिया। पश्चात् वि० सं० १२१६ के मार्गशिर मास की शुक्लपक्ष की दोयज को श्रावकधर्म के द्वादशव्रत भी ग्रहण कर लिये॥

इस भाग्यशाली धर्मज्ञ दयाप्रेमी राजा के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें ज्ञातव्य हैं:—

(१) साढ़े तीन करोड़ श्लोक प्रमाण महान जैन ग्रन्थों के रचयिता 'कलिकालसर्वज्ञ' उपाधि प्राप्त "श्री हेमचन्द्र सूरि" इसके पूज्य धर्म गुरु थे।

(२) इसने अपने राज्यकाल में १४०० प्रासाद (जिनालय) बनवाये, १६००० मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया, १४४४ नये जिन मन्दिरों पर स्वर्ण कलश चढ़ाये, ९८ लाख रुपया अन्यान्य शुभ दान कार्यों में व्यय किया, सात बार संघाधिपति होकर तीर्थ यात्रा की जिनमें से ९ लाख रुपये के नव रत्न पहिली यात्रा में प्रभु की पूजा में चढ़ाये, २१ महान ज्ञानभंडार स्थापित किये।

(३) ७२ लाख रुपया वार्षिक का राज्य-कर श्रावकों का छोड़ा और शेष प्रजा के लिये भी कर बहुत हलका करदिया।

(४) धन हीन व्यक्तियों की सहायतार्थ एक करोड़ रुपया प्रति वर्ष दिया।

(५) पुत्रहीन विधवाओं का धन जो पुराने राज्य नियमानुसार राजभंडार में जमा किया जाता था और जिसकी संख्या लगभग ७२ लाख रु० वार्षिक थी उसे बड़ी निर्दयता और अनीति का कार्य जान कर लेना छोड़ दिया।

(६) जुआ, चोरी, मांस भक्षण, मद्यपान, वेश्या सेवन, परस्त्री रमण, और शिकार खेलना, यह सात कुव्यसन अपने राज्य भर में से लगभग सर्वथा दूर कर दिये।

(७) अहिंसा धर्म का प्रचार न केवल अपने ही अधिकार वर्ती देश में किया किन्तु भारतवर्ष के कई अन्य भागों में भी वहां के अधिपतियों को किसी न किसी प्रकार अपना मित्र बनाकर बड़ी बुद्धिमानी से किया और इस तरह भारत वर्ष के १८ छोटे बड़े देशों में जीव दया का बड़ी उत्तम रीति से पालन होने लगा और धर्म के नाम पर अनेक देवताओं के सन्मुख जो लाखों निर अपराध मूक पशुओं का प्रतिवर्ष बलिदान होता था वह सब दूर होगया।

(८) शान्तिमय अहिंसात्मक धर्म फैलाने के प्रबन्ध में जिन जिन व्यक्तियों को किसी प्रकार की आर्थिक हानि पहुँची उन सब को यथा आवश्यक धन दे देकर प्रसन्न कर दिया था।

(९) गरीबों का कष्ट दूर करने को इसने

एक विशाल दानशाला अपने नगर में खोली जिस की देख रेख का प्रबन्ध सेठ 'नेमिनाग' के सुपुत्र 'अभयकुमार श्रीमाली' को सौंपा गया।

(१०) स्वदारासन्तोष व्रत बड़ी दृढ़ता से पालन करने के कारण 'परनारी सहोदर', शरणागतपालक होने से 'शरणागतवज्रपंजर', जीव दया का सर्वत्र प्रचार करने से 'जीवदाता', विचारशील होने से 'विचार चतुर्मुख', दीनों का उद्धार करने से 'दीनोद्धारक', और राज्यशासन करते हुए भी त्रिकाल देवपूजा, गुरुसेवा, शास्त्रश्रवण, इन्द्रियसंयम, धर्मप्रभावना आदि श्रावकोचित आवश्यक कार्यों में सदैव दत्तचित्त रहने से "राजर्षि" इत्यादि इसके कई यथा गुण तथा नाम प्रसिद्ध हो गए थे। इत्यादि॥

सारांश यह कि इस के राज्य में सर्वत्र शांति का साम्राज्य था। प्रजा को सर्व प्रकार का सुख चैन और प्रसन्नता प्राप्त थी। मानो कलिदुष्ट को जीतकर सत्युग की जागृति ही कर दी थी॥

नोट ३—जगड़ूशाह (जगदूश) नामक एक धनकुबेर जैनधर्मी वैश्य जो सदैव अपने अटूट धन का बहुभाग गुप्तदान में लगाता रहता था इसी 'कुमारपाल' के राज्य में कच्छ देश के 'महुवा' या 'भद्रेश्वर' नामक ग्राम में रहता था। अपने धर्मगुरु 'श्री हेमचन्द्र जी सूरि', 'वाग्भट्ट' आदि सामन्त और मन्त्री, राज्यमान्य नगरसेठ का पुत्र 'आभट', षटभाषा चक्रवर्ती 'श्री देवपाल कवि', दानेश्वरों में अग्रगण्य "सिद्धपाल", राज भंडारी "कपर्दि", पाटनपुरनरेश प्रह्लाद, ९९ लाख की पूंजी का धनी 'छाड़ासेठ,' भाणेज 'प्रताप मल्ल', १८०० अन्य सेठ साहूकार, बहुत से व्रती या अव्रती श्रावक और अगणित अन्यान्य जैन और अजैन, ११ लाख अश्व, ११ सहस्र हाथी, १८ लाख सर्व पयादे, इत्यादि ठाठ बाट के साथ इतने बड़े संघ का अधिपति बनकर जब कुमारपाल ने श्री शत्रुंजय आदि तीर्थस्थानों की यात्रार्थ प्रयाण किया तो शत्रुंजय, गिरिनार और देवपत्तन (प्रभासपाटन), इन तीनों तीर्थों पर पूजा के समय इन्द्रमाल (जयमाला) की बोली सब से बढ़कर "जगड़ूशाह" ही की सवा सवा करोड़ रुपये की होकर इसी के नाम खतम हुई। (कुमारपाल चरित)॥

'कुमारपाल' की मृत्यु से लगभग ४० वर्ष पीछे जबकि गुजरात में अणहिल्ल पाटण की गद्दी पर इसी वंशका राजा बीसलदेव या विशालदेव राज्य कर रहा था, उत्तर तथा मध्य भारत में गान्धार देश तक ५ वर्ष के लिये भारी दुष्काल पड़ा उस समय इसी "जगड़ूशाह" ने अपने अटूट धन से सर्व अकाल पीड़ितों की परम प्रशंसनीय और अद्वितीय सहायता की थी जिस का उल्लेख ग्रांडिफ़ साहिब ने अपनी "मरहट्टा कथा" में किया है। तथा डाक्टर बूलर ने इस धनकुबेर की पूरी कथा को संस्कृत कथा के गुजराती अनुवाद से लेकर स्वयम् प्रकाशित कराया है। इसी का सारांश निम्न प्रकार है:—

सन् १२१३ ई० (वि. सं. १२७०) में भारत वर्ष में भारी अकाल पड़ा। यह गुजरात, काठियावार, कछ, सिन्धु, मध्य देश और उत्तरीय पूर्वीय भारत में दूर तक फैला जो लगातार ५ वर्ष तक रहा। इस अकाल पीड़ित प्रान्तों के सर्व ही राजे महाराजे उसे रोकने में कटिबद्ध थे तो भी लगातार पाँच

वर्ष तक पड़ने रहने से सब के छक्के छूट गये। जबतक अनाज रहा बराबर बाँटते रहे, परन्तु ५ वर्ष तक सूखा पड़ने से अनाज कहां तक रह सकता था।

उस समय यद्यपि बहुत से धनाढ्यों और उदार हृदय शक्तिशाली महानुभावों ने यथाशक्ति अपनी अपनी उदारता का परिचय दिया तथापि कच्छदेश के भद्रेश्वर ग्राम निवासी एक 'जैन हिन्दू' ने अपनी उदारता और दानशीलता अन्त को ही पहुँचा दी। इस जैन महानुभाव का नाम जगडूशा (जगडूशाह) था। यह एक 'व्यापारी जैन' था। व्यापार में उसने करोड़ों रुपया कमाया। पारस (फ़ारस) और अरब देशों तक उसका व्यापार का कार्य फैला हुआ था। जैसा वह धनाढ्य था वैसा ही दानी और उदारहृदय भी था। अकाल दुःकाल के लिये वह लखूखा मन अनाज जमा रखता था। इस अकाल के प्रारम्भ से कुछ पहिले जब कि उसे किसी जैनमुनि की भविष्यवाणी द्वारा यह ज्ञात हो गया कि असह्य अकाल पड़ने वाला है तो उसने पृथ्वी में ७०० बहुत बड़ी बड़ी नई खत्तियां खुदवा कर अनाज से भरवादीं। इन सब पर उसने एक एक ताम्रपत्र लगवा कर उन पर लिखवा दिया कि "यह सर्व अनाज केवल अकाल पीड़ित दुखी दरिद्रियों के लिये है"॥

सन् १२१३ ई० में अकाल पड़ना प्रारम्भ हुआ। 'जगडूशा' अनाज बांटने लगा। केवल अनाज ही नहीं किन्तु उसने लड्डू भी बांटे। भूखे लोग सहर्ष लड्डू खा खाकर उस दुष्काल का कुसमय बिताने लगे। जगडूशा ने केवल अनाज और लड्डू ही नहीं बांटे, किंतु वह भूखों और अधिक दुखियों को एक एक स्वर्ण मुहर भी देने लगा। रात्रि को वेश बदल कर उन भले मनुष्यों के घर भी जाता था जो चुपचाप अपने अपने घरों में भूखे मरते थे परन्तु मानार्थ माँगना अनुचित जानते थे। जगडूशा ने ऐसे लोगों की भी यथा आवश्यक पूरी सहायता की॥

इस अकाल के तृतीय वर्ष सन् १२१५ में सब राजा महाराजा भी घबरा गए। उनके अनाज के भण्डार रीते हो गये। इधर उधर से अनाज मँगाने के कारण कोष भी धन शून्य होने लगे, तब गुजरात के राजा विशालदेव ने 'जगडूशा' के पास अपना एक एलची भेजा और उससे अनाज देने की प्रार्थना की। 'जगडूशा' ने एलची से कहा कि "वह ७०० बड़ी बड़ी खत्तियां तो सब दुखी दरिद्री और कंगालों में बट चुकीं। अब मैं क्या करूं"? पर नहीं, इतना कह कर भी उसने गुजरात के राजा को निराश नहीं किया। अगणित धन व्यय करके जहां कहीं से और जिस प्रकार बना उसने अनाज दूर देशों से मँगाया। और न केवल गुजरात के राजा को किन्तु अन्य बहुत से राजा महाराजाओं को भी उसने नीचे लिखे अनुसार अनाज दियाः—

१. गुजरात के राजा को ८ लाख मन।
२. सिन्धुदेश के राजा को १८लाख ९० हज़ार मन।
३. मालवे के राजा को १८ लाख मन।
४. दिल्ली के बादशाह को २१ लाख मन।
५. कन्दहार के अधिपति को ३२ लाख मन।

इत्यादि इत्यादि अन्य बहुत से नरेशों को भी 'जगडूशा' ने अनाज दिया। और इस

प्रकार सर्व अनाज जो उसने बांटा उस की तौल लगभग ९ करोड़ ९९ लाख मन थी, और साथ ही इसके स्वर्ण-मुहरें जो उसने बांटीं उन की संख्या लगभग साढ़े चार करोड़ थी ॥

{ बंगवासी, कलकत्ता, ता० १६. ११. १८९६ ई०, पृ० २ कालम ३. }

अजरपद—जरा (वृद्धावस्था) वर्जितपद, अमरपद, देवपद, मुक्तिपद, अर्थात् वह परमपद जिसे पाकर अनन्तकाल तक फिर कभी वृद्धावस्था (बुढ़ापा) का मुख न देखना पड़े। (देखो शब्द 'अक्षयपद' और 'अक्षयपदाधिकारी') ॥

अजाखुरी—(१) सुराष्ट्र (गुजरात) देश के एक प्रसिद्ध राजा 'राष्ट्रवर्द्धन' की राजधानी जिसका दूसरा नाम गिरिनगर तथा 'गिरिनार' भी था जिसके नाम पर वहां की पहाड़ी भी 'गिरिनार' के नाम ही से प्रसिद्ध थी और आज तक भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इसी पहाड़ी का नाम 'ऊर्जयन्तगिरि' भी है। यह पहाड़ी जैनियों का तो एक बहु प्रसिद्ध तीर्थ है ही, पर यह हिन्दुओं का भी एक तीर्थ है ॥

२२वें तीर्थङ्कर श्री 'नेमिनाथ' ने पूरे ३०० वर्ष की वय में अपनी जन्मतिथि और जन्म नक्षत्र के दिन श्रावण शु० ६ को चित्रा नक्षत्र में सायंकाल के समय इसी 'गिरिनार' पर्वत या 'ऊर्जयन्तगिरि' पर 'सहस्राम्र वन' में षष्ठोपवास (बेला, द्वेला) व्रत धारण कर दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी और यहां ही पूरे ५६ अहोरात्रि उग्रोग्र तपश्चरण कर आश्विन शु० १ को चित्रा नक्षत्र (जन्म नक्षत्र) में षष्ठोपवास पूर्वक प्रातःकाल में चारों घातिया कर्मों का नाश कर कैवल्यज्ञान की प्राप्ति की। तत्पश्चात् ६९९ वर्ष ८ मास ४ दिन देश देशान्तरों में विहार करते हुए अनेकानेक भव्य प्राणियों को धर्मामृत पिला कर इसी गिरिनार पहाड़ पर आकर और ३२ दिन शुक्ल ध्यान में बिता कर आषाढ़ शुक्ला ७ को अष्टमी तिथि में रात्रि के प्रथम पहर के अन्तर्गत चित्रा नक्षत्र का उदय होने पर इसी पहाड़ी पर से पर्यङ्क आसन लगाये ९९९ वर्ष ११ मास २ दिन की वय में परम पवित्र निर्वाणपद प्राप्त किया। इसी पर्वत पर जूनागढ़ाधीश महाराजा 'उग्रसेन' की सुपुत्री 'राजुलमती' ने भी जिसके साथ श्री नेमिनाथ के विवाह सम्बन्ध के लिये वाग्दान हो चुका था आर्यिका के व्रत धारण कर तपश्चरण किया और स्त्रीलिङ्ग छेद समाधिमरण पूर्वक शरीर छोड़ सुरपद पाया। (हरि. सर्ग ६०, श्लोक ३४०, नेमि पु० अ० ९) ॥

इसी गिरिनार पर्वत पर से वर्तमान अवसर्पिणीकाल के चतुर्थ विभाग में श्री नेमिनाथ, शंबुकुमार, प्रद्युम्नकुमार, और अनिरुद्धकुमार आदि बहत्तर करोड़ सात सौ (७२००००७००) मुनियों ने उग्रोग्र तपश्चरण द्वारा अष्ट कर्म नाश कर सिद्धपद (मोक्षपद) प्राप्त किया, अतः यह परम पवित्र क्षेत्र 'सिद्धक्षेत्र' कहलाता है ॥

नोट १.—श्री नेमिनाथ का निर्वाण श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ८३९९६ वर्ष ३ मास और २२ दिन पूर्व हुआ।

नोट २.—जूनागढ़ काठियावाड़ (गुजरात) में एक देशी रियासत की राजधानी और रेलवे स्टेशन है जो गिरनार पर्वत की

तलहटी से उत्तर दिशा को लगभग ४ मील की दूरी पर है। जूनागढ़ स्टेशन से दक्षिण दिशा को 'वेरावल' स्टेशन केवल ५२ मील के लगभग है जो समुद्र के किनारे पर है और जहां से हिन्दुओं का प्रसिद्ध 'सोमनाथ-मन्दिर' का स्टेशन केवल ढाई तीन मील ही की दूरी पर समुद्र तट पर ही है। यहां से 'पोर बन्दर' होते हुए द्वारकापुरी जाने के लिये जहाज़ द्वारा समुद्री मार्ग लगभग १२५ (सवा सौ) मील उत्तर-पश्चिमीय कोण को है। द्वारका जाने के लिये जूनागढ़ स्टेशन से उत्तर दिशा को जैनलसर या जैतपुर जङ्क्शन होते हुए 'पोरबंदर' तक रेल द्वारा भी जा सकते हैं।

नोट ३.—आज कल यद्यपि "द्वारका" की दूरी "गिरिनार पर्वत" से लगभग १०० मील या ५० कोश है पर श्री नेमनाथ के समय में 'द्वारिका' की बस्ती समुद्र के तट से गिरनार पर्वत की तलहटी के निकट तक थी, क्योंकि उस समय के इतिहास से पाया जाता है कि द्वारकापुरी १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी आबाद थी। एक योजन ४ कोश का और एक शास्त्रीय कोश ४००० गज़ या लगभग २। मील का है। अतः द्वारिका की लम्बाई का परिमाण लगभग १०८ मील था॥

नोट ४.—जूनागढ़ में दिगम्बर जैनों का आज कल एक भी घर नहीं है परन्तु गिरनार की तलहटी में एक दिगम्बर और एक स्वेताम्बर धर्मशाला है। दो मन्दिर भी हैं। यहां से 'गिरनार' पर्वत पर चढ़ने के लिये एक द्वार में होकर जाना पड़ता है जहाँ राजा की ओर से प्रति मनुष्य एक आना कर बंधा है। और जहां से पाँचवीं टोंक ('सहस्राम्रवन') तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं जिन की संख्या ७ सहस्र से कुछ अधिक है। पहाड़ की सर्व वन्दना करने में चढ़ाई उतराई सहित १६ मील के लगभग चलना पड़ता है॥

नोट ५.—नीचे से ढाई मील की चढ़ाई के पश्चात् 'सोरठमहल' आता है। यहाँ आज कल दो दुकानें, एक स्वेताम्बर धर्मशाला और २७ स्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं जिन में ७ मन्दिर अधिक मनोज्ञ और बढ़िया हैं। यहां से कुछ दूर आगे एक कोट में दो दिगम्बर जैन मन्दिर बड़े रमणीय और विशाल हैं जिन में बड़ी मनोज्ञ और विशाल प्रतिमाएँ विराजमान हैं। पास ही में श्रीमती 'राजुल कुमारी' की एक गुहा है जहां पर इस कुमारी ने तपश्चरण किया था। इस गुहा के अन्दर इस कुमारी की एक प्रतिमा और चरणपादुका हैं।

यहां से लगभग एक मील की ऊंचाई पर दूसरी और तीसरी टोंक हैं। रास्ते में स्वेताम्बर मन्दिर, हिन्दुओं के मन्दिर मकान, उनके साधुओं की कुटी और ठाकुरद्वारा आदि पड़ते हैं। इन दूसरी तीसरी टोंकों पर श्री नेमिनाथ ने तप किया था। यहां पर उन की चरणपादुका बनी हैं। यहां ही एक 'गोरक्षनाथ जी' की धूनी भी है॥

यहां से लगभग एक मील आगे पहुँच कर चौथी और पांचवीं टोंकें हैं। चौथी टोंक श्री नेमिनाथ के कैवल्य ज्ञान प्राप्ति का, और पांचवीं टोंक निर्वाण पद प्राप्ति का स्थान हैं। प्रत्येक टोंक पर एक एक प्रतिमा और चरण पादुका बड़ी मनोज्ञ बनी हैं।

यहां से आगे लगभग दो मील नीचे को उतर कर बड़ा सुन्दर और रमणीय "सहस्राम्रवन" है जहां श्रीनेमिनाथ ने अन्तरङ्ग और वाह्य सर्व परिग्रह त्याग कर दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी। यहां दो देहरी, तीन चरण

पादुका और एक शिला लेख है। मार्ग में हिन्दुओं के कुंडलील, गणेशधारा, गोमुखी आदि पड़ते हैं। यहां से आगे तलहटी की धर्मशाला तक लौट आने का वही मार्ग है जहां होकर पहाड़ पर चढ़ते हैं॥

नोट ६.—इस पहाड़ पर बन्दना के लिये हिन्दू और मुसल्मान आदि सब ही यात्री आते हैं। श्रीनेमिनाथ की मूर्त्ति को हिन्दू यात्री "दत्तात्रय" मान कर और उनकी विशाल चरण पादुकाओं को मुसलमान यात्री "बाबा आदम" के चरणों के चिन्ह मान कर पूजते हैं। यह पहाड़ जैन हिन्दू और मुसल्मान सर्व ही का तीर्थस्थान होने से ही सब ही के द्रव्य दान से इस पहाड़ पर चढ़ने की उपर्युक्त सात सहस्र से अधिक सीढ़ियां बनवाई गई हैं॥

नोट ७.—गिरि नगर (गिरिनार या अजाखुरी) के उपर्युक्त राजा "राष्ट्रवर्धन" की एक परम सुन्दरी पुत्री "सुसीमा" नामक श्री कृष्ण की आठ पटरानियों में से एक थी॥

श्री कृष्ण की आठ पटरानियां यह थीं :—

१. सत्यभामा—रजिताद्रि पर्वत (विजयार्द्ध या वैताढ्य पर्वत) की दक्षिण श्रेणी पर के रथनूपुराधीश विद्याधर राजा सुकेतु की पुत्री जो उनकी रानी स्वयंप्रभा के उदर से उत्पन्न हुई थी॥

२. रुक्मिणी—विदर्भ देश के प्रसिद्ध नगर कुंडलपुर के राजा 'वासव' जो 'भीष्म' नाम से प्रसिद्ध थे उनकी "श्रीमती" नामक रानी के उदर से उत्पन्न हुई पुत्री॥

३. जाम्बवती—विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी पर के जम्बुपुर (जांबव) नामक नगर के विद्याधर राजा "जाम्बव" की रानी शिवचन्द्रा (जम्बुषेणा) के उदर से उत्पन्न हुई पुत्री॥

४. सुसीमा (सुशीला)—सुराष्ट्रदेश (गुजरात-काठियावाड़) की राजधानी गिरिनगर (अजाखुरी) के राजा राष्ट्रवर्द्धन (गुणशालि वर्द्धन) और उनकी रानी ज्येष्ठा (विजया) की पुत्री॥

५. लक्ष्मणा—सिंहल द्वीप के सुप्रकारपुर नरेश राजा "शम्बर" (इलक्षणरोम) और उनकी रानी श्रीमती (कुरुमती) की पुत्री॥

६. गान्धारी—गन्धार देश की राजधानी पुष्कलावती के राजा "इन्द्रगिरि" और उनकी रानी "मेरुमती" की पुत्री॥

७. गौरी—सिन्धु देश की राजधानी "वीतशोकापुरी" के राजा मेरुचन्द्र" की रानी चन्द्रवती की पुत्री॥

८. पद्मावती—अरिष्टपुराधीश राजा "स्वर्णनाभ" (हिरण्यनाभ, हरिधर्मा) और उनकी रानी 'श्रीमती' (श्रीकान्ता) की पुत्री॥

नोट ८—श्री कृष्ण की उपर्युक्त प्रत्येक पटरानी का चरित्रादि जानने के लिये देखो ग्रन्थ "बृहत् विश्व चरितार्णव"॥

अज्ञातकल्प— अगीतार्थ का आचार (अ. मा. अजाय कप्प)॥

अजातशत्रु—(१) जिसका कोई शत्रु न जन्मा हो या जो जन्म ही से किसी का शत्रु न हो।

(२) मगधदेश का एक प्रसिद्ध राजा। यह राज्य प्राप्त करने से पूर्व "कोणिक" या 'कुणिक' नाम से प्रसिद्ध था। यह 'शिशुनाग वंशी' महामंडलेश्वर राजा 'श्रेणिक बिम्बसार' का ज्येष्ठ पुत्र था जो उसकी 'चेलना' रानी के गर्भ से जन्मा था। इस के सहोदर लघु भ्राता (१) वारिषेण (२) हल्ल (३) विहल्ल (४) जित-

शत्रु (५) गजकुमार या हस्तिकुमार और (६) मेघ कुमार थे। यह अपने छहों लघु भ्राताओं से अधिक भाग्यशाली और वीर परन्तु अपनी पूर्व अवस्था में दयाशून्य और अधर्मी था। अजातशत्रु से बड़ा इसका एक और भाई भी था जो श्रेणिक की दूसरी रानी 'नन्दश्री' के गर्भ से अपनी ननिहाल में उत्पन्न हुआ था। इस का नाम 'अभयकुमार' था जो बड़ा चतुर, पटुबुद्धि, दूरदर्शी और धर्मज्ञ था। महाराजा ने इसी को युवराज पद दिया था और अपनी सेना का सेनापति भी नियत किया था, परन्तु जब 'अजातशत्रु कुणिक' के अनुचित बर्ताव से जितशत्रु के अतिरिक्त अन्य भ्राताओं के गृहत्यागी हो जाने पर महाराजा श्रेणिक ने कुणिक को राज्य पाने की अति लालसा में ग्रसित देख कर और अपनी आयु का शेष समय धर्मध्यान में बिताने के शुभ विचार से राज्य भार सब कुणिक ही को सौंप दिया तो इस अधर्मी ने इस पर भी सन्तुष्ट न हो कर थोड़े ही समय पश्चात् अपने धर्मज्ञ पूज्य पिता को एक 'देवदत्त' नामक गृहत्यागी के कहने से काँटेदार काठ के एक कठहरे में बन्द कराकर कारागृह में भिजवा दिया और बहुत दिन तक बड़ा कष्ट देता रहा। माता के बारम्बार समझाते रहने पर और पालक (लोकपाल) नामक अपने शिशु पुत्र के स्नेह में अपने मन को अति मोहित देखकर जब एक दिन उसने पैतृक प्रेम का मूल्य समझा तो उसे अपनी भूल और नादानी पर अत्यन्त खेद और पश्चात्ताप हुआ। तुरन्त ही पिता को बन्धनमुक्त करने के लिये बन्दीगृह में गया। परन्तु महाराजा श्रेणिक ने दूर से ही इसे अपनी ओर शीघ्रता से आता हुआ देख कर और यह समझ कर कि यह क्रूरचित्त इस समय मुझे अवश्य कोई अधिक कष्ट देने के लिये आरहा है तुरन्त अपघात कर लिया जिस से कुणिक और उसकी माता चेलना को अति शोक हुआ। पश्चात् जैनधर्म की अटल श्रद्धालु महारानी 'चेलना' ने अपनी छोटी सहोदरा बहन 'चन्दना' के पास जा कर, जो बाल ब्रह्मचारिणी परम तपस्वनी आर्यिका थी, आर्यिका (गृहत्यागी स्त्री) के व्रत नियमादि धारण कर लिये।

वीर निर्वाण से ८ वर्ष पूर्व और गौतम बुद्ध के शरीरोत्सर्ग से १० वर्ष पूर्व (सम्वत् विक्रमी से ४९६ वर्ष और सन् ईस्वी से ५५३ वर्ष पूर्व) "अजातशत्रु" ने मगध देश का राज्य पाकर विदेह देश या तिरहुत प्रान्त, और अङ्गदेश को भी अपने राज्य में मिला लिया और पिता के पश्चात् इसने 'राजगृही' की जगह 'चम्पापुरी' को अपनी राजधानी बनाया। पिता की मृत्यु के पीछे उसी के शोक में जब कुछ कम एक वर्ष, और सर्व लगभग ३१ वर्ष के राज्य शासन के पश्चात् 'अजातशत्रु' ने मुनि दीक्षा ग्रहण करली तो इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र 'पालक' बना जो दर्शक, दर्भक, हर्षक आदि कई नामों से प्रसिद्ध था। इसका राज्य अभिषेक, 'लोकपाल' नाम से किया गया और बालक होने के कारण इसके पितृव्य (चचा) जित शत्रु को इसका संरक्षक बनाया गया। यह 'अजातशत्रु' की 'अवन्ती' नामक रानी के गर्भ से

उत्पन्न हुआ था ॥

नोट १—महाराजा 'श्रेणिक बिम्बसार' ने अपनी कुमार अवस्था में एक बौद्ध श्रमण के उपदेश से बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था परन्तु राजगद्दी पर बैठने और महारानी चेलिनी के साथ विवाह होने के कुछ समय पश्चात् इन्हों ने महारानी चेलिनी के अनेक उपायों द्वारा पैतृकधर्म अर्थात् जैनधर्म को फिर स्वीकृत कर लिया जिस पर इनकी इतनी दृढ़ अचल और गाढ़ श्रद्धा हो गई थी कि यह अन्तिम तीर्थंकर श्री 'महावीर वर्द्धमान' की धर्मसभा के मुख्य श्रोता या 'श्रोता श्रोमणि' माने जाते थे। और राज्यप्रबंध का बहुभाग अपने पुत्रों और मंत्रियों पर छोड़ कर अपना अधिक समय धर्मोपदेश सुनने या तत्व विचार में व्यय करते थे। 'अजातशत्रु' अपनी वीरता और विज्ञता के घमंड में अपने अन्य भ्राताओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखता हुआ और शीघ्र से शीघ्र पूर्ण राज्याधिकार पाने की लोलुपता में ग्रसित रह कर अपने धर्म कर्म से सर्वथा विमुख था। उपर्युक्त देवदत्त ब्रह्मचारी गृहत्यागी की सहायता से उसी के रचे षड्यंत्र द्वारा अपने अन्य भाइयों के विरक्त होकर गृहत्यागी होजाने पर इसने राज्य प्राप्त किया था। अतः यह देवदत्त का बड़ा कृतज्ञ था। देवदत्त जैनधर्म और बौद्धधर्म दोनों ही से हार्दिक द्रोह रखता था। इसी लिये इसी के प्रभाव से दब कर 'अजातशत्रु' ने अपने पैतृकधर्म जैनधर्म को त्याग कर वैदिक धर्म ग्रहण कर लिया था और इसी कारण देवदत्त के कहने में आकर पिता को कारागृह में डाला था।

नोट २—महाराजा श्रेणिक की निम्न लिखित तीन रानियां थीं:—

(१) नन्दश्री—वेणपद्म नगर निवासी सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री जिसके गर्भ से 'अभयकुमार' का जन्म हुआ ॥

(२) चेलिनी—वैशाली नगराधीश राजा चेटक की पुत्री जिसके गर्भ से उपर्युक्त 'कुणिक अजातशत्रु' आदि ७ पुत्र उत्पन्न हुए। [पीछे देखो शब्द 'अकम्पन' (८)] ॥

(३) विलासवती (तिलकावती)—केरल नरेश मृगांक की पुत्री। इस के गर्भ से एक 'पद्मावती' नाम की पुत्री जन्मी थी ॥

नोट ३—'अजातशत्रु' की माता 'चेलिनी' की गणना १६ प्रसिद्ध सतियों अर्थात् विदुषी, शीलवती और पतिव्रत-परायण स्त्रियों में की जाती है जिनके नाम यह हैं:—(१) ब्राह्मी (२) सुन्दरी या शीलवती (३) कौशल्या (४) सीता (५) कुन्ती (६) द्रौपदी (७) राजमती या राजुल (८) चन्दना या चन्दनबाला (९) सुभद्रा (१०) शिव देवी (११) चेलिनी या चूला (१२) पद्मावती (१३) मृगावती (१४) सुलसा (१५) दमयन्ती (१६) प्रभावती ॥

शुद्ध मन बचन काय से पातिव्रत्य पालन करने में यद्यपि अञ्जना सुन्दरी, मैना सुन्दरी, रयनमंजूषा, विशल्या, मनोरमा आदि अनेक अन्य स्त्रियां भी पुराणप्रसिद्ध हैं परन्तु १६ की गणना में उनका नाम नहीं गिनाया गया है ॥

नोट ४—मगध की गद्दी पर शिशुनाग वंशियों के राज्याधिकार पाने का सम्बन्ध और उसका प्रारम्भ निम्न प्रकार है:—

महाभारत युद्ध में चन्द्रवंशी मगधनरेश 'जरासन्ध' के श्री कृष्ण के हाथ से मारे जाने के पश्चात् जब 'जरासन्ध' का अन्तिम वंशज

'रिपुंजय' मगध का राजा था जो इसे इसके मंत्री 'शुनकदेव' ने वि० सं० से ६७७ वर्ष पूर्व मार कर अपने पुत्र प्रद्योतन को मगध का राजा बना दिया। इस वंश में वि० सं० के ६७७ वर्ष पूर्व से ५८५ वर्ष पूर्व तक ९२ वर्ष में प्रद्योतन, पालक, विशाखयूप, जनक और नन्दिवर्द्धन, इन ५ राजाओं के पश्चात् 'शिशुनाग' नामक ऐसा वीर, प्रतापी और लोकप्रिय राजा हुआ कि आगे को यह वंश इसी के नाम पर 'शिशुनागवंश' नाम से प्रसिद्ध हो गया। शिशुनाग वंश में (१) शिशुनाग (२) काकवर्ण या शाकपर्ण (३) क्षेमधर्मण (४) क्षत्रौज (क्षेमजित, क्षेत्रज्ञ क्षेमार्चि या उपक्षेणिक) (५) श्रेणिक बिम्बसार (विन्ध्यसार, बिन्दुसार या विधिसार) (६) कुणिक अजातशत्रु (७) दरभक (दर्शक, हर्षक, या वंशक) (८) उदयाश्व (उदासी, अजय, उदायी, या उदयभद्रक) (९) नन्दिवर्द्धन (अनुरुद्धक या मुंड) (१०) महानन्दि, यह १० राजा वि० सं० के ५८५ वर्ष पूर्व से ४२३ वर्ष पूर्व तक १६२ वर्ष में हुए।

नोट ५.—मगध का राज्य शिशुनागवंशी अन्तिम राजा 'महानन्दि' के हाथ से निकल कर और कई भिन्न २ देशीय अज्ञात राजाओं के अधिकार में ६४ वर्ष रह कर नवनन्द*अर्थात् नवीन या दूसरा महानन्द (नन्दमहापद्म) और सुमाल्य (सुकल्प) आदि उसके कई पुत्रों के अधिकार में ९१ वर्ष रहा। पश्चात् महाराजा चन्द्रगुप्त से वृहद्रथ तक १० मौर्यवंशी राजाओं के अधिकार में रह कर मगध का राज्य शुङ्गवंशी पुष्पमित्र को मिला। इस वंश के ११ राजाओं ने ११२ वर्ष तक राज्य किया। (पीछे देखो शब्द 'अग्निमित्र' और इसके नोट १, २)॥

नोट ६.— जरासन्ध' के समय में मगध की राजधानी गिरिव्रज' नगरी थी जिसे बदल कर श्रेणिक ने अपनी नवीन बसाई नगरी राजगृही को, फिर उसके पुत्र अजातशत्रु ने चम्पापुरी और राजगृही दोनों को, पश्चात् 'उदयाश्व' ने (किसी २ की सम्मति में 'अजातशत्रु' ही ने) पाटलीपुत्र (पटना) को राजधानी बनाया॥

नोट ७.—मत्स्यपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मांडपुराण, भागवत, आदि पुराणों तथा अन्यान्य ऐतिहासज्ञों के लेखों में मगधदेश के राजाओं के नाम, गणना, समय और शासनकाल आदि के सम्बन्ध में परस्पर बहुत कुछ मत भेद पाया जाता है॥

उपरोक्त नोट ४ और ५ का सारांश अगले पृष्ठ के कोष्ठ से देखें:—

---

* नव शब्द का अर्थ नवीन और नव की संख्या अर्थात् ९, यह दोनों हैं। अतः कई ऐतिहासज्ञों ने दूसरा अर्थ मान कर लिखा है कि नव-नन्द अर्थात् 'नन्दमहापद्म' (महानन्द) और उसके नन्द नाम से प्रसिद्ध ८ पुत्रों, एवं सर्व ९ नन्दों ने ९१ वर्ष तक मगध का राज्य किया। किसी किसी ने शिशुनागवंशी अन्तिम राजा महानन्दि के पश्चात् होने वाले कई अज्ञात नाम वाले राजाओं का राज्यकाल ६४ वर्ष नन्दवंश के राज्यकाल ९१ वर्ष में जोड़ कर नन्दवंश का ही राज्यकाल १५५ वर्ष लिखा है॥

मगध देश के राज-वंश ।

क्रम संख्या	वंश	वर्षसंख्या	वीर निर्वाण सम्वत्	विक्रम संवत्	ईस्वी सन्	शाका संवत्
			महाभारत युद्ध के अन्त से			
१.	जरासन्ध की सन्तान	...	१८६ वर्ष पूर्व तक	६७७ वर्ष पूर्व तक	७३४ वर्ष पूर्व तक	८१२ वर्ष पूर्व तक
२.	शिशुनाग के पूर्वज (५ राजा)	९२	९७ वर्ष पूर्व तक	५८५ वर्ष पूर्व तक	६४२ वर्ष पूर्व तक	७२० वर्ष पूर्व तक
३.	शिशुनाग वंश (१० राजा)	१६२	सं० ६५ तक	४२३ " "	४८० " "	५५८ " "
४.	कई भिन्न भिन्न देशीय राजा	६४	सं० १२९ तक	३५९ " "	४१६ " "	४९४ " "
५.	नन्दवंश (२ या ९ राजा)	९१	सं० २२० तक	२६८ " "	३२५ " "	४०३ " "
६.	मौर्यवंश (१० राजा)	१४०	सं० ३६० तक	१२८ " "	१८५ " "	२६३ " "
७.	शुङ्गवंश (११ राजा)	११२	सं० ४७२ तक	१६ " "	७३ " "	१५१ " "

(३) अजातशत्रु एक यादव वंशी राजा का भी नाम था, जो श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव की एक "जरा" नामक रानी के पुत्र "जरत्कुमार" का एक वंशज था और जो २३वें तीर्थंकर 'श्री पार्श्वनाथ' की निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् "सुराष्ट्र" और 'कलिङ्ग' देश में राज्य करता था। (देखो ग्रन्थ 'बृ. वि. च.') ॥ (हरि० सर्ग ६६ श्लोक १-५)

(४) अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर का भी एक अपर नाम था ॥

(५) एक ब्रह्मज्ञानी राजा का नाम भी अजातशत्रु था, जो श्री कृष्ण के समय में विद्यमान था ॥

अज्ञाता—साधु के तजने योग्य वस्तु को यत्नाचार पूर्वक त्यागना ॥
(अ. मा. अज्ञाया) ॥

अज्ञानफल—अज्ञातफल ॥
२२ प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों में 'अज्ञानफल' भी एक पदार्थ माना जाता है। (पीछे देखो शब्द 'अखाद्य') ॥

अजित—[१] अजेय जो किसी से जीता न जा सके, नेत्र रोग निवारक एक तैल विशेष, एक प्रकार का ज़हरमुहरा, एक प्रकार का ज़हरीला चूहा। विष्णु, शिव, शुद्धात्मा, परमात्मा ॥

[२] द्वितीय तीर्थंकर का नाम। वर्त्तमान अवसर्पिणी काल के गत चतुर्थ विभाग 'दुःखम सुखम' नामक काल में हुए २४ तीर्थङ्करों (धर्मतीर्थ प्रवर्त्तक महान पुरुषों) में से द्वितीय तीर्थंकर का नाम 'अजित' या 'श्री अजितनाथ' है ॥

१. इन्होंने इक्ष्वाकवंशी काश्यप गोत्री अयोध्या नरेश महाराज 'जितशत्रु' (नृपजित) की पटरानी 'विजयादेवी' (विजयसेना) के गर्भ में शुभ मिती ज्येष्ठ कृष्ण ३० (अमावस्या) की रात्रि के पिछले प्रहर 'रोहिणी' नक्षत्र में विजय नामक अनुत्तर विमान से आकर और दश दिवस अधिक अष्टमास गर्भस्थ रह कर नवम मास में शुभ मिती माघ शुक्ल १० को प्रातःकाल रोहिणी नक्षत्र में जन्म धारण किया ॥

२. इन का जन्म प्रथम तीर्थङ्कर 'श्री ऋषभदेव' के निर्वाण गमन से लगभग ७२ लक्ष पूर्व्व काल कम ५० लक्ष कोटि सागरोपमकाल पीछे, और अन्तिम अर्थात् २४वें तीर्थंकर 'श्री महावीर स्वामी' के निर्वाण काल से लगभग ४२ सहस्र वर्ष कम ७२ लक्ष पूर्व्व अधिक ५० लक्ष कोटि सागरोपमकाल पहिले हुआ ॥

नोट १—८४ लक्ष वर्ष का एक पूर्व्वाङ्ग काल और ८४ लक्ष पूर्वाङ्ग का एक पूर्व्वकाल होता है। ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००० (२७ अङ्क और २० शून्य, सर्व सैंतालीस अङ्क प्रमाण) वर्ष का एक व्यवहार पल्योपमकाल और १० कोड़ाकोड़ी अर्थात् १ पद्म (१०००००००००००००००) व्यवहार पल्योपमकाल का १ व्यवहार सागरोपमकाल होता है। (देखो शब्द 'अङ्कविद्या' का नोट ८) ॥

अतः ७०५६०००००००००० वर्ष का एक पूर्व्व काल और ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२ ०००००००००००००००००००००००००००००००००००० (२७ अङ्क और ३५ शून्य, सर्व ६२ अङ्क प्रमाण) वर्षों का एक व्यवहार सागरोपमकाल होता है ॥

३. जिस रात्रि को 'श्री अजितनाथ' अपनी माता के शिशुकुक्षि अर्थात् गर्भ में आये उस रात्रि के अन्तिम भाग में इनकी माता ने निम्न लिखित १६ शुभ स्वप्न देखेः—

(१) स्वेत ऐरावत हस्ती।
(२) गम्भीर शब्द करता एक पुष्ट स्वेत वृषभ अर्थात् बैल।
(३) निर्भय विचरता हुआ केहरिसिंह।
(४) लक्ष्मीदेवी जिसे दो स्वेत हस्ती अपनी अपनी सूँड़ में स्वच्छ जल भर कर स्नान करा रहे थे।
(५) आकाश में लटकती दो सुगन्धित पुष्पमालाएँ।

(६) तारागण मंडित पूर्ण चन्द्रमण्डल।
(७) उदय होता हुआ सूर्य।
(८) कमलपत्रों से ढके दो स्वर्ण कलश।
(९) सरोवर में कल्लोल करती मछलियों का जोड़ा।
(१०) स्वच्छ जल से भरा एक विस्तीर्ण सरोवर।
(११) जलचर जीवों सहित विशाल समुद्र।
(१२) रत्नजड़ित एक उत्तंग सिंहासन।
(१३) आकाश में गमन करता एक रत्नमय देवविमान।
(१४) पृथ्वी से निकलता एक नागेन्द्र भवन।
(१५) बहु मूल्य रत्नों की एक ऊँची राशि।
(१६) निर्धूम्र प्रज्वलित अग्नि।

इन १६ स्वप्नों के पश्चात् माता ने अपने मुख मार्ग से एक श्वेत गन्धसिन्धुर (गन्ध युक्त हस्ती) को सूक्ष्म रूप में प्रवेश करते देखा और फिर तुरन्त ही निद्रा खुल गई॥

४. गर्भ में इस महान पवित्र आत्मा के अवतीर्ण होने से षट मास पूर्व ही से महाराजा 'जितशत्रु' के नगर व राज भवन में दैवबल से अनेक दिव्य शक्तियों का प्रकाश दिव्य दृष्टि रखने वालों को दृष्टिगोचर होता रहा। इस दैवी चमत्कार से माता के गर्भ का समय पूर्ण आनन्द और भगवद् भक्ति व धर्मचर्चा में व्यतीत हुआ। प्रसव के समय भी माता को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ किन्तु उस महान आत्मा के पूर्ण पुण्योदय से क्षण भर के लिये संसार भर में आनन्द लहर विद्युत लहर की समान फैल गई।

५. अपने अपने 'मति-ज्ञानावरण' और 'श्रुत-ज्ञानावरण' कर्मों के क्षयोपशमानुसार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, यह दो प्रकार के ज्ञान तो अरहन्तों व सिद्धों के अतिरिक्त त्रैलोक्य के प्राणी मात्र को हर समय निरन्तर कुछ न कुछ प्राप्त हैं पर इस पवित्र आत्मा को अपने अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान के अतिरिक्त तीसरा अनुगामी सु-अवधिज्ञान भी गर्भावस्था से ही प्राप्त था जो साधारण मनुष्यों में से किसी किसी को ही उग्रतपोबल से प्राप्त होता है। अतः इस महान आत्मा को विद्याध्ययन या किसी लौकिक या पारमार्थिक शिक्षा के लिये किसी विद्या-गुरु की आवश्यका न हुई॥

६. इनका दिव्य पवित्र भोजन-पान इतना विशुद्ध, सूक्ष्म, अल्प और अगरु (हलका) होता था जो पूर्ण रूप से शरीराङ्ग बन जाता था जिससे साधारण प्राणियों की समान इन के शरीर में मल-मूत्र और स्वेद (पसीना) न बनता था अर्थात् सम्पूर्ण भोज्य पदार्थ यथा आवश्यक शरीर की सप्त धातुओं में परिवर्तित हो जाता था जिस से इन्हें मल मूत्र आदि किसी भी मैल-त्याग की आवश्यकता न पड़ती थी॥ *

* आयु भर भोजन पान ग्रहण करते हुये मल मूत्र त्याग न करना यद्यपि एक आश्चर्यजनक और बड़ी ही अद्भुत बात है तथापि सर्वथा असम्भव नहीं है। जब कि हम यह देखते हैं कि आज कल भी कोई २ साधारण मनुष्य कभी कभी और कहीं कहीं ऐसे दृष्टि गोचर होजाते हैं जो दो चार आठ दिन, या पक्ष दोपक्ष ही नहीं, दो चार मास या केवल वर्ष दो वर्ष नहीं,

७. इनके शरीर का रुधिर रक्तवर्ण न था किन्तु दुग्ध जैसा श्वेतवर्ण था। इनका शरीर अति सुन्दर, सुगन्धित, समचतुरस्र, और अष्टाधिक सहस्र (१००८) शुभ लक्षण युक्त था। इनके शरीर का संहनन वज्रवृषभनाराच और अतुल्य बलवान था। सदैव हित मित प्रिय वचन बोलना उन का स्वभाव था॥

८. इन के शरीर का वर्ण और कान्ति ताये स्वर्ण-समान देदीप्यमान और ऊँचाई ४५० धनुष अर्थात् ९०० गज़ थी। इन के शरीर के १००८ शुभ लक्षणों में से एक 'गज चिन्ह' मुख्य था जो इन के वाम चरण की पगतली में था॥

९. इन का सम्पूर्ण आयुकाल लगभग ७२ लक्ष पूर्व का था जिस में से चतुर्थ भाग अर्थात् लगभग १८ लक्ष पूर्व की वय तक यह कुमार अवस्था में रहे। पिता के दीक्षित होने के पश्चात ५३ लक्ष पूर्व और एक पूर्वाङ्ग काल तक मंडलेश्वर राज्य-वैभव का सुख भोगते रहने पर भी यह भोगों में किसी समय लिप्त न हुए।

राज्य कार्य को जिस उत्तम से उत्तम प्रबन्ध और पूर्ण योग्यता के साथ इन्होंने किया उसके विषय में इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि इन सर्व कलापूर्ण और विद्यानिपुण महानुभाव ने प्रजा के उपकार में अपनी शक्ति का कोई अंश बचा

किन्तु निम्न लिखित एक व्यक्ति तो पूरे बारह वर्ष तक नित्य प्रति भोजन पान ग्रहण करता हुआ भी मल-त्याग बिना पूर्ण निरोग और हृष्ट पुष्ट बना रहा :—

१. श्रीमान् बाबू प्यारे लाल जी ज़मींदार बरौठा, डाकखाना हर्दुआगंज, ज़ि० अलीगढ़ जो एक प्रतिष्ठित और सुप्रसिद्ध पुरुष हैं और जो ज्योतिष, वैद्यक, गणित, इतिहास, भूगोल, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, इत्यादि अनेक विद्याओं और कलाओं सम्बन्धी अनेकानेक ग्रन्थों के रचयिता व अनुवादकर्ता हैं, निज रचित 'जौहरेहिकमत' नामक उर्दू ग्रन्थ की सन् १८८८ ई० की छपी द्वितीय आवृत्ति के सप्तम भाग 'इलाजुलअमराज़' के पृष्ठ ७ पर संख्या (२) में निम्न समाचार लिखते हैं :—

"मौज़ा सासनी, तहसील इग्लास, ज़िला अलीगढ़ में मेरे मामू का साला एक शख़्स पटवारी है। उसकी बारात गई। रास्ते में वह एक क़ब्र के पास पाख़ाने को बैठा। उसी रोज़ से उसका पाख़ाने जाना बन्द होगया। वह तन्दुरुस्त रहा। खूब खाता पीता जवान होगया। मगर बारह बरस तक कभी उसको पाख़ाने की हाजत न हुई न दस्त आया। डाक्टरी इलाज कराया मगर बेसूद। आख़िर उसकी औरत मर गई। फिर दूसरी शादी हुई। उस वक़्त से खुद बख़ुद वह पाख़ाने जाने लगा और दस्त आने लगा"॥

यद्यपि इस कोषके लेखक ने इस १२ वर्ष तक मल त्याग न करने वाले व्यक्तिको स्वयम् नहीं देखा तथापि इसके पितामह के एक चचेरे भ्रात स्वर्गीय श्रीमान् लाला मिट्ठन लाल जी सबओवरसियर ने जो उस समय स्थान हर्दुआगंज ज़िला अलीगढ़ में कार्य करते थे स्वयम् उसे कई बार मल न त्याग करने की अवस्था में पूर्ण निरोग और स्वस्थ्य देखा था जिससे उपर्युक्त लेख की पूर्णतयः पुष्टि हो जाती है॥

२. उपर्युक्त व्यक्ति के अतिरिक्त चार चार, पाँच पाँच, आठ आठ, दश दश, या ग्यारह ग्यारह दिवश के पश्चात् मल त्याग करने वाले निरोग स्त्री या पुरुष तो कई एक सुनने और देखने में आये हैं। इस कोषके पाठकों में से भी कुछ न कुछ महाशयों ने ऐसे कोई न कोई व्यक्ति अवश्य देखे या सुने होंगे।

३. इस कोष के लेखक की पुत्रवधू को लगभग सदैव ही नित्य प्रति दोनों समय उदर

नहीं रखा। इनके शासन काल में प्रजा सर्व प्रकारसे सुखी धर्मिष्ठ और षट कर्म परायण थी। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों का यथायोग्य रीति से निर्विघ्न साधन करती थी। सागार और अनागार धर्म अर्थात् गृहस्थ और मुनि धर्म दोनों ही सर्वांश सुव्यवस्थित नियमानुकूल पालन किये जाते थे।

१०. जब आयु में एक पूर्वाङ्ग कम एक लक्ष पूर्व और एक मास २६ दिन शेष रहे तब माघ शु० ८ की रात्रि को 'उल्कापात' अवलोकन कर क्षणक सांसारिक विभव से एक दम विरक्त हो गये॥

अगले दिन माघ शु० ९ को प्रातःकाल ही अपने प्रियपुत्र 'अजितसेन' को राज्यभार सौंप कर अपरान्ह काल, रोहिणी नक्षत्र में जबकि तिथि १० का प्रारम्भ हो चुका था 'सुप्रभा' नामक दिव्य शिविका (पालकी) में आरूढ़ हो अयोध्यापुरी (विनीता पुरी वा साकेतानगरी) के बाहर सहेतुक (सहकाम्र) नामक बन में पहुँचकर और विषमच्छद अर्थात् सप्तछद या सप्तपर्ण वृक्ष (सतौने का पेड़) के नीचे षष्ठोपवास (बेला, दुला) का नियम लेकर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। इसी समय इन्हें चतुर्थ ज्ञान अर्थात् 'मनः-

---

भर भोजन खाते पीते रहने पर भी प्रायः प्रत्येक तीन तीन, चार चार दिवश में निहार अर्थात् मल त्याग की आवश्यकता पड़ती है। इस के अतिरिक्त तीन व्यक्ति ऐसे देखने और कई एक के सम्बन्ध में सुनने का अवसर मिला है जिनकी प्रकृति आठ आठ दश दश या ग्यारह ग्यारह दिवश के पश्चात् निहार करने की थी। इनमें से एक दो के सम्बन्धमें ऐसा भी देखने और सुनने में आया कि उनके पसीने में तथा मुख में कुछ विशेष प्रकार का दुर्गन्धि भी आती थी। शेष व्यक्ति सर्व प्रकार से निरोग और स्वस्थ्य थे॥

चरक आदि वैद्यक ग्रन्थों से यह भी पता लगता है कि 'भस्मकव्याधि' नामक एक रोग भी ऐसा होता है जिस का रोगी चाहे जितना भोजन करै वह सर्व ही मल नहीं बनता किंतु उदर में पहुँचते ही भस्म होकर अदृश्य हो जाता है जिससे ऐसा रोगी क्षुधा से हर दम बेचैन रहता है। यह रोग कफ़ के अत्यन्त कम हो जाने और बात पित्त के बढ़ जाने से जठराग्नि तीव्र होकर उत्पन्न हो जाता है। इसे अङ्गरेज़ी भाषा में बूलीमूस (Bulimus), अरबी भाषा में 'जूउलबक़' और उर्दू भाषा में 'भूख का हौका' बोलते हैं॥

उपर्युक्त कथन से निःसंकोच यह तो प्रतीत हो ही जाता है कि ग्रहण किये हुए स्थूल भोजन का भी असार भाग स्थूल मल बन कर किसी न किसी अन्य सूक्ष्म और अदृश्य रूप में परिवर्तित होकर शरीर से निकल जा सकता है। अतः जब साधारण व्यक्तियों के सम्बन्ध में स्थूल और गरिष्ट आदि सर्व प्रकार का अधिक भोजन करते हुए भी किसी न किसी विशेष कारण से उन के शरीर में स्थूल मल न बनने की सम्भावना है तो दिव्यशक्तियुक्त महा पुण्याधिकारी असाधारण पुरुषों का विशुद्ध सूक्ष्म और अल्प आहार मलमूत्रादिक रूप में न परिवर्तित होना कैसे असम्भव हो सकता है। यहां इतना विशेष है कि साधारण व्यक्तियों के शरीर में तो आहार का असार भाग (खलभाग) स्थूल या सूक्ष्म मल के रूप में अवश्य परिवर्तित होता और किसी न किसी मार्ग से शीघ्र या अशीघ्र कभी न कभी निकल जाता है परन्तु तीर्थङ्कर जैसे असाधारण व्यक्तियों का प्रथम तो आहार ही ऐसा विशुद्ध होता है जिस में असार भाग नहीं होता, द्वितीय उन के शरीर की जठराग्नि तथा अग्न्याशय, पाकाशय आदि अङ्ग भी असाधारण होते हैं जो आहार को सर्वाङ्ग रस में परिवर्तित कर के खल भाग शेष नहीं छोड़ते॥

पर्य्ययज्ञान' का भी आविर्भाव हो गया ॥

११. जिस समय इन्होंने दीक्षा धारण की उस समय इन के अनन्य भक्त एक सहस्र अन्य राजाओं ने भी इन का साथ दिया ॥

१२. षष्ठोपवास (बेला) के दो दिन बीतने पर माघ शु० १२ को अरिष्टपुरी अर्थात् अयोध्या ही में महाराज ब्रह्मदत्त (ब्रह्मभूत) ने इन्हें नवधा भक्ति पूर्वक गोदुग्ध पाक का शुद्ध और पवित्र आहार निरन्तराय कराया ॥

१३. मुनि दीक्षा धारण करने के पश्चात् ११ वर्ष, ११ मास और १ दिन तक के उग्रोग्र तपोबल से इनके पवित्र आत्मा में अनेक ऋद्धियों का प्रकाश हुआ और अन्त में शुभमिति पौष शु०११ को अपराह्न काल (सायंकाल) रोहिणी नक्षत्र में अयोध्यापुरी के समीप ही के बनमें षष्ठोपवासान्तर्गत ज्ञानावरणी आदि चारों घातिया कर्मोंका एकदम अभाव होकर अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्तवीर्यका आविर्भाव होगया॥

नोट २—जब कभी किसी तपोनिष्ठ महानुभाव के आत्मा में महान तपोबल से 'अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय' का आविर्भाव और ४६ मूलगुणों तथा ८४ लक्ष उत्तर गुणों की पूर्णता हो जाने पर जो परम पूज्य, पवित्र और परमोत्कृष्ट अवस्था प्राप्त हो जाती है, उसी अवस्था विशेष का नाम 'अर्हन्त' (अरहन्त) है। घातिया कर्मों पर विजय पाने के कारण उसी अवस्था या पदवी का नाम 'जिन' है। कर्ममल दूर होने और परम उच्च बन कर त्रैलोक्य पूज्य अपूर्व अवस्था की नवीन उत्पत्ति होजाने से 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मा', 'कैवल्यज्ञान' (पूर्णज्ञान या अनन्तज्ञान) का प्रकाश होकर सर्वत्र उसकी व्यापकता होने से 'विष्णु', और अनन्त सुख सम्पत्ति युक्त पूर्णानन्दमय होने से तथा सर्व घातिया कर्मोंको जो संसारोत्पत्ति या जन्ममरणका मुख्य कारण हैं नष्ट कर देने से 'शिव', लोकालोक के सर्व चराचर पदार्थों का निरावरण अतेन्द्रिय ज्ञान प्राप्त हो जाने से 'सर्वज्ञ', तीन काल सम्बन्धी पदार्थों का ज्ञाता होने से 'त्रैकालज्ञ', इत्यादि अष्टाधिक सहस्र या असंख्य और अनन्त "यथा गुण तथा नाम" इसी अवस्था युक्त पवित्र आत्मा के हैं। आत्मा की इसी अवस्था का नाम "जीवनमुक्ति" या 'सदेहमुक्ति' है। इसी अवस्थायुक्त आत्मा को "सकल परमात्मा" भी कहते हैं।

१४. कैवल्य ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् 'श्री अजितनाथ' के द्वारा एक पूर्वांङ्ग ११ वर्ष,१०मास,६ दिन कम एकलाख पूर्व्वकाल तक अनेक भव्य प्राणियों को धर्मोपदेश का महानलाभ प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् बङ्गदेशस्थ 'सम्मेदाचल' अर्थात् सम्मेदपर्वत जो बङ्गाल देशान्तर्गत 'हज़ारीबाग़' ज़िले में आज कल 'पार्श्वनाथहिल' या 'पार्श्वनाथ पर्वत के नाम से लोक प्रसिद्ध है उस के शिखर (चोटी) पर शुभ मिती फाल्गुन शु० ५ को पहुँचकर आयु के शेष भाग अर्थात् एक मास पर्यन्त 'सिद्धकूट' नामक कूट पर ध्यानारूढ़ रहे जिससे शेष चारों अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर शुभ मिती चैत्र शु०५ के प्रातःकाल रोहिणी नक्षत्र में कायोत्सर्ग आसन से परमोत्कृष्ट निर्वाणपद प्राप्त किया ॥

१५. श्री अजितनाथ के सम्बन्ध में अन्य ज्ञातव्य बातें निम्न लिखित हैं:—

(१) कैवल्यज्ञान प्राप्त होतेही धर्मोपदेशार्थ ४ प्राकार (गोलाकार कोट की भीत या चार दीवारी), ५ वेदिका, ८ पृथ्वी, १२ सभाकोष्ठ, ३ पीठ, और १ गन्धकुटी, इत्यादि रचनायुक्त जो दिव्य गोलाकार समवशरण अर्थात् सर्व प्राणियों को समभाव से अवशरण देने वाले सभामन्डप की रचना की गई उस का व्यास साढ़े ११ योजन (४६ क्रोश या लगभग १०४ मील) था। [विशेष रचना देखो धर्म सं. श्रा० अधि० २, श्लोक ४६-१४२]॥

(२) इन की सभा में ९० गणधर, ३७५०पूर्वधारी,९४०० अवधिज्ञानी,१२४०० अनुत्तरवादी, १२४५० विपुल मनःपर्यय ज्ञानी,२०००० केवलज्ञानी,२०४००विक्रिया ऋद्धिधारी, २१६०० सूत्राभ्यासी शिक्षक, एवं सर्व १ लाख और ९० यती थे; और यतियों के अतिरिक्त प्रकुब्जा (फाल्गु) आदि ३ लाख २० सहस्र (३२००००) आर्यिका, ३ लक्ष प्रतिमाधारी (प्रतिज्ञाधारी) श्रावक, ५ लाख श्राविका, एवम् सर्व ११ लाख २० सहस्र देशसंयमी व्यक्ति थे ॥

(३) इन के मुख्य गणधर 'सिंहसेन' थे जो मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय, इन चारों ज्ञान के धारक और द्वादशांगपाठी श्रुतकेवली थे ॥

(४) इन के मुख्य श्रोता जो समवशरण में मुख्य गणधर द्वारा अपने प्रश्नोंके उत्तर श्रवण करते थे 'सगर' चक्रवर्ती थे ॥

(५) उपर्युक्त १ लक्ष यतियों में से २० सहस्र ने तो श्री अजितनाथ के समवशरण ही में, और ५७१०० ने अन्यान्य स्थानों में, एवम् सर्व ७७१०० ने कैवल्य ज्ञान यथा अवसर प्राप्त किया और श्री अजितनाथ के कैवल्य ज्ञान प्राप्ति के समय से मोक्ष गमन तक के समय तक इन सर्व ने मुक्ति पद पाया ॥ २० सहस्र ने पंच अनुत्तर, तथा नव अनुदिश विमानों में और शेष २९०० ने नव ग्रैवेयक तथा १६ स्वर्गों में जन्म धारण किया ॥

(६) इनका तीर्थकाल इनके जन्म समय से तीसरे तीर्थङ्कर 'श्री संभवनाथ' के जन्म समय तक लगभग १२ लक्ष पूर्व अधिक ३० लाखकोटि सागरोपम कालरहा॥

(७) इनके तीर्थकालमें हमारे भरतक्षेत्र के आर्यखंड में यथार्थ धर्म की प्रवृत्ति अखंड रूप रही और निरन्तर कैवल्य ज्ञानियों के उपदेश का लाभ मिलता रहा ॥

(८) यह तीर्थङ्कर अपने पूर्व भव अर्थात् पूर्व जन्म में जम्बू द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र' में 'सीता नदी' के दक्षिण तट पर बसे हुए 'वत्स' नामक देश की 'सुसीमा' नाम की सुप्रसिद्ध नगरी के अधिपति 'विमल वाहन'नामक मांडलिक राजा थे जो सांसारिक भोगों से विरक्त हो, राज्य को त्याग, 'श्री अरिन्दम' आचार्य से मुनिदीक्षा ग्रहण कर, उग्र तपश्चरण करते हुए ११ अङ्ग के पाठी हो, १६ कारण भावनाओं से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्ध बांध, समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग 'विजय' नामक अनुत्तर विमान में अहमेन्द्र पद प्राप्त किया और ३३ सागरोपम की आयु को निरन्तर अध्यात्म-चर्चा और आत्मानन्द में व्यतीत कर अयोध्या पुरी में उपर्युक्त पवित्र राज वंश में अवतार ले तीर्थङ्कर पद पाया ॥

(९) जिस दिन इन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया उसी दिन लगभग १००० अन्य महा मुनियों ने भी इनका साथ दिया, अर्थात् अढ़ाई द्वीप भर में कहीं न कहीं से निर्वाण पद पाया। (देखो नीचे दिये कोष्ठ की क्रम संख्या ७८ का फुट नोट)॥

(१०) द्वितीय चक्रवर्ति 'सगर' जिसने लगभग ७२ लाख पूर्व काल की वय में निर्वाण पद पाया और ११ अङ्ग १० पूर्व पाठी द्वितीय रुद्र 'जितशत्रु' जिसने लगभग ७१ लाख पूर्व की वय में परमकृष्ण लेश्यायुक्त शरीर त्याग सप्तम नरक में जन्म लिया, यह दोनों 'श्रीअजितनाथ' तीर्थङ्कर के समकालीन थे॥

(११) श्री सम्मेद शिखर के जिस 'सिद्धकूट' नामक कूट से इन्हों ने निर्वाण पद पाया उससे वर्त्तमान अवसर्पिणी काल के गत चतुर्थ विभाग में एक अरब अरसी करोड़ ५४ लाख (१८०५४०००००) अन्य मुनियों ने भी मुक्तिपद पाया॥

श्री अजितनाथ तीर्थङ्कर के ८४ बोल का विवरण कोष्ठ।

क्रम संख्या		बोल	विवरण
	१	पूर्व जन्म	
१		१. नाम	विमलवाहन
२		२. स्थान	जम्बूद्वीप, पूर्वविदेह, क्षेत्र सीता नदी के दक्षिण, वत्सदेश, सुसीमा नगरी
३		३. शरीरवर्ण	स्वर्ण समान
४		४. राज्यपद	मंडलीक
५		५. दीक्षागुरु	श्री अरिन्दम
६		६. मुनिपद	११ अङ्ग पाठी
७		७. अन्तिम व्रत	सिंहनिःक्रीड़ित व्रत
८		८. संन्यास	प्रायोपगमन
९		९. संन्यासकाल	१ मास
१०		१०. गति	"विजय" अनुत्तर विमान (आयु ३३ सागरोपम)
	२	गर्भ	
११		१. स्थान जहां से गर्भ में आये	"विजय" अनुत्तर विमान
१२		२. गर्भस्थान	अयोध्यापुरी (साकेता)
१३		३. पिता	अयोध्या नरेश "जित शत्रु" (नृपजित)

क्रम संख्या		बोल	विवरण
१४		४. माता	विजयादेवी (विजयसेना)
१५		५. वंश	इक्ष्वाकु
१६		६. गोत्र	काश्यप
१७		७. गर्भ तिथि	ज्येष्ठ कृ० ३० (अमावस्या)
१८		८. गर्भ समय	रात्रि का अन्तिम प्रहर
१९		९. गर्भ नक्षत्र	रोहिणी
२०		१०. गर्भ स्थिति काल	८ मास १० दिन
	३	जन्म	
२१		१. तिथि	माघ शु० १०
२२		२. समय	प्रातःकाल (पूर्वान्ह)
२३		३. नक्षत्र	रोहिणी (वृष राशि)
२४		४. शरीर वर्ण	ताये स्वर्ण समान
२५		५. मुख्यचिह्न	गज (चरण की पगतली में)
२६	४	शरीर की ऊंचाई	४५० धनुष (१८०० हाथ)
२७	५	आयु प्रमाण	लगभग ७२ लक्ष पूर्व्व
२८	६	कुमार काल	लगभग १८ लक्ष पूर्व्व
२९	७	राज्य पदवी	मंडलेश्वर
३०	८	राज्य काल	लगभग ५३ लक्ष पूर्व्व और १ पूर्व्वाङ्ग
३१	९	विवाह किया या नहीं	किया
३२	१०	समकालीन मुख्य पुरुष	सगर (द्वितीय चक्रवर्ती) और जितशत्रु (द्वितीय रुद्र)
	११	तप ग्रहण	
३३		१. तिथि	माघ शु० ९

क्रम संख्या		बोल	विवरण
३४		२. समय	सायंकाल (अपराह्न, तिथि १०)
३५		३. नक्षत्र	रोहिणी
३६		४. वैराग्य का कारण	उल्कापात अवलोकन
३७		५. शिबिका (पालकी) का नाम	सुप्रभा
३८		६. दीक्षा वन	सहेतुक अर्थात् सहस्राम्र (अयोध्याके निकट)
३९		७. दीक्षा वृक्ष	विषमच्छद अर्थात् सप्तछद या सप्तपर्ण या सतौना
४०		८. साथ दीक्षा लेने वाले अन्य राजाओं की संख्या	१०००
४१		९. दीक्षा समय उपवास	षष्ठोपवास (बेला या छ ला अर्थात् दो दिन का उपवास)
४२		१०. दीक्षा से कौनसे दिन पारणा	चौथे दिन
४३		११. पारणे की तिथि	माघ शु० १२
४४		१२. पारणे का आहार	गोदुग्ध पाक
४५		१३. पारणे का स्थान	अरिष्टपुरी (अयोध्या या विनीता)
४६		१४. पारणा कराने वाले का नाम	ब्रह्मदत्त (ब्रह्मभूत)
४७		१५. तपश्चरणकाल (छद्मस्थकाल)	१२ वर्ष ११ मास १ दिन
	१२	केवलज्ञान	
४८		१. तिथि	पौष शु० ११
४९		२. समय	अपराह्न काल
५०		३. नक्षत्र	रोहिणी
५१		४. स्थान	अयोध्या के निकट
५२		५. उपवास जिस के अनन्तर केवलज्ञान प्राप्त हुआ।	षष्ठोपवास (बेला)
	१३	समवशरण	
५३		१. परिमाण	११॥ योजन व्यास का गोलाकार
५४		२. गणधर संख्या	९०

क्रम संख्या		बोल	विवरण
५५		३. मुख्य गणधर	सिंहसेन
५६		४. अनुत्तरवादी मुनियों की संख्या	१२४०० (बारह हज़ार चार सौ)
५७		५. ११ अङ्ग १४ पूर्व पाठी श्रुत-केवलियों की संख्या	३७५० (तीन हज़ार सात सौ पचास)
५८		६. केवलियों की संख्या	२०००० (बीस हज़ार)
५९		७. मनःपर्यय ज्ञानियों की संख्या	१२४५० (बारह हज़ार चार सौ पचास)
६०		८. अवधि ज्ञानियों की संख्या	९४०० (नव हज़ार चार सौ)
६१		९. आचारांगादि सूत्रपाठी शिक्षकों (उपाध्यायों) की संख्या	२१६०० (इकीस हज़ार छह सौ)
६२		१०. वैक्रियिक ऋद्धिधारियों की संख्या	२०४०० (बीस हज़ार चार सौ)
६३		११. मुनियों या सकलसंयमियों की सर्व संख्या	१००००० (एक लाख)
६४		१२. सर्व सकलसंयमियों की गति का विवरण	२०००० ने समवशरण ही में केवलज्ञान पाकर और ५७१०० ने अन्यान्य स्थानों से केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण पद प्राप्त किया; २० सहस्र ने पंच अनुत्तर तथा नव अनुदिश विमानों में और शेष ने नव ग्रैवेयक तथा १६ स्वर्गों में जन्म पाया
६५		१३. आर्यिकाओं की संख्या	३२०००० (तीन लाख बीस हज़ार)
६६		१४. गणनी या मुख्य आर्यिका	प्रकुब्जा (फाल्गु)
६७		१५. श्रावकों की संख्या	३००००० (तीन लाख)
६८		१६. मुख्य श्रावक या श्रोता	सगर चक्री
६९		१७. श्राविकाओं की संख्या	५००००० (पाँच लाख)
७०		१८. देश संयमियों की सर्व संख्या	११२००००(ग्यारह लाख बीस हज़ार)
७१		१९. समवशरण निर्वाण प्राप्ति से कितने दिन पूर्व विघटा	३० दिन
७२		२०. समवशरण का स्थिति काल	१ लक्ष पूर्वाङ्ग ११ वर्ष १० मास ६ दिन कम १ लक्ष पूर्व काल
	१४	**निर्वाण**	
७३		१. तिथि	चैत्र शु० ५

क्रम संख्या		बोल	विवरण
७४		२. समय	प्रातःकाल (पूर्वान्ह)
७५		३. नक्षत्र	रोहिणी
७६		४. आसन	कायोत्सर्ग खड्गासन
७७		५. स्थान	सम्मेदाचल का सिद्धवर नामक कूट (शिखर या चोटी)
७८ *	१५	साथ निर्वाण प्राप्त करने वालों की संख्या	१००० (एक हज़ार) *
७९	१६	समवशरण के सर्व सकल-संयमियों में से कितनों ने साथ या पहिले पीछे निर्वाण पद पाया	७७१०० (सतत्तर हज़ार एक सौ)
८०	१७	पूर्व के तीर्थङ्कर के निर्वाण काल से इनके निर्वाण काल तक का अन्तराल	५० लक्ष कोटि सागरोपम
८१	१८	अगले तीर्थङ्कर के निर्वाण काल तक का अन्तराल	३० लक्ष कोटि सागरोपम
८२	१९	शासन यक्ष, और ४ क्षेत्रपाल यक्ष	महायक्ष और (१) क्षेमभद्र (२) क्षान्तिभद्र (३) श्रीभद्र, (४) शान्तिभद्र ।
८३	२०	शासन यक्षिणी	अजितबला (अजिता)
८४	२१	वीर निर्वाण से कितने वर्ष पूर्व निर्वाण पद पाया	लगभग ४२ सहस्र वर्ष कम ५० लक्ष कोटि सागरोपम

* निर्वाण गमन सम्बन्धी कुछ नियम निम्न लिखित हैं:—

१. अढ़ाईद्वीप अर्थात् मनुष्य क्षेत्र भर से प्रत्येक ६ मास और ८ समय में नियम से ६०८ जीव सदैव निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥

२. निर्वाण प्राप्ति में अधिक से अधिक ६ मास का अन्तर भी पड़ सकता है, अर्थात् कभी कभी ऐसा हो सकता है कि अढ़ाईद्वीप भर से अधिक से अधिक ६ मास पर्यंत एक भी जीव निर्वाणपद न पावे। ऐसी अवस्था में ६ मास और ८ समय के अन्तिम भाग अर्थात् शेष ८ समय ही में ६०८ जीव अवश्य निर्वाणपद प्राप्त कर लेंगे जिससे उपर्युक्त नियमानुकूल प्रत्येक ६ मास ८ समय में ६०८ जीवों के मोक्षगमन का परता ठीक पड़ जायगा ॥

३. निर्वाण प्राप्ति के लिये अन्तररहित काल अधिक से अधिक केवल ८ समय मात्र ही है। इन ८ समय में यदि जीव निरन्तर मुक्तिगमन करें तो प्रति समय कम से कम १ जीव और अधिक से अधिक १०८ जीव मुक्तिलाभ कर सकते हैं और आठों समय में अधिक से अधिक

[३] मगधाधिपति अर्द्धचक्री नरेश 'जरासन्ध' के एक पुत्र का नाम भी 'अजित' था जो 'महाभारत' युद्ध में बड़ी वीरता से लड़कर मारा गया ॥

[४] २४ तीर्थङ्करों के भक्त जो २४ 'यक्षदेव' हैं उन में से ९वें तीर्थङ्कर श्री 'पुष्पदन्त' के भक्त एक यक्ष का नाम भी 'अजित' है ॥

नोट ३.—२४ तीर्थङ्करों के भक्त २४ यक्ष क्रम से निम्न लिखित हैं:—

(१) गोमुख (२) महायक्ष (३) त्रिमुख (४) यक्षेश्वर (५) तुम्बर (६) पुष्प (७) मातङ्ग (८) श्याम (९) अजित (१०) ब्रह्म (११) ईश्वर (१२) कुमार (१३) चतुर्मुख (१४) पाताल (१५) किन्नर (१६) गरुड़ (१७) गन्धर्व (१८) खेन्द्र (१९) कुवेर (२०) वरुण (२१) भृकुटि (२२) गोमेद (२३) धरण (२४) मातङ्ग ॥

(प्रतिष्ठा सारोद्धार पत्र ६७–७०)

अजितकेशकँबलि—यह अन्तिम तीर्थङ्कर 'श्री महावीर स्वामी' का समकालीन एक मिथ्यात्व मत प्रचारक साधु था जो स्वयम् को वास्तविक तीर्थङ्कर बतलाकर ग्रामीण अविद्य और अनभिज्ञ मनुष्यों में अपने सिद्धान्त का प्रचार कर रहा था। श्री महावीर तीर्थङ्कर को मायावी और उन की दिव्य शक्तियों तथा दिव्य अतिशयी चमत्कारों को इन्द्रजाल विद्या के खेल बताकर भोली जनता को उन से विमुख करने की चेष्ठा में अपनी सर्व शक्ति का व्यय कर रहा था। यह एक वस्त्र धारी सिर मुंडे साधुओं के रूप में रहता था। इसी के सरीखे उस समय 'गौतम बुद्ध' के अतिरिक्त ४ साधु और भी थे जो स्वयम् को तीर्थङ्कर बतलाकर प्रायः इसी के सिद्धान्त का प्रचार अलग अलग स्थानों में विचरते हुए

६०८ ही जीव मुक्ति लाभ करेंगे, अधिक नहीं।

{ राज. अ. १० सू. १०, तत्वार्थ सार अ. ८ श्लो. ४१, ४२ की व्याख्या }

उपर्युक्त नियमों से अविरुद्ध कभी कभी ऐसी सम्भावना हो सकती है कि अढ़ाई-द्वीप भर में अधिक से अधिक ६०८ के दुगुण १२१६ जीव तक एक ही दिन में या एक ही घटिका या इस से भी कुछ कम काल में निर्वाण प्राप्त कर लें। उदाहरणार्थ मान लो कि प्रत्येक ६ मास ८ समय के अन्तिम ८ समय में ६ मास का उत्कृष्ट अन्तर देकर आज प्रातःकाल ६०८ जीवों ने निर्वाणपद पाया। पश्चात् आज ही कुछ अन्तर देकर एक घटिका या कुछ कम में अथवा सायंकाल तक या आज की रात्रि के अन्त तक के काल में (जो अगले या दूसरे ६ मास ८ समय का एक प्रारम्भिक विभाग है) अन्य ६०८ जीवों ने भी सम्भवतः मुक्तिलाभ कर लिया और फिर इस दूसरे ६ मास ८ समय के शेष भाग में अर्थात् लगभग १ घटिका या १ दिन कम ६ मास तक एक जीव ने भी निर्वाणपद न पाया। ऐसी असाधारण अवस्था आपड़ने पर उपर्युक्त नियम भी नहीं टूटा और एक ही घड़ी या कुछ कम में अथवा एक ही दिन में १२१६ जीवों ने मोक्षलाभ भी कर लिया ॥

अतः जब एक दिन से भी कम में सम्भवतः १२१६ जीव तक मोक्षलाभ कर सकते हैं तो महा पुण्याधिकारी परमोत्कृष्ट पद प्राप्त 'श्री अजितनाथ' के निर्वाण प्राप्ति के समय उनके साथ (अर्थात् उसी दिन या उसी तिथि में) केवल १००० जीवों का निर्वाण प्राप्त कर लेने का असाधारण अवसर आपड़ना किसी प्रकार नियम विरुद्ध नहीं है ॥

(कोष लेखक)

कर रहे थे। इनमें पहिला 'मस्करी' (मंखलि गोशाल), दूसरा 'पूरण' (पूरनकश्यप), तीसरा 'पकुधकचायन' और चौथा 'संजय-बेलट्ठि' था। इन कल्पित तीर्थङ्करों में से पहिले दो सर्वथा वस्त्र त्यागी दिगम्बरी वेश में रहते थे। समय की आवश्यकता और जनता के विचारों की अधिकतर अनुकूलता देख कर, अर्थात् वैदिक यज्ञादि क्रियाकांडों में होने वाली जीव हिंसा की आधिक्यता प्रायः असह्य हो जाने से यद्यपि यह सर्व ही साधु हिंसा के पूर्ण विरोधी हो कर 'अहिंसा' का प्रचार कर रहे थे तथापि इनका मूल सिद्धान्त प्रायः चारवाक सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता जुलता नास्तिकता का फैलाने वाला था। उन का सिद्धान्त था कि "सर्व प्रकार के दुखों का अनुभव 'ज्ञान' द्वारा होता है। अतः ज्ञान सर्वथा नष्ट हो जाना ही दुखों से मुक्ति दिलाने वाला है और इस लिये हमारा वास्तविक और अन्तिम ध्येय यही होना चाहिये। जीवों का पुनरागमन अर्थात् बार बार जन्म मरण नहीं होता। वर्ण भेद सर्वथा निरर्थक है। इन्द्रियों को उन के विषयों से रोकना और निरर्थक आत्मा को कष्ट पहुँचाना अज्ञता है। इच्छानुसार सर्व प्रकार के भोग विलास करना कोई अनुचित कार्य नहीं है। पुण्य पाप और उन का फल कुछ नहीं है"। इत्यादि ॥

अजितञ्जय—इस नाम के निम्नलिखित कई इतिहास प्रसिद्ध पुरुष हुए:—

(१) सीता से उत्पन्न, राम के ८ पुत्रों में से सर्व से छोटे पुत्र का नाम; यह 'अजितञ्जय' अजितराम के नाम से भी प्रसिद्ध था। लक्ष्मण के शरीरोत्सर्ग के पश्चात् राम ने लक्ष्मण के बड़े पुत्र 'पृथ्वी सुन्दर' (पृथ्वी चन्द्र) को तो राज्य दिया और महारानी सीता के गर्भ से उत्पन्न लवांकुश आदि (अनङ्ग लवण और मदनांकुश आदि) अपने बड़े पुत्रों के विरक्त होकर मुनि दीक्षा ले लेने के कारण अपने इस छोटे पुत्र 'अजितञ्जय' को युवराज बनाया और मिथला देश (तिर्हुत, विहार) का राज्य दिया। इसने अपने पूज्य पिता के मुनिव्रत धारण करने के समय श्रीशिवगुप्त कैवल्यज्ञानी से धर्मोपदेश सुनकर श्रावक के व्रत (गृहस्थधर्म सम्बन्धी व्रत नियमादि) ग्रहण किये ॥

(उत्तर पु. पर्व ६८, श्लोक ७०४-७१३)

नोट—पद्म पुराण के रचयिता 'श्रीरविषेणाचार्य' का मत है कि राम और लक्ष्मण के सर्व ही पुत्रों ने मुनि दीक्षा धारण कर ली थी। इस लिये राम ने अपने एक पौत्र को जो 'अनङ्गलवण' का ज्येष्ठ पुत्र था राज्य दिया ॥

(२) 'मुनिसुव्रतनाथ' तीर्थङ्कर के मुख्य श्रोता का नाम भी अजितञ्जय था ॥

(३) १६वें तीर्थङ्कर श्री 'शान्तिनाथ' के नानाका नाम भी जो गान्धार (कन्दहार) देश के राजा थे अजितञ्जय ही था ॥

इन की राजधानी 'गान्धारनगरी' थी। इन की पुत्री का नाम 'ऐरा' था जिसने 'सनत्कुमार' नामक तृतीय स्वर्ग से आकर महाराज 'अजितञ्जय' की रानी 'अजिता' के उदर से जन्म लिया और जो हस्तिनापुर के राजा 'विश्वसेन' को विवाही गई थी। इसी 'ऐरा-

देवी' के गर्भ से 'श्री शान्तिनाथ' ने जन्म धारण किया था ॥

(पीछे देखो शब्द 'अइरा')

(४) एक चारण ऋद्धिधारी मुनि का भी नाम 'अजितञ्जय' था, जिन्होंने हिमवान पर्वत पर एक सिंह को धर्मोपदेश देकर और उसे उसके पूर्व भवों का और उन पूर्व भवों में किये दुष्कर्मों आदि का स्मरण करा कर सुमार्ग के सन्मुख किया जिसने क्रम से आत्मोन्नति करके और ग्यारहवें जन्म में श्री महावीर तीर्थंकर होकर निर्वाण पद प्राप्त किया ॥

(पीछे देखो शब्द 'अग्निसह')

(५) अलकादेश की राजधानी 'कौशलापुरी' का राजा भी अजितंजय नाम से प्रसिद्ध था जो श्री चन्द्रप्रभ तीर्थङ्कर के पञ्चम पूर्वभवधारी अजितसेन चक्री का पिता था ॥

(आगे देखो शब्द 'अजितसेनचक्री')

(६) 'चतुर्मुख' नामक प्रथम कल्की राजा का पुत्र भी 'अजितंजय' नामधारी था॥ अपने अनाचार के कारण चमरेन्द्र के शस्त्र से जब पापी 'चतुर्मुख' ४० वर्ष राज्य भोग कर ७० वर्ष की वय में मारा गया तब यह 'अजितञ्जय' वीरनिर्वाण सं० १०७० में अपने पिता की गद्दी पर बैठा और 'चेलका' नामक अपनी स्त्री सहित जैनधर्म का पक्का श्रद्धानी हुआ। (देखो शब्द 'चतुर्मुख') ॥

(त्रि० सार गा० ८५५, ८५६)

नोट १—इस चतुर्मुख नामक प्रथम कल्की राजा ने वीर नि० सं० १००० में (मघा नामक सम्वत्सर में) पाटलीपुत्र (पटना) के राजा 'शिशुपाल' की रानी 'पृथिवीसुन्दरी' के गर्भ से जन्म लिया और मर कर अपने दुष्कर्मों के फल में 'रत्नप्रभा' नामक प्रथम नरकभूमि में जा जन्मा। वहां एक सागरोपम काल की आयु पाई ॥

(उत्तर पु० पर्व ७६ श्लोक ३९७-४००,४१५)

नोट २—'दुःखम' नामक वर्तमान पंचम काल के अन्त में २१वां अन्तिम कल्किराज अयोध्या में 'जलमन्थन' नामक होगा। उस समय श्री इन्द्रराज (चन्द्राचार्य) नामक आचार्य के शिष्य श्री वीराङ्गद (वीरांगज) नामक अन्तिम मुनि, सर्वश्री नामक अन्तिम आर्यिका, अग्निल (अर्गिल) नामक अन्तिम श्रावक, और पंगुसेना (फल्गुसेना) नामक अन्तिम श्राविका अयोध्या के निकट वन में विद्यमान होंगे। यह चारों धर्मज्ञ महानुभाव पापी 'कल्किराज' के उपद्रव से ३ दिन तक संन्यास धारण कर श्री वीरनिर्वाण से पूरे २१००० वर्ष पीछे (जब पंचमकाल में ३ वर्ष ८॥ मास शेष रहेंगे) कार्त्तिक कृ० ३० (अमावस्या) के दिन पूर्वान्ह काल, स्वाति नक्षत्र में शरीर परित्याग कर सौधर्म नामक प्रथम स्वर्ग में जा जन्म लेंगे। वहां मुनि की आयु लगभग एक सागरोपम काल की और अन्य तीनों की आयु एक पल्योपम काल से कुछ अधिक होगी। और इस लिये इसी दिन पूर्वान्ह काल में इस भरतक्षेत्र में धर्म का नाश होगा। पश्चात् मध्यान्ह काल में उस अन्तिम राजा 'जलमन्थन' का नाश और अपराह्न काल (सायंकाल) में अग्नि(स्थूल अग्नि) का भी नाश ६२ सहस्र वर्ष के लिये हो जायगा, अर्थात् 'अतिदुःखम' (दुःषम दुःषम) नामक छठे काल के २१ सहस्र वर्ष, फिर आगामी उत्सर्पिणी काल के 'अतिदुःखम' नामक प्रथम काल के २१ सहस्र वर्ष और फिर दुःखम ना-

मक दूसरे काल के २१ सहस्र वर्ष में से २० सहस्र वर्ष तक इस क्षेत्र में धर्म, राजा और अग्नि का लोप रहेगा। इतने समय तक लोग पशु समान जीवन बितावेंगे। वर्तमान पंचम काल के अन्त में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु केवल २० वर्ष की, छठे काल के अन्त में केवल १६ वर्ष की, पश्चात् उत्सर्पिणी के प्रथम काल के अन्त में २० वर्ष की और दूसरे के अन्त में १२० वर्ष की होगी। (पीछे देखो शब्द 'अग्निक' और 'अग्नि')॥

{ त्रि० गा० ८५७—८६१,
उत्तर पु०पर्व ७६ श्लोक ४३१-४३७ }

नोट ३—प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव के पुत्र 'भरत-चक्रवर्त्ती' की सवारी के रथ का नाम भी 'अजितञ्जय' था॥

अजितदेव—यह एक प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य थे जिन्होंने वि.सं.१२०४ में 'फलवर्धि' ग्राम में चैत्यबिम्ब की प्रतिष्ठा की और आरासण में 'श्री नेमनाथ' की प्रतिष्ठा की। इन्होंने 'स्याद्वादरत्नाकर' नामक एक श्वेताम्बर जैनग्रन्थ ८४००० श्लोक प्रमाण रचा। वि० सं० १२२० में इनका स्वर्गवास हुआ। साढ़े तीन करोड़ श्लोक प्रमाण अनेक ग्रन्थों के रचयिता श्री 'हेमचन्द्रसूरि' इन ही 'अजितदेवसूरि' के समय में विद्यमान थे जो 'श्री देवचन्द्रसूरि' के शिष्य और गुजरात देशान्तर्गत 'पाटण के राजा 'कुमारपाल' के प्रतिबोधक' थे॥

(पीछे देखो शब्द 'अजयपाल' नोटों सहित)

अजितनाथ—वर्तमान अवसर्पिणी के 'दुःखमा सुखमा' नामक गत चतुर्थ काल में हुए २४ तीर्थङ्करों में से द्वितीय तीर्थङ्कर (पीछे देखो शब्द 'अजित')॥

अजितनाथ पुराण—'अरुणमणि' पंडित रचित श्री अजितनाथ तीर्थङ्कर का चरित्र (आगे देखो शब्द 'अजितपुराण')॥

अजितनाभि (जितनाभि, त्रि० गा० ८३६)—वर्तमान अवसर्पिणी काल के गत चतुर्थ विभाग में हुए ११ रुद्रों में से नवम रुद्र का नाम;

यह पन्द्रहवें तीर्थङ्कर 'श्रीधर्मनाथ' के तीर्थ काल में, जिनका निर्वाण गमन अन्तिम तीर्थङ्कर 'श्री महावीर' के निर्वाण काल से लग भग ६५८४००० वर्ष अधिक ३ सागरोपम काल पहिले हुआ था, विद्यमान थे। अजितनाभि के शरीर की ऊँचाई २८ धनुष (५६ गज़) और आयु लगभग २० लाख वर्ष की थी। पाँच लाख वर्ष से कुछ कम इनका कुमार काल रहा। फिर इससे कुछ कम संयम काल रहा अर्थात् दिगम्बर-मुनि-व्रत पालन करते रहे। इसी अवस्था में इन्हें ११ अङ्ग १० पूर्व तक का ज्ञान प्राप्त होगया। पश्चात् किसी कारण वश मुनिपद से च्युत होकर आयु के अन्त तक शेष काल असंयमी रहे। इस असंयम अवस्था में काम वासना की आधिक्यता और रौद्र परिणामी रहने से नरक आयु का बन्ध किया जिससे मृत्यु काल में भी कृष्ण लेश्यायुक्त रौद्र परिणाम रहने के कारण शरीर परित्याग कर 'पङ्कप्रभा' (अंजना) नामक चतुर्थ नरक भूमि में जा जन्मे। यहाँ की कुछ कम १० सागरोपम काल की आयु पूर्ण करने

के पश्चात् मनुष्य और देवगति में कई जन्म धारण कर अन्त में निर्वाण पद प्राप्त करेंगे । (देखो शब्द 'रुद्र') ।

(त्रि० गा० ८३६—८४१, १६६)

नोट.—११रुद्रों की गणना १६६ पुण्य पुरुषों में से है जिनमें से कुछ तो तद्भव अर्थात् उसी जन्म से और शेष कई जन्म और धारण कर नियम से निर्वाण पद प्राप्त करते हैं उन १६९ पुण्य पुरुषों का विवरण इस प्रकार है :-

२४ तीर्थङ्कर, ४८ इन तीर्थङ्करों के माता पिता, २४कामदेव, १४कुलकर या मनु, १२चक्रवर्ती, ९बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ११ रुद्र, और ९ नारद । (इनके अलग २ नाम आदि का विवरण 'तीर्थङ्कर', 'कामदेव' आदि शब्दों के साथ यथा स्थान देखें) ॥

अजितन्धर (जितन्धर)—वर्त्तमान अवसर्पिणी काल के गत चतुर्थ विभाग में हुए रुद्र पदवी धारक ११ पुरुषों में से अष्टम रुद्र का नाम;

इनका समय १४वें तीर्थङ्कर "श्री अनन्तनाथ" के तीर्थ काल में, जिनका निर्वाण गमन अन्तिम तीर्थङ्कर "श्री महावीर स्वामी" के निर्वाण गमन से लगभग ६५ ८४००० वर्ष अधिक ७ सागरोपम काल पहिले हुआ था, है । इनके शरीर की ऊँचाई लगभग ५० धनुष (१०० गज़) और आयु लगभग ४० लाख वर्ष की थी इन का कुमारकाल आयु के चतुर्थ भाग से कुछ कम रहा । पश्चात् यह दिगम्बरी दीक्षा लेकर कुमार काल से कुछ अधिक समय तक संयमी रहे और तपश्चरण करते हुए ११ अङ्ग १० पूर्व के पाठी हो गए । तत्पश्चात् कामातुर होकर इस उत्तम पद से च्युत होगए और आयु का शेष काल असंयम अवस्था में बिताया । अन्त में रौद्र परिणाम युक्त शरीर को त्याग कर 'धूम्रप्रभा' (अरिष्टा) नामक पञ्चम धरा में जा उत्पन्न हुए जहां की कुछ कम १७ सागरोपम काल की आयु पूर्ण कर मनुष्य और देवायु में कुछएक जन्म धारण करने के पश्चात् अन्त में मुक्तिपद प्राप्त करेंगे । (देखो शब्द "अजितनाभि" का नोट) ॥

(त्रि० गा० ८३६—८४१, १६६)

अजितपुराण (अजितनाथ पुराण)—एक पुराण का नाम जिसमें द्वितीय तीर्थङ्कर 'श्री अजितनाथ' का चरित्र वर्णित है ॥

यह पुराण कर्णाटक देश निवासी सुप्रसिद्ध कविरत्न 'रन्न' कृत ३००० श्लोक प्रमाण कर्णाटकीय भाषा में है जो 'तैलिपदेव' के सैनापति 'मल्लप' की दानशीला पुत्री 'अतिमब्बे-दानचिन्तामणि' के सन्तोषार्थ शक सम्वत् ९१५ में रचा गया था ॥

यह पुराण १२ आश्वासों या अध्यायों में एक चम्पू (गद्य पद्य मय काव्य) ग्रन्थ है । इसे 'काव्य-रत्न' और 'पुराण-तिलक' भी कहते हैं । इस ग्रन्थ के विषय में कविरत्न का वचन है कि जिस प्रकार इस ग्रन्थ से 'रन्न' वैश्यवंशध्वज कहलाया, उसी प्रकार 'आदिनाथपुराण' के कारण "आदि पंप" 'ब्राह्मण वंशध्वज' कहलाया था । अजित-पुराण के एक पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि पंप, पौन्न, रन्न, यह तीन कवि कनड़ी साहित्य (कर्णाटकीय भाषा) के 'रत्नत्रय' हैं ॥

नोट १—कविरत्न 'रन्न' वैश्यकुल भूषण 'जिनवल्लभेन्द्र' के पुत्र थे। इनकी माता का नाम 'अब्बलब्बे' था। इनका जन्म शक संवत् ८७१ में 'मुदुबोल' नामक ग्राम में हुआ था। कविरत्न, कविचक्रवर्ती, कविकुंजरांकुश, उभय भाषाकवि आदि इनकी पदवियां थीं। यह राज्यमान्य कवि थे। राजा की ओर से स्वर्णदंड, चँवर, छत्र, हाथी आदि इनके साथ चलते थे। इनके गुरु 'अजितसेनाचार्य' थे। गंगकुलचूड़ामणि महाराजा 'राचमल्ल' का सुप्रसिद्ध जैन मंत्री 'चामुण्डराय' इस कविरत्न का गुरु-भ्राता और सर्व प्रकार सहायक व पोषक था। चालुक्यवंशी राजा 'आहवमल्ल' भी इस कविरत्नका पोषक था। इस कविरत्न रचित 'साहसभीम विजय' या 'गदायुद्ध' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी इस समय उपलब्ध है जो १० आश्वासों में विभक्त है। यह भी गद्य पद्य मय (चम्पू) ही है। इस में महाभारत कथा का सिंहावलोकन करके चालुक्यनरेश 'आहवमल्ल' का चरित्र लिखा गया है जिसमें कविरत्न ने अपने पोषक 'आहवमल्ल' का पांडव 'भीमसेन' से मिलान किया है। यह बड़ा ही विलक्षण ग्रन्थ है। कर्णाटक कविचरित्र का लेखक इस कविरत्न के सम्बन्ध में लिखता है कि 'रन्न' कवि के ग्रन्थ सरस और प्रौढ़ रचना युक्त हैं। उसकी पद-सामग्री, रचना-शक्ति और बन्ध-गौरव आश्चर्यजनक हैं। पद्य प्रवाहरूप और हृदयग्राही हैं। इत्यादि......॥ इस कवि की अभिनव पंप, नयसेन, पार्श्व मधुर, मंगरस, इत्यादि कार्णाटिक भाषा के बड़े बड़े कवियों ने भी बहुत प्रशंसा की है। एक "रन्नकन्द" नामक ग्रन्थ भी इसी कविरत्न रचित है जो इस समय उपलब्ध नहीं है। सुप्रसिद्ध आचार्य 'श्री नेमचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती' जिन्हों ने चामुण्ड राय की प्रेरणा से महान ग्रन्थ 'श्री गोमट्टसार' की रचना की, इसी कविरत्न 'रन्न' के समकालीन थे।

नोट २.—अजितपुराण जिस दानचिन्तामणि स्त्री-रत्न "अत्तिमब्बे" के सन्तोषार्थ रचा गया था वह उपर्युक्त चालुक्य वंशी राजा 'आहवमल्ल देव' के मुख्याधिकारी 'मल्लिप' की सुशीला पुत्री थी। यह इसी राजा के महामंत्री 'दल्लिप' के सुपुत्र 'नागदेव' को विवाही गई थी जिसे बड़ा साहसी और पराक्रमी देखकर चालुक्य चक्रवर्ती 'आहवमल्ल' ने अपना प्रधान सेनापति बना दिया। एक युद्ध में इस नागदेव के काम आजाने पर इस की छोटी स्त्री 'गुंडमब्बे' तो इसके साथ सती होगई परन्तु 'अत्तिमब्बे' अपने प्रिय पुत्र 'अण्णिगदेव' की रक्षा करती हुई व्रतनिष्ठ होकर रहने लगी। जैनधर्म पर इसे अगाध श्रद्धा थी। इसने स्वर्ण-मय रत्न जड़ित एक सहस्र (१०००) जिनप्रतिमायें निरमाण कराकर प्रतिष्ठित कराईं। बड़ी उदारता से लाखों मुद्रा का दान किया। दान में यह इतनी प्रसिद्ध हुई कि लोग इसे 'दानचिन्तामणि' के नाम से इसका सम्मान करते थे। (पीछे देखो शब्द 'अजितनाथ पुराण')॥

अजितब्रह्म (अजित ब्रह्मचारी)—यह श्री देवेन्द्र कीर्ति भट्टारक के शिष्य १६ वीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान ब्रह्मचारी थे। यह गोलशृंगार (गोलसिंघाड़े) वंशी वैश्य थे। इन के पिता का नाम 'वीरसिंह' और माता का नाम 'वीधा' या 'पृथ्वी' था। श्री 'विद्यानन्दि' भट्टारक के आदेश से इन्होंने भृगुकच्छ (भिरोंच) में जो बम्बई प्रान्त में नरबदा नदी के तट

पर समुद्र के निकट एक प्रसिद्ध नगर है 'हनुमच्चरित्र' नामक संस्कृत ग्रन्थ लिखा। कल्याणालोयणा (कल्याणालोचना) नामक प्राकृत ग्रन्थ के रचयिता यही विद्वान हैं जिस में ४६ आर्य छन्द (गाथा छन्द) और ५ अनुष्टुप छन्द, सर्व ५४ छन्द हैं। 'उत्सव-पद्धति' और 'ऊर्ध्वपद्धति' नामक ग्रन्थ भी इन ही की कृति हैं॥

अजितब्रह्मचारी—पीछे देखो शब्द 'अजित ब्रह्म'॥

अजित वीर्य—विदेह क्षेत्र में सदैव रहने वाले २० तीर्थङ्करोंके २० नामों में से एक॥

नोट१—विदेह क्षेत्र के २० तीर्थङ्करों के शाश्वत नाम—(१) सीमन्धर (२) युगमन्धर (३) बाहु (४) सुबाहु (५) संजात (६) स्वयम्प्रभ (७) ऋषभानन (८) अनन्तवीर्य (९) सूरप्रभ (१०) विशाल कीर्ति (११) वज्रधर (१२) चन्द्रानन (१३) भद्रबाहु (१४) भुजंगम (१५) ईश्वर (१६)नेमिप्रभ (१७) वीरषेण (१८) महाभद्र (१९) देवयश (२०) अजितवीर्य। (आगे देखो शब्द 'अढ़ाईद्वीप पाठ' के नोट ४ का कोष्ठ १,२)॥

नोट २—अढ़ाईद्वीप के पांचों मेरु सम्बन्धी ३२, ३२ विदेह हैं। इन ३२ में से १६, १६ तो प्रत्येक मेरु की पूर्व दिशाको और १६,१६ पश्चिम दिशा को हैं। पूर्व और पश्चिम दिशा के १६, १६ विदेह भी दक्षिणी और उत्तरी इन दो दो विभागों में विभाजित हैं जिससे प्रत्येक विभाग में ८, ८ विदेह हैं। इन प्रत्येक भाग के ८, ८ विदेहों में कम से कम एक एक तीर्थङ्कर और अधिक से अधिक ८, ८ तीर्थङ्कर तक सदैव विद्यमान रहते हैं जिस से सर्व १६० विदेहों में कम से कम २० और अधिक से अधिक १६० तक भी हो जाते हैं। इन जघन्य, मध्य या उत्कृष्ट संख्याके तीर्थङ्करों के नामों में २० नाम उपर्युक्त ही होते हैं। शेष नामों के लिये कोई नियम नहीं है।

{ त्रि० गा० ६८१, व पं० जवाहिरलाल कृत २० चौबीसी पाठ }

नोट—आगे देखो शब्द 'अढ़ाईद्वीप' के नोट ४ के कोष्ठ १,२, विशेष नोटों सहित, और शब्द 'विदेहक्षेत्र'॥

अजितशत्रु—मगध-नरेश 'जरासन्ध' के 'कालयवन' आदि अनेक पुत्रों में से एक का नाम।

यह महाभारत युद्ध में पाण्डवों के हाथ से बड़ी वीरता के साथ लड़ कर कुरुक्षेत्र के मैदान में काम आया॥

(हरि० सर्ग ५२)

अजितषेणाचार्य—विक्रम की १२ वीं या १३ वीं शताब्दी के एक छन्द-शास्त्रज्ञ दिगम्बराचार्य॥

इन्होंने अलङ्कार-चिन्तामणि, छन्दशास्त्र, वृत्तवाद, और छन्द-प्रकाश, आदि कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ रचे॥

(दि० ग्र० ४ पृ० १)

अजितसागर-स्वामी—यह सिंह संघ में एक प्रसिद्ध विद्वान् हुए॥

'सिद्धान्तशिरोमणि' और 'षटखण्ड-भूपद्धति' नामक ग्रन्थोंके यह रचयिता थे। (देखो प्र० वृ० वि० च०)॥

(दि० ग्र० ७ पृ० २)

अजितसेन—(१) हस्तिनापुर नरेश॥

यह काश्यप-गोत्री थे। इन की 'बालचन्द्रा' (प्रियदर्शना) रानी से महाराज 'विश्वसेन' का जन्म हुआ जिनकी महारानी

'ऐरादेवी' के गर्भ से १६वें तीर्थङ्कर 'श्री शान्तिनाथ' उत्पन्न हुए । (शान्तिनाथ-पुराण) ॥

(देखो ग्र० वृ० वि० च०)

(२) जम्बूद्वीपस्थ ऐरावतक्षेत्र के वर्तमान अवसर्पिणी के ६वें तीर्थङ्कर का नाम । (अ. मा. अजियसेण) ॥

(३) श्वेताम्बरी अन्तगड़ सूत्र के तीसरे वर्ग के तीसरे अध्याय का नाम (अ. मा. अजियसेण) ॥

(४) भद्दलपुर निवासी नाग गाथापति की स्त्री 'सुलसा' का पुत्र जिसने श्री नेमनाथ से दीक्षा लेकर और २० वर्ष तक प्रव्रज्या पालन करके शत्रुंजय पहाड़ पर से एक मासका संथारा कर निर्वाणपद पाया । (अ. मा. अजिय सेण) ॥

अजितसेन-आचार्य—यह नन्दिसंघ के श्री सिंहनन्दी आचार्य के शिष्य और देशीय गण में प्रधान एक सुप्रसिद्ध दिगम्बराचार्य थे जो विक्रम की ११वीं शताब्दी में विद्यमान थे । श्री आर्यसेन मुनि इन आचार्य के विद्या-गुरु थे ॥

निम्न लिखित सुप्रसिद्ध पुरुष इन ही श्री अजितसेनाचार्य के मुख्य शिष्य थे:—

(१) मलधारिन पदवीधारक 'श्री मल्लिषेणाचार्य' जो विक्रम सं० १०५० की फाल्गुन शु० ३ को श्रवण बेलगुल में (मैसूर राज्य में) समाधिस्थ हुए थे । (विद्व० पृ० १५४-१५८) ॥

(२) कर्णाटक देशीय सुप्रसिद्ध कविरत्न 'रत्न' जिसने कनड़ीभाषा में अजितपुराण नामक ग्रन्थ रचा । (देखो शब्द 'अजितपुराण') ॥

(३) कौंडिन्य गोत्री ब्राह्मण बेन्नामय्य का पुत्र एक प्रसिद्ध कर्णाटक जैन-कवि 'नागवर्म' जो 'छन्दाम्बुधि' और 'कादम्बरी' आदि कई ग्रन्थों का रचयिता था । (क० १८) ॥

(४) दक्षिण मथुरा (मदुरा) का गंगवंशी महाराजा 'राचमल्ल' जिसका मंत्री और गुरुभ्राता प्रसिद्ध कवि चामुण्डराय था । (क० १७) ॥

(५) महाराजा 'राचमल्ल' का मंत्री व सेनापति 'चामुण्डराय' जो श्री गोम्मटसार नामक सुप्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना का प्रेरक और उस की कर्णाटकवृत्ति का कर्त्ता तथा 'त्रिषष्ठिलक्षण-महापुराण' (चामुण्डराय पुराण) और 'चारित्रसार' आदि का भी रचयिता था । (क० १७) । देखो शब्द "अण्ण" और 'चामुण्डराय' ॥

यह 'श्री अजितसेनाचार्य' उपर्युक्त सिद्धान्त ग्रन्थ 'श्री गोम्मटसार' अपर नाम 'पञ्चसंग्रह' के कर्ता 'श्री नेमिचन्द्र-सिद्धांत चक्रवर्ती के समकालीन थे । यह सिद्धान्त शास्त्रों के पारगामी महान् आचार्य श्री नेमचन्द्र स्वरचित 'गोम्मटसार' ग्रन्थ के पूर्व भाग 'जीवकांड' की अन्तिम गाथा ७३३ में, और उत्तर भाग 'कर्मकांड' की प्रशस्ति सम्बन्धी गा० ६६६ में अपने अन्यतम शिष्य चामुण्डराय को आशीर्वाद देते हुए इन ही 'श्री अजितसेनाचार्य' को जिन श्रेष्ठ माननीय शब्दों में स्मरण करते हैं वे ये हैं:—

अज्जज्जसेण गुणगण

समूह संधारि अजियसेण गुरू ।

भुवणगुरू जस्स गुरू

सो राओ गोम्मटो जयउ ॥ ७३३ ॥

अर्थ—श्री आर्यसेन आचार्य के अनेक गुणगण को धारण करने वाले और तीन लोक के गुरु श्री अजितसेन आचार्य जिसके गुरु हैं वह श्री गोम्मट राजा (चामुण्डराय) जयवन्त रहो ॥ ७३३ ॥

जम्हि गुणा विस्संता
गणहर देवादिइड्ढिपत्ताणं ।
सो अजिय सेणणाहो
जस्स गुरू जयउ सो राओ॥६६६॥

अर्थ—जिस में बुद्धिआदि ऋद्धि-प्राप्त गणधर देवादि मुनियों के गुण विश्राम पा के ठहरे हुए हैं अर्थात् गणधरादिकों के समान जिसमें गुण हैं ऐसा अजितसेन नामा मुनिनाथ जिस का व्रत (दीक्षा) देने वाला गुरु है वह चामुण्डराय सर्वोत्कृष्टपने से जय पावै ॥ ६६६ ॥

नोट—उपर्युक्त गाथा ७३३ से जाना जाता है कि 'चामुण्डराय' का समर-धुरन्धर, वीरमार्तण्ड, सम्यक्तरत्नाकर आदि अनेक उपनामों में से एक नाम 'गोम्मटराय' भी था। इससे ऐसा भी अनुमान होता है कि उपर्युक्त 'पञ्च-संग्रह' नामक सिद्धान्त ग्रन्थ जिसे चामुण्डराय या गोम्मटराय की प्रार्थना पर ही ग्रन्थकर्त्ता ने रचा था और जिस की कर्णाटकवृत्ति भी इसी 'गोम्मटराय' ने की थी उसका दूसरा नाम 'गोम्मटसार' गोम्मटराय ही के नाम पर लोकप्रसिद्ध हुआ हो ॥

चामुण्डराय का यह 'गोम्मटराय' उपनाम इस कारण से प्रसिद्ध हुआ ज्ञात होता है कि इस ने जो 'श्री ऋषभदेव' के पुत्र भरतचक्रवर्ती के लघु भ्राता 'श्री बाहुबली' स्वामी की मुनि-अवस्था की विशाल प्रतिमा का विन्ध्यगिरि की 'गोमन्त' (गोम्मट) नामक चोटी पर निर्माण और उस की प्रतिष्ठा अपरिमित धन लगा कर कराई थी और जिस का नाम उस पहाड़ी के नाम ही पर 'श्री गोमन्तस्वामी' या 'गोम्मटेश्वर' लोक प्रसिद्ध हो गया होगा इसी से सम्भव है चामुण्डराय का नाम भी 'गोम्मटराय' प्रसिद्ध हुआ हो। अथवा यह भी संभव है कि अन्य किसी कारण से चामुण्डराय का नाम अन्य उपनामों के समान 'गोमन्तराय' या 'गोम्मटराय' पड़ गया हो और फिर इस की प्रतिष्ठा कराई हुई 'श्री बाहुबली' की प्रतिमा का नाम, तथा पर्वत के जिस शिखर पर यह प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई गई उन दोनों ही का नाम 'गोमन्तराय' या 'गोम्मटराय' के नाम पर 'गोम्मटेश्वर' और 'गोम्मटगिरि' प्रसिद्ध हो गया हो । (देखो शब्द 'अण्ण' और 'चामुंडराय') ॥

अजितसेन-चक्री—अष्टम तीर्थङ्कर 'श्री चन्द्रप्रभ' का पञ्चम पूर्वभव-धारी एक धर्मज्ञ चक्रवर्ती राजा ॥

यह अजितसेनचक्री अलका देश की राजधानी 'कोशलापुरी' के राजा 'अजितंजय' का पुत्र था जो महारानी 'अजितसेना' के उदर से उत्पन्न हुआ था ॥

राजा अजितञ्जय ने जब राजकुमार अजितसेन को युवराजपद देदिया तब पूर्व जन्म का एक शत्रु 'चंडरुचि' नामक असुर उसे हर ले गया। शत्रु के पंजे से छूटने पर 'अरिंजयदेश' के विपुलपुराधीश 'जयवर्मा' की शशिप्रभा नामक पुत्री के साथ अजितसेन का विवाह हुआ। आदित्यपुर के विद्याधर राजा धरणीधर को युद्ध में परास्त करने के पश्चात् जब

यह भारी सम्पत्ति के साथ अपने नगर 'कौशलापुरी' को वापिस आया तभी महान् पुण्योदय से आयुधशाला में इसे 'चक्ररत्न' का लाभ हुआ ॥

पश्चात् अजितसेन ने जब दिग्विजय द्वारा भरतक्षेत्र के छहों खंडों को अपने अधिकार में ले लिया तो यह १४ रत्न और नवनिधि आदि विभूति का स्वामी होकर ३२ सहस्र मुकुटबन्ध राजाओं का स्वामी पूर्ण चक्रवर्ती राजा होगया ॥

कुछ दिन राज्यवैभव भोगकर 'श्री गणप्रभ' नामक मुनिराज से अजितसेन ने दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की । उग्रोग्र तपश्चरण कर समाधिमरण पूर्वक शरीर त्यागने पर १६ वें स्वर्ग में 'अच्युतेन्द्र' पद प्राप्त किया जहां की २२ सागरोपम की आयु पूर्ण करके तीसरे जन्म में रत्न संचयपुर-नरेश 'कनकप्रभ' का पुत्र 'पद्मनाभ' हुआ॥

पद्मनाभ के भव में राज्य विभव भोगने के पश्चात् उसने उग्रोग्र तपश्चरण करते हुए षोडशकारण भावनाओं द्वारा तीर्थङ्कर-नामकर्म का महान पुण्यबन्ध किया और आयु के अन्त में समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग पंच-अनुत्तर विमानों में से 'वैजयन्त' नामक विमान में चौथे भव में अहमिन्द्र पद पाया ॥

तत्पश्चात् उसने अहमिन्द्र पद के महान सुखों को ३३ सागरोपमकाल तक भोग कर और पांचवें जन्म में चन्द्रपुरी के इक्ष्वाकुवंशी राजा 'महासेन' की पटरानी 'लक्ष्मणादेवी' के गर्भ से 'श्री चन्द्रप्रभ' नामक अष्टम तीर्थङ्कर होकर निर्वाण पद पाया । (देखो शब्द 'चन्द्रप्रभ' और 'ग्र० वृ० वि०च०') ॥

(चन्द्र प्रभ चरित्र)

अजितसेन-भट्टारक—कनड़ी भाषा के चामुण्डरायपुराण (त्रिषष्ठि-लक्षण-महापुराण) की संस्कृत-कनड़ीमिश्रित टीका के रचयिता एक भट्टारक (दि० ग्र०५) ॥

अजितसेना—कोशलापुरी-नरेश 'अजितंजय' की रानी और अजितसेनचक्री की माता ।

(देखो शब्द 'अजितसेनचक्री') ॥

अजिता—(१) गान्धार नरेश 'अजितञ्जय' की रानी और श्री शान्तिनाथ तीर्थङ्कर की नानी ॥

(२) चौबीस तीर्थङ्करों की मुख्य उपासिका जो चौबीस शासन देवियां हैं उनमें से दूसरी का नाम । इसका नाम 'अजितबला' भी है ॥

नोट१—२४ शासन देवियां २४ तीर्थङ्करों की भक्त क्रम से निम्न प्रकार हैं :—

१ अप्रतिहत चक्रेश्वरी, २. अजिता, ३. नम्रा, ४. दुरितारि, ५. मोहिनी, ७. मानवा, ८. ज्वालामालिनी, ९. भृकुटी, १०. चामुंडा, ११. गोमेधका, १२. विद्युन्मालिनी, १३. विद्या, १४. कुंभिणि, १५. परभृता, १६. कन्दर्पा, १७. गान्धारिणी, १८. काली, १९. मनजात, २० सुगन्धिनी, २१. कुसुममालिनी, २२. कुष्मांडिनी, २३. पद्मावती, २४. सिद्धायिनी । (प्रतिष्ठा० अ० ३ श्लोक १५४—१७९) ॥

(३) पूर्वादि चार दिशा और आग्नेयादि चार विदिशा सम्बन्धी ८ देवियों में से पश्चिम दिशा सम्बन्धी एक देवी का नाम ।

नोट—२. पूर्वादि चार दिशाओं और आग्नेयादि चार विदिशाओं सम्बन्धी देवियों

के नाम क्रम से निम्न लिखित हैं:—

१. जया, २. विजया, ३. अजिता, ४. अपराजिता,५. जम्भा,६. मोहा,७. स्तम्भा, ८. स्तम्भिनी। (प्रतिष्ठा. अ. ३, श्लोक २१४, २१९)॥

(४) भाद्रपद कृ० ११ की तिथि का नाम भी 'अजिता' है। इसी को 'अजया एकादशी', 'अजा ११' या 'जया ११' भी कहते हैं॥

(५) चौथे तीर्थंकर श्री अभिनन्दन नाथ की मुख्य साध्वी। (अ.मा. अजिया, अजिआ)॥

अजीव—जीव-रहित, निर्जीव, अचेतन, जड़ पदार्थ, जीव के अतिरिक्त विश्व भर के अन्य सर्व पदार्थ; विश्व रचना के दो अङ्गों या दो हेयोपादेय द्रव्यों—जीव और अजीव—में से एक अङ्ग या एक हेय द्रव्य। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सात प्रयोजनभूत (शुद्धात्मपद या मुक्तिपद की प्राप्ति के लिये प्रयोजन भूत) तत्वों या पुण्य और पाप सहित नव प्रयोजनभूत पदार्थों में से दूसरा प्रयोजनभूत तत्व या पदार्थ॥

अजीव वह तत्व या पदार्थ है जो दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग रहित (देखने और जानने की शक्ति रहित) है अर्थात् जो चेतना गुण वर्जित है। इस के ५ भेद हैं (१) पुद्गल (२) धर्मास्तिकाय (३) अधर्मास्तिकाय (४) आकाश और (५) काल॥

अजीव द्रव्य के इन उपर्युक्त पाँचों भेदों में से प्रथम भेद "पुद्गल द्रव्य" तो स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण गुण विशिष्ट और शब्द पर्याय युक्त होने से 'रूपी द्रव्य' है और शेष चारों 'अरूपी द्रव्य' हैं। इन पाँचों में से प्रत्येक का विशेष स्वरूपादि यथा स्थान देखें।

अजीव-अप्रत्याख्यानक्रिया—मदिरा आदि अजीव वस्तुओं का प्रत्याख्यान (निराकरण, तिरस्कार) न करने से होने वाला कर्म बन्धन; अप्रत्याख्यानक्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीव-अपच्चक्खाण किरिया')॥

अजीव-अभिगम (अजीवाभिगम)—गुणप्रत्यय अवधि आदि ज्ञान से पुद्गलादि का बोध होना (अ. मा.)॥

अजीव-आनायनी—अजीव वस्तु मँगाने से होने वाला कर्मबन्ध; आनायनीक्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीवआणवणिया')॥

अजीव-आरम्भिका—अजीव कलेवर के निमित्त आरम्भ करने से होने वाला कर्मबन्ध; आरम्भिका क्रिया का एक भेद। (अ. मा.)॥

अजीव-आज्ञापनिका—अजीव सम्बंधी आज्ञा करने से होने वाला कर्मबन्ध; आज्ञापनिका क्रिया का एक भेद। (अ. मा. 'अजीव-आणवणिया')॥

अजीव-काय—जीवरहित काय; धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, यह चार द्रव्य; पंचास्तिकाय में से एक जीवास्तिकाय को छोड़ कर शेष चार द्रव्य; षट द्रव्य में से जीवद्रव्य और कालद्रव्य इन दो को छोड़ कर शेष चार द्रव्य॥

अजीवकाय-असंयम—वस्त्र पात्र आदि

अजीव वस्तुओं का उपयोग करने से होने वाली हिंसा। (अ.मा. 'अजीवकाय असंजम')॥

अजीवकाय असमारम्भ—वस्त्र, पात्र आदि अजीव वस्तुओं को उठाते धरते किसी प्राणी को दुःख न देना। (अ. मा. 'अजीवकाय-असमारंभ')॥

अजीवकाय-आरम्भ—वस्त्र पात्रादि उठाते रखते किसी प्राणी को दुःख देना (अ. मा. 'अजीवकाय आरंभ')॥

अजीवकाय-संयम—वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि उठाते रखते यत्नाचार रखना कि किसी प्राणी को बाधा न पहुँचे। (अ. मा. 'अजीवकाय-संजम')॥

अजीवक्रिया—अजीव का व्यापार; पुद्गल समूह का ईर्यापथिक बन्ध, या सांप्रायिकबन्ध रूप से परिणमना; इरियावहिया और सांपरायिकी, इन दोनों क्रियाओं में से एक(अ.मा.'अजीवकिरिया')॥

अजीवगत हिंसा—अजीवाधिकरण हिंसा, किसी अजीव पदार्थ के आधार से होने वाली हिंसा, पौद्गलिक द्रव्य के आधार से होने वाली हिंसा॥

आधार अपेक्षा हिंसा दो प्रकार की है—(१) जीवगत हिंसा या जीवाधिकरण हिंसा और (२) अजीवगत हिंसा या अजीवाधिकरण हिंसा। इनमें से दूसरी अजीवगत हिंसा या अजीवाधिकरण-हिंसा के मूल भेद ४ और उत्तर भेद ११ निम्न प्रकार हैं:—

१. निक्षेपाधिकरण हिंसा—(१) सहसानिक्षेपाधिकरण हिंसा (२) अनाभोग निक्षेपाधिकरण हिंसा (३) दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण हिंसा (४) अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण हिंसा;

२. निर्वर्तनाधिकरण हिंसा—(१) देहदुःप्रयुक्त निर्वर्तनाधिकरण हिंसा (२) उपकरण निर्वर्तनाधिकरण हिंसा;

३. संयोजनाधिकरण हिंसा—(१) उपकरण संयोजनाधिकरण हिंसा (२) भक्तपान-संयोजनाधिकरण हिंसा;

४. निसर्गाधिकरण हिंसा—(१) काय निसर्गाधिकरण हिंसा (२) वाक् निसर्गाधिकरण हिंसा (३) मनो निसर्गाधिकरण हिंसा॥

(प्रत्येक का लक्षण स्वरूपादि यथा स्थान देखें)॥

(भगवती अ० सार गा० ८०६-८१४)

नोट १.—प्रमादवश अपने व पर के अथवा दोनों के किसी एक या अधिक भावप्राण या द्रव्यप्राण या उभयप्राणों का व्यपरोपण करना अर्थात् घातना या छेदना 'हिंसा' है॥

(तत्त्वार्थ सूत्र अ० ७ सू० १३)

नोट २.—स्वरूप की असावधानता या मनकी अनवधानता का नाम 'प्रमाद' है। इसके मूल भेद कषाय, विकथा, इन्द्रिय विषय, निद्रा और स्नेह, यह ५ हैं। इनके उत्तर भेद क्रम से ४,४,५,१,१ एवम् सर्व १५ हैं और विशेष भेद ८० तथा ३७५०० हैं। इनका अलग २ विवरण जानने के लिये देखो शब्द 'प्रमाद'॥

नोट ३.—जिनके द्वारा या जिनके सद्भाव में जीव में जीवितपने का व्यवहार किया जाय उन्हें 'प्राण' कहते हैं। इनके निम्न-लिखित सामान्य भेद ४ और विशेष भेद १० हैं:—

१. इन्द्रिय—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र;

२. बल—मनोबल, वचनबल, काय बल;

३. श्वासोच्छ्वास;
४. आयु।

इन १० में से मनोबल और पाँचों इन्द्रिय, यह छह प्राण जो स्वपर पदार्थ को ग्रहण करने में समर्थ लब्धि नामक भावेन्द्रिय रूप हैं, वह 'भाव-प्राण' हैं और शेष चार 'द्रव्यप्राण' हैं ॥

(गो० जी० १२८, १२९, १३०)

नोट ४.—हिंसा के उपर्युक्त दो भेदों में से पहिली जीवगत हिंसा या जीवाधिकरण हिंसा के निम्न लिखित १०८ या ४३२ भेद हैं:—

१. जीवगत हिंसा के मूलभेद (१) संरम्भजन्य हिंसा (२) समारम्भजन्य हिंसा (३) आरम्भजन्य हिंसा, यह तीन हैं। इन में से प्रत्येक प्रकार की हिंसा मानसिक, वाचनिक और कायिक इन तीन प्रकार की होने से इस हिंसा के ३ गुणित ३ अर्थात् ९ भेद हैं ॥

यह ९ प्रकार की कृत अर्थात् स्वयम् की हुई हिंसा, ९ प्रकार की कारित अर्थात् कराई हुई हिंसा और ९ प्रकार की अनुमोदित अर्थात् अनुमोदन या प्रशंसा की हुई हिंसा, एवम् २७ प्रकार की हिंसा है ॥

यह २७ प्रकार की क्रोधवश हिंसा, २७ प्रकार की मानवश हिंसा, २७ प्रकार की मायाचारवश हिंसा और २७ प्रकार की लोभवश हिंसा, एवम् सर्व १०८ प्रकार की हिंसा है ॥

उपर्युक्त १०८ प्रकार की हिंसा अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कवश, अप्रत्याख्यानावरणी कषायचतुष्कवश, प्रत्याख्यानावरणी कषायचतुष्कवश, या संज्वलन कषायचतुष्कवश होने से ४३२ प्रकार की है। प्रकारान्तर से इसके अन्य भी अनेक भेद हो सकते हैं ॥

उपरोक्त १०८ भेदों में से प्रत्येक भेद का या यथाइच्छा चाहे जेथवें भेद का अलग अलग नाम निम्न लिखित प्रस्तार की सहायता से बड़ी सुगमता से जाना जा सकता है:—

जीवगत हिंसा के १०८ भेदों का प्रस्तार

प्रथमपंक्ति	संरम्भजन्य हिंसा १	समारम्भजन्य हिंसा २	आरम्भजन्य हिंसा ३	
द्वितीय पंक्ति	मानसिक ०	वाचनिक ३	कायिक ६	
तृतीय पंक्ति	स्वकृत ०	कारित ९	अनुमोदित १८	
चतुर्थ पंक्ति	क्रोधवश ०	मानवश २७	मायावश ५४	लोभवश ८१

अभीष्ट भेद जानने की विधि—

(१) जीवगत हिंसा के १०८ भेदों में से जेथवाँ भेद हमें जानना अभीष्ट है उसी प्रमाण जोड़ इस प्रस्तार की चारों पंक्तियों के जिन जिन कोष्ठकों के अङ्कों, या अङ्कों और शून्यों का हो उसी उसी कोष्ठक में लिखे

शब्द (अक्ष) क्रम से ले लेने या लिख लेने पर अभीष्ट भेद का नाम प्राप्त हो जायगा ॥

(२) यह ध्यान रहे कि ज्ञात जोड़ प्राप्त करने के लिये प्रत्येक ही पंक्ति का कोई न कोई अङ्क अथवा शून्य लेना आवश्यकीय है ॥

(३) यह भी ध्यान रहे कि एक पंक्ति का यथाआवश्यक कोई एक ही अङ्क अथवा शून्य लिया जावे ॥

(४) सुगमता के लिये यह भी ध्यान रहे कि अभीष्ट जोड़ प्राप्त करने के लिये चतुर्थ पंक्ति से प्रारम्भ करके ऊपर ऊपर की पंक्तियों के कोष्ठकों से यथाआवश्यक बड़े से बड़ा अङ्क अथवा शून्य लिया जाय ॥

उदाहरण—जीवगत हिंसा के १०८ भेदों में से हमें २५वें भेद का नाम जानना अभीष्ट है ॥

उपर्युक्त विधि के अनुकूल अन्तिम पंक्ति से शून्य (क्रोधवश), तृतीय पंक्ति से १८ (अनुमोदित), द्वितीय पंक्ति से ६ (कायिक), और प्रथम पंक्ति से १ (संरम्भजन्य हिंसा) लेने से ज्ञात जोड़ २५ प्राप्त होता है। अतः इन ही शून्य और अङ्कों के कोष्ठकों में लिखे शब्दों (अक्षों) को क्रम से ले लेने या लिख लेने पर 'क्रोधवश-अनुमोदित-कायिक-संरम्भ जन्य-हिंसा', यह २५वें भेद का नाम जान लिया गया ॥

उदाहरण दूसरा—हमें जीवगत हिंसा के १०८ भेदों में से ३०वां भेद जानना अभीष्ट है।

उपर्युक्त विधि के अनुकूल बड़े से बड़े अङ्क चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम पंक्तियों से क्रम से २७ (मानवश), शून्य (स्वकृत), शून्य (मानसिक), और ३ (आरम्भजन्य हिंसा) लेने से ज्ञात जोड़ ३० प्राप्त होता है । अतः 'मानवश-स्वकृत-मानसिक-आरम्भजन्य हिंसा', यह ३० वाँ अभीष्ट भेद है ॥

उदाहरण तीसरा—हमें ५४वां भेद जानना अभीष्ट है।

यहां उपर्युक्त विधि के नियमों को गम्भीर दृष्टि से विचारे बिना और शब्द 'यथाआवश्यक' पर पूर्ण ध्यान न देकर यदि बड़े से बड़ा अङ्क चतुर्थ पंक्ति से ५४ ले लिया जाय तो चारों ही पंक्तियों का ज्ञात जोड़ ५४ लाने के लिये तृतीय और द्वितीय पंक्तियों से तो हम शून्य ले लेंगे परन्तु प्रथम पंक्ति के किसी कोष्टक में शून्य न होने से इस पंक्ति से कोई अङ्क न लिया जा सकेगा जो उपर्युक्त नियम विरुद्ध है और यदि कोई अङ्क लेंगे तो जोड़ ५४ से बढ़ जायगा। अतः हमारी आवश्यकतानुकूल बड़े से बड़ा अङ्क चतुर्थ पंक्ति से २७ (मानवश), तृतीय से १८ (अनुमोदित) द्वितीय से ६ (कायिक), और प्रथम से ३ (आरम्भजन्य हिंसा) लेने से ज्ञात जोड़ ५४ प्राप्त हो जाता है। अतः 'मानवश अनुमोदित-कायिक-आरम्भजन्य हिंसा', यह ५४वां अभीष्ट भेद है ॥

उदाहरण चौथा—९३ वाँ भेद हमें जानना है।

उपर्युक्त दिये हुए नियमों के अनुकूल बड़े से बड़े अङ्क चतुर्थादि पंक्तियों से क्रम से ८१, ९, ०, ३ लेने से इनका जोड़ ९३ प्राप्त होता है। अतः इन अङ्कों वाले कोष्ठों में लिखे शब्द क्रम से लेने पर "क्रोधवश-कारित-

मानसिक-आरम्भजन्य हिंसा" यह ९३ वां भेद ज्ञात हो गया ॥

नोट५—दूसरे और चौथे उदाहरणों में यदि ३ का अङ्क प्रथम पंक्ति से न लेकर द्वितीय पंक्ति से ही ले लिया जाता तो अभीष्ट जोड़ ३० या ९३ तीन ही पंक्तियों तक पूरा हो जाने से और प्रथम पंक्ति में शून्य न होने से यह पंक्ति बिना अङ्क या शून्य लिये ही छूट जाती। इसी लिये द्वितीय पंक्ति से ३ का अङ्क न लेकर शून्य ही लिया गया है ॥

नोट ६—यदि जीवगत हिंसा के १०८ भेदों में से किसी भेद के ज्ञात नामके सम्बन्ध में हमें यह जानना हो कि अमुक नाम वाला भेद गणना में कौनसा है तो निम्न लिखित विधि से यह भी जाना जा सकता है :—

विधि-ज्ञात नाम जिन चार अङ्कों या शब्दों के मेल से बना है वे शब्द ऊपर दिये हुए प्रस्तार में जिन जिन कोष्ठों में हों उनके अङ्क, या शून्य और अङ्क जोड़ने से जो कुछ जोड़ फल प्राप्त होगा वही अभीष्ट अङ्क यह बतायेगा कि ज्ञात नाम कौनसा भेद है ॥

उदाहरण- "लोभवश-कारित-मानसिक-आरम्भजन्य हिंसा' यह नाम जीवगत हिंसा के १०८ भेदों में से कौनसा भेद है ?

ज्ञात नाम के चारों अङ्करूप शब्दों को प्रस्तार में देखने से 'लोभवश' के कोष्ठ में ८१, 'कारित' के कोष्ठ में ९, 'मानसिक' के कोष्ठ में शून्य, और आरम्भ जन्य-हिंसा के कोष्ठ में ३, यह अङ्क मिले। इन का जोड़ फल ९३ है। अतः जीवगत हिंसा का ज्ञात नाम ९३ वां भेद १०८ भेदों में से है।

नोट ७—ऊपर दिये हुए प्रस्तार की सहायता से जीवगत हिंसा के १०८ भेदों के सर्व अलग २ नाम निकाल कर बाल-पाठकों का सुगमता के लिये नीचे दिये जाते हैं:-

१. क्रोधवश स्वकृत मानसिक-संरम्भजन्य हिंसा
२. क्रोधवश स्वकृत मानसिक-समारम्भजन्य "
३. क्रोधवश स्वकृत मानसिक-आरम्भजन्य "
४. क्रोधवश स्वकृत वाचनिक-संरम्भजन्य "
५. क्रोधवश स्वकृत वाचनिक-समारम्भजन्य "
६. क्रोधवश स्वकृत वाचनिक-आरम्भजन्य "
७. क्रोधवश स्वकृत कायिक-संरम्भजन्य "
८. क्रोधवश स्वकृत कायिक-समारम्भजन्य "
९. क्रोधवश स्वकृत कायिक-आरम्भजन्य "
१०. क्रोधवश कारित मानसिक-संरम्भजन्य "
११. क्रोधवश कारित मानसिक-समारम्भजन्य "
१२. क्रोधवश कारित मानसिक-आरम्भजन्य "
१३. क्रोधवश कारित वाचनिक-संरम्भजन्य "
१४. क्रोधवश कारित वाचनिक-समारम्भजन्य "
१५. क्रोधवश कारित वाचनिक-आरम्भजन्य "
१६. क्रोधवश कारित कायिक-संरम्भजन्य "
१७. क्रोधवश कारित कायिक-समारम्भजन्य "

१८. क्रोधवश कारित कायिक-
आरम्भजन्य हिंसा
१९. क्रोधवश अनुमोदित मानसिक-
संरम्भजन्य "
२०. क्रोधवश अनुमोदित मानसिक-
समारम्भजन्य "
२१. क्रोधवश अनुमोदित मानसिक-
आरम्भजन्य "
२२. क्रोधवश अनुमोदित वाचनिक-
संरम्भजन्य "
२३. क्रोधवश अनुमोदित वाचनिक-
समारम्भजन्य "
२४. क्रोधवश अनुमोदित वाचनिक-
आरम्भजन्य "
२५. क्रोधवश अनुमोदित कायिक-
संरम्भजन्य "
२६. क्रोधवश अनुमोदित कायिक-
समारम्भजन्य "
२७. क्रोधवश अनुमोदित कायिक-
आरम्भजन्य "
२८. मानवश स्वकृत मानसिक-
संरम्भजन्य "
२९. मानवश स्वकृत मानसिक-
समारम्भजन्य "
३०. मानवश स्वकृत मानसिक-
आरम्भजन्य "
३१. मानवश स्वकृत वाचनिक-
संरम्भजन्य "
३२. मानवश स्वकृत वाचनिक-
समारम्भजन्य "
३३. मानवश स्वकृत वाचनिक-
आरम्भजन्य "
३४. मानवश स्वकृत कायिक-
संरम्भजन्य "
३५. मानवश स्वकृत कायिक-
समारम्भजन्य हिंसा
३६. मानवश स्वकृत कायिक-
आरम्भजन्य "
३७. मानवश कारित मानसिक-
संरम्भजन्य "
३८. मानवश कारित मानसिक-
समारम्भजन्य "
३९. मानवश कारित मानसिक-
आरम्भजन्य "
४०. मानवश कारित वाचनिक-
संरम्भजन्य "
४१. मानवश कारित वाचनिक
समारम्भजन्य "
४२ मानवश कारित वाचनिक-
आरम्भजन्य "
४३. मानवश कारित कायिक-
संरम्भजन्य "
४४. मानवश कारित कायिक-
समारम्भजन्य "
४५. मानवश कारित कायिक-
आरम्भजन्य "
४६. मानवश अनुमोदित मानसिक-
संरम्भजन्य "
४७. मानवश अनुमोदित मानसिक-
समारम्भजन्य "
४८. मानवश अनुमोदित मानसिक-
आरम्भजन्य "
४९. मानवश अनुमोदित वाचनिक-
संरम्भजन्य "
५०. मानवश अनुमोदित वाचनिक-
समारम्भजन्य "
५१. मानवश अनुमोदित वाचनिक-
आरम्भजन्य "

५२. मानवश अनुमोदित कायिक-संरम्भजन्य हिंसा
५३. मानवश-अनुमोदित-कायिक-समारम्भजन्य „
५४. मानवश अनुमोदित-कायिक-आरम्भजन्य „
५५. मायावश स्वकृत मानसिक-संरम्भजन्य „
५६. मायावश स्वकृत-मानसिक-समारम्भजन्य „
५७. मायावश स्वकृत-मानसिक-आरम्भजन्य „
५८. मायावश स्वकृत वाचनिक-संरम्भजन्य „
५९. मायावश स्वकृत-वाचनिक-समारम्भजन्य „
६०. मायावश स्वकृत-वाचनिक-आरम्भजन्य „
६१. मायावश स्वकृत-कायिक-संरम्भजन्य „
६२. मायावश स्वकृत-कायिक-समारम्भजन्य „
६३. मायावश स्वकृत-कायिक-आरम्भजन्य „
६४. मायावश कारित-मानसिक-संरम्भजन्य „
६५. मायावश कारित-मानसिक-समारम्भजन्य „
६६. मायावश-कारित-मानसिक-आरम्भजन्य „
६७. मायावश कारित-वाचनिक-संरम्भजन्य „
६८. मायावश कारित वाचनिक-समारम्भजन्य „
६९. मायावश कारित वाचनिक-आरम्भजन्य हिंसा
७०. मायावश कारित कायिक-संरम्भजन्य „
७१. मायावश कारित कायिक-समारम्भजन्य „
७२. मायावश कारित कायिक-आरम्भजन्य „
७३. मायावश अनुमोदित मानसिक-संरम्भजन्य „
७४. मायावश अनुमोदित मानसिक-समारम्भजन्य „
७५. मायावश अनुमोदित मानसिक-आरम्भजन्य „
७६. मायावश अनुमोदित वाचनिक-संरम्भजन्य „
७७. मायावश अनुमोदित वाचनिक-समारम्भजन्य „
७८. मायावश अनुमोदित वाचनिक-आरम्भजन्य „
७९. मायावश अनुमोदित कायिक-संरम्भजन्य „
८०. मायावश अनुमोदित कायिक-समारम्भजन्य „
८१. मायावश अनुमोदित कायिक-आरम्भजन्य „
८२. लोभवश स्वकृत मानसिक-संरम्भजन्य „
८३. लोभवश स्वकृत मानसिक-समारम्भजन्य „
८४. लोभवश स्वकृत मानसिक-आरम्भजन्य „
८५. लोभवश स्वकृत वाचनिक-संरम्भजन्य „

८६. लोभवश स्वकृत वाचनिक-
समारम्भजन्य हिंसा
८७. लोभवश स्वकृत वाचनिक-
आरम्भजन्य „
८८. लोभवश स्वकृत कायिक-
संरम्भजन्य „
८९. लोभवश स्वकृत कायिक-
समारम्भजन्य „
९०. लोभवश स्वकृत कायिक-
आरम्भजन्य „
९१. लोभवश कारित मानसिक-
संरम्भजन्य „
९२. लोभवश कारित मानसिक-
समारम्भजन्य „
९३. लोभवश कारित मानसिक-
आरम्भजन्य „
९४. लोभवश कारित वाचनिक-
संरम्भजन्य „
९५. लोभवश कारित वाचनिक-
समारम्भजन्य „
९६. लोभवश कारित वाचनिक-
आरम्भजन्य „
९७. लोभवश कारित कायिक-
संरम्भजन्य „
९८. लोभवश कारित कायिक-
समारम्भजन्य „
९९. लोभवश कारित कायिक-
आरम्भजन्य „
१००. लोभवश अनुमोदित मानसिक-
संरम्भजन्य हिंसा
१०१. लोभवश अनुमोदित मानसिक-
समारम्भजन्य „
१०२. लोभवश अनुमोदित मानसिक-
आरम्भजन्य „
१०३. लोभवश अनुमोदित वाचनिक-
संरम्भजन्य „
१०४. लोभवश अनुमोदित वाचनिक-
समारम्भजन्य „
१०५. लोभवश अनुमोदित वाचनिक-
आरम्भजन्य „
१०६. लोभवश अनुमोदित कायिक-
संरम्भजन्य „
१०७. लोभवश अनुमोदित कायिक-
समारम्भजन्य „
१०८. लोभवश अनुमोदित कायिक-
आरम्भजन्य „

नोट ८.—यदि जीवगत हिंसा के ४३२ भेदों में से प्रत्येक भेद का या यथाइच्छा चाहे जेथवें भेद का नाम जानना हो अथवा इसके विपरीत, नाम ज्ञात होने पर यह जानना हो कि यह केथवां भेद है तो १०८ भेदों वाले ऊपर दिये हुए प्रस्तार ही की समान नीचे दिये हुए दो प्रस्तारों में से किसी एक की सहायता से काम लिया जायः—

जीवगत हिंसा के ४३२ भेदों का प्रथम प्रस्तार।

प्रथम पंक्ति	संरम्भजन्य हिंसा १	समारंभजन्य हिंसा २	आरम्भजन्य हिंसा ३	
द्वितीय पंक्ति	मानसिक ०	वाचनिक ३	कायिक ६	
तृतीय पंक्ति	स्वकृत ०	कारित ९	अनुमोदित १८	
चतुर्थ पंक्ति	क्रोधवश ०	मानवश २७	मायावश ५४	लोभवश ८१
पंचम पंक्ति	अनन्तानुबन्धी ०	अप्रत्याख्यानावरणी १०८	प्रत्याख्यानावरणी २१६	संज्वलन ३२४

जीवगत हिंसा के ४३२ भेदों का द्वितीय प्रस्तार।

प्रथम पंक्ति	द्वितीय पंक्ति	तृतीय पंक्ति	चतुर्थ पंक्ति
संरम्भजन्य हिंसा १	मानसिक ०	स्वकृत ०	अनन्तानुबन्धी क्रोधवश ०
समारंभजन्यहिंसा २	वाचनिक ३	कारित ९	अनन्तानुबन्धी मानवश २७
आरम्भजन्यहिंसा ३	कायिक ६	अनुमोदित १८	अनन्तानुबन्धी मायावश ५४
			अनन्तानुबन्धी लोभवश ८१
			अप्रत्याख्यानावरणी क्रोधवश १०८
			अप्रत्याख्यानावरणी-मानवश १३५
			अप्रत्याख्यानावरणी-मायावश १६२
			अप्रत्याख्यानावरणी-लोभवश १८९
			प्रत्याख्यानावरणी क्रोधवश २१६
			प्रत्याख्यानावरणी-मानवश २४३
			प्रत्याख्यानावरणी-मायावश २७०
			प्रत्याख्यानावरणी-लोभवश २९७
			संज्वलन-क्रोधवश ३२४
			संज्वलन-मानवश ३५१
			संज्वलन-मायावश ३७८
			संज्वलन-लोभवश ४०५

उदाहरण—जीवगत हिंसा के ४३२ भेदों में से ४०० वें भेद का क्या नाम है।

उत्तर प्रथम प्रस्तार की सहायता से—१०८ भेदों वाले प्रस्तार के साथ बताई हुई विधि के नियमों के अनुसार पञ्चम पंक्ति से ३२४ (संज्वलन), चौथी पंक्ति से ५४ (माया वश), तृतीयपंक्ति से १८ (अनुमोदित), द्वितीय पंक्ति से ३ (वाचनिक), प्रथम पंक्ति से १ (संरम्भ जन्य हिंसा), यह अङ्क लेने से इन का जोड़ ४०० है । अतः इन अङ्कों के कोष्ठकों में लिखे शब्द (अक्ष) क्रम से रखने पर "संज्वलन-मायावश-अनुमोदित-वाचनिक-संरम्भजन्य-हिंसा", यह ४०० वां भेद है॥

उत्तर द्वितीय प्रस्तार की सहायता से—पूर्वोक्त नियमानुसार चौथी पंक्ति से ३७८ (संज्वलन मायावश), तीसरी पंक्ति से १८ (अनुमोदित), दूसरी पंक्ति से ३ (वाचनिक), और पहली पंक्ति से १ (संरम्भ-जन्य हिंसा), यह अङ्क लेने से इन का जोड़ ४०० है। अतः इन अङ्कों के कोष्ठों में लिखे शब्द (अक्ष) क्रमसे लिख लेने पर, 'संज्वलन-मायावश-अनुमोदित-वाचनिक-संरम्भजन्य-हिंसा', यह ४०० वां भेद है जो प्रथम प्रस्तार की सहायता से भी प्राप्त हुआ था।

दूसरा (विलोम) उदाहरण—'संज्वलन-मायावश-अनुमोदित-वाचनिक-संरम्भजन्य-हिंसा', यह नाम जीवगत हिंसा के ४३२ भेदों में से कौनसा भेद है ?

उत्तर प्रथम प्रस्तार की सहायता से—इस ज्ञात नाम के पांचों अङ्करूप शब्दों (अक्षों) को प्रथम प्रस्तार में देखने से संज्वलन के कोष्ठक में ३२४, मायावश के कोष्ठक में ५४, अनुमोदित के कोष्ठक में १८, वाचनिक के कोष्ठक में ३ संरम्भजन्य हिंसा के कोष्ठक में १, यह अङ्क मिले। इनका जोड़फल ४०० है। अतः ज्ञात नाम ४०० वां भेद है।

उत्तर द्वितीय प्रस्तार की सहायता से—ज्ञात नाम के चारों अङ्करूप शब्दों (अक्षों)को दूसरे प्रस्तार में देखने से 'संज्वलन-मायावश' के कोष्ठ में ३७८, 'अनुमोदित' के कोष्ठ में १८, वाचनिक के कोष्ठ में ३, और संरम्भजन्य हिंसा के कोष्ठ में १, यह अङ्क मिले। इन का जोड़फल ४०० है। अतः जीवगत हिंसा का ज्ञात नाम ४०० वां भेद ४३२ भेदों में से है॥

नोट ९—इसी प्रकार शील गुण के १८००० भेदों, ब्रह्मचर्यव्रत के १८००० वर्जित दोषों या कुशीलों या व्यभिचारों, प्रमाद के ३७५०० भेदों या महाव्रती मुनियोंके ८४ लाख उत्तर गुणों में से प्रत्येक का या यथा इच्छा चाहे जेथवें भेद का नाम भी ऐसे ही अलग अलग प्रस्तार बनाकर बड़ी सुगमता से जाना जा सकता है। (आगे देखो शब्द 'अठारह सहस्र मैथुन कर्म' और 'अठारह सहस्र शील' नोटों सहित)॥

नोट १०—उपर्युक्त प्रक्रिया सम्बन्धी निम्न लिखित कुछ पारिभाषिक शब्द हैं जिन का जानना और समझ लेना भी इस प्रक्रिया में विशेष उपयोगी है:—

१. पिंड—किसी द्रव्य, पदार्थ या गुण के मूल भेदों के समूह को तथा विशेष भेद उत्पन्न कराने वाले भेदों के प्रत्येक समूह को पिंड कहते हैं। इन में से मूल भेदों का समूह प्रथम पिंड है, दूसरा समूह द्वितीय पिंड है, तीसरा समूह तृतीय पिंड है, इत्यादि। जैसे जीवगत हिंसा के उपर्युक्त १०८ या ४३२ भेदों में मूल भेद संरम्भ आदि तीन हैं; यह प्रथम पिंड है। आगे विशेष भेद उत्पन्न कराने वाले मानसिक आदि तीन त्रियोग हैं; यह द्वितीय पिंड है। आगे स्वकृत आदि तीन त्रिकरण हैं; यह तृतीय पिंड है। आगे क्रोध आदि ४ कषायचतुष्क हैं, यह चतुर्थ पिंड है (अथवा अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि १६ कषाय, यह चतुर्थ पिंड है)। और संज्वलन आदि चतुष्क, यह पञ्चम पिंड है।

२. अनङ्कित स्थान—कोई पिंड जिन भेदों या अवयवों का समूह है उनमें से किसी ग्रहीत भेद से अगले सर्व भेद 'अनङ्कित स्थान' कहलाते हैं॥

३. आलाप—सर्व भेदों में से प्रत्येक भेद को आलाप कहते हैं॥

४. भङ्ग—आलाप ही का नाम भंग है।

५. अक्ष—आलाप के प्रत्येक अङ्ग को 'अक्ष' कहते हैं। पिंड के प्रत्येक अवयव को भी 'अक्ष' कहते हैं।

६. संख्या—प्रस्तार के कोष्ठकों में जो प्रत्येक 'अक्ष' के साथ अङ्क लिखे जाते हैं वे संख्या हैं या आलापों के भेदों की गणना को संख्या कहते हैं॥

७. प्रस्तार--अक्षों और संख्याओं सहित सर्व कोष्ठकों के समूह रूप पूर्ण कोष्ठ को प्रस्तार कहते हैं। 'प्रस्तार' को 'गूढ़यंत्र' भी कहते हैं।

८. परिवर्तन—सर्व कोष्ठकों पर दृष्टि घुमाते हुए अपनी आवश्यकतानुसार यथाविधि उनमें से अक्षों या संख्याओं को ग्रहण करने की क्रिया को परिवर्तन कहते हैं। इस परिवर्तन ही का नाम 'अक्ष-परिवर्तन' या 'अक्ष-संचार' भी है।

९. नष्ट- चाहे जेथवें आलाप का नाम जानने की क्रिया या विधि को नष्ट कहते हैं।

१०. उद्दिष्ट--आलाप के ज्ञात नाम से यह जानना कि यह आलाप केथवां है, इस क्रिया या विधि को उद्दिष्ट या समुद्दिष्ट कहते हैं।

नोट ११--गूढ़ यंत्र या प्रस्तार बनाने की विधि भी नीचे लिखी जाती है जिसे सोख लेने से शील गुण के १८००० (१८ हज़ार) भेदों, प्रमाद के ३७५०० (३७ हज़ार ५ सौ) भेदों, और दिगम्बर मुनि के ८४००००० (८४ लाख) उत्तरगुणों आदि के गूढ़यंत्र भी बनाकर उन भेदों या गुणादिक के अलग अलग नाम हम बड़ी सुगमता से जान सकते हैं :—

१. जिस द्रव्य, पदार्थ या गुण आदि के विशेष भेदों का प्रस्तार बनाना हो उसमें जितने पिंड हों उतनी पंक्ति बनावें।

२. प्रथम पंक्ति में प्रथम पिंड के जितने भेद (अक्ष) हों उतने कोष्ठक बना कर उन कोष्ठकों में क्रमसे उस पिंड के भेद (अक्ष) लिखें और उन अक्षों के साथ क्रम से १, २, ३, आदि अङ्क लिखदें।

३. द्वितीय पंक्ति में द्वितीय पिंड के जितने अक्ष हों उतने कोष्ठक बनाकर उनमें क्रम से उस पिंड के अक्षों को लिखें और इस पंक्ति के पहिले कोष्ठक में अक्ष के साथ शून्य लिखें, दूसरे कोष्ठक में वह अङ्क लिखें जो प्रथम पंक्ति के अन्तिम कोष्ठक में लिखा था, इससे आगे के तीसरे आदि कोष्ठकों में दूसरे कोष्ठक के अङ्क का द्विगुण, त्रिगुण आदि अङ्क क्रम से लिख लिख कर यह द्वितीय पंक्ति पूरी कर देवें।

४. तृतीय पंक्ति में तृतीय पिंड के अक्षों की संख्या के बराबर कोष्ठक बनाकर क्रमसे सर्व अक्ष लिखें और इस पंक्ति के पहिले कोष्ठक में शून्य रखें। दूसरे कोष्ठक में वह अङ्क लिखें जो इस पंक्ति से पूर्व की प्रथम और द्वितीय पंक्तियों के अन्तिम अन्तिम कोष्ठकों के अङ्कों का जोड़फल हो। फिर तीसरे आदि आगे के सर्व कोष्ठकों में क्रम से दूसरे कोष्ठक का द्विगुण, त्रिगुण, आदि अङ्क लिख लिख कर यह तीसरी पंक्ति भी पूर्ण कर देवें॥

५. चतुर्थ आदि आगे की सर्व पंक्तियां भी उपर्युक्त रीति ही के अनुसार कोष्ठक बना बना कर भरदें। यह ध्यान रहे कि कोष्ठकों में अङ्क भरते समय प्रथम पंक्ति के अतिरिक्त हर पंक्ति के प्रथम कोष्ठक में तो शून्य ही लिखा जायगा, दूसरे कोष्ठक में पूर्व की सर्व पंक्तियों के अन्तिम अन्तिम कोष्ठकों के अङ्कों का जोड़फल लिखा जायगा और आगे के तीसरे आदि कोष्ठकों में दूसरे कोष्ठक का द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण आदि क्रम से अन्तिम कोष्ठक तक लिखा जायगा।

इस प्रकार यथा आवश्यक प्रस्तार बनाया जा सकता है॥

नोट १२—बिना प्रस्तार बनाये ही

नष्ट या उद्दिष्ट क्रिया की विधि निम्न लिखित है:—

१. नष्ट की विधि—किसी पदार्थ आदि के सर्व भेदों या आलापों में से जेथवां आलाप जानना अभीष्ट हो उस आलाप की ज्ञात संख्या को प्रथम पिंड की गणना (पिंड के भेदों या अङ्गों की गणना) का भाग देने से जो अवशेष रहे वही इस पिंड का अक्षस्थान है । यदि अवशेष कुछ न बचे तो इस पिंड का अन्तिम भेद अक्ष स्थान है ।

फिर भजनफल (भाग का उत्तर) में १ जोड़कर जोड़फल को या भाग देने में शेष कुछ न बचा हो तो कुछ न जोड़कर भजनफल ही को द्वितीय पिंड की गणना का भाग देने से जो शेष बचे वही इस द्वितीय पिंड का अक्ष-स्थान है । अवशेष कुछ न बचे तो अन्तिम भेद अक्ष-स्थान है ॥

इसी प्रकार जितने पिंड हों उतनी वार क्रम से हर पिंड की गणना पर भाग दे देकर जो शेष बचे उसे या शेष न बचे तो अन्तिम भेद को अक्ष-स्थान जानें और जो भजन फल हो उसमें १ जोड़ कर जोड़फल को या भाग देने में शेष कुछ न बचा हो तो बिना १ जोड़े ही भजनफल को अगले अगले पिंड की गणना पर भाग देते रहें । जहां कहीं भाजक से भाज्य छोटा हो वहां भाज्य ही को अक्ष-स्थान जानें । और भजनफल (शून्य) में उपर्युक्त विधि के अनुकूल १ जोड़ें जिससे अगले अगले पिंडोंमें प्रथम स्थान ही अक्ष-स्थान प्राप्त होगा ॥

अब सर्व अक्ष-स्थानों के अक्षों को विलोम क्रम से रख लेने पर अर्थात् अन्त में प्राप्त हुए अक्षस्थान के अन्त से प्रारम्भ करके प्रथम प्राप्त हुए अक्षस्थान के अक्ष तक सर्व अक्षों का क्रम से रख लेने पर अभीष्ट आलाप का नाम ज्ञात हो जायगा ॥

उदाहरण—जीवगत हिंसा के ४३२ भेदों में से ४००वां भेद (आलाप) कौनसा है ?

यहां प्रथम पिंड संरम्भजन्य हिंसा आदि की गणना ३, द्वितीय पिंड मानसिक आदि की गणना ३, तृतीय पिंड स्वकृत आदि की गणना ३, चतुर्थ पिंड क्रोध आदि की गणना ४, और पंचम पिंड अनन्तानुबन्धी आदि की गणना ४ है जिनके परस्पर के गुणन करने से जीवगत हिंसा के विशेष भेदों की संख्या ४३२ प्राप्त होती है । इन में से ४०० वें भेद का नाम जानना अभीष्ट है । अब उपर्युक्त विधि के अनुसार ४०० को प्रथम पिंड की गणना ३ का भाग देने से १३३ भजनफल प्राप्त हुआ और १ शेष रहा । अतः प्रथम पिंड में पहिला भेद अक्ष-स्थान है जिसका अक्ष 'संरम्भजन्य हिंसा' है ।

अब भजनफल १३३ में १ जोड़ कर जोड़फल १३४ को द्वितीय पिंड की गणना ३ का भाग देने से ४४ भजनफल प्राप्त हुआ और २ शेष रहा । अतः द्वितीय पिंड में दूसरा भेद अक्षस्थान है जिस का अक्ष 'वाचनिक' है ।

अब भजनफल ४४ में १ जोड़ कर ४५ को तृतीय पिंड की गणना ३ का भाग देने से १५ भजनफल प्राप्त हुआ और शेष कुछ नहीं बचा । अतः तृतीय पिंड में अन्तिम भेद अक्ष स्थान है जिस का अक्ष 'अनुमोदित' है ।

अब भजनफल १५ में कुछ न जोड़कर इसे चतुर्थ पिंड की गणना ४ का भाग देने से ३ भजनफल प्राप्त हुआ और ३ ही शेष बचे । अतः चतुर्थ पिंड में तीसरा भेद अक्षस्थान है जिसका अक्ष 'मायावश' है ।

अब भजनफल ३ में एक जोड़ कर

जोड़फल ४ को पञ्चम पिंड की गणना ४ का भाग देने से १ भजनफल प्राप्त हुआ और शेष कुछ नहीं बचा। अतः पञ्चम पिंड में अन्तिम भेद अक्षस्थान है जिस का अक्ष 'संज्वलन' है।

अतः अब सर्व अक्षों को विलोम क्रम से रख लेने पर 'संज्वलन-मायावश-अनुमोदित वाचनिक-संरम्भजन्य हिंसा', यह ४०० वाँ अभीष्ट आलाप प्राप्त हो गया ॥

२. उद्दिष्ट की विधि—आलाप का नाम ज्ञात होने पर यह जानना हो कि यह आलाप कैथवां है तो पहिले १ के कल्पित अङ्क को अन्तिम पिंड की गणना से गुण कर गुणनफल में से उस पिंड के अनंकित स्थानों का प्रमाण घटावें। शेष को अन्तिम पिंड से पूर्व के पिंड की गणना से गुण कर गुणनफल से इस पिंड के अनंकित स्थानों का प्रमाण घटावें। यही क्रिया करते हुये प्रथम पिंड तक पहुँचने पर और इस प्रथम पिंड के अनंकित स्थानों का प्रमाण घटाने पर जो संख्या प्राप्त होगी वही संख्या यह बतायेगी कि ज्ञात नाम कैथवें आलाप का नाम है।

उदाहरण—'संज्वलन-मायावश-अनुमोदित-वाचनिक-संरम्भजन्य हिंसा', यह जीवगत हिंसा के ४३२ आलापों में से कैथवें आलाप का नाम है?

इस आलाप में संज्वलन, मायावश, अनुमोदित, वाचनिक, और संरम्भजन्य हिंसा, यह पांच अक्ष हैं। अब उपर्युक्त विधि के अनुसार कल्पित अङ्क १ को अन्तिम पिंड (अनन्तानुबन्धी चतुष्क) की गणना ४ से गुणने पर गुणनफल ४ प्राप्त हुआ। इस गुणनफल में से उसी पिंड के संज्वलन अक्ष से आगे के स्थानों की अर्थात् अनङ्कित स्थानों की संख्या कुछ नहीं है। अतः शून्य घटाने से शेष ४ को अन्तिम पिंड से पूर्व के पिंड (क्रोधादि) की गणना ४ से गुणने पर १६ प्राप्त हुआ। इस गुणनफल में से इस पिंड के 'मायावश' अक्ष के आगे के स्थानों की (अनङ्कित स्थानों की) संख्या १ को घटाने से शेष १५ रहे। इस १५ को तीसरे पिंड स्वकृत आदि की गणना ३ से गुणन किया तो ४५ प्राप्त हुए। इस में से इस पिंड के 'अनुमोदित' अक्ष से आगे के अनङ्कित स्थानों की संख्या शून्य को घटाने से ४५ ही रहे। इसे द्वितीय पिंड की गणना ३ से गुणने पर १३५ आये। इस में से 'वाचनिक' अक्ष से आगे के अनङ्कित स्थानों की संख्या १ घटाने से शेष १३४ रहे। इस शेष को प्रथम पिंड की गणना ३ से गुणने पर ४०२ आये। इस गुणनफल से 'संरम्भजन्य हिंसा' अक्ष से आगे के अनङ्कित स्थानों की संख्या २ घटाने से शेष ४०० रहे। यही अभीष्ट अङ्क है अर्थात् ज्ञात नाम ४०० वाँ आलाप है।

(गो० जी० गा० ३५-४४ की व्याख्या)

अजीव-तत्त्व—जीवादि सप्त प्रयोजन भूत तत्त्वों में से दूसरा तत्त्व। (पीछे देखो शब्द 'अजीव', पृ० १६१) ॥

अजीव-द्रव्य—द्रव्य के जीव और अजीव, इन दो सामान्य भेदों में से दूसरा भेद। (पीछे देखो शब्द 'अजीव', पृ० १६१) ॥

अजीव-दृष्टिका—अजीव चित्रादि देखने से होने वाला कर्मबन्ध; दृष्टिका क्रिया का एक भेद (अ. मा. अजीवदिट्ठिया) ॥

अजीव-देश—किसी अजीव पदार्थ का एक भाग (अ. मा. अजीवदेस) ॥

अजीव-निःश्रित—अजीव के आश्रय रहा

हुआ (अ. मा. अजीवणिस्सिय) ॥

अजीव-निःसृत—अजीव से निकला हुआ (अ. मा. अजीवणिस्सिय) ॥

अजीव-पद—पन्नवणा सूत्र के ५वें पद का नाम (अ. मा.) ॥

अजीव-पदार्थ—जीवादि नव प्रयोजन भूत पदार्थों में से दूसरा पदार्थ (पीछे देखो शब्द 'अजीव', पृ०१६१) ॥

अजीव-परिणाम—बन्धन, गति आदि अजीव का परिणाम (अ. मा.) ॥

अजीव-पर्यव—अजीव का पर्याय; अजीव का विशेष धर्म या गुण (अ. मा. 'अजीवपज्जव') ॥

अजीव-पृष्टिका—आगे देखो शब्द 'अजीव स्पृष्टिका', पृ. २०५ ॥

अजीव-प्रदेश—अजीवद्रव्य का छोटे से छोटा विभाग (अ. मा. 'अजीवप्पएस') ॥

अजीव-प्रज्ञापना—अजीव का निरूपण करना या स्वरूप बताना (अ. मा. अजीव पण्णवणा) ॥

अजीव-प्रातीतिकी—अजीव में राग-द्वेष करने से होने वाला कर्मबन्ध; प्रातीतिकी क्रिया का एक भेद (अ. मा 'अजीव-पाडुच्चिया') ॥

अजीव-प्राद्वेषिकी—किसी अजीव पदार्थ के साथ द्वेष करने से होने वाला कर्मबंध; प्राद्वेषिकी क्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीव-पाउसिया') ॥

अजीव-भाव—अजीव की पर्याय (अ. मा.) ॥

अजीव-भावकरण—स्वाभाविक रीतिसे मेघ आदि की समान किसी अजीव पदार्थ का रूपान्तर होना (अ. मा.) ॥

अजीव-मिश्रिता—सत्यासत्य या सत्य-मृषा भाषा का एक भेद (अ. मा. अजीव मिस्सिया') ॥

अजीव-राशि—अजीव पदार्थों का समूह (अ. मा. 'अजीवरासि') ॥

अजीव-विचय—अचेतन पदार्थ सम्बन्धी खोज या विचार या चिन्तवन आभ्यन्तर या आध्यात्मिक धर्म-ध्यान के १० भेदों में से एक भेद ॥

पदार्थों के वास्तविक स्वरूप व स्वभाव को 'धर्म' कहते हैं। उस स्वरूप से च्युत न होकर एकाग्र चित्त होना 'धर्म ध्यान' है। जिस धर्मध्यान को केवल अपना ही आत्मा या कोई प्रत्यक्षज्ञानी आत्मा ही जान सके अथवा जो धर्मध्यान आत्म द्रव्य सम्बन्धी हो उसे 'आभ्यन्तर' या 'अन्तरङ्ग' या 'आध्यात्मिक' धर्मध्यान कहते हैं। किसी अजीव पदार्थ के वास्तविक स्वरूप का एकाग्र चित्त हो चिन्तवन करना "अजीव-विचय धर्मध्यान" है ॥

बाह्य या आभ्यन्तर धर्मध्यान के अन्य भेदों की समान यह धर्मध्यान चतुर्थ गुण-स्थान से सप्तम गुणस्थान तक के पीत पद्म शुक्ल लेश्या वाले जीवों के होता है। एक समय इसका जघन्य काल, और एक उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त अर्थात् एक समय कम दो घटिका इसका उत्कृष्ट काल है। स्वर्ग प्राप्ति इसका साक्षात् फल और मोक्ष प्राप्ति इसका परम्पराय फल है ॥

नोट १—आभ्यन्तर धर्मध्यान के १०

भेद निम्न लिखित हैं:—

(१) अपाय विचय (२) उपाय विचय (३) जीव विचय (४) अजीव विचय (५) विपाक विचय (६) विराग विचय (७) भव विचय (८) संस्थान विचय (९) आज्ञा विचय (१०) हेतुविचय। (प्रत्येक का स्वरूपादि यथास्थान देखें)॥

(हरि० सर्ग ५६ श्लोक ३५—५२)

नोट २—धर्म ध्यान के उपरोक्त १० भेदों का अन्तर्भाव (१) आज्ञा विचय (२) अपाय विचय (३) विपाक विचय और (४) संस्थान विचय, इन चारों भेदों में हो सकता है। अतः किसी किसी आचार्य ने धर्मध्यान के यही चार भेद गिनाये हैं॥

नोट ३—धर्मध्यानके उपर्युक्त १० भेदों में से अष्टम भेद, या चार भेदों में से अन्तिम "संस्थान-विचय धर्मध्यान" के (१) पिंडस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ और (४) रूपातीत, यह चार भेद हैं। (प्रत्येक का स्वरूपादि यथास्थान देखें)॥

(ज्ञानार्णव प्रकरण ३३ श्लो० ५, प्र० ३७ श्लो० १)

अजीवविभक्ति—अजीव पदार्थों का पृथक्करण या विभाग (अ. मा. अजीव विभत्ति)॥

अजीववैक्रयणिका
अजीववैचारणिका
अजीववैतारणिका
} नीचे देखो शब्द "अजीववैदारणिका"॥

अजीववैदारणिका (अजीव-वैक्रयणिका, अजीव-वैचारणिका, अजीव-वैतारणिका)—किसी अजीव वस्तु का विदारण करने या उसके निमित्त से किसी को ठगने से होने वाला कर्मबन्ध; विदारणिया या वैदारणिका क्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीव-वेयारणिया')॥

अजीव-सामन्तोपनिपातिकी-अपनी वस्तु की प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होने से होने वाला कर्मबन्ध; सामन्तोपनिपातिकी क्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीव-सामन्तोवणिवाइया')॥

अजीव-स्पृष्टिका (अजीवपृष्टिका)—किसी अजीव पदार्थ को रागद्वेषरूप भावोंसे स्पर्श करने से होने वाला कर्मबंध; स्पृष्टिका क्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीवपुट्ठिया')॥

अजीव-स्वाहस्तिका—खड्ग आदि किसी अजीव पदार्थ द्वारा किसी अजीव को अपने हाथ से मारने से होने वाला कर्मबन्ध; स्वाहस्तिका क्रिया का एक भेद (अ. मा. 'अजीवसाहत्थिया')॥

अजीवाधिकरणआस्रव—किसी अजीव पदार्थ के आधार से होने वाला कर्मास्रव (शुभकर्मास्रव या अशुभ-कर्मास्रव, पुण्यास्रव या पापास्रव)॥

काय, वचन, मन की क्रिया द्वारा आत्म प्रदेशों के सकम्प होने से द्रव्य कर्म (कर्म प्रकृति या कार्मणवर्गणा) का आत्मा के सन्निकट आना या आत्मा की ओर को सन्निकर्ष होना 'आस्रव' कहलाता है॥

आधार अपेक्षा आस्रव दो प्रकार का है—(१) 'जीवाधिकरण आस्रव' और (२) 'अजीवाधिकरण आस्रव'। जीवाधिकरण हिंसा और अजीवाधिकरण हिंसा के समान जीवाधिकरण आस्रव के भी वही १०८ या ४३२ भेद और अजीवाधिकरण आस्रव के सामान्य ४, और विशेष ११ भेद हैं,

(पीछे देखो शब्द 'अजीवगत हिंसा', पृ० १६२) ॥

(तत्वार्थ. अ. ६ सू. ७, ८, ६) ॥

अजीवाभिगम—देखो शब्द 'अजीवअभिगम', पृष्ठ १६१ ॥

अजैन—जैनधर्म वर्जित, जैनधर्म विमुख' जिनाज्ञाबाह्य, जैनधर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म का उपासक ॥

नोट—'जिन' शब्द जित् धातु से बना है जिस का अर्थ है जीतना या विजय प्राप्त करना। अतः 'जिन' शब्द का अर्थ है जीतने वाला या विजय पाने वाला, इन्द्रियों और कर्म शत्रुओं को जीतने वाला तथा त्रैलोक्य-विजयी-कामशत्रु पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला। अतः कामदेव, पांचों इन्द्रियों और कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले परम पूज्य महान पुरुषों के अनुयायी अर्थात् उन की आज्ञानुसार चलने वाले और उन्हीं को आदर्श मान कर उन की समान कामविजयी और जितेन्द्री बनने का निरन्तर अभ्यास करते रहने वाले व्यक्ति को 'जैन' कहते हैं। और पदार्थों के वास्तविक स्वरूप और स्वभाव को 'धर्म' कहते हैं। अतः जिस धर्म में जीवादि पदार्थों का वास्तविक स्वरूप दिखा कर जितेन्द्रिय बनाने और 'जिनपद' (परमात्मपद) प्राप्त कराने की वास्तविक शिक्षा हो उसे 'जैनधर्म्म' या 'जिनधर्म्म' कहते हैं। इस कारण जो व्यक्ति जितने अंश जितेन्द्रिय है या जितेन्द्रिय बनने का अभ्यास कर रहा है वह उतने ही अंशों में वास्तविक जैन या 'जैनधर्म्मी' है। केवल जैनकुल में जन्म ले लेने मात्र से वह वास्तविक 'जैनधर्म्मी' नहीं है ॥

अजैन विद्वानों की सम्मतियां—

एक ट्रैक्ट (पुस्तिका) का नाम जिस में जैनधर्म के सम्बन्ध में अनेक सुप्रसिद्ध अजैन विद्वानों की सम्मतियों का बड़ा उत्तम संग्रह है। इस नाम का ट्रैक्ट निम्नलिखित दो स्थानों से प्रकाशित हुआ है:—

१. श्री जैनधर्म संरक्षिणी सभा, 'अमरोहा' (जि० मुरादाबाद) की ओर से दो भागों में। प्रथम भाग में (१) श्रीयुत महा महोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए०, पी० एच० डी०, एफ० आई० आर० एस०, सिद्धान्तमहोदधि प्रिंसिपल संस्कृत कालिज कलकत्ता, (२) श्रीयुत महामहोपाध्याय सत्यसम्प्रदायाचार्य सर्वान्तर पण्डित स्वामि राममिश्र जी शास्त्री भूतपूर्व प्रोफ़ेसर संस्कृत कालिज बनारस, (३) श्रीयुत भारत गौरव के तिलक पुरुषश्रोमणि इतिहासज्ञ माननीय पं० बालगङ्गाधर तिलक, भूतपूर्व सम्पादक 'केशरी' और (४) सुप्रसिद्ध श्रीयुत महात्मा शिवव्रतलाल जी एम० ए० सम्पादक 'साधु' 'सरस्वती भण्डार' आदि कई एक उर्दू हिन्दी मासिकपत्र, व रचयिता विचारकल्पद्रुम आदि ग्रन्थ, व अनुवादक विष्णुपुराणादि, इन ४ महानुभावों की सम्मतियों का संग्रह है। और दूसरे भाग में श्री युत वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० और रा० रा० वासुदेव गोविन्द आपटे बी० ए० इन्दौर निवासी, इन दो महानुभावों की सविस्तर सम्मतियों का संग्रह है। इन दोनों भागों की सम्मतियां इसी 'बृहत् जैनशब्दार्णव' के रचयिता की संग्रहीत हैं। मूल्य ़)॥। और ≈)। है। अजैनों

को बिना मूल्य ॥

२. मु. केसरीमल मोतीलाल राँका, आनरेरी मैनेजर, जैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय 'ब्यावर' की ओर से संग्रहीत व प्रकाशित। इस में २१ सुप्रसिद्ध अजैन विद्वानों की सुयोग्य सम्मतियों का सारांश रूप संग्रह है। मूल्य)॥, अजैनों को बिना मूल्य ॥

अजैर्यष्टव्यं (अजैर्होतव्यं)—यह एक संस्कृत भाषा का वाक्य है जिसका अर्थ है 'अजों से अर्थात् न उत्पन्न होने योग्य त्रिवर्षे यव या शालि से यज्ञ करना चाहिये' ॥

'अजैर्यष्टव्यं' और 'अजैर्होतव्यं' यह यज्ञ के प्रकरण में आये हुए वेद वाक्य हैं जिन के 'अज' शब्द का अर्थ लगाने में एक बार 'नारद' और 'पर्वत' नामक दो ब्राह्मण पुत्रों में परस्पर भारी वाद विवाद हुआ था। 'नारद' तो गुरु आम्नाय से सीखा हुआ परम्परायसिद्ध और क्रियाबल या व्युत्पत्ति से बननेवाला तथा प्रकरणानुसार अर्थ 'न जायंते इत्यजाः' अर्थात् जिनका जन्म नहो वे अज हैं, जो पृथ्वी में बोने से न उत्पन्न हों ऐसे त्रिवर्षे पुराने धान (चावल या जौ), यह लगाता था। परन्तु मांस लोलुपी 'पर्वत' इस 'अज' शब्द का परम्पराय और प्रकरण विरुद्ध सामान्य लोक प्रसिद्ध रूढ़ि अर्थ 'छाग' या 'बकरा' लगाता था।

अन्त में इस झगड़े का न्याय जब न्यायप्रसिद्ध न्यायाधीश राजा 'वसु' के पास पहुँचा तो राजा के सन्मुख राजसभा मध्य बहुजन की उपस्थिति में कुछ देर तक दोनों का अपनी अपनी युक्तियों और प्रमाणों के साथ गहरा शास्त्रार्थ हुआ। 'पर्वत' राजा 'वसु' का गुरु भ्राता और गुरु पुत्र था। अतः राजा ने विधवा गुरुपत्नी (पर्वत की माता) से वचनबद्ध हो जाने के कारण न्याय अन्याय की ओर ध्यान न देकर अन्तमें पर्वत ही को जिताया जिससे राजा तो दुर्नामता और दुर्गत का पात्र बना ही, पर माँस लोलुपी पर्वत का साहस भी पवित्र वेद वाक्यों का अर्थ का कुअर्थ लगाने में इतना बढ़ गया कि फिर उसने वेद वाक्यों के सहारे एक 'महाकाल' नामक असुर की सहायता से यज्ञों में अनेक पशुओं को स्वाहा कर देने का पूर्ण जी खोल कर प्रचार किया ॥

नोट १.—राजा वसु अब से लगभग १० या ११ लाख वर्ष पूर्व तिरहुत प्रान्त या मिथिलादेश के हरिवंशी राजा अभिचन्द्र और उसकी उग्रवंशी रानी 'वसुमती'(श्रीमती, सुरकान्ता)का पुत्र था और २०वें तीर्थंकर श्री 'मुनिसुव्रतनाथ' की सन्तान में उन की २२वीं पीढ़ी में जन्मा था। उस समय इसके राज्य की सीमा पूर्व में विदेह या तिरहुत प्रान्त (उत्तरी बिहार) से पश्चिम में चेदिराष्ट्र (विन्ध्याचल पर्वत के पास जबलपुर के उत्तर)तक थी। वसु के पिता अभिचन्द्र ने जो 'ययाति' और 'विश्वावसु' नामों से भी इतिहासप्रसिद्ध हैं बुंदेलखण्ड और धवलपुर (जबलपुर) के मध्य के देश को अपने अधिकार में लाकर वहाँ चेदि राज्य स्थापन किया और शुक्तमती नदी के तटपर शुक्तमती (स्वस्तिकावती) नामक नगर बसा कर उसी को अपनी राजधानी बनाया। इस समय अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी राजा सगर का राज्य था जो 'हरिषेन' नामक १०वें चक्रवर्ती की संतान

में उसके देवलोक प्राप्त करने से लगभग एक सहस्र वर्ष पीछे जन्मा था । (पीछे देखो शब्द 'अज', पृष्ठ १५८) ॥

नोट२.— पर्वत की माता का नाम 'स्वस्तिमती' और पिता का नाम 'क्षीरकदम्ब' था जो ब्राह्मण कुलोत्पन्न बड़ा शुद्ध आचरणी, धर्म्मज्ञ, वेद वेदांगों का ज्ञाता, और स्वस्तिकावती नरेश अभिचन्द्र का राजपुरोहित था । राजकुमार वसु, एक ब्राह्मण पुत्र नारद, और पर्वत, यह तीनों सहपाठी थे और इसी राजपुरोहित से विद्याभ्यन करते थे ॥

{ रि. सर्ग १७ श्लोक ३४-१६०; पद्मपुराण पर्व ११;उ० पु० पर्व६७ श्लोक १५५-४६१ }

अजोग (अजौगिक, अयौगिक)—पुष्करार्द्धद्वीप की पश्चिम दिशा में विद्युन्माली मेरु के दक्षिण भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्यखंड की अतीत चौबीसी में हुए तृतीय तीर्थङ्कर । (आगे देखो शब्द 'अढ़ाईद्वीप पाठ' के नोट ४ का कोष्ठ ३) ॥

अज्जुका—(१) १६ स्वर्गों में से प्रत्येक दक्षिणेन्द्र की आठ आठ अग्रदेवियों या पट्टदेवियों में से सातवीं सातवीं अग्र-देवी का नाम ॥

(त्रि. गा. ५१०)

(२) नाटकीय परिभाषा में इस 'अज्जुका' शब्द का प्रयोग 'वेश्या' के लिये किया जाता है ॥

(३) यह 'अज्जुका' शब्द तथा अज्जु, अज्जू और अज्जूका, यह चारों शब्द 'बड़ी बहिन' के अर्थ में भी आते हैं ॥

अज्ञान (अज्ञान)—(१) न जानना, मूर्खता, अज्ञानता, अविवेक, न जानने वाला, मूर्ख, अजान,ज्ञान रहित,अविवेकी, मिथ्या ज्ञानी, आत्मज्ञानशून्य, मन्दज्ञानी, अल्पज्ञ ।

(२) मिथ्यात्व अर्थात् तत्वार्थ के विपरीत श्रद्धान (अतत्व श्रद्धान, कुतत्व श्रद्धान, तत्वार्थ ज्ञान रहित श्रद्धान) के मूल ५ भेदों—१. एकान्त, २. विपरीत, ३. विनय, ४. संशय, ५. अज्ञान,—में से एक अन्तिम भेद । (आगे देखो शब्द 'अज्ञान मिथ्यात्व', पृ.२०६) ॥

अज्ञानजय—अज्ञान परीषह जय । (आगे देखो शब्द 'अज्ञान परीषह जय' पृ.२०६)॥

अज्ञानतप—ज्ञान शून्य तप, तत्वार्थ ज्ञान रहित तप, आत्मज्ञान रहित तप;

वह तप जिसके साधन में अज्ञानवश या वस्तु स्वरूप की अनभिज्ञता से भूख, प्यास, जाड़ा, गर्मी आदि के अनेक प्रकार के कष्ट सहन कर कर के शरीर को सुखाया या तपाया जाय और स्वर्गों की देवांगनाओं संबन्धी भोग विलासों की प्राप्ति या अन्य किसी लौकिक इच्छा की पूर्ति की अभिलाषा या लालसा से अनेकानेक व्रतोपवास आदि किये जांय;अथवा ये सर्व क्रियाकलाप जो आत्म अनात्म के यथार्थ ज्ञान से शून्य रह कर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि को जीतने के उपाय बिना केवल लोक दिखाने या लोक पूज्य बनने आदि की वाञ्छा से किये जांय "अज्ञान तप" कहलाते हैं ॥

अज्ञानपरीषह—अज्ञान जन्य कष्ट, ज्ञानप्राप्ति के लिये बारम्बार शास्त्र स्वाध्याय, या गुरुउपदेशश्रवण आदि अनेक उपाय

करते रहने पर भी ज्ञान प्राप्त न होने का दुःख । अथवा ज्ञानावरणीय कर्म के प्रचुर उदयवश अपने ज्ञान की मन्दता या मूर्खता के कारण अपना अनादर या तिरस्कार होने का कष्ट ।

यह 'अज्ञान परीषह' निम्न लिखित २२ प्रकार की परीषहों में से २१ वीं है :—

१. क्षुधा, २. तृषा, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. दंशमशक, ६. नाग्न्य, ७. अरति, ८. स्त्री, ९. चर्या, १०. निषद्या, ११. शय्या, १२. आक्रोश, १३. वध, १४. याचना, १५. अलाभ, १६. रोग, १७. तृणस्पर्श, १८. मल, १९. सत्कार पुरस्कार, २०. प्रज्ञा, २१. अज्ञान, २२. अदर्शन ॥

इनमें से प्रज्ञा और अज्ञान, यह दोनों परीषह 'ज्ञानावरणीयकर्म' के उदय से होती हैं और १२ वें गुणस्थान तक इनके सद्भाव की सम्भावना है ।

यह सर्व ही परीषह शारीरिक और मानसिक असह्य पीड़ा उत्पन्न करती हैं । इनका मनोविकार रहित धैर्य्य पूर्वक समभावों से सह लेना 'संवर' अर्थात् कर्मास्रव के निरोध का तथा अनेक दुष्कर्मों की निर्जरा (क्षय) का कारण है ।

{ त. सू. अ. ९, सूत्र ८, ९, १०, १३; चा. पृ. १२५ (परीषहजय प्रकरण) }

अज्ञान परीषहजय—धैर्य्य और समता पूर्वक निर्विकृत मन से अज्ञान परीषह का सहन करना । (ऊपर देखो शब्द 'अज्ञान-परीषह') ॥

अज्ञानमिथ्यात्व—अज्ञानजन्य मिथ्या-तत्वश्रद्धान, हिताहित या सत्यासत्य की परीक्षा रहित श्रद्धान, तत्व श्रद्धान का अभाव ।

गृहीत मिथ्यात्व के एकान्त, विपरीत, संशय, विनय और अज्ञान, इन ५ भेदों में से एक अन्तिम भेद यह 'अज्ञान मिथ्यात्व' है ।

नोट १—दर्शन-मोहनी कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जो औदयिक भाव का एक भेद 'मिथ्यात्व-भाव' संसारी आत्माओं में उत्पन्न होता है उसी के निमित्त से अगृहीत (निसर्गज), अथवा गृहीत (अधिगमज) मिथ्यात्व का सद्भाव होता है ।

नोट २—'मिथ्यात्व' शब्द का अर्थ है असत्यता, असत्य या अयथार्थ श्रद्धान, असत्यार्थ रुचि, अतत्व श्रद्धान, कुदेव कुगुरु कुशास्त्र या कुधर्म का श्रद्धान, इत्यादि । (नीचे देखो शब्द 'अज्ञानवाद') ॥

अज्ञानवाद—क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद, और वैनयिकवाद, इन चार प्रकार के मिथ्यावादों में से एक मिथ्या-वाद ।

इस वाद के अनुयायी लोग जीवादि ९ पदार्थों के यथार्थ स्वरूप के अनुकूल या प्रतिकूल किसी प्रकार की श्रद्धा नहीं रखते किन्तु अज्ञानवश ऐसा कहते हैं कि किसी पदार्थ का स्वरूप दृढ़ता के साथ कौन कह सकता है कि यह है या वह है, इस प्रकार है या उस प्रकार है; अर्थात् उनका कहना है कि किसी पदार्थ का यथार्थ स्वरूप कोई नहीं जानता । इस वाद के अनुयायी लोग ज्ञानशून्य काय क्लेशादि तप को मुक्ति का कारण या उपाय मानते हैं ॥

इस अज्ञानवाद के निम्नलिखित ६७ भङ्ग, विकल्प, या भेद हैं:—

(१-७) जीव पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. जीवास्ति अज्ञान, २. जीव-नास्ति-अज्ञान, ३. जीवास्ति-नास्ति अज्ञान, ४. जीव अवक्तव्य-अज्ञान, ५. जीवास्ति अवक्तव्य अज्ञान, ६. जीव-नास्ति अवक्तव्य अज्ञान, ७. जीवास्ति नास्ति-अवक्तव्य अज्ञान;

(८-१४) अजीव पदार्थ सम्बन्धी भङ्ग ७—
१ अजीवास्ति अज्ञान, २ अजीव-नास्ति अज्ञान, इत्यादि 'अजीवास्ति नास्ति अवक्तव्य अज्ञान' पर्यन्त सातों;

(१५-२१) आस्रव पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. आस्रवास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(२२-२८) बन्ध पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. बंधास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(२९-३५) संवर पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. संवरास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(३६-४२) निर्जरा पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. निर्जरास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(४३-४९) मोक्ष पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. मोक्षास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(५०-५६) पुण्य पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. पुण्यास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(५७-६३) पाप पदार्थ सम्बन्धी भंग ७—
१. पापास्ति अज्ञान, इत्यादि सातों भंग;

(६४-६७) शुद्ध पदार्थ सम्बन्धी भंग ४—
१. शुद्धपदार्थास्ति अज्ञान, २. शुद्ध पदार्थ-नास्ति अज्ञान, ३. शुद्धपदार्थास्ति नास्ति अज्ञान, ४. शुद्धपदार्थ अवक्तव्य अज्ञान ॥

नोट १—जीव पदार्थ के (१) औपशमिक, (२) क्षायिक, (३) क्षायोपशमिक मिश्र, (४) औदयिक, (५) पारिणामिक, यह ५ भाव हैं ॥

इन पांचों भावों में से औदयिक भाव के 'देवगतिजन्यभाव' आदि २१ भेद हैं।

इन २१ भेदों में से १२वां भेद 'मिथ्यात्वजन्य भाव' है जिस के (१) गृहीत मिथ्यात्वजन्य भाव, और (२) अगृहीत मिथ्यात्व जन्य भाव, यह दो मूल भेद हैं।

'मिथ्यात्व जन्य भाव' के इन दो मूल भेदों में से पहिले 'गृहीत मिथ्यात्वजन्य भाव' की (१) एकान्त मिथ्यात्व (२) विपरीत मिथ्यात्व, (३) विनय मिथ्यात्व, (४) संशय मिथ्यात्व, और (५) अज्ञान मिथ्यात्व, यह ५ शाखा हैं।

गृहीत मिथ्यात्व की इन ५ शाखाओं में से पहिली शाखा 'एकान्त मिथ्यात्व' के (१) क्रियावाद १८०, (२) अक्रियावाद ८४, (३) अज्ञानवाद ६७, और (४) वैनयिकवाद ३२, यह ४ अङ्ग और ३६३ उपाङ्ग हैं। [पीछे देखो पृ० २४, २५, १२३, १२४ पर शब्द 'अक्रियावाद' और 'अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञान' के अन्तर्गत (१२) दृष्टिवादांग (२) 'सूत्र' उपांग की व्याख्या नोटों सहित]

नोट २—जिन अपने प्रतिपक्षी कर्मों के उपशमादि होने पर उत्पन्न हुए भावों कर जीव पदार्थ पहचाना जाय उन भावों की संज्ञा 'गुण' भी है।

नोट ३—तत्वश्रद्धानाभाव रूप मिथ्यात्व को जो बिना किसीका उपदेशादि निमित्त

मिले केवल मिथ्यात्व कर्म प्रकृति के उदय से होता है 'अगृहीत मिथ्यात्व' कहते हैं। और जो कुदेव आदि के निमित्त से और मिथ्यात्व कर्म प्रकृति के उदय रूप अन्तरंग निमित्त से स्वयम् अपनी रुचि से चाह कर अतत्व या कुतत्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्व नवीन उत्पन्न होता है उसे 'गृहीत मिथ्यात्व' कहते हैं। अगृहीत मिथ्यात्व को 'नैसर्गिक' और गृहीत मिथ्यात्व को 'अधिगमज' भी कहते हैं।

{ गो० जी० गा० १५; गो० क० गा० ८१२,८१३, ८१८, ८८६, ८८७; हरि० स० ५८ श्लोक १९२-१९५, स० १० श्लोक ४७-६०; त० सू० अ० ८ सू १; त० सार अ०५ श्लोक २-८ }

अज्ञानवादी—अज्ञानवाद का अनुयायी अज्ञानवाद के ६७ भेदों में से किसी एक या अनेक भेदों का पक्षपाती या अज्ञानी व्यक्ति। (ऊपर देखो शब्द 'अज्ञानवाद')॥

अञ्चल मत—श्वेताम्बर जैनाचार्य 'श्री मुनिचन्द्र' के ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्री चन्द्रप्रभ के वि० सं० ११५९ में चलाये हुए 'पौर्णिमीयक' नामक मत की एक शाखा जिसे एक पौर्णिमीय मतावलम्बी नरसिंह उपाध्याय ने सम्वत् १२१३ में अथवा मतान्तर से सं० १२१४ या १२३३ में चलाया था। या वि० सं० ११६९ में श्री विधिपक्ष मुख्याभिधान, आर्यरक्षितसूरि ने स्थापा था॥

{ जैनमत वृक्ष पृ० ६३; 'जैनसाहित्य-संशोधक' खं० २ अ. २ पृ. १४१ }

अंजन—(१) मेरु पर्वत पर सब से ऊपर के पाण्डुक नामक बन का एक गोलाकार भवन॥

अढ़ाईद्वीप (मनुष्य-लोक) में सुदर्शन, विजय, अचल, मंदर और विद्युन्माली, यह पांच मेरु पर्वत हैं। इन में से प्रत्येक की पूर्व और पश्चिम दिशाओं में समभूमि पर तो भद्रशाल नामक बन है और थोड़ी थोड़ी ऊंचाई पर चारों ओर गोलाकार क्रम से नन्दन, सौमनस और पांडुक नामक बन हैं। भद्रशाल को छोड़ कर शेष के प्रत्येक बन की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में एक एक गोल भवन है। इन में सौधर्म इन्द्र के सोम, यम, वरुण और कुबेर, यह चार २ लोकपाल क्रम से पूर्व दक्षिणादि दिशाओं में निवास करते हैं। इन भवनों में से पांचों मेरु के पांचों पाण्डुक बनों की दक्षिण दिशा के पांचों भवनों का नाम 'अंजन' है जिस का अधिपति 'यम' नामक लोकपाल है। यह भवन १२॥ योजन ऊंचे, ७॥ योजन व्यास (diameter) के और लगभग ३३ योजन गोलाई के हैं। (पीछे देखो शब्द 'अचल' पृ० १३७; और पंचमेरु पर्वतों का चित्र)॥

(त्रि० गा० ६१९-६२१)

(२) मेरुपर्वत की दक्षिण दिशा में देवकुरु भोगभूमि के दो दिग्गज पर्वतों में से एक पर्वत का नाम। यह 'अंजन' नामक पर्वत 'सीतोदा' नामक महानदी के वाम तट पर है॥

विदेहक्षेत्र के बीचों बीच में मेरु है। मेरु की दक्षिण दिशा में 'सौमनस' और 'विद्युत-प्रभ' नामक दो गजदन्त पर्वतों के मध्य 'देवकुरु-भोगभूमि' है। इसी

प्रकार मेरु की उत्तर दिशा में 'गन्धमादन' और 'माल्यवान' नामक दो गजदन्त पर्वतों के मध्य 'उत्तरकुरु-भोगभूमि' है। मेरु की पूर्व और पश्चिम दिशाओं में भद्रशालवन है। देवकुरु और पश्चिम भद्रशाल में सीतोदा नदी और उत्तरकुरु व पूर्व भद्रशाल में सीतानदी बहती है। इन दोनों नदियों के प्रत्येक तट पर दोनों भोगभूमियों और दोनों वनों में दो दो दिग्गज पर्वत हैं। अतः मेरु की चारों दिशाओं में सर्व ८ दिग्गज हैं जिन में से सीतोदा नदी के वाम तट पर के एक दिग्गज का नाम 'अञ्जन' है। (देखो जम्बू-विदेहक्षेत्र का चित्र)॥

(त्रि० गा० ६६१-६६४)

(३) पूर्व विदेह में सीता नदी की दक्षिण दिशा के ४ वक्षार पर्वतों में से एक पर्वत का नाम।

यह पर्वत सीता नदी की दक्षिण दिशा के ८ विदेह देशों में से पश्चिमी सीमा के पास मंगलावती और रमणीया नामक देशों के मध्य में है। (आगे देखो शब्द 'अञ्जनात्मक', पृ० २१८, और विदेह क्षेत्र का चित्र)॥

(त्रि० गा० ६६७)

(४) सनत्कुमार-महेन्द्र नामक युग्म अर्थात् तृतीय चतुर्थ स्वर्गों के युगल का सब से नीचे का प्रथम इन्द्रक विमान॥

(त्रि०गा० ४६६)

(५) खर भाग की १६ पृथ्वियों में से 'अञ्जनमूलिका' नामक १० वीं पृथ्वी का नाम 'अञ्जन' भी है (अ०मा०)। (आगे देखो श० 'अञ्जन मूलिका', पृ० २१४)॥

(६) आठवें स्वर्ग के एक विमान का नाम (अ० मा०)॥

(७) रुचकवर पर्वत का ७ वां कूट (अ० मा०)॥

(८) इस नाम का एक वेलन्धर देव (अ० मा०)॥

(९) द्वीपकुमार देवों के इन्द्र के तीसरे लोकपाल का नाम (अ० मा०)॥

(१०) उदधिकुमार देवों के इन्द्र प्रभञ्जन के चौथे लोकपाल का नाम (अ० मा०)॥

(११) वायुकुमार जाति के इन्द्र का नाम (अ० मा०)॥

(१२) काजल; सौवीराञ्जन (सुरमा) नामक एक उपधातु; रसांजन या रसवती, दारुहल्दी के अष्टमांश काढ़े में अजामूत्र मिलाकर उससे संस्कारित आँजने की सलाई; नेत्र में दुख उत्पन्न करने वाली लोहे की गर्म सलाई; एक जाति का रत्न; एक बनस्पति विशेष (अ० मा०)॥

अञ्जनक—(१) अञ्जनवर द्वीप व अञ्जनवर समुद्र का नाम है। (आगे देखो शब्द 'अञ्जनवर', पृ० २१५)॥

(२) रुचकवर नामक १३वें द्वीप के मध्य रुचकगिरि पर्वत पर के पूर्व दिशा के ८ कूटों में से छटा कूट जिस पर 'नन्दावती' नामक दिक्कुमारी देवी बसती है।

(त्रि०गा० ३०५, ९४८-९५६)

(३) नन्दीश्वर द्वीप के अञ्जनगिरि पर्वत का नाम (अ० मा०)॥

अञ्जनगिरि (अञ्जनाद्रि)—(१) नन्दीश्वर नामक अष्टम द्वीप की पूर्वादि चारों दिशाओं के चार पर्वतों में से प्रत्येक पर्वत का नाम।

(२) देवकुरु भोगभूमि का एक दिग्गज पर्वत। [ऊपर देखो शब्द 'अञ्जन' (२) पृ० २११]॥ (त्रि०गा०६६७)

(३) सीतानदी के दक्षिण दिशा का एक वक्षार पर्वत। [ऊपर देखो शब्द 'अंजन' (३) पृ. २१२]॥

(४) रुचकवर नामक १३वें द्वीप के मध्य चारों ओर बलयाकार रुचकगिरि नामक पर्वत की उत्तर दिशा के 'वर्द्धमान' नामक कूट पर बसने वाले एक देव का नाम।

(हरि. सर्ग ५ श्लो०७०१)

(५) मेरु के भद्रशाल वन का चौथा कूट और उसका अधिपति देव (अ०मा०)॥

(६) एक जैन-तीर्थस्थान का नाम।

यह एक अतिशय क्षेत्र है जो नासिक शहर से त्र्यम्बक नगर जाते हुए मार्ग में सड़क से १ मील हट कर दक्षिण दिशा को पड़ता है। नासिक से लगभग १४ मील और त्र्यम्बक से ७ या ८ मील पर एक 'अञ्जनी' नामक ग्राम के निकट ही यह तीर्थ एक 'अञ्जनगिरि' नामक पहाड़ी पर है। ग्राम के आस पास बहुत प्राचीन १२ या १३ जीर्ण फूटे टूटे मन्दिर हैं। जिनके द्वारों, स्तम्भों, शिखरों और दीवारों आदि पर बहुतसी जैन मूर्तियां दर्शनीय हैं। एक मन्दिर में अखंडित अति प्राचीन जैन प्रतिमा बड़ी मनोहारिणी है। यहां शाका सं. १०६३ का एक शिला लेख भी है। यहाँ से लगभग १ मील की ऊंचाई पर पहाड़ी के ऊपर एक विशाल गुहा है जो बहुत लम्बी और पहाड़ का पत्थर काट कर बनाई गई है। इस गुहा में कई जैन प्रतिमाएँ बड़ी मनोहर हैं जिन में मुख्य प्रतिमा श्रीपार्श्व नाथ भगवान की है। यहाँ से पहाड़ के ऊपर जाने के लिये पुरानी जीर्ण सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। गुहा से एक मील ऊपर जाकर एक प्राचीन सरोवर दर्शनीय है जिसके निकट अन्य एक छोटी पहाड़ी है। यहाँ दो देवियों का एक स्थान है जो 'अञ्जना देवी' और 'सीता देवी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि अञ्जना और सीता ने बनवास के समय यहाँ निवास किया था और हनुमान का जन्म भी यहां ही हुआ था। इसी लिये यहां दोनों ही मूर्तियां स्थापित हैं और ग्राम व पर्वत का नाम भी 'अञ्जना' के अधिक समय तक यहां निवास करने से इसी के नाम पर प्रसिद्ध है। नासिक और त्र्यम्बक, यह दोनों ही स्थान हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ हैं। नासिक शहर से केवल ३ या ४ मील और नासिक स्टेशन से ६ मील की दूरी पर 'मसरूल' ग्राम के निकट श्री 'गजपन्था' सिद्ध क्षेत्र है जहां से बलभद्रादि ८ कोटि (८०००००००) मुनीश्वरों ने निर्वाण पद प्राप्त किया है।

(तीर्थ. द. पृ. ३५)

अञ्जनचोर—(१) सम्यक्त कौमुदी कथा विहित एक 'रूपखुर' नामक प्रसिद्ध चोर॥

उत्तर मथुराधीश 'पद्मोदय' के समय में मथुरानगरी निवासी एक 'रूपखुर' नामक चोर 'अञ्जनचोर' के नाम से प्रसिद्ध था। इसके पास 'अञ्जनवटी' या 'अञ्जन-गुटिका' नामक एक मंत्रित औषधि ऐसी थी जिसे नेत्रों में आंज लेने से वह अन्य मनुष्यों की दृष्टि से अदृश्य हो जाता था। जिह्वालम्पटता वश वह कुछ

दिनों तक अञ्जनबटी नेत्रों में लगा कर और इस प्रकार अदृश्य हो कर राजा के साथ स्वादिष्ट भोजन करता रहा। जब एक दिन मंत्री के बताये उपायों से वह पकड़ा गया और अपने अपराध के दण्ड में सूली पर चढ़ाये जाने को ले जाया जारहा था तो सेठ अरहदास के पिता सेठ जिनदत्त से णमोकार मंत्र पाकर और प्राणान्त समय उसी के ध्यान में शरीर छोड़ कर 'सौधर्म' नामक प्रथम स्वर्ग में जा जन्मा॥

(२) अञ्जनगुटिका औषधि लगा कर चोरी करने वाला राजगृही निवासी एक अन्य चोर भी 'अञ्जनचोर' नाम से प्रसिद्ध था जो सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों में से 'निःशांकित' नामक प्रथम अङ्ग को पूर्ण दृढ़ता के साथ पालन करने में पुराण प्रसिद्ध है॥

जिस समय एक सोमदत्त नामक माली एक जिनदत्त नामक सेठ से आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करने की विधि सीख कर कृष्णपक्ष की १४ की रात को श्मशान भूमि में विद्या सिद्ध कर रहा था परन्तु प्राणनाश के भय से शंकित होकर बार बार रुक जाता था तो उसी समय यमदण्ड (कोतवाल) के भय से भागता हुआ यह अंजनचोर भाग्यवश उसी स्थान में पहुँच गया। उसने उस माली से विधि सीख कर पंच नमस्कार मंत्र का अशुद्ध उच्चारण करते हुए भी केवल दृढ़ श्रद्धावश प्राणनाश की लेश शंका न करके बताई विधि द्वारा वह विद्या तुरन्त सिद्ध करली। पश्चात् सेठ जिनदत्त का बड़ा कृतज्ञ होकर और उस से धर्मोपदेश सुन कर इस ने मुनिव्रत की दीक्षा एक चारण ऋद्धिधारक मुनि के पास जाकर ले ली। अन्त में कैलाशपर्वत के शिखर पर से महान तपोबल द्वारा सर्व कर्म कलङ्क नाश कर इस अंजनचोर ने निरंजनपद उसी जन्म से प्राप्त कर लिया॥

अञ्जनपुलाक—रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक के खरकाण्ड के १६ विभागों में से ११वें 'अङ्का' नामक भाग का अपर नाम (अ. मा.)॥

अञ्जनप्रभ—राम-रावण-युद्ध में रावण की सेना के अनेक प्रसिद्ध योद्धाओं में से एक योद्धा।

अञ्जनमूल—"रुचकवर" नाम के १३ वें द्वीप के "रुचक गिरि" नामक पर्वत पर पूर्व दिशा की ओर के कनक आदि अष्ट कूटों में से सातवां कूट, जो "नन्दोत्तरा" नामक दिक्कुमारी देवी का निवास स्थान है।

नोट—इन अष्ट कूटों पर बसने वाली देवियां तीर्थङ्करों के जन्म समय में परम प्रमोद के साथ अपने हाथों में भृंगार (झारी) लिये हुए माता की भक्ति और सेवा करती हैं (त्रि. गा. ९४८,९४९,९५५,९५६)

अंजनमूलिका— 'घर्मा' नामक प्रथम नरक के खर भाग की १६ पृथ्वियों में से १० वीं पृथ्वी जिस की मुटाई १००० महा योजन है। (पीछे देखो शब्द "अङ्का" पृ० ११४)॥

(त्रि० गा० १४८)

अंजनरिष्ट—वायु कुमार जाति के देवों का एक इन्द्र (अ. मा.)।

अञ्जनवर (अञ्जनक)—मध्य लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों में से स्वयम्भूरमण नामक अन्तिम समुद्र से पूर्व का १२ वां समुद्र और इसी नाम के अन्तिम द्वीप से पूर्व का १२ वां द्वीप।

अञ्जनवर द्वीप में किन्नर कुल के व्यन्तर देवों के इन्द्रों के नगर हैं। किन्नर कुल के दो इन्द्र 'किम्पुरुषेन्द्र' और 'किन्नरेन्द्र' हैं। इन में से पहिले इन्द्र के (१) किम्पुरुषपुर (२) किम्पुरुष प्रभ (३) किम्पुरुषकान्त (४) किम्पुरुषावर्त्त (५) किम्पुरुषमध्य, यह ५ नगर दक्षिण दिशा में हैं और दूसरे इन्द्र के (१) किन्नरपुर (२) किन्नरप्रभ (३) किन्नरकान्त (४) किन्नरावर्त्त (५) किन्नर-मध्य, यह ५ उत्तर दिशा में हैं॥

(त्रि. गा. ३०५,२८३,२८४)

अंजना (अञ्जनी)—(१) रामभक्त प्रसिद्ध वीर हनुमान की माता।

यह आदित्यपुर के एक वानरवंशी राजा 'प्रहलाद' के वीर पुत्र "पवनञ्जय" की स्त्री और महेन्द्रपुराधीश राजा महेन्द्र की पुत्री थी। राजकुमार प्रसन्नकीर्त्ति इस का भ्राता और हनुद्वीप नरेश प्रतिसूर्य इस का मातुल (मामा) था। 'हृदय वेगा' इस की माता का नाम और 'केतु-मती' इस की श्वश्रू (सास) का नाम था।

इस ने पूर्व जन्म के एक अशुभ कर्म के उदय से विवाह होते ही २२ वर्ष तक पति के निरादर और पतिवियोग का निरपराध महान कष्ट सहन किया और फिर पति संयोग होने पर पति की अनुप-स्थिति में श्वसुर और श्वश्रू से तिर-स्कारित हो कर गर्भावस्था में ६ मास से अधिक बनवास के अनेक कष्ट सहन किये। बन ही में इस के गर्भ से वीर हनुमान का शुभ मुहूर्त में जन्म हुआ जिसका नाम-करण संस्कार और कुछ समय तक पाल-न पोषण अञ्जना के मातुल प्रतिसूर्य के यहां हुआ।

(पद्मपुराण पर्व १५—१८)

नोट१—अंजनी के पुत्र "वीरहनुमान" का जन्म अब से लगभग १० लाख वर्ष पूर्व, शुभ मि. वैशाख कृ.८ (गुजराती चैत्र कृ.८) शनिवार, श्रवण नक्षत्र-चतुर्थ चरण, ब्रह्मयोग, लग्न मीन में इष्ट ५६।१५ (५६ घड़ी १५ पल) पर रात्रि के अन्तिम भाग में हुआ था जिस की जन्म कुंडली यह है:—
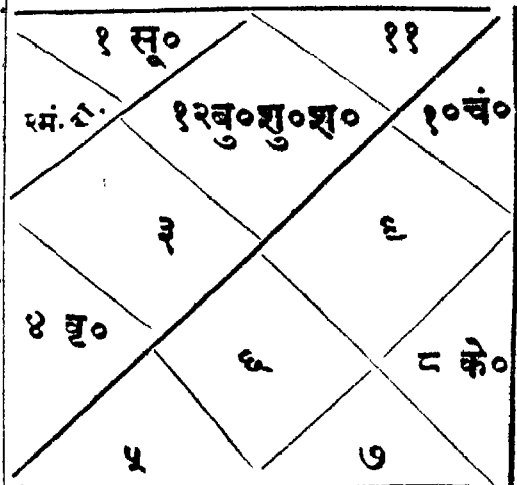
नोट२—वाल्मीकीय रामायण के लेखा-नुसार 'अञ्जना' एक 'पुंजकस्थला' नामक अप्सरा (स्वर्ग वेश्या) थी जो 'केशरि' नामक एक तपस्वी कपिराज (वानर पति) की पत्नी हो कर 'अञ्जना' नाम से प्रसिद्ध हुई। एक दिन अपने रूप के अहंकारवश ऋषि के शाप से यह पशुजाति की कुरूपा वानरी होगई। फिर प्रार्थना करने पर ऋषि

के अनुग्रह से अपना रूप यथा इच्छा बना सकने का वरदान पाकर "ऋजू" नामक एक वानर की स्त्री बन गई। एकदा एक पर्वत पर पीतवस्त्रादि से शृंगारित हो विहार करते समय पवन-देवता ने इस के रूप पर मोहित होकर और इस के शरीर में रोमों द्वारा प्रवेश कर इसे गर्भवती किया जिस से कुछ दिन पश्चात् अञ्जनी की इच्छा होने पर अकस्मात् "हनुमान" का जन्म हुआ। इत्यादि ॥

किसी किसी अजैन पौराणिक लेख से पाया जाता है कि अंजना अपने पूर्व जन्म में "पुंजकस्थला" नामक अप्सरा थी। भस्मासुर की कथा में हनुमान को शिवजी के वीर्य से उत्पन्न बतलाया है। कहीं शिव जी का अवतार बता कर इनका नाम "शंकर-सुवन" लिखा है। इत्यादि ॥

(बाल्मीकि. किष्कि. सर्ग ६७)

(२) चतुर्थ नरक का नाम

अधोलोक की त्रसनाली ७ विभागों या पृथिवियों में विभाजित है। वर्ण या दीप्ति की अपेक्षा से इन ७ पृथिवियों के नाम ऊपर से नीचेको क्रमसे (१) रत्नप्रभा (२) शर्करा प्रभा (३) बालुका प्रभा (४) पङ्क प्रभा (५) धूमप्रभा (६) तमप्रभा (७)महातमप्रभा हैं। इनमें से चौथी पृथ्वीका रूढ़ि नाम अञ्जना है ॥

इन सात पृथ्वियों के अर्थ रहित रूढ़ि नाम क्रमसे (१)घर्मा (२)वंशा (३) मेघा(४) अञ्जना (५) अरिष्टा (६)मघवी (७)माघवी हैं। यही सातों पृथ्वी सप्त नरक हैं ॥

(त्रि. १४४—१५१)

नोट ३— इस अञ्जना नामक चतुर्थ नरक सम्बन्धी जानने योग्य कुछ बातें निम्न लिखित हैं:—

१. पृथ्वी के वर्ण की या उसकी दीप्ति की अपेक्षा से इस नरक का नाम 'पंकप्रभा' है। चित्रा पृथ्वी के तल भाग से इस नरक के अन्त तक की दूरी ३ राजू प्रमाण है ॥

२. यह नरक ऊपर से नीचे नीचे को ७ प्रतरों या पटलों में विभाजित है जिन के नाम आरा, मारा, तारा, चर्चा (वर्चस्क), तमका, घाटा (खड), और घटा (खड्खड) हैं। इन में से प्रत्येक पटल के मध्यस्थित बिल को इन्द्रक बिल कहते हैं जिनका नाम अपने अपने पटल के नाम समान आरा मारा आदि ही हैं ॥

३. प्रथम पटल के मध्य में एक इन्द्रक बिल है, पूर्वादि चारों दिशाओं में सोलह सोलह और आग्नेयादि चारों विदिशाओं में पन्द्रह पन्द्रह, एवम् चारों दिशाओं में ६४ और विदिशाओं में ६०, सर्व १२४ श्रेणीबद्ध बिल हैं। दूसरे पटल में १ इन्द्रक बिल, पूर्वादि प्रत्येक दिशा में १५ और आग्नेयादि प्रत्येक विदिशा में १४, एवम् चारों पूर्वादि दिशाओं में ६०, और विदिशाओं में ५६, सर्व ११६ श्रेणीबद्ध बिल हैं। इसी प्रकार तीसरे चौथे आदि नीचे नीचे के पटलों की प्रत्येक दिशा विदिशा में एक एक श्रेणीबद्ध बिल कम होता गया है जिससे तीसरे पटल में १०८, चौथे में १००, पांचवें में ९२, छटे में ८४, और सातवें में ७६, एवम् सातों पटलों में सब ७०० श्रेणीबद्ध बिल हैं ॥

४. इस नरक में उपर्युक्त ७ पटलों के मध्य के ७ इन्द्रक-बिल, इन इन्द्रकबिलों की पूर्वादि दिशा विदिशाओं के ७०० श्रेणीबद्ध-बिल और दिशा विदिशाओं के बीच अन्तराल के ९९९२९३ प्रकीर्णकबिल, एवम् सर्व १० लाख बिल हैं ॥

५. इस नरक के 'आरा' नामक प्रथम इन्द्रकबिल की पूर्वादि चार दिशाओं में जो ६४ श्रेणीबद्धबिल हैं उन में से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं के पहिले पहिले बिलों के नाम क्रम से निसृष्टा, निरोधा, अनिसृष्टा (अतिनिसृष्टा) और महानिरोधा हैं ॥

६. इस नरक के प्रत्येक बिल में अति उष्णता, दुर्गन्धता, और महा अन्धकार है ॥

७. इस नरक के सब से ऊपर के प्रथम पटल के 'आरा' नामक प्रथम इन्द्रकबिल का विस्तार १४७५००० महायोजन है। दूसरे पटल के 'मारा' नामक इन्द्रकबिल का विस्तार १३८३३३३ १/३ महायोजन, तीसरे का १२९१६६६ २/३, चौथे का १२०००००, पांचवें का ११०८३३३ १/३, छठे का १०१६६६६ २/३, और सर्व से नीचे के सातवें का ९२५००० महायोजन है। ७०० श्रेणीबद्ध बिलों में से प्रत्येक का विस्तार असंख्यात महायोजन और शेष ९९९२९३ प्रकीर्णक बिलों में से ७९९३०० का असंख्यात असंख्यात महायोजन और १९९९९३ का संख्यात संख्यात महायोजन है ॥

८. इस नरक के प्रत्येक इन्द्रकबिल की पृथ्वी की मुटाई २ १/२ कोश, प्रत्येक श्रेणीबद्ध बिल की ३ १/३ कोश और प्रत्येक प्रकीर्णक बिल की ५ ५/६ कोश है ॥

९. इस नरक के बिलों की छत में नारकियों के उत्पन्न होने के उत्पाद स्थान गो-मुख, गजमुख, अश्वमुख, भस्त्रा (फुंकनी या मशक), नाव, कमलपुट आदि जैसे आकार के एक एक योजन व्यास या चौड़ाई के और पांच पांच योजन ऊंचे हैं। नारकी वहां जन्म लेते ही उत्पाद स्थान से नीचे गिर कर और पृथ्वी पर चोट खा कर गेंद की समान पहली बार ६२॥ योजन ऊँचे उछलते हैं, फिर कई बार गिर गिर कर कुछ कम कम ऊँचे उछलते हैं ॥

१०. इस नरक के सबसे ऊपर के 'आरा' नामक प्रथम पटल की भूमि की मट्टी जिसे वहां के नारकी जीव अति क्षुधातुर हो कर भक्षण करते हैं इतनी दुर्गन्धित है कि यदि उस मृत्तिका का कुछ भाग यहाँ मनुष्य लोक में आपड़े तो १७ कोश तकके प्राणी उसकी अति दुर्गन्धिता से मृत्यु को प्राप्त हो जावें, और इसी प्रकार वहां के द्वितीयादि पटलों की मृत्तिका से क्रम से १७॥, १८, १८॥, १९, १९॥, और २० कोश तक के प्राणी मृत्यु के मुख में चले जांय।

११. इस नरक के प्रथमादि सातों पटलों में जघन्य आयु क्रम से एक एक समय कम ७, ७ ३/७, ७ ६/७, ८ २/७, ८ ५/७, ९ १/७, ९ ४/७, सागरोपम काल प्रमाण और उत्कृष्ट आयु क्रम से ७ ३/७, ७ ६/७, ८ २/७, ८ ५/७, ९ १/७, ९ ४/७, १० सागरोपम काल प्रमाण है, अर्थात् पटल पटल प्रति आयु ३/७ सागरोपम काल बढ़ती जाती है।

१२. इस नरक के नारकियों के शरीर की ऊँचाई प्रथमादि सातों पटलों में क्रम से ३५ धनुष २ हाथ २० ४/७ अंगुल, ४० धनुष

$१७\frac{१}{७}$ अंगुल, ४४ धनुष २ हाथ $१३\frac{५}{७}$ अंगुल, ४९ धनुष $१०\frac{२}{७}$ अंगुल, ५३ धनुष २ हाथ $६\frac{६}{७}$ अंगुल, ५८ धनुष $३\frac{३}{७}$ अंगुल और ६२ धनुष २ हाथ है। अर्थात् पटल पटल प्रति ४ धनुष १ हाथ $२०\frac{४}{७}$ अंगुल ऊंचाई बढ़ती गई है। (२४ अंगुल का एक हाथ और ४ हाथ का एक धनुष होता है) ॥

१३. इस नरक के नारकियों का अवधिज्ञान का क्षेत्र ढाई कोश तक का है। और लेश्या नील है॥

१४. इस नरकका नारकी वहां की आयु पूर्ण होने पर तीर्थङ्कर, चक्री, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, इन पदों के अतिरिक्त अन्य कोई कर्मभूमिज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त गर्भज मनुष्य या तिर्यञ्च ही होता है। अन्य भेद वाला मनुष्य या तिर्यंच नहीं होता।

१५. इस नरक में नियम से कोई कर्मभूमिज संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य ही आकर जन्म लेते हैं। संज्ञी जीवों में भी छिपकली गिरगट आदि सरीसर्प और भेरुंड पक्षी आदि विहंगम पंचेन्द्रिय यहां जन्म नहीं लेते। यह तृतीय नरक तक ही जन्म ले सकते हैं। इस नरक में आकर जन्म लेने वाला कोई जीव ५ बार से अधिक निरंतर यहां जन्म नहीं लेता।

१६. इस नरक में जन्म और मरण में प्रत्येक का उत्कृष्ट अन्तर एक मास का है, अर्थात् कुछ समय तक यहां कोई भी प्राणी आकर जन्म न ले या कुछ समय तक यहां कोई भी प्राणी न मरे तो अधिक से अधिक एक मास पर्यंत यह नरक जन्म या मरण या दोनों से शून्य रह सकता है।

(त्रि. गा. १४४-२०६, हरि. सर्ग ४)

(३) धर्मा नामक प्रथम नरक के खरभाग की १६ पृथ्वियों में से ८वीं पृथ्वी का नाम भी 'अञ्जना' है जिसकी मुटाई १००० महायोजन है। (पीछे देखो शब्द 'अङ्का', पृ० ११४)॥

(त्रि. गा. १४७)

(४) जम्बूवृक्ष के नैऋत्य कोण की एक बावड़ी का नाम (अ. मा.) ॥

अंजना चरित—कर्णाटक देशीय प्रसिद्ध जैनकवि 'शिशुमायण' कृत एक चरित ग्रन्थ जिसमें पवनञ्जय की स्त्री 'अञ्जनासुन्दरी' का चरित वर्णित है॥

इस चरित ग्रन्थ की रचना कवि ने बैल्लुकेरेपुर के राजा गुम्मटदेव की रुचि और प्रेरणा से की थी। इस कवि रचित एक अन्य ग्रन्थ 'त्रिपुरदहन सांगत्य' नामक भी है। कवि के पिता का नाम 'बोम्मशेट्टि' था जो कावेरीनदी की नहर के पास 'नयनापुर' नामक ग्राम निवासी मायणशेट्टि' नामक एक प्रसिद्ध धनिक व्यापारी की 'नामरसि' नामक स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ। कवि की माता 'नेमांबिका' और गुरु 'श्री भानुमुनि' थे। (देखो ग्र० 'बृ० वि० च०') ॥

(क० ४६)

अंजनात्मा—पूर्व विदेहक्षेत्र में 'सीता' नामक महानदी की दक्षिण दिशा के चार 'वक्षार' पर्वतों में से एक का नाम॥

पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीतानदी की दक्षिण दिशा में जो विदेहक्षेत्र का चौथाई भाग है वह त्रिकूट, वैश्रवण, अञ्जनात्मा और

अञ्जन, इन चार वक्षारगिरि और तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्त जला, इन ३ विभङ्गा नदियों से वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्या, सुरम्या, रमणीया और मङ्गलावती, इन ८ विदेह देशों में विभक्त है इन में से रम्या, सुरम्या नामक देशों की मध्य सीमा पर के पर्वत का नाम 'अञ्जनात्मा' है ॥

(त्रि. ६६७, ६८८)

अंजनाद्रि—पीछे देखो शब्द 'अञ्जनगिरि', पृ० २१२ ॥

अंजना नाटक—हिन्दी के सुप्रसिद्ध एक जैन लेखक हाथरस निवासी श्रीयुत सुदर्शन कवि रचित नाटक ॥

अञ्जना-पवनञ्जय नाटक—कर्णाटक देशीय उभय भाषा कवि-चक्रवर्ति 'हस्तिमल्ल' रचित एक संस्कृत भाषा का नाटक ग्रन्थ ।

इस कवि का समय विक्रम की चौदहीं शताब्दी है । कहा जाता है कि इस कवि ने एक बार एक मदोन्मत्त हस्ती को दमन किया था । इसी लिये इस का नाम 'हस्तिमल्ल' प्रसिद्ध हुआ । यह गोविन्द भट्ट का पुत्र था । पार्श्वपंडित आदि इस के कई पुत्र थे और श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरबल्लभ और उदयभूषण, यह चार इस के ज्येष्ठ भ्राता थे और बर्द्धमान इसका एक लघु भ्राता था । लोकपालार्य नामक इस का एक शिष्य था । इस कवि रचित अन्य संस्कृत नाटक ग्रन्थ, सुभद्राहरण, विक्रान्तकौरवीय (सुलोचना नाटक), मैथिली परिणय आदि हैं और कई कनड़ी भाषा के ग्रन्थ हैं ॥

(क० ५६)

अंजना सुन्दरी नाटक—इस नाम का एक नाटक ग्रन्थ भरतपुर निवासी बाबू मंगलसिंह वासवश्रीमाल के पुत्र बाबू कन्हैयालाल अजैन ने हिन्दी गद्य पद्य में जैन कथा के आधार पर सन् १८९६ ई० में रचकर इस के मुद्रणादि का सर्वाधिकार 'श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस' बम्बई के स्वामी खेमराज श्रीकृष्णदास को दे दिया है, जो प्रथम बार सन् १९०९ ई० (वि०सं०१९६६) में उसी प्रेस से मुद्रित हो चुका है ॥

अञ्जनी—पीछे देखो शब्द 'अञ्जना (१)' पृ० २१५ ॥

अञ्जिकञ्जय (पवनंजय)—भरत चक्रवर्ती की सवारी के अश्व का नाम ।

अञ्जुका—१७ वें तीर्थंकर श्रीकुन्थनाथ के समवशरण की मुख्य साध्वी (मुख्य आर्यिका या गणनी) का नाम (अ. मा. अंजुया) ।

श्री कुन्थनाथ के समवशरण की मुख्य आर्यिका का नाम 'भाविता' भी था जो ६०३५० आर्यिकाओं की मुख्य गणनी थी।

(उत्तर पु० पर्व ६४ श्लोक ४६)

नोट-श्वेताम्बर जैन मुनि श्री 'आत्मा' राम जी रचित ग्रन्थ 'जैन तत्वादर्श' में पृ० ३० पर 'श्रीकुन्थनाथ' की मुख्य साध्वी का नाम 'दामिनि' दिया है ॥

अञ्जू—(१) शुक्रेन्द्र (९वें स्वर्ग का इन्द्र) की चौथी पटरानी का नाम (अ० मा० अंजू)॥

(२) एक धनदेव सेठ की पुत्री का नाम जिस का कथन विपाकसूत्र के १० वें अध्याय में है (अ० मा० अंजू)।

अटट—काल विशेष, एक बहुत बड़ा काल परिमाण, चौरासी लाख अटटाङ्ग वर्ष, (८४ लक्ष)^{१८} वर्ष ॥

८४ लक्ष का १८ वां बल (घात), अर्थात् ८४ लाख को १८ जगह रख कर परस्पर गुणन करने से जो संख्या प्राप्त हो उतने वर्षों का एक अटट होता है । ४२२ ५३,७६७६३६२६५३३८५३२१८३६'१, २११५ १५२९९६००००००००००, ००००००००४००० ००००००७०००,००००००००००००००००००० ००,०००००००००००००००००००००, ०००० ००००००००००००००००० (३५ अङ्क और ९० शून्य,सर्व १२५ स्थान) वर्षोंका एक 'अटट' काल कहलाता है ।'(पीछे देखो श० 'अङ्क-विद्या' का नोट ८,पृ० ११०, १११) ॥

अटटाङ्ग—काल विशेष, एक बहुत बड़ा काल परिमाण । ८४ लक्ष त्रुटय प्रमाण काल । एक 'अटट' काल का ८४ लाखवां भाग प्रमाण वर्ष, (८४ लाख)^{१७} वर्ष ॥

८४ लाख का १७वाँ बल (घात), अर्थात् ८४ लाख को १७ जगह रख कर परस्पर गुणन करने से जो संख्या प्राप्त हो उतने वर्षों का एक 'अटटाङ्ग' काल होता है । ५१६११६६४२०९८७५४०३०,१४५०४३ ४७७५६१३४४०००००,००००००००००००००० ००००००,०००००००००००००००००००००,०० ००००००००००००००००००,०००००००००० ०००००००००० (३३ अङ्क और ८५ शून्य, सर्व ११८ स्थान) वर्षों का एक 'अटटाङ्ग' काल होता है । (पीछे देखो शब्द 'अङ्क-विद्या,' का नोट ८ पृ० ११०,१११) ॥

(हरि० सर्ग ७ श्लोक १६—३१)

अट्टन (अट्टण)—उज्जयनी में रहने वाले एक मल्ल का नाम ।

यह मल्ल सोपारक नगर के राजा के पास से बहुत बार इनाम (पारितोषिक) लाया था, परन्तु उसकी वृद्धावस्था में एक प्रतिस्पर्धी (ईर्षालु,द्वेष जलने वाला) खड़ा हो गया जिसने उसे पराजित किया, इस लिये अट्टण ने दुखी होकर मुनिदीक्षा लेली (अ० मा०) ॥

अट्टकवि (अर्हद्दास)—एक कर्णाटक देशीय ब्राह्मण कुलोत्पन्न प्रसिद्ध जैन कवि ॥

इस कवि के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें ज्ञातव्य हैं :—

(१) इस कवि का समय ईस्वी सन् १३०० के लगभग है ॥

(२) ईसा की दसवीं शताब्दी के मध्य में हुए गङ्गवंशीय महाराज 'मारसिंह' के सेनापति 'काडमरस' के वंश में उसकी १६वीं पीढ़ी में इस कवि का जन्म हुआ था ॥

(३) इसके पिता का नाम 'नागकुमार' था ॥

(४) इसने अपने नामके साथ 'जिन नगरपति', 'गिरिनगराधीश्वर' आदि विशेषण लिखे हैं जिस से जाना जाता है कि यह कवि इन नगरों का स्वामी भी था।

(५) इस कवि के पूर्वज 'काडमरस' को जो महाराजा 'मारसिंह' का एक वीर सेनापति था एक बलवान शत्रु पर विजय

पाने के उपलक्ष में २५ ग्रामों की एक बड़ी जागीर मिली थी।

(६) यह कवि 'अर्हत्कवि' और 'अर्हद्दास' नामों से भी प्रसिद्ध था।

(७) कनड़ी भाषा का 'अट्ठमत' नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ इसी कवि का बनाया हुआ है। यह समग्र नहीं मिलता। इसके उपलब्ध भाग में निम्न लिखित विषय हैं :—

१. वर्षा के चिन्ह, २. आकस्मिक लक्षण, ३. शकुन, ४. वायुचक्र, ५. गृहप्रवेश, ६. भूकम्प, ७. भूजातफल, ८. उत्पातलक्षण, ९. परिवेशलक्षण, १० इन्द्रधनुषलक्षण, ११. प्रथमगर्भ लक्षण, १२. द्रोणसंख्या, १३. विद्युत लक्षण, १४. प्रतिसूर्य्य लक्षण, १५. सम्वत् सर फल, १६. ग्रहद्वेष, १७. मेघों के नाम कुल| वर्ण १८. ध्वनि विचार, १९. देशवृष्टि, २०. मास फल, २१ राहुचक्र, २२. नक्षत्रफल, २३. संक्रान्तिफल, इत्यादि। (देखो ग्र० 'बृ० वि० च०') (क० ६०)

अट्ठमत—अट्ठ कवि रचित कनड़ी भाषा का एक ज्योतिष ग्रन्थ। (ऊपर देखो शब्द 'अट्ठकवि')॥

अट्ठाईस-अनुमानाभास—अनुमान प्रमाण सम्बन्धी २८ प्रकार के दोष।

यथार्थ न होने पर भी जो यथार्थ सरीखा जान पड़े उसे न्याय की परिभाषा में आभास (झलक, प्रतिबिम्ब, तुल्यता, सदृशता) कहते हैं। यह आभास जब अनुमान प्रमाण के किसी एक या अधिक अवयवों में हो अथवा उसके प्रयोग में हो तो उस आभास को 'अनुमानाभास' कहते हैं। इस अनुमानाभास के निम्न लिखित ५ मूल भेद और २८ उत्तर भेद हैं:—

१. पक्षाभास ७—(१) अनिष्ट पक्षाभास (२) सिद्ध पक्षाभास (३) प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास (४) अनुमान बाधित पक्षाभास (५) आगमबाधित पक्षाभास (६) लोकबाधित पक्षाभास (७) स्ववचनबाधित पक्षाभास।

२. हेत्वाभास ११—(१) स्वरूपासिद्ध या असतसत्तासिद्ध हेत्वाभास (२) सन्दिग्धासिद्ध या अनिश्चितसत्तासिद्ध हेत्वाभास (३) विरुद्धहेत्वाभास (४) निश्चित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास (५) शङ्कित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिकहेत्वाभास (६) सिद्धसाधन अकिञ्चित्कर हेत्वाभास (७) प्रत्यक्षबाधित विषय अकिञ्चित्कर हेत्वाभास (८) अनुमान बाधित विषय अकिञ्चित्कर हेत्वाभास (९) आगम बाधित विषय अकिञ्चित्कर हेत्वाभास (१०) लोकबाधित विषय अकिञ्चित्कर हेत्वाभास (११) स्ववचनबाधित विषय अकिञ्चित्कर हेत्वाभास।

३. अन्वय दृष्टान्ताभास ४—

(१) साध्य विकल अन्वय दृष्टान्ताभास

(२) साधन विकल-अन्वय दृष्टान्ताभास

(३) उभय विकल अन्वय दृष्टान्ताभास

(४) विपरीत या अतिप्रसंग अन्वय दृष्टान्ताभास।

४. व्यतिरेक दृष्टान्ताभास ४—

(१) साध्य विकल व्यतिरेक दृष्टान्ताभास

(२) साधन विकल व्यतिरेक दृष्टान्ताभास

(३) उभय विकल व्यतिरेक दृष्टान्ताभास

(४) विपरीत या अतिप्रसङ्ग व्यतिरेकदृष्टान्ताभास।

५. बाल प्रयोगाभास २—(१) हीन प्रयोगाभास (२) क्रम भङ्ग प्रयोगाभास ।

नोट—इन २८ प्रकार के अनुमानाभास में से प्रत्येक का लक्षण स्वरूपादि यथास्थान देखें। (देखो ग्रन्थ 'स्थानाङ्गार्णव') ॥

(परी० अ० ६ सूत्र ११-५०)

अट्ठाईस इन्द्रियविषय—पांचों बाह्य इन्द्रियों और मनेन्द्रिय (अभ्यन्तर इन्द्रिय) के २८ मूल विषय निम्न लिखित हैं:—

१. स्पर्शनेन्द्रिय विषय ८—कोमल, कठोर, लघु, गुरु, शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध ॥

२. रसनेन्द्रिय विषय ५—कटु, मिष्ट, कषायल, आम्ल, तिक्त ॥

३. घ्राणेन्द्रिय विषय २—सुगन्ध, दुर्गन्ध ॥

४. नेत्रेन्द्रिय विषय ५—श्वेत, पीत, हरित, अरुण, कृष्ण ॥

५. कर्णेन्द्रिय विषय ७—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ॥

६. अनिन्द्रिय (मनेन्द्रिय) विषय १—संकल्पविकल्प। (देखो ग्रन्थ 'स्थानांगार्णव') ॥

(गो० जी० ४७८, मू० ४१८)

अट्ठाईस इन्द्रियविषय निरोध—२८ प्रकार के इन्द्रिय विषयों से मन को रोकना। (ऊपर देखो शब्द 'अट्ठाईस इन्द्रियविषय') ॥

अट्ठाईस नक्षत्र—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती। (देखो ग्रन्थ 'स्थानांगार्णव') ॥

(त्रि. गा. ४३२, ४३३)

अट्ठाईस नक्षत्राधिप—अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों के २८ अधिपति देवताओं के नाम क्रम से निम्न लिखित हैं:—

१. अश्व, २. यम, ३. अग्नि, ४. प्रजापति, ५. सोम, ६. रुद्र, ७. अदिति, ८. देवमंत्री, ९. सर्प, १०. पिता, ११. भग, १२. अर्यमा, १३. दिनकरा, १४. त्वष्टा, १५. अनिल, १६. इन्द्राग्नि, १७. मित्र, १८. इन्द्र, १९. नैऋति, २०. जल, २१. विश्व, २२. ब्रह्मा, २३. विष्णु, २४. वसु, २५. वरुण, २६. अज, २७. अभिवृद्धि, २८. पूषा। (देखो ग्र० 'स्थानांगार्णव') ॥

(त्रि० गा० ४३४, ४३५)

नोट १—अश्विनी आदि प्रत्येक नक्षत्र के तारों की अलग अलग संख्या क्रम से ५, ३, ६, ५, ३, १, ६, ३, ६, ४, २, २, ५, १, १, ४, ६, ३, ९, ४, ४, ३, ३, ५, १११, २, २, ३२ हैं ॥

प्रत्येक नक्षत्र के तारों की इस संख्या को ११११ में अलग अलग गुणन करने से उन नक्षत्रों के परिवार तारों की संख्या प्राप्त होगी ॥

नोट २—प्रत्येक नक्षत्र के तारागण की स्थिति से जो आकार दृष्टिगोचर होते हैं वह क्रम से (उपरोक्त नक्षत्रक्रम से) निम्न लिखित हैं:-१ अश्वमस्तक, २. चुल्हीपाषाण, ३. बीजना, ४. गाड़ा की उद्धिका, ५. मृगमस्तक, ६. दीपक, ७. तोरण, ८. छत्र,

६.वल्मीक, १०. गोमूत्र, ११. शरयुगल, १२. हस्त, १३. कमल, १४. दीप, १५. अधिकरण (अहिरणी, अर्द्धपात्र या अद्धासन) १६. वर-माला १७. वीणा, १८. शृङ्ग, १६. वृश्चिक, २०. जीर्णवापी, २१. सिंहकुम्भस्थल, २२. गज-कुम्भस्थल, २३. मृदङ्ग, २४. पतनमुखपक्षी, २५. सेना, २६. गजशरीराग्रभाग, २७. गज शरीर का पृष्ठ भाग, २८. नौका ॥

नोट ३.—नक्षत्रों और उनके सर्व तारों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपमकाल का चौथाई भाग और जघन्य आयु आठवां भाग प्रमाण है ॥

(त्रि० ४४०—४४६)

अट्ठाईस-प्ररूपणा—जीवद्रव्य का स्वरूपादि निरूपण करने के २८ आधार ॥

जिस आधार द्वारा जीवद्रव्य का सविस्तार स्वरूप आदि निरूपण किया जाय उसे 'प्ररूपणा' कहते हैं। इसके मूल भेद दो अर्थात् (१) गुणस्थान और (२) मार्गणा हैं। इन ही दो भेदों के विशेष भेद निम्न लिखित २८ हैं:—

१. गुणस्थान १४—(१) मिथ्यात्व (२) सासादन (३) मिश्र (४) अविरत सम्यग्दृष्टि (५) देशविरत (६) प्रमत्तविरत (७) अप्रमत्तविरत (८) अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) उपशान्तमोह (१२) क्षीणमोह (१३) सयोगकेवलिजिन (१४) अयोगकेवलिजिन ॥

२. मार्गणा १४—(१) गति (२) इन्द्रिय (३) काय (४) योग (५) वेद (६) कषाय (७) ज्ञान (८) संयम (६) दर्शन (१०) लेश्या (११) भव्य (१२) सम्यक्त्व (१३) संज्ञी (१४) आहार ॥

(गो. जी. ६,१०, १४१)

नोट १.—मोह की हीनाधिकयता और योगों की सत्ता-असत्ता के निमित्त से होने वाली आत्मा के सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप गुणों की अवस्थाओं को 'गुणस्थान' कहते हैं। अथवा दर्शन मोहिनीयादि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाओं के निमित्त से होने वाले परिणामों को 'गुणस्थान' कहते हैं ॥

(गो० जी० ८)

नोट २.—जिन भावों या पर्यायों के द्वारा अनेक अवस्थाओं में स्थित जीवों का ज्ञान हो उन्हें मार्गणा कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञान में जिस प्रकार से देखे जाने गये हों उसी प्रकार से जिन जिन भावों द्वारा या जिन जिन पर्यायों में जीवद्रव्य का विचार किया जाय उन्हें 'मार्गणा' कहते हैं ॥

(गो० जी० १४०)

नोट ३.—संक्षेप, सामान्य और ओघ, यह तीनों भी 'गुणस्थान' की संज्ञा या उस के पर्यायवाची अन्य नाम हैं। और विस्तार, विशेष और आदेश, यह तीनों नाम 'मार्गणा' की संज्ञा या उसके पर्यायवाची नामान्तर हैं ॥

(गो० जी० ३)

नोट ४.—उपर्युक्त २ या २८ प्ररूपणाओं के अतिरिक्त (१) जीवसमास (२) पर्याप्ति (३) प्राण (४) संज्ञा (५) उपयोग, यह ५ प्ररूपणा तथा ८ अन्तरमार्गणा और भी हैं जिन का अन्तर्भाव उपर्युक्त १४ मार्गणाओं में ही हो जाता है ॥

(गो० जी० ४—७, १४२)

नोट ५.—अभेद विवक्षा से अथवा संक्षिप्त रूप से तो प्ररूपणाओं की संख्या केवल दो (गुणस्थान और मार्गणा) ही है। पर भेद विवक्षा से अथवा विशेष रूप से

निम्न प्रकार इस में अनेक विकल्प हो सकते हैं:—

१. गुणस्थान, मार्गणा, अन्तरमार्गणा, यह तीन भेद ॥

२. गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग, यह ७ भेद ॥

३. उपर्युक्त ७ भेदों में अन्तरमार्गणा मिलाने से ८ भेद ॥

४. दो मूल भेदों में ८ अन्तरमार्गणा मिलाने से १० भेद ॥

५. उपर्युक्त १० भेदों में जीव-समास आदि ५ को मिलाने से १५ भेद । या गुणस्थान और १४ मार्गणा यह १५ भेद ॥

६. उपर्युक्त १५ भेदों में अन्तरमार्गणा मिलाने से १६ भेद । या गुणस्थान, १४ मार्गणा और अन्तरमार्गणा, यह १६ भेद ॥

७. गुणस्थान, १४ मार्गणा और जीवसमास आदि ५, यह २० भेद ॥

(भेद विवक्षा से मुख्यतः यही २० भेद प्ररूपणाओं के गिनाये जाते हैं) ॥

८. उपर्युक्त २० भेदों में अन्तरमार्गणा मिलाने से २१ भेद ॥

९. गुणस्थान, १४ मार्गणा, और ८ अन्तरमार्गणा, यह २३ भेद ॥

१०. उपर्युक्त २० भेदों में ८ अन्तरमार्गणा मिलाने से २८ भेद । या १४ गुणस्थान और १४ मार्गणा, यह २८ भेद ॥

११. गुणस्थान १४, मार्गणा १४, और अन्तरमार्गणा, यह २९ भेद ।

१२. गुणस्थान १४, मार्गणा १४, और जीवसमासादि ५, यह ३३ भेद ॥

१३. उपर्युक्त २९ भेदों में जीवसमासादि ५ जोड़ने से ३४ भेद ॥

१४. गुणस्थान १४, मार्गणा १४, अंतरमार्गणा ८, यह ३६ भेद ॥

१५. उपर्युक्त ३६ भेदों में जीवसमासादि ५ मिलाने से ४१ भेद ॥

इत्यादि...............

नोट १.—उपर्युक्त १४ मार्गणाओं में से गति ४, इन्द्रिय २ या ५ या ६, काय २ या ६, योग ३ या १५, वेद २ या ३, कषाय २ या ४ या २५, ज्ञान २ या ५ या ८, संयम २ या ५ या ७ या १२ या २२, दर्शन ४, लेश्या ६, भव्य २, सम्यक्त्व ३ या ६, संज्ञी २, आहार २ या ३ या ५, और इन में से प्रत्येक के अनेक अवान्तर भेद हैं । इसी प्रकार गुणस्थान आदि में अनेकानेक विकल्प हैं जिनका विवरण और स्वरूपादि यथास्थान देखें । (देखो ग्रन्थ 'स्थानांगार्णव') ॥

अट्ठाईस भाव (अष्टम व नवम गुणस्थानी जीव के)—५३ भावों में से उपशमश्रेणी या क्षायिकश्रेणी चढ़ने वाले जीव के आठवें और नवें गुणस्थानों में निम्न लिखित २८ भाव होते हैं:—

१. औपशमिकभाव २, या क्षायिकभाव २ (उपशमश्रेणी वाले के)—उपशमसम्यक्त्व, उपशमचारित्र या क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र ॥

या क्षायिकभाव २ (क्षायिक श्रेणी वाले के)—क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिक-चारित्र ॥

२. क्षायोपशमिकभाव १३—ज्ञान ४ (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान), दर्शन ३ (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन), लब्धि ५ (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य), और सरागचारित्र १ ॥

३. औदयिकभाव ११—मनुष्यगति १,

कषाय ४ (क्रोध, मान, माया, लोभ), लिङ्ग ३ (पुरुष, स्त्री, नपुंसक), शुक्ल लेश्या १, असिद्धत्व १, अज्ञान १ ॥

४. पारिणामिकभाव २—जीवत्व, भव्यत्व ॥

(गो. क. गा. ८२२ की व्याख्या)

नोट—५३ भाव निम्न प्रकार हैं:—

१. औपशमिकभाव २—(१) उपशमसम्यक्त्व (२)उपशम चारित्र,

२. क्षायिकभाव ९—(३) क्षायिकज्ञान (४) क्षायिकदर्शन (५) क्षायिकसम्यक्त्व (६) क्षायिकचारित्र (७) क्षायिकदान (८) क्षायिकलाभ (९) क्षायिकभोग (१०) क्षायिकउपभोग (११) क्षायिकवीर्य,

३. क्षायोपशमिक या मिश्रभाव१८—(१२) मतिज्ञान (१३) श्रुतज्ञान (१४) अवधिज्ञान (१५) मनःपर्ययज्ञान (१६) चक्षुदर्शन (१७) अचक्षुदर्शन (१८) अवधिदर्शन (१९) कुमतिज्ञान (२०) कुश्रुतज्ञान (२१) कुअवधिज्ञान (२२) क्षायोपशमिकदान (२३) क्षायोपशमिकलाभ (२४) क्षायोपशमिक भोग(२५)क्षायोपशमिकउपभोग (२६) क्षायोपशमिकवीर्य (२७) वेदक अर्थात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व (२८) सरागचारित्र (२९) देशसंयम,

४. औदयिकभाव २१—(३०) नरकगति (३१) तिर्यञ्चगति (३२) मनुष्यगति (३३) देवगति (३४) पुंलिङ्ग (३५) स्त्रीलिङ्ग (३६) नपुंसकलिङ्ग (३७) क्रोधकषाय(३८) मानकषाय (३९) मायाकषाय (४०) लोभकषाय (४१) मिथ्यात्व (४२) कृष्णलेश्या (४३) नीललेश्या (४४) कापोतलेश्या (४५) पीतलेश्या (४६) पद्मलेश्या (४७) शुक्ललेश्या (४८) असिद्धत्व (४९) असंयम (५०) अज्ञान,

५. पारिणामिक भाव ३—(५१) जीवत्व (५२) भव्यत्व (५३) अभव्यत्व। (देखो प्र० 'स्थानांगार्णव') ॥

[गो० क० ८१३-८२२]

अट्ठाईस मतिज्ञान भेद—मतिज्ञान के (१) व्यंजनावग्रह (२) अर्थावग्रह (३) ईहा (४) अवाय (५) धारणा, यह ५ मूल भेद हैं। इन पांच में से पहिले प्रकार का अर्थात् व्यञ्जनावग्रह मतिज्ञान तो स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र, इन ४ ही इन्द्रियों द्वारा होता है। अतः इस व्यञ्जनावग्रह मतिज्ञान के भेद चारों इन्द्रिय अपेक्षा चार हैं। और अर्थावग्रह आदि शेष चार प्रकार के मतिज्ञान में से प्रत्येक मतिज्ञान स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन, इन छहों इन्द्रियों द्वारा होता है। अतः इन चारों प्रकार के मतिज्ञान के भेद छहों इन्द्रिय अपेक्षा ४ × ६ = २४ भेद हैं। अर्थात् व्यञ्जनावग्रह मतिज्ञान के चार भेद, और अर्थावग्रह आदि के २४ भेद, एवं सर्व २८ भेद मतिज्ञान के हैं। (पीछे देखो शब्द 'अक्षिप्र-मतिज्ञान', पृ० ४२)

नोट१—मतिज्ञान अभेद दृष्टि से एक ही प्रकार का है। और भेद दृष्टि से अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा की अपेक्षा चार प्रकार का है। व्यञ्जनावग्रह, अर्थावग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा की अपेक्षा ५ प्रकार का है। पांच इन्द्रियों और छठे मन से अवग्रहादि होने की अपेक्षा २४ प्रकार का है। व्यंजनावग्रह, अर्थावग्रह, ईहा, अवाय, धारणा और छहों इन्द्रियों की अपेक्षा उपर्युक्त २८ प्रकार का है। बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, इन ६, और इनके विरुद्ध एक

एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, और अध्रुव, इन ६, एवम् १२ की अपेक्षा १२, या ४८,६०, २८८ या ३३६ प्रकार का है ॥

(देखो ग्रन्थ 'स्यानाङ्गार्णव')

(गो० जी० ३०५—३१२)

नोट २—किसी पदार्थका 'अवग्रह' नामक मतिज्ञान जब स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र, इन चार इन्द्रियों द्वारा होता है तो वह ज्ञान प्रथम समय में अर्थात् अपनी पूर्व अवस्था में अव्यक्तरूप और उत्तर अवस्था में व्यक्तरूप होता है। परन्तु वही ज्ञान जब चक्षु इन्द्रिय और मन द्वारा होता है तो वह व्यक्त पदार्थ के विषय में व्यक्त रूप ही होता है।

अतः किसी पदार्थ के 'अव्यक्तावग्रह मतिज्ञान' को 'व्यञ्जनावग्रह मतिज्ञान' कहते हैं और व्यक्तावग्रह मतिज्ञान को अर्थावग्रह मतिज्ञान' कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा से यह प्रकट है कि व्यञ्जनावग्रह केवल ४ ही इन्द्रियों द्वारा होताहै। परन्तु अर्थावग्रह पांचों इन्द्रिय और छटे मन द्वारा भी होता है।

नोट ३—चक्षु इन्द्रिय और मन, यह २ इन्द्रियां अप्राप्यकारी हैं, अर्थात् इन दो के द्वारा किसी पदार्थ का जो ज्ञान होता है वह इन दो इन्द्रियों से उस पदार्थ के असंबद्ध अर्थात् दूर रहते हुए ही होता है इसी लिये इन दो इन्द्रियों द्वारा केवल व्यक्तावग्रह (अर्थावग्रह) ही होता है।

शेष ४ इन्द्रियां प्राप्यकारी हैं, अर्थात् इन के द्वारा किसी पदार्थ का जो ज्ञान होता है वह इन इन्द्रियों के साथ उस पदार्थ के सम्बद्ध अर्थात् अति निकट होने पर ही होता है। इसी लिये इन चार इन्द्रियों द्वारा व्यक्तावग्रह और अव्यक्तावग्रह (अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह) दोनों प्रकारका मतिज्ञान होता है।

अतः प्राप्त या सम्बद्ध पदार्थ के अवग्रह मतिज्ञानको 'व्यञ्जनावग्रह मतिज्ञान' कहते हैं और प्राप्त अप्राप्त या सम्बद्ध असम्बद्ध दोनों प्रकार के पदार्थों के अवग्रह मतिज्ञान को 'अर्थावग्रह मतिज्ञान' कहते हैं ॥

(गो० जी० ३०६)

अट्ठाईस मूलगुण (निर्ग्रन्थ मुनियों के)—मुनिव्रत सम्बन्धी अनेक नियमों या गुणों में से २८ मुख्य गुण हैं जिन पर मुनिधर्म की नींव स्थिर की जाती है। इन में से किसी एक की न्यूनता भी मुनि धर्म को दूषित करती या भंग कर देती है। अर्थात् जिस प्रकार मूल बिना वृक्ष स्थिर नहीं रहता इसी प्रकार इन गुणों के बिना मुनि धर्म स्थिर नहीं रहता। इसीलिये इन्हें मूलगुण कहते हैं। इनका विवरण निम्न लिखित है :—

१. पंचमहाव्रत (१)—अहिंसा-महाव्रत (२) सत्य-महाव्रत (३) अचौर्य महाव्रत (४) ब्रह्मचर्य-महाव्रत (५) अपरिग्रह महाव्रत।

२. पंच समिति—(१) ईर्या समिति (२) भाषा समिति (३) एषणा समिति (४) आदाननिक्षेपण समिति (५) प्रतिष्ठापना समिति।

३. पंचेन्द्रिय निरोध—(१) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध (२) रसनेन्द्रिय निरोध (३) घ्राणेन्द्रिय निरोध (४) चक्षुरेन्द्रिय निरोध (५) श्रोत्रेन्द्रिय निरोध।

४. षटावश्यक—(१) सामायिक आवश्यक (२) चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक (३) वन्दनावश्यक (४) प्रतिक्रमण आवश्यक

(५) प्रत्याख्यान आवश्यक (६) कायोत्सर्ग आवश्यक।

५. सप्तप्रकीर्णक—(१) केश-लुञ्च (२) आचेलक्य (३) अस्नान (४) भूमिशयन (५) अदन्तघर्षण (६) स्थिति भोजन (७) एक भक्त।

नोट.—निर्ग्रन्थ मुनियों के उपर्युक्त २८ मूलगुणों के अतिरिक्त ८४ लाख उत्तर-गुण हैं जिनका पालन यथाशक्ति सर्व ही जैन मुनि करते हैं परन्तु इनकी पूर्णता १२वें गुणस्थान के पश्चात् होती है जब कि वास्तविक निर्ग्रन्थ पद पूर्णरूप से प्राप्त हो जाता है॥ (देखो ग्रन्थ 'स्थानांगार्णव')

(मू० २-३६, १०२३)

अट्ठाईस-मोहनीयकर्मप्रकृति—

जीव को अपने स्वरूप से असावधान या अचेत करने वाले कर्म को 'मोहनीय कर्म' कहते हैं जिसके मूल भेद दो और विशेष भेद २८ निम्न प्रकार हैं :—

१. दर्शन मोहनीयकर्म प्रकृति ३ —
(१) मिथ्यात्व कर्मप्रकृति (२) सम्यक्मिथ्यात्व (मिश्र) कर्मप्रकृति (३) सम्यक्त्व कर्म प्रकृति।

२. चारित्र मोहनीय कर्म प्रकृति २५—
कषाय वेदनीय १६ और अकषाय (नोकषाय) वेदनीय ९, एवम २५ जिनका विवरण यह है :—

(१-४) अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ।

(५-८) अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ।

(९-१२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ।

(१३-१६) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

(१७-२५) हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद॥

नोट—मोहनीय कर्म प्रकृति के भेदों में उपर्युक्त भेदों ही से निम्न लिखित अनेक विकल्प हो सकते हैं :—

१. अभेद दृष्टि से मोहनीयकर्म एक ही है।

२. दर्शन-मोहनीय, और चारित्र-मोहनीय, यह मूल भेद २ हैं।

३. दर्शन-मोहनीय, कषाय-वेदनीय और अकषाय-वेदनीय, यह ३ भेद हैं॥

४. दर्शनमोहनीय के उपर्युक्त ३ भेद और चारित्र मोहनीय, यह ४ भेद हैं।

५. दर्शन-मोहनीय के उपर्युक्त ३ भेद और चारित्र-मोहनीय के दो भेद, यह ५ भेद हैं।

६. दर्शन-मोहनीय, कषाय-वेदनीय क्रोध, मान, माया लोभ, और अकषाय-वेदनीय, यह ६ भेद हैं।

या दर्शन-मोहनीय, कषायवेदनीय अनन्तानुबन्धी आदि ४, और अकषाय-वेदनीय, यह ६ भेद हैं।

७. दर्शन-मोहनीय ३, कषायवेदनीय ४ और अकषाय वेदनीय, यह ८ भेद हैं।

८. दर्शन-मोहनीय, कषायवेदनीय और अकषाय वेदनीय ९, यह ११ भेद हैं।

९. दर्शनमोहनीय ३, कषाय वेदनीय, और अकषाय वेदनीय ९, यह १३ भेद हैं।

१०. दर्शन-मोहनीय, कषाय वेदनीय ४ और अकषाय वेदनीय ९, यह १४ भेद हैं।

११. दर्शनमोहनीय ३, कषायवेदनीय ४

और अकषायवेदनीय ६, यह १६ भेद हैं।

१२. दर्शनमोहनीय, कषायवेदनीय १६ और अकषायवेदनीय, यह १८ भेद हैं।

१३. दर्शन मोहनीय ३, कषायवेदनीय १६ और अकषायवेदनीय, यह २० भेद हैं।

१४. दर्शन मोहनीय, कषायवेदनीय १६ और अकषायवेदनीय ६, यह २६ भेद हैं।

१५. दर्शन मोहनीय ३, कषाय वेदनीय १६ और अकषायवेदनीय ६, यह २८ भेद। इत्यादि अन्यान्य अपेक्षाओं से इसके और भी अनेक विकल्प हो सकते हैं (देखो ग्रन्थ 'स्थानाङ्गार्णव')॥

अट्ठाईस श्रेणीबद्ध मुख्यबिल (सप्त नरकों के)—सातों नरकों में से प्रत्येक नरक के सब से ऊपर के एक एक इन्द्रकबिल की पूर्वादि चारों दिशाओं में जो कई कई श्रेणीबद्ध बिल हैं उन में से उन इन्द्रकबिलों के निकट के जो चारों दिशाओं के चार चार बिल हैं वही मुख्य बिल हैं जो गणना में निम्न लिखित २८ हैं:—

१. घर्मा नामक प्रथम नरक के 'सीमन्त' नामक प्रथम इन्द्रक बिल की पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में क्रम से (१) कांक्षा (२) पिपासा (३) महाकांक्षा (४) महापिपासा॥

२. वंशा नामक द्वितीय नरक के 'स्तनक' नामक प्रथम इन्द्रक की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से (१) अनिच्छा (२) अविद्या (३) महाऽनिच्छा (४) महाऽविद्या।

३. मेघा नामक तृतीय नरक के 'तप्त' नामक प्रथम इन्द्रक की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से (१) दुःखा (२) वेदा (३) महादुःखा (४) महावेदा॥

४. अञ्जना नामक चतुर्थ नरक के 'आर' नामक प्रथम इन्द्रक की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से (१) निसृष्टा (२) निरोधा (३) अतिनिसृष्टा (४) महानिरोधा॥

५. अरिष्टा नामक पञ्चम नरक के 'तमक' नामक प्रथम इन्द्रक की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से (१) निरुद्ध (२) विमर्दन (३) अतिनिरुद्ध (४) महाविमर्दन॥

६. मघवी नामक षष्ठम नरक के 'हिमक' नामक प्रथम इन्द्रक की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से (१) नीला (२) पङ्का (३) महानीला (४) महापङ्का॥

७. माघवी नामक सप्तम नरक में केवल एक ही इन्द्रक बिल 'अवधिस्थान' या 'अप्रतिस्थान' नामक है। इसको पूर्वादि दिशाओं में क्रम से (१) काल (२) रौरव (३) महाकाल (४) महारौरव, यह चार ही श्रेणीबद्ध बिल हैं॥

नोट—प्रथम आदि सप्त नरकों में सर्व इन्द्रक बिल क्रम से १३, ११, ९, ७, ५, ३ और १, एवम् सर्व ४९ हैं और श्रेणीबद्धबिल क्रम से ४४२०, २६८४, १४७६, ७००, २६०, ६०, और ४, एवम् सर्व ९६०४ हैं। इनके अतिरिक्त आठों दिशाओं और विदिशाओं के अन्तरकोणों में जो प्रकीर्णक बिल हैं उन की संख्या प्रथमादि नरकों में क्रम से २९९५५६७, २४९७३०५, १४९८५१५, ९९९२९३, २९९७३५, ९९९३२, ०, एवम् सर्व ८३९०३४७ है। इस प्रकार सातों नरकों में ४९ इन्द्रकबिल, ९६०४ आठों दिशा विदिशाओं के श्रेणीबद्धबिल और ८३९०३४७ प्रकीर्णक बिल,

प्रकार सर्व ८४ लाख भिन्न हैं। [देखो शब्द 'अञ्जना (२)' पृ० २१६; और ग्रन्थ 'हस्तिमार्णव']

(त्रि. १५१, १५६-१६५)

अट्ठानवे जीवसमास—जिन धर्मों द्वारा अनेक जीवों अथवा उनकी अनेक प्रकार की जातियों का संग्रह किया जाय उन धर्म विशेषों को 'जीव-समास' कहते हैं जिनकी संख्या ९८ निम्न प्रकार है:—

१. स्थावर या एकेन्द्रिय जीवों के जीवसमास ४२—(१) स्थूल पृथ्वी कायिक (२) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक (३) स्थूल जलकायिक (४) सूक्ष्म जलकायिक (५) स्थूल अग्निकायिक (६) सूक्ष्म अग्निकायिक (७) स्थूल वायुकायिक (८) सूक्ष्म वायुकायिक (६) स्थूल नित्यनिगोद साधारण बनस्पतिकायिक (१०) सूक्ष्म नित्य निगोद साधारण बनस्पतिकायिक (११) स्थूल इतरनिगोद साधारण बनस्पतिकायिक (१२) सूक्ष्म इतर निगोद साधारणबनस्पतिकायिक (१३) सप्रतिष्ठित प्रत्येकबनस्पतिकायिक (१४) अप्रतिष्ठित प्रत्येकबनस्पतिकायिक; एकेन्द्रिय जीवों के इन १४ भेदों में से हर एक भेद के जीव (१) पर्याप्त (२) निर्वृत्यपर्याप्त और (३) लब्ध्यपर्याप्त, इन तीनों प्रकार के होते हैं। अतः इन १४ भेदों को तिगुना करने से एकेन्द्रिय जीवों के ४२ जीवसमास होतेहैं॥

२. विकलत्रय जीवों के जीवसमास ६—(१) द्वीन्द्रिय (२) त्रीन्द्रिय (३) चतुरिन्द्रिय, यह तीन विकलत्रय जीव हैं। इन में से हर एक प्रकार के जीव पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं। अतः ३ भेदों को तिगुणा करने से विकलत्रय जीवों के ६ जीवसमास होते हैं॥

३. कर्मभूमिज गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के जीवसमास १२—(१) गर्भज-संज्ञी-जलचर (२) गर्भज संज्ञी थलचर (३) गर्भज संज्ञी नभचर (४) गर्भज असंज्ञी जलचर (५) गर्भज असंज्ञी थलचर (६) गर्भज असंज्ञी नभचर, यह छहों प्रकार के गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच (१) पर्याप्त और (२) निर्वृत्यपर्याप्त, इन दो दो प्रकार के होते हैं। अतः इन छह भेदों को दुगुणा करने से इन के १२ भेद होते हैं॥

४. कर्मभूमिज सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के जीवसमास १८—सम्मूर्च्छन-संज्ञी जलचर थलचर नभचर और सम्मूर्च्छन असंज्ञी जलचर थलचर नभचर, यह छह प्रकार के सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च (१) पर्याप्त (२) निर्वृत्यपर्याप्त और (३) लब्ध्यपर्याप्त, इन तीनों प्रकार के होते हैं। अतः ६ भेदों को तिगुणा करने से इनके १८ भेद हैं।

५. भोगभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के जीवसमास ४—(१) पर्याप्त थलचर (२) पर्याप्त नभचर (३) निर्वृत्यपर्याप्त थलचर (४) निर्वृत्यपर्याप्त नभचर।

नोट १—भोगभूमिज जीव जलचर, सम्मूर्च्छन तथा असंज्ञी नहीं होते और न लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं। भोगभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चगर्भज ही होते हैं। भोगभूमि में विकलत्रय जीव भी नहीं होते।

६. कर्मभूमिज मनुष्यों के जीवसमास ५—(१) आर्यखंडी गर्भज पर्याप्त मनुष्य (२) आर्यखंडी गर्भज निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य (३) आर्यखंडी सम्मूर्च्छन लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य (४) म्लेच्छखंडी पर्याप्त मनुष्य (५) म्लेच्छखंडी निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य।

७. भोगभूमिज मनुष्यों के जीवसमास

४—[१] सुभोगभूमिज पर्याप्त मनुष्य [२] सुभोगभूमिज निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य [३] कुभोगभूमिज पर्याप्त मनुष्य [४] कुभोग भूमिज निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य ॥

८. देव पर्यायी जीवों के जीवसमास २—[१] पर्याप्त देव [२] निर्वृत्यपर्याप्त देव ॥

६. नारकी जीवों के जीवसमास २—[१] पर्याप्त नारकी [२] निर्वृत्यपर्याप्त नारकी ॥

नोट २-सम्मूर्छन मनुष्य नियम से लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं। और सर्व गर्भज जीव तथा उपपादज [देव और नारकी] लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते। सम्मूर्छन मनुष्यों की उत्पत्ति चक्री की रानी आदि को छोड़ कर आर्यखंड की शेष स्त्रियों की योनि, काँख (बग़ल), स्तन, मल, मूत्र, दन्तमल आदि में होती है ॥

नोट ३-म्लेच्छखण्डी और भोगभूमिज मनुष्य सम्मूर्छन नहीं होते तथा देव और नारकी जीव लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते।

इस प्रकार (१) एकेन्द्रिय (२) विकलत्रय (३) कर्मभूमिज-गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्च (४) कर्मभूमिज सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च (५) भोगभूमिज पचेन्द्रिय तिर्यञ्च (६) कर्मभूमिज-मनुष्य (७) भोगभूमिज मनुष्य (८) देव (६) नारकी, इन ६ के क्रम से ४२, ६, १२, १८, ४, ५, ४, २, २, एवम् सर्व ६८ जीव समास हैं ॥

नोट ४.—सम्पूर्ण जीवसमासों का निरूपण [१] स्थान [२] योनि [३] शरीरावगाहना [४] कुलभेद, इन ४ अधिकारों द्वारा किया जाता है। उपर्युक्त ६८ जीवसमास स्थानाधिकार द्वारा निरूपण किये गये हैं।

नोट ५-अभेद विवक्षा से या द्रव्यार्थिक नय से तो यद्यपि जीवसमास एक ही है क्योंकि 'जीव' शब्द में जीवमात्र का ग्रहण हो जाता है तथापि भेद विवक्षा से स्थानाधिकार द्वारा जीवसमास २,३,४,५,६,७,८, ९,१०,११,१२,१३,१४,१५, १६,१७,१८,१६,२०, २१, २२, २४, २६, २७, २८, ३०, ३२, ३३, ३४,३६,३८,३६,४२,४५,४८, ५१, ५४, ५७, ६८ आदि अनेक हो सकते हैं। इसी प्रकार योनि, शरीरावगाहना और कुल, इन तीन अधिकारों द्वारा भी जीवसमास के अनेक विकल्प हैं।

नोट ६.—योनि अपेक्षा जीवसमास के उत्कृष्ट भेद ८४ लाख, कुल अपेक्षा १६७॥ लाख कोटि अर्थात् १९ नियल ७५ खर्व (१६-७५००००००००००००), और शरीरावगाहना अपेक्षा असंख्य हैं। (देखो ग्रन्थ 'स्थानाङ्गार्णव') ॥

(गो० जी० ७०—११६)

अट्ठावन बन्धयोग्य कर्मप्रकृतियां

(अष्टम गुणस्थान में)—आठवें गुणस्थान में बन्ध योग्य ५८ कर्म प्रकृतियां निम्नलिखित हैं:—

१. ज्ञानावरणी कर्मप्रकृतियां ५—(१) मतिज्ञानावरणी (२) श्रुतज्ञानावरणी (३) अवधिज्ञानावरणी (४) मनःपर्ययज्ञानावरणी (५) केवलज्ञानावरणी।

२. दर्शनावरणी कर्मप्रकृतियां ६—(६) चक्षुदर्शनावरणी (७) अचक्षुदर्शनावरणी (८) अवधिदर्शनावरणी (६) केवलदर्शनावरणी (१०) निद्रादर्शनावरणी (११) प्रचलादर्शनावरणी।

३. वेदनी कर्मप्रकृति १—(१२) साता वेदनी।

४. मोहनी कर्मप्रकृति ६--(१३-१६) संज्वलन क्रोध मान माया लोभ (१७) हास्य (१८) रति (१६) भय (२०) जुगुप्सा (२१) पुरुषवेद ।

५. नामकर्म प्रकृति ३१--(२२) देव-गति (२३) पंचेन्द्रिय जाति (२४) वैक्रियिक शरीर (२५) आहारक शरीर (२६) तैजस शरीर (२७) कार्माण शरीर (२८) समचतुरस्र संस्थान (२६) वैक्रियिक-आङ्गोपांग (३०)आहारक-आङ्गोपांग (३१) वर्ण (३२) गन्ध (३३) रस (३४) स्पर्श (३५) देवगत्यानुपूर्व्य (३६) अगुरु लघु (३७) उपघात (३८) परघात (३६) उच्छ्वास (४०) प्रशस्त विहा-योगति (४१) त्रस (४२) बादर (४३) पर्याप्ति (४४) प्रत्येक शरीर (४५) स्थिर (४६) शुभ (४७) सुभग (४८) सुस्वर (४६) आदेय (५०) यशस्कीर्ति (५१) निर्माण (५२) तीर्थङ्कर ।

६. गोत्र कर्मप्रकृति १ --(५३) उच्च-गोत्र ।

७. अन्तराय कर्मप्रकृति ५---(५४) दानान्तराय (५५) लाभान्तराय (५६) भोगान्तराय [५७] उपभोगान्तराय[५८] वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार [१] ज्ञानावरणी[२]दर्शना-वरणी [३] वेदनीय [४] मोहनीय [५] नाम [६] गोत्र [७] अन्तराय, इन सात मूल कर्मप्रकृतियों की क्रम से ५, ६, १, ९, ३१, १,५, एवम् सर्व ५८ उत्तरप्रकृतियां अष्टम गुणस्थान में बन्ध योग्य हैं । इस गुणस्थान में आयुकर्म का बन्ध नहीं होता अतः आयुकर्म की चारों प्रकृतियों में से एक भी बन्ध योग्य नहीं है ।

नोट १---उत्तर कर्मप्रकृतियां ज्ञानाव-रणी की ५, दर्शनावरणी की ६, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, नामकर्म की ९३ [या १०३], गोत्र कर्म की २, आयुकर्म की ४ और अन्तराय कर्म की ५, एवम् सर्व १४८ [या १५८] हैं । परन्तु अभेद विवक्षा से नामकर्म की ९३ या १०३ के स्थान में केवल ६७ ही हैं। अतः अभेद विवक्षा से सर्व उत्तरकर्मप्रकृ-तियां १२२ ही हैं जिन में से दर्शन मोहनीय की सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व [मिश्र] प्रकृति, इन दो को छोड़ कर शेष १२० प्रकृतियां ही बन्ध योग्य हैं । इन्हीं १२० प्रकृतियों में से उपर्युक्त ५८ प्रकृतियां अष्टम-गुणस्थान में बन्ध योग्य हैं । [पीछे देखो शब्द 'अघातिया कर्म' और उसका नोट ३, पृ० ८२]।

नोट २---अष्टम गुणस्थान में उपर्युक्त ५८ बन्धयोग्य कर्मप्रकृतियों में से ३६ की बन्ध व्युच्छित्ति (बन्ध का अन्त अर्थात् आगे के गुणस्थानों में बन्ध का अभाव) इसी अष्टम गुणस्थान में, ५ की नवम गुण-स्थान में, १६ की दशमगुणस्थान में, और शेष १ की तेरहवें गुणस्थान में निम्न प्रकार से होती है:--

(१) अष्टम गुणस्थान की काल मर्यादा के सात भागों में से प्रथम भाग में २ की [नं० १०, ११ की अर्थात् निद्रा और प्रचला दर्शनावरणीकर्मप्रकृतियों की], छटे भाग के अन्त में ३० की [नं० २२ से ४९ तक और ५१, ५२ की], और अन्तिम सातवें भाग में शेष ४ की [नं० १७ से २० तक की], एवम् ३६ की बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है ॥

(२) नवम गुणस्थान की काल मर्यादा

के पांच भागों में यथाक्रम नं० ३१, १३, १४, १५, १६, इन ५ की बन्धव्युच्छित्ति होती है ॥

(३) दशम गुणस्थान के अन्तिम समय में नं० १ से ६ तक, नं० ५०, और नं० ५३ से ५८ तक, इन १६ की बन्धव्युच्छित्ति होती है ॥

(४) तेरहें गुणस्थान के अन्त में शेष १ कर्मप्रकृति नं० १२ की बन्ध व्युच्छित्ति होती है ॥

नोट ३—बन्ध योग्य सर्व १२० कर्मप्रकृतियों में से उपर्युक्त ५८ के अतिरिक्त शेष ६२ की बन्ध व्युच्छित्ति अष्टम गुणस्थान से पूर्व के गुणस्थानों के अन्त में इस प्रकार से होती है कि प्रथम गुणस्थान में १६ की, द्वितीय में २५ की, चतुर्थ में १० की, पंचम में ४ की, षष्टम में ६ की और सप्तम में एक की ॥

(गो० क० ९५-१०२)

अठत्तरजीवविपाकीकर्मप्रकृतियां—चारों घातिया कर्मों की सर्व ४७ उत्तरप्रकृतियां और चारों अघातिया कर्मों की १०१ में से ३१ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं। (पीछे देखो शब्द 'अघातियाकर्म' और उसके नोट नं० ९, १०, पृ०८४,८५) ॥

(गो० क० ४८—५१)

अठत्तर विदेहनदी—जम्बूद्वीप के सप्त क्षेत्रों में मध्य का जो 'विदेह' नामक क्षेत्र है उसमें मुख्य नदियां सर्व ७८ हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है :—

१. जम्बूद्वीप की सर्व १४ महा नदियों में से २—[१] सीता पूर्वविदेह में [२] सीतोदा पश्चिमविदेह में ॥

२. गङ्गा सिन्धु समान नदियां ६४—[१] पूर्व विदेह के १६ विदेह देशों में से प्रत्येक देश में दो दो नदियां, एवम् ३२ [२] पश्चिम विदेह के १६ विदेह देशों में से प्रत्येक देश में भी दो दो नदियां, एवम् ३२। सर्व ६४ ॥

३. विभंगा नदियां १२—(१) पूर्व विदेह की सीता नदी की उत्तर दिशा में गाधवती, द्रहवती, पङ्कवती, (२) सीता नदी की दक्षिण दिशा में तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला, (३) पश्चिम विदेह की सीतोदानदी की दक्षिण दिशा में क्षीरोदा, सीतोदा, श्रोतोवाहिनी (४) सीतोदा नदी की उत्तर दिशा में गम्भीरमालिनी, फेनमालिनी, ऊर्मिमालिनी ॥

नोट.—उपर्युक्त ७८ मुख्य नदियों के अतिरिक्त विदेहक्षेत्र में १४ लाख परिवार नदियां और हैं जो निम्न प्रकार हैं :—

[१] गङ्गासिन्धु समान जो ६४ नदियां हैं उनमें से प्रत्येक नदी की परिवार नदियां १४ सहस्र हैं। अतः सर्व परिवार नदियां ६४ गुणित १४००० अर्थात् ८९६००० हैं।

[२] विभंगा १२ नदियों में से प्रत्येक की परिवार नदियां २८ सहस्र हैं। अतः सर्व परिवार नदियां १२ गुणित २८ सहस्र अर्थात् ३३६००० हैं।

(३) देवकुरु में सीतोदा नदी के पूर्व पार्श्व में ४२ सहस्र और पश्चिम पार्श्व में ४२ सहस्र, एवम् सर्व ८४००० परिवार नदियां सीतोदा नदी की हैं।

(४) उत्तरकुरु में सीता नदी के पूर्व और पश्चिम पार्श्वों में से प्रत्येक में ४२ सहस्र, एवम् सर्व ८४००० परिवार नदियां सीता नदी की हैं।

इस प्रकार विदेहक्षेत्र की सर्व परिवार

नदियों का जोड़ ८९६००० + ३३६००० + ८४००० + ८४००० = १४००००० (चौदह लाख) है ॥

(त्रि० ६६७—६६९, ७३१, ७४८)

अठाई कथा—आगे देखो शब्द 'अठाईव्रत-कथा', पृ० २३९ ॥

अठाई पर्व—अष्टान्हिक पर्व, अष्टान्हिका पर्व, आठदिन का पवित्रोत्सव।

यह आठ दिन का पवित्र काल प्रतिवर्ष तीन बार कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ महीनों के अन्तिम आठ आठ दिवस अष्टमी से पूर्णिमा तक रहता है। इसी लिये इस पर्व का नाम 'अष्टान्हिक पर्व' अर्थात् आठ दिनका पर्व है। इन पर्व दिवसों में देवगण 'नन्दीश्वर' नामक अष्टम द्वीप में जाकर वहां की चारों दिशाओं में स्थित ५२ अकृत्रिम चैत्यालयों में देवार्चन करके महान् पुण्योपार्जन करते हैं। इसीलिये इस पर्व का नाम 'नन्दीश्वरपर्व' भी है। इस अष्टम द्वीप में जाने के लिये असमर्थ होने से अढ़ाईद्वीप अर्थात् मनुष्य-क्षेत्र के भव्य स्त्री पुरुष अपने अपने ग्राम नगर या तीर्थ स्थानादि ही में परोक्ष रूप से मन बचन-काय शुद्ध कर बड़ी भक्ति के साथ अष्ट पवित्र स्वच्छ द्रव्यों से कर्म निर्जरार्थ नन्दीश्वरद्वीपविधान आदि पूजन करते हैं ॥

नोट १—नन्दीश्वरद्वीप और उसके ५२ अकृत्रिम चैत्यालय आदि की सविस्तर रचना जानने के लिये आगे देखो शब्द 'नन्दीश्वरद्वीप' या ग्रन्थ त्रि० गा० ९६६—९७७

नोट २—नन्दीश्वरद्वीप तक के आठ द्वीपों के नाम क्रम से यह हैं :—जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, इक्षुवर और नन्दीश्वर। इनमें से केवल अढ़ाईद्वीप तक अर्थात् पुष्करार्द्ध तक ही मनुष्यों का गमनागमन है, इसलिये इतने ही क्षेत्र का नाम मनुष्यक्षेत्र है ॥

(त्रि० ३०४)

अठाई पूजा—अष्टान्हिक पूजा, अष्टान्हिक यज्ञ, अष्टान्हिकमह (ऊपर देखो शब्द 'अठाई पर्व')।

यह अष्टान्हिकपूजा निम्नलिखित ५ प्रकार की इज्या (पूजा) में से एक है:—

(१) नित्यमह (२) अष्टान्हिकमह (३) चतुर्मुखमह या महामह या सर्वतोभद्र (४) कल्पद्रुममह (५) ऐन्द्रध्वज ॥

नोट१—उपरोक्त पांच प्रकारकी पूजा गृहस्थधर्म सम्बन्धी निम्नलिखित षटकर्मों में से एक मुख्य कर्म है :—

(१) इज्या अर्थात् पूजा (२) वार्ता अर्थात् आजीविका (३) दत्ति अर्थात् दान (४) तप (५) संयम (६) स्वाध्याय।

इनमें से इज्या के उपरोक्त ५ मूल भेद हैं और विशेष भेद अनेक हैं। वार्ता के असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या (शूद्रवर्ण के लिये 'विद्या' के स्थान में 'सेवा'), यह छह भेद सामान्य और विशेष भेद अनेक हैं। दत्ति के पात्रदत्ति, दयादत्ति, समानदत्ति, और अन्वयदत्ति या सकलदत्ति, यह ४ मूल भेद और अभयदान, ज्ञानदान, आहारदान, औषधिदान, यह चार इनके मुख्य भेद तथा विशेष भेद अनेक हैं। तप के छह बाह्य और ६ अभ्यन्तर, यह १२ सामान्य भेद और विशेष भेद अनेक हैं। संयम के ६ इन्द्रियसंयम और

६ प्राणीसंयम, यह १२ भेद तथा अन्यान्य अपेक्षाओं से अन्यान्य अनेक भेद हैं। स्वाध्याय के वाचन, पृच्छन, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश, यह ५ मूलभेद तथा विशेष अनेक भेद हैं। (यह सर्व भेद उपभेद और उनका अर्थ, लक्षण, स्वरूप आदि यथास्थान देखें)॥

नोट २--अठाईपूजा या अष्टान्हिका पूजा (नन्दीश्वर पूजा) एक तो संस्कृत प्राकृत मिश्रित आज कल अधिक प्रचलित है और एक आगरा निवासी अग्रवाल जातीय श्रीमान् पं० द्यानतराय जी कृत भाषा पूजा अधिक प्रसिद्ध है। इन के अतिरिक्त भाषा पूजा अन्य भी भद्रपुर निवासी पं० टेकचन्द, माधवराजपुर निवासी पं० डालूराम, और पं० मचिलाल आदि कृत कई एक हैं, तथा एक अठाईपूजा जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद कृत भी है जो उन्हीं की रचित 'सुखसागर भजनावली' नामक पुस्तक में सूरत नगर मे प्रकाशित हो चुकी है। इनका प्रचार बहुत कम है।

पं० द्यानत राय का समय विक्रम की १८ वीं शताब्दी (१७८८), पं टेकचन्द का और पं० डालूराम का १९वीं शताब्दी (क्रम-से १८३८ और १८७०) और पं० मचिलाल का समय अज्ञात है। पं० डालूराम रचित अन्य ग्रन्थों की सूची जानने के लिये आगे देखो शब्द 'अढ़ाईद्वीप-पाठ' के नोट १ का नं० ४॥ पं० द्यानतराय जी रचित ग्रन्थ चर्चा-शतक भाषा छन्दोबद्ध, द्रव्यसंग्रह भाषा छन्दोबद्ध और अनेक पूजा आदि का संग्रह-रूप द्यानतविलास है।

पं० टेकचन्द रचित व अनुवादित अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

१. श्री तत्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) की श्रुतसागरी टीका की वचनिका, वि० सं० १८३७ में।
२. सुदृष्टतरङ्गिणी वचनिका, वि० सं० १८३८ में।
३. कथाकोष छन्दोबद्ध।
४. बुधप्रकाश छन्दोबद्ध।
५. षटपाहुड़ वचनिका टीका।
६. ढालगण छन्दोबद्ध।
७. कर्मदहन पूजा।
८. सोलहकारण पूजा।
९. दशलक्षण पूजा।
१०. रत्नत्रय पूजा।
११. त्रिलोक पूजा।
१२. पंचपरमेष्ठी पूजा।
१३. पंचकल्याणक पूजा।

नोट ३—अध्यात्म-बारहखड़ी के रचयिता भी एक पण्डित टेकचन्द जी हुए हैं परन्तु यह दूसरे हैं।

जैनधर्मभूषण श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी रचित व अनुवादित अन्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

(१) जिनेन्द्रमत दर्पण प्रथम भाग (जैनधर्म का स्वरूप)
(२) जिनेन्द्रमतदर्पण द्वितीय भाग (तत्वमाला)
(३) जिनेन्द्रमतदर्पण तृतीय भाग (गृहस्थधर्म)
(४) श्रीकुन्दकुन्दाचार्य कृत समयसार की हिंदी भाषा टीका
(५) जैननियमपोथी
(६) श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत नियमसार की हिन्दी भाषा टीका
(७) सुखसागर भजनावली

(८) पं० दौलतराम कृत छहढाला सान्वयार्थ

(९) आत्मधर्म

(१०) श्री सामायिक पाठ का विधि सहित अर्थ

(११) अनुभवानन्द

(१२) सच्चे सुख का उपाय

(१३) दीपमालिका विधान (दीवालीपूजन)

(१४) प्राचीन श्रावक (मानभूम ज़िले में)

(१५) श्री पूज्यपाद स्वामी कृत समाधि शतक की हिन्दी भाषा टीका

(१६) स्वसमरानन्द (चेतन-कर्म युद्ध)

(१७) श्री पूज्यपाद स्वामी कृत इष्टोपदेश की हिन्दी भाषा टीका

(१८) आत्मानन्द का सोपान

(१९) प्राचीन जैन स्मारक (बंगाल बिहार उड़ीसा के)

(२०) प्राचीन जैन स्मारक (संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध के)

(२१) श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार प्रथम खण्ड की हिन्दी भाषा टीका (ज्ञानतत्व दीपिका)

(२२) सुलोचना चरित्र

(२३) श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार द्वितीय खण्ड की हिन्दी भाषा टीका (ज्ञेयतत्वदीपिका)

(२४) श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार तृतीय खंड की हिन्दी भाषा टीका (चारित्र तत्वदीपिका)

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आप इस समय साप्ताहिक पत्र जैनमित्र के और पाक्षिक पत्र 'वीर' के आनरेरी सम्पादक भी हैं। आप का जन्म विक्रम सं० १९३५ में लखनऊ नगर में अग्रवाल वंशीय गोयल गोत्री श्रीमान लाला मंगलसेन के सुपुत्र लाला मक्खन लाल जी की धर्मपत्नी के गर्भ से हुआ। वि० सं० १९६६ के मार्गशिर मास में आपने स्थान शोलापुर में ऐलक श्री पन्नालाल जी के केशलोच के समय 'ब्रह्मचर्य प्रतिमा' के नियम ग्रहण किये आप को अध्यात्म चर्चा की ओर गाढ़ रुचि है।

नोट ४—उपर्युक्त अठाईपूजा पाठों के अतिरिक्त साँगानेर की गद्दी के पट्टाधीश श्री देवेन्द्रकीर्त्ति जी भट्टारक ने वि० सम्वत १६६२ के लगभग 'संस्कृत नन्दीश्वर विधान' और नन्दीश्वरलघुपूजा रची, श्री कनककीर्त्ति भट्टारक ने 'संस्कृत अष्टान्हिका सर्वतोभद्र पूजा' रची और श्री सकलकीर्त्ति भट्टारक ने 'अष्टान्हिकासर्वतोभद्रकल्प, वि० सं० १४८५ के लगभग रचा।

इन महानुभावों के रचे अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

(१) श्री देवेन्द्रकीर्त्ति (वि० सं० १६६२) क्षेत्रपाल पूजा विधान (श्लोक ५७५), आदित्य व्रतोद्यापन (श्लोक १५०), बृहदाष्टम्युद्यापन (श्लोक २२६), पुष्पांजलिविधान (श्लोक ५००), केवलचान्द्रायणोद्यापन (श्लोक १३०), पल्यव्रतोद्यापन, कल्याणमन्दिरोद्यापन, विषापहारपूजा विधान, त्रिपंचाशत्क्रियोद्यापन, सिद्धचक्रपूजा, रैद व्रतकथा, व्रतकथा कोश॥

(२) श्री कनककीर्त्ति—अष्टान्हिक-उद्यापन

(३) श्री सकलकीर्त्ति (वि० सं० १४८५)—सिद्धान्तसार, तत्वार्थसारदीपक, सारचतुर्विंशतिका, धर्म प्रश्नोत्तर, मूलाचार-प्रदीपक, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, यत्याचार, सद्भाषितावली, आदिपुराण, उत्तरपुराण,

धर्मनाथ पुराण, शान्तिनाथ पुराण, मल्लिनाथ पुराण, पार्श्वनाथ पुराण, वर्द्धमान पुराण, सिद्धान्तमुक्तावली, कर्मविपाक, देवसेन कृत तत्वार्थसार टीका, धन्यकुमारचरित्र, जम्बूस्वामी चरित्र, श्रीपालचरित्र, गजसुकुमाल चरित्र, सुदर्शन चरित्र, यशोधर चरित्र, उपदेशरत्नमाला, सुकुमाल चरित्र इत्यादि ॥

अठाईरासा—इस नाम का श्री विनयकीर्ति भट्टारक रचित एक पद्यात्मक कथानक है जिसमें अठाईव्रत और नन्दीश्वर पूजा का महात्म वर्णित है। कथा का सारांश यह है—पोदनपुर नरेश एक विद्यापति नामक विद्याधर राजा ने एक चारण मुनि से नन्दीश्वर पूजा का महात्म सुन कर विमान द्वारा नन्दीश्वरद्वीप की यात्रार्थ गाढ़ भक्तिवश गमन किया। परन्तु मानुषोत्तर पर्वत से टकरा कर उस का विमान पृथ्वी पर गिर गया। राजा ने प्राणान्त हो कर देवगति पाई और नन्दीश्वरद्वीप जाकर अष्टद्रव्य से विधिपूर्वक पूजा की। पश्चात् विद्यापति के रूप में पोदनपुर आकर रानी सोमा से कहा कि मैं नन्दीश्वरद्वीप के जिनालयों की पूजाकर आया हूँ। रानी बारम्बार यह उत्तर देकर कि मानुषोत्तर को उल्लंघनकर आना मनुष्य की शक्ति से सर्वथा बाहर है अपने सम्यक्श्रद्धान में दृढ़ बनी रही। तब देव ने प्रकट होकर यथार्थ बात बताई। विद्यापति का जीव देवायु पूर्ण कर हस्तिनापुरी में एक राज्यघराने में आ जन्मा और कुछ दिन राज्य भोग कर और फिर राज्य को त्याग मुनिव्रत पाल कर उसी जन्म से निर्वाणपद पाया। सोमा रानी ने भी अठाईव्रत के महात्म से स्त्रीलिङ्ग छेद देव पर्याय पाई और फिर हस्तिनापुरी ही में जन्म लेकर और राज्यसुख भोग कर सिंघाष्टक नामक मुनि के उपदेश से राज्य त्याग किया और मुनिव्रत द्वारा कर्मबन्ध काट कर मुक्तिपद पाया। (पीछे देखो शब्द 'अठाईपर्व' नोट सहित, पृ० २३३) ॥

अठाईव्रत—यह व्रत एक वर्ष में तीन बार अठाईपर्व के दिनों में अर्थात् कार्त्तिक, फाल्गुन और आषाढ़, इन तीन महीनों के अन्तिम आठ आठ दिन तक किया जाता है। यह व्रत अन्य व्रतों की समान उत्तम, मध्यम और जघन्य भेदों से तीन प्रकार का है जिस की विधि निम्न प्रकार है:—

१. उत्तम—सप्तमी को धारणा अर्थात् एकाशना पूर्वक किसी मुनि या जिन प्रतिमा के सन्मुख व्रत करने की प्रतिज्ञा ले। अष्टमी से पूर्णिमा तक निर्जल उपवास करै। पूर्णिमा से अगले दिन पड़िवा को पारण अर्थात् एकाशना पूर्वक व्रत की समाप्ति करै। इस प्रकार प्रतिवर्ष तीन बार व्रत करता हुआ आठ वर्ष तक करै॥

२. मध्यम—सप्तमी को धारणा, अष्टमी, दशमी, द्वादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को निर्जल उपवास करै और नवमी, एकादशी, त्रयोदशी और पड़िवा को एकाशना करै। इस प्रकार प्रतिवर्ष तीन बार करता हुआ आठ वर्ष, सात वर्ष अथवा ५ वर्ष तक व्रत करै॥

३. जघन्य—अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को अथवा केवल अष्टमी और पूर्णिमा को, या अष्टमी और चतुर्दशी को, या केवल अष्टमी या चतुर्दशी या पूर्णिमा को निर्जल उपवास करै और शेष दिनों में एकाशन करै अथवा निर्जल उप-

वास की शक्ति न हो तो दशों दिन एकाशना ही करै। इस प्रकार प्रतिवर्ष ३ बार करता हुआ ८ वर्ष या ५ वर्ष या केवल ३ ही वर्ष करै॥

तीनों प्रकार के व्रतों में निम्नोक्त नियमों का अवश्य पालन करेः—

१. सप्तमी की धारणा के समय से पड़िवा के पारणा के समय तक मन्दकषाययुक्त रहे और सर्व गृहारम्भ त्याग कर धर्म ध्यान में समय को लगावे॥

२. नित्य प्रति अभिषेक और नित्यनियम पूजा पूर्वक नन्दीश्वर द्वीप सम्बन्धी अष्टान्हिका पूजन करे और नन्दीश्वरद्वीप सम्बन्धी सर्व रचना का पाठ त्रिलोकसार आदि किसी ग्रन्थ से भले प्रकार समझता हुआ मन लगा कर नित्य प्रति करे या सुने॥

३. नित्य प्रति पञ्चमेरु पूजा भी करै तथा बन पड़े तो चौबीस तीर्थङ्करादि अन्यान्य पूजन भी यथारुचि करै॥

४. हो सके तो नन्दीश्वरद्वीप का मंडल बना कर पूजन किया करै॥

५. सप्तमी से पड़िवा तक दशों दिन अखण्ड ब्रह्मचर्य से रहे। चटाई आदि पर भूमि में सोवे। अल्प निद्रा ले॥

६. एकाशना के दिन किसी प्रकार का अभक्ष या गरिष्ट भोजन का आहार न करे। सचित्त पदार्थों का भी त्याग करै। हलका और अल्प भोजन करे जिस से निद्रा और आलस्यादि न सतावैं। हो सके तो छहों रस का या जितनों का [illegible] पड़े त्याग करे। गृद्धता से या जिह्वालम्पटता के लिये कोई भोजन न करे॥

७. अष्टमी से पूर्णिमा तक निम्न लिखित मंत्रों को १०८ बार जपे अर्थात् एक माला फेरेः—

(१) अष्टमी को—ॐ ह्रीं नन्दीश्वर संज्ञाय नमः।

(२) नवमी को—ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः।

(३) दशमी को—ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञाय नमः।

(४) एकादशी को—ॐ ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञाय नमः।

(५) द्वादशी को—ॐ ह्रीं पञ्च महालक्षण संज्ञाय नमः।

(६) त्रयोदशीको—ॐ ह्रीं स्वर्गसोपान संज्ञाय नमः।

(७) चतुर्दशी को—ॐ ह्रीं सिद्धचक्रसंज्ञाय नमः।

(८) पूर्णिमा को—ॐ ह्रीं इन्द्रध्वज संज्ञाय नमः॥

८. प्रत्येक एकाशना या यथायोग्य भक्ति विनय सहित पारणे के दिन किसी सुपात्र को या साधर्मी को या करुणा सहित किसी भूखे को भोजन कराकर स्वयम् भोजन करे॥

९. इस प्रकार ३, ५, ७, या ८ वर्ष तक इस व्रत को करने के पश्चात् निम्न प्रकार उस का उद्यापन करे और उद्यापन करने की शक्ति न हो तो दूने वर्ष तक व्रत करेः—

(१) उत्कृष्ट—जहाँ जहाँ कहीं आवश्यकता हो वहाँ वहाँ ८, ७, ५ या ३ नवीन जिनालय निर्माण करा कर उन की वेदी प्रतिष्ठा और जिनबिम्ब प्रतिष्ठा आदि पूर्वक उन में वे प्रतिष्ठित जिन प्रतिमाऐं पधरावे और आवश्यकीय सर्व उपकरण-आदि दे, तथा प्रत्येक जिन मन्दिर में यथा आवश्यक सरस्वतीभंडार भी अवश्य

स्थापे, अथवा आवश्यकानुसार जिनालयों और जैन ग्रन्थों का जीर्णोद्धार करावे। जहां २ आवश्यकता हो वहां वहां ८,७, ५ या ३ नवीन पाठशालायें खुलवावे अथवा यथाशक्ति और यथा आवश्यक पुरानी पाठशालाओं को सहायता पहुँचावे और विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तकें व मिठाई आदि देकर संतुष्ट करे। यथा आवश्यक जिन मन्दिरों के अतिरिक्त अन्यान्य सरस्वती-भवन सर्व साधारण के लाभार्थ खोले। सकलदत्ति, पात्रदत्ति, दयादत्ति, और समानदत्ति, इन चार प्रकार के दान में से जो जो बन पड़ें यथाशक्ति विधि पूर्वक करे।

(२) मध्यम—निम्नलिखित जघन्य-विधि से अधिक जो कुछ बन पड़े करे।

(३) जघन्य—किसी एक जैनमन्दिर में यथा आवश्यक वेष्ठन सहित कोई जैन ग्रन्थ, धोती, दुपट्टा, लोटा, थाल, आदि आठ उपकरण, प्रत्येक एक एक चढ़ावे और अपनी लाई हुई सामग्री से अभिषेक और नित्यपूजन पूर्वक पंचमेरु और अठाई पूजा स्वयं करे, अथवा अपनी उपस्थिति में करावे। यथाआवश्यक पात्रदत्ति या दया दत्ति भी करे। आगे देखो शब्द 'अठाई व्रतोद्यापन', पृ०२४० ॥

१०. इस व्रत को निर्मल भाव के साथ सर्वोत्कृष्ट रीति से पालन करने का प्रत्येक दिन सम्बन्धी महात्म निम्नोक्त है :—

(१) अष्टमी का—१० लक्षोपवास का फल
(२) नवमी का—१० सहस्रोपवास का फल
(३) दशमी का—६० लक्षोपवास का फल
(४) एकादशी का—५० लक्षोपवास का फल
(५) द्वादशी का—८४ लक्षोपवास का फल
(६) त्रयोदशी का—४० लक्षोपवास का फल
(७) चतुर्दशी का—१ कोटि उपवासका फल
(८) पूर्णिमा का—३कोटि ५० लक्ष उपवास का फल

११. इस व्रत को उत्कृष्ट परिणामों के साथ यथाविधि पालन करने का अन्तिम फल निम्न प्रकार है :—

(१) तीन वर्ष तक करने वाले को स्वर्ग प्राप्त होता है, तत्पश्चात् कुछ ही जन्म में मुक्तिपद प्राप्त होजाता है।

(२) पांच या सात वर्ष करने वाला स्वर्ग और मनुष्य पर्याय के उत्तमोत्तम सुख भोग कर ७ वें जन्म तक मोक्षपद प्राप्त कर लेता है।

(३) आठ वर्ष तक करने वाला द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की योग्यता पूर्वक उसी भव से अथवा तृतीय भव तक सिद्ध पद पाता है ॥

१२. इस महान व्रत को धारण करने में निम्न लिखित स्त्री पुरुष पुराण-प्रसिद्ध हैं :—

(१) अनन्तवीर्य—इसने इस व्रत को पालन कर चक्रवर्ती पद पाया।

(२) अपराजित—इसने भी चक्रवर्ती पद प्राप्त किया।

(३) विजयकुमार—यह चक्रवर्ती का सेनापति हुआ।

(४) जरासन्ध—इस ने पूर्व भव में यह व्रत किया जिस के प्रभाव से त्रिखंडी (अर्द्धचक्री) हुआ।

(५) जयकुमार—उसी जन्म में अवधिज्ञानी हो श्री ऋषभदेव का ७२वां गणधर हुआ और उसी जन्म से मोक्षपद भी पाया ॥

(६) जयकुमार की स्त्री सुलोचना—उसी जन्म में आर्यिका हो तपोबल से स्त्रीलिङ्ग छेद कर स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई ॥

(७) श्रीपाल—इस का और इस के ७०० साथियों का तीव्र कुष्ट रोग उसी जन्म में दूर हुआ ॥

इत्यादि ॥

अठाईव्रत उद्यापन—आगे देखो शब्द 'अठाईव्रतोद्यापन', पृ० २४० ॥

अठाईव्रत कथा—अष्टान्हिकव्रत या नन्दीश्वरव्रत की कथा। इस कथा का सारांश निम्न प्रकार है:—

इसी भरतक्षेत्र के आर्यखंड की अयोध्या नगरी के सूर्यवंशी राजा 'हरिषेण' ने एक बार अपनी 'गन्धर्वसेना' आदि कई रानियों सहित 'अरिंजय' और 'अमितञ्जय' नामक चारणऋद्धिधारी मुनियों से धर्मोपदेश सुन कर अपने भवान्तर पूछे। उत्तर में श्री गुरु ने कहा कि 'इसी अयोध्यापुरी में पहिले एक कुबेरदत्त नामक वैश्य रहता था जिस की सुन्दरी नामक स्त्री के गर्भ से श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयचन्द्र नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। तीनों ने निर्ग्रन्थ गुरु के उपदेश से श्रद्धापूर्वक यथाविधि नन्दीश्वरव्रत पालन किया जिसके फल में श्रीवर्मा तो प्रथम स्वर्ग के सुख भोग कर इसी नगर के राजा चक्रबाहु की रानी विमलादेवी के उदर से तू उत्पन्न हुआ और शेष दोनों भाई जयकीर्ति और जयचन्द्र स्वर्गसुख भोग कर हस्तिनापुर में श्रीविमल नामक वैश्य की धर्मपत्नी श्री लक्ष्मीमती के गर्भ से हम दोनों भाई अरिंजय और अमितञ्जय उत्पन्न हुए हैं'। यह सुन कर राजा हरिषेण ने श्री गुरु से विधि पूछ कर उनकी आज्ञानुसार नन्दीश्वरव्रत फिर ग्रहण किया और अन्त में मुनिदीक्षा धारण कर तपोबल से अष्टकर्म नाश कर उसी जन्म से मुक्तिपद पाया ॥

नोट १—वर्तमान अवसर्पिणी के गत चतुर्थ काल में २०वें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थकाल में राम-लक्ष्मण से पूर्व हरिषेण नाम का १०वाँ चक्रवर्त्ती राजा भी सूर्यवंश में हुआ है, पर उपर्युक्त कथाविहित हरिषेण और चक्रवर्त्ती हरिषेण एक नहीं हैं, क्योंकि दोनों के जन्मस्थान और माता पिता के नामों में बड़ा अन्तर है। इटावा निवासी पं० हेमराज कृत एक भाषा कथाग्रन्थ में उसे भी चक्रवर्त्ती लिखा है, परन्तु कई कथाग्रन्थों का परस्पर मिलान करने से ज्ञात होता है कि वह कोई अन्य समय अन्य क्षेत्र का भी चक्रवर्त्ती न था ॥

नोट २—अठाईव्रतकथा संस्कृत, हिंदी भाषा, छन्दोबद्ध और वचनिकारूप कई संस्कृतज्ञ कवियों की और कई भाषा कवियों की बनाई हुई हैं जिन का विवरण निम्न प्रकार है:—

१. संस्कृतकथा—(१) श्री श्रुतसागर (२) सुरेन्द्रकीर्त्ति (३) हरिषेण इत्यादि रचित ॥

२. हिन्दीभाषा कथा चौपाईबन्ध—(१) इटावा निवासी पं० हेमराज (२) श्री भूषणभट्टारक के शिष्य श्री ब्रह्मज्ञानसागर (३) खरौआ जातीय श्री जगभूषण भट्टारक के पट्टाधीश श्री विश्वभूषण (फाल्गुन शुक्ल ११ बुधवार वि० सं० १७३८) इत्यादि रचित।

३. हिन्दी भाषा कथा वचनिका—अ-

यपुर निवासी पं० नाथूलाल दोसी खंडेलवाल रचित (वि० सं० १६२२ में) ॥

इन महानुभावों के रचे अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:--

१. 'श्री श्रुतसागर' रचित ग्रन्थ--
(१) तत्त्वार्थ की सुबोधिनी टीका।
(२) तर्कदीपक।
(३) षटपाहुड़ की टीका।
(४) यशस्तिलक काव्य की टीका।
(५) विक्रम प्रबन्ध।
(६) क्रियापाठ स्तोत्र।
(७) व्रतकथा कोश।
(८) श्रुतस्कन्धावतार।
(९) ज्ञानार्णव टीका
(१०) आशाधरकृतपूजाप्रबन्ध की टीका।
(११) सारस्वतयंत्र पूजा।
(१२) नन्दीश्वरउद्यापन।
(१३) अष्टान्हिकोद्यापन।
(१४) आकाशपञ्चमी कथा।
(१५) आदित्यवार कथा।
(१६) भक्तिपाठ।
(१७) सहस्रनामस्तोत्र की टीका।
(१८) लक्षणपंक्ति कथा।
(१९) जैनेन्द्रयज्ञविधि।
(२०) एकीभाव की कथा।
(२१) चन्दनषष्ठीव्रतकथा।

२. 'श्री हरिषेण' रचित ग्रन्थ—
(१) बृहत् आराधना कथा कोश
(२) धर्म परीक्षा (संस्कृत)

३. 'श्री विश्वभूषण' रचित जिनदत्त चरित छन्दोबद्ध, सं० १७३८ में ॥

४. पं० नाथूलाल दोसी रचित
(१) परमात्मप्रकाश, भाषा छन्दबद्ध, सं० १६११ में
(२) सुकुमालचरित, भाषा वचनिका वि० सं० १९१८ में
(३) महीपाल चरित, भाषा वचनिका वि० सं० १९१९ में
(४) दर्शनसार, भाषा छन्दबद्ध वि० सं० १९२० में
(५) षोड़शकारणजयमाल, भाषा छन्दबद्ध वि० सं० १६२० में
(६) रत्नकरंडश्रावकाचार, भाषा छन्दबद्ध वि० सं० १९२० में
(७) रत्नत्रयजयमाल, भाषा छन्दबद्ध वि० सं० १९२२ में
(८) रत्नत्रयजयमाल, भाषा वचनिका वि० सं० १६२४ में
(९) सिद्धप्रिय स्तोत्र, भाषा छन्दबद्ध

नोट ३—एक भाषा चौपाईबद्ध 'अठाईव्रत कथा' 'श्री भूषण' भट्टारक के शिष्य 'श्री ब्रह्मज्ञानसागर' रचित है और एक खरौवा जाति के श्री जगभूषण भट्टारक के पट्टाधीश श्री विश्वभूषण रचित अधिक प्रसिद्ध है जो शुभ मिति फाल्गुन शु० ११ बुधवार को प्रमोदविष्णु नामक वि०सं० १७३८ में रची गई है।

अठाईव्रतोद्यापन—इस नाम के निम्न लिखित विद्वानों के रचे कई ग्रन्थ हैं जिनमें अष्टान्हिकाव्रत के उद्यापन की विधि सविस्तर वर्णित है:--

१. श्री कनककीर्ति भट्टारक--इन के रचे अन्य ग्रन्थ--अष्टान्हिकासर्वतोभद्र पूजा आदि ॥

२. श्री धर्मकीर्त्ति भट्टारक—इन के रचे अन्य ग्रन्थ—(१) आशाधर कृत यत्याचार की टीका (२) धनंजयकृत द्विसन्धानकाव्य की टीका (३) हरिवंशपुराण (४) पद्मपुराण

(५) गणधरवलय पूजा (६) नन्दिशान्तिक

३. श्री श्रुतसागर—पीछे देखो शब्द 'अठाईव्रत कथा' का नोट २, पृ० २३६ ॥

४. श्री सकलकीर्त्ति (द्वितीय)—इनके रचे अन्य ग्रन्थ—(१) षोडशकारण कथा (२) श्रुतकथाकोश (३) कातंत्ररूपमाला लघुवृत्ति (४) गुणावली कथा (५) रक्षाबन्धन कथा (६) त्रिवर्णाचार कथा (७) जिनरात्रि कथा (८) सहस्रनाम स्तोत्र (९) लब्धिविधान ॥

अठाईव्रतोद्यापनविधि— पीछे देखो शब्द 'अठाईव्रत', पृ० २३६–२३९

अठारह कूट (भरत, और ऐरावत क्षेत्रों के दोनों विजयार्द्ध पर्वतों पर)—१. भरतक्षेत्र के "विजयार्द्ध" पर के कूट पूर्व दिशा की ओर से क्रम से (१) सिद्धकूट (२) दक्षिणार्द्ध भरतकूट (३) खंडप्रपात (४) पूर्णभद्र (५) विजयार्द्धकुमार (६) मणिभद्र (७) तामिश्रगुह (८) उत्तर-भरत (९) वैश्रवण ॥

२. ऐरावत क्षेत्र के "विजयार्द्ध" पर के कूट क्रम से (१) सिद्धकूट (२) उत्तरार्द्ध ऐरावत कूट (३) तामिश्रगुह (४) मणिभद्र (५) विजयार्द्धकुमार (६) पूर्णभद्र (७) खंडप्रपात (८) दक्षिणैरावतार्द्ध (९) वैश्रवण ॥

(त्रि० ७३२—७३४)

अठारहक्षायोपशमिक भाव— १८ मिश्रभाव। (पीछे देखो शब्द "अट्ठाईस भाव" का नोट, पृ० २२५)

(गो० क० ८१३,८१७)

अठारह जन्ममरण (एक श्वासोच्छ्वास के)—कोई लब्ध्यपर्याप्तक जीव यदि अपनी अपर्याप्त अवस्था में अति शीघ्र शीघ्र जन्म मरण करे तो अधिक से अधिक १८ बार एक श्वासोच्छ्वास में कर सकता है जिस का विवरण निम्न प्रकार है:—

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, पवनकायिक और साधारण-वनस्पतिकायिक, यह ५ प्रकार के जीव स्थूल और सूक्ष्म भेदों से १० प्रकार के हैं। इन में प्रत्येकवनस्पतिकायिक का एक भेद मिलाने से सर्व ११ भेद हैं। इन ११ प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तक शरीरों में से हर एक प्रकार के शरीर को कोई एक जीव एक अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक से अधिक ६०१२ बार और इसलिये ग्यारहों प्रकार के शरीरों को ११ गुणित ६०१२ अर्थात् ६६१३२ बार, और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक शरीरों को क्रम से ८०, ६०, ४०, २४ बार, एवम् सर्व ६६१३२+८०+६०+४०+२४=६६३३६ बार पा सकता है ॥

एक मुहूर्त्त में ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते हैं अतः एक अन्तर्मुहूर्त्त में अर्थात् एक मुहूर्त्त से कुछ कम काल में ३७७३ से कुछ कम श्वासोच्छ्वास होंगे। यदि यहां जन्म मरण की गणना में $३६८५\frac{१}{३}$ श्वासोच्छ्वास का एक अन्तर्मुहूर्त्त ग्रहण किया जाय अर्थात् $३६८५\frac{१}{३}$ श्वासोच्छ्वास में अधिक से अधिक जन्म मरण की उपरोक्त संख्या ६६३३६ हो तो ६६३३६को $३६८५\frac{१}{३}$ का भाग देने से एक श्वासोच्छ्वास में जन्म मरण की उत्कृष्ट संख्या पूरी १८ प्राप्त हो जाती है।

नोट १—एक मुहूर्त्त दो घड़ी या ४८

मिनिट का होता है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त एक समय कम एक मुहूर्त का और जघन्य अन्तर्मुहूर्त एक समय अधिक एक आवली प्रमाण काल का होता है॥

नोट २—यहां एक अन्तर्मुहूर्त यदि उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त को ही ग्रहण किया जाय और ३७७२ या ३७७३ श्वासोच्छ्वासही होना एक अन्तर्मुहूर्त में माना जाय तो भी जन्म मरण की उपरोक्त संख्या ६६३३६ को ३७७२ या ३७७३ का भाग देने से १७॥ (साढ़ेसत्रह) से कुछ अधिक प्राप्त होने के कारण उत्कृष्ट संख्या पूरी १८ ही मानी जायगी॥

नोट ३—एक मुहूर्त्त में जो ३७७३श्वासोच्छ्वास माने गये हैं वह बाल श्वासोच्छ्वास हैं अर्थात् एक मुहूर्त्त में तुरन्त के जन्मे स्वस्थ बालक के ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते हैं। यह एक श्वासोच्छ्वासकाल स्वस्थ युवा पुरुष के एक बार नाड़ी फड़कन काल की बराबर एक सैकेन्ड से कुछ कम समय का या लगभग दो विपल का होता है॥

(गो० जी० १२२—१२४)

अठारह जीवसमास—१८ जीवसमास निम्नलिखित कई रीतियों से गिनाये जा सकते हैं:—

१. प्रथम रीति—(१) स्थूल पृथ्वीकायिक (२) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक (३) स्थूल जलकायिक (४) सूक्ष्म जलकायिक (५) स्थूल अग्निकायिक (६) सूक्ष्म अग्निकायिक (७) स्थूल पवनकायिक (८) सूक्ष्म पवनकायिक (९) स्थूल नित्यनिगोद (१०) सूक्ष्म नित्यनिगोद (११) स्थूल इतरनिगोद (१२) सूक्ष्म इतरनिगोद (१३) प्रत्येक बनस्पति (१४) द्वीन्द्रिय (१५) त्रीन्द्रिय (१६) चतुरिन्द्रिय (१७) असंज्ञी पंचेन्द्रिय (१८) संज्ञी पंचेन्द्रिय। अर्थात् स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों के १३ भेद और त्रस (द्वीन्द्रियादि) जीवों के ५ भेद, एवम् सर्व १८ जीवसमास॥

२. द्वितीय रीति—उपरोक्त स्थावर जीवों के १३ भेदों में प्रत्येक बनस्पति के सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित, यह दो भेद गिनने से स्थावर जीवों के सर्व १४ भेद और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, यह चार भेद त्रस जीवों के, इस प्रकार सर्व १८ जीवसमास हैं॥

३. तृतीय रीति—पंच स्थावर और एक त्रस, यह ६ भेद पर्याप्त आदि तीनों प्रकार के होने से १८ जीवसमास हैं॥

४. चतुर्थ रीति—पृथ्वीकायिक आदि स्थावर ५ भेद, और विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त भेदों से ९ भेद और पंचेन्द्रियों के तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, नारकी, यह ४ भेद, एवम् सर्व १८ जीवसमास हैं। इत्यादि अन्य कई रीतियों से भी १८ जीवसमास हो सकते हैं। (पीछे देखो शब्द 'अट्ठानवे जीवसमास', पृ० २२९)॥

(गो० जी० ७५—८०)

अठारह दोष—निम्नलिखित १८ दोष हैं जो श्री अरहन्तदेव में नहीं होते:—

(१) जन्म (२) जरा (३) मरण (४) रोग (५) भय (६) शोक (७) क्षुधा (८) तृषा (९) निद्रा (१०) राग (११) द्वेष (१२) मोह (१३) स्वेद (१४) खेद (१५) विस्मय (१६) मद (१७) अरति (१८) चिन्ता॥

{ अनगार धर्मामृत अ० २ श्लोक १४। १,२,३; रत्न० ६ }

अठारह द्रव्यश्रुतभेद—(१) अर्थाक्षर (२) अर्थाक्षरसमास (३) पद (४) पदसमास (५) संघात (६) संघातसमास (७) प्रतिपत्तिक (८) प्रतिपत्तिकसमास (९) अनुयोग (१०) अनुयोगसमास (११) प्राभृतप्राभृतक (१२) प्राभृतप्राभृतकसमास (१३) प्राभृत (१४) प्राभृतसमास (१५) वस्तु (१६) वस्तुसमास (१७) पूर्व (१८) पूर्वसमास । (पीछे देखो शब्द 'अक्षरसमास', 'अक्षर-समासज्ञान', 'अक्षरज्ञान', 'अक्षरात्मक-श्रुतज्ञान' और उनके नोट, पृ० ३९, ४०, ४१) ॥

{ गो० जी० ३४७, ३४८, ३१४-३१७... }

अठारह नाते—अनादिकाल से संसार में बारम्बार जन्म मरण करते हुये प्राणियों के परस्पर अनेक और अगणित सम्बन्ध तो होते ही रहते हैं अर्थात् जो दो प्राणी आज भाई भाई हैं वे परस्पर कभी पिता पुत्र, कभी पिता पुत्री, कभी माता पुत्र, माता पुत्री, भाई बहन, पति पत्नि, मित्र मित्र, शत्रु शत्रु, चचा भतीजे, चचा भतीजी, चची भतीजे, दादा पोते, नाना दोहिता, श्वसुर जामाता, इत्यादि इत्यादि सर्व ही प्रकार के सम्बन्ध पाते रहे हैं और पाते रहेंगे जबतक कर्मबन्धन में जिकड़ रहे हैं । परन्तु संसार चक्र में इस प्रकार चक्कर काटते हुये कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक ही जन्म में कई २ प्राणियों के परस्पर कई २ नाते सम्बन्ध हो जाते हैं । साधारण दो दो, तीन तीन नातों के उदाहरण तो अद्यापि बहुतेरे मिल जायेंगे पर एक प्राणी के अन्य तीन प्राणियों में से प्रत्येक के साथ छह छह, एवम् तीनों के साथ १८ नातों की एक कथा पुराण प्रसिद्ध है जो संक्षिप्तरूप में निम्नोक्त है:—

किसी समय 'विश्वसेन' नामक राजा के शासन काल में मालव देश की राजधानी 'उज्जयनी' में एक १६ कोटि द्रव्य का धनी सुदत्त श्रेष्ठी रहता था । यह सेठ एक 'वसन्ततिलका' नामक वेश्या से आसक्त था । उस सेठ के सम्बन्ध से वेश्या के गर्भ से एक युगल पुत्र पुत्री का जन्म हुआ । वेश्या ने बड़े यत्न से पुत्र को तो नगर के उत्तर द्वार से बाहर और पुत्री को दक्षिण द्वार से बाहर कहीं जंगल में पहुँचा दिया । पुत्र तो साकेतपुर निवासी एक 'सुभद्र' नामक बनजारे के हाथ लगा और पुत्री प्रयाग निवासी एक अन्य बनजारे के हाथ लगी । दोनों ने अपने अपने घर उन्हें बड़े यत्न से पाला । पुत्र का नाम 'धनदेव' और पुत्री का नाम 'कमला' रक्खा गया । युवावस्था प्राप्त होने पर कर्मवश इन दोनों का परस्पर विवाह होगया अर्थात् जो एकही उदर से पैदा हुए भाई-बहन थे वही अब अनजानपने से पति-पत्नि हो गए । एकदा 'धनदेव' अपने साकेतनगर से बणिज के लिये 'उज्जयनी' गया जहां 'वसन्ततिलका' वेश्या से, जो इस की माता थी, इसका अनजान में सम्बन्ध हुआ जिससे वेश्या गर्भवती हो गई । नवम मास में वेश्या के गर्भ से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम वरुण रक्खा गया ।

एक दिन जब कमला ने अपने परदेश गये पति 'धनदेव' के समाचार किसी

अवधिज्ञानीमुनिसे पूछे तो मुनिने इनके पूर्व जन्म के चरित्र सहित सारा यथार्थ वृत्तान्त उसे बता दिया जिसे सविस्तार सुन कर 'कमला' को तुरन्त जाति-स्मरण हो गया अर्थात् उसे अपनी इस जन्म और पूर्व जन्म की सारी बातें स्वयम् भी स्मरण हो आईं। [पूर्व जन्म का चरित्र जानने के लिये पीछे देखो शब्द "अग्निभूति (५)" पृष्ठ ६३]

पश्चात् 'कमला' 'उज्जयनी' गई और 'बसन्ततिलका' वेश्या के महल में पहुँची जहां वरुण पालने में झूल रहा था। कमला उसके पास बैठ कर उसे झुलाती हुई कहने लगी :—

हे बालक तेरे साथ मेरे छह नाते हैं—

१. धनदेव मेरा पति है। उसका तू पुत्र है। अतः तू मेरा भी पुत्र है।
२. धनदेव मेरा भाई है। उसका तू पुत्र है। अतः मेरा भतीजा है।
३. बसन्ततिलका तेरी और मेरी दोनों की माता है। अतः तू मेरा भाई है।
४. बसन्ततिलका तेरी और धनदेव की माता होने से तू धनदेव का छोटा भाई है और धनदेव मेरा पति है। अतः पति का छोटा भाई होने से तू मेरा देवर है।
५. बसन्ततिलका मेरी माता है। धनदेव उस का पति है, अतः धनदेव मेरा पिता है। तू धनदेव का छोटा भाई है। अतः तू मेरा चचा (काका) है।
६. बसन्ततिलका और मैं दोनों ही धनदेव की स्त्री होने से बसन्ततिलका मेरी सौतिन है। धनदेव सौतिन का पुत्र होने से मेरा भी पुत्र है अतः तू मेरे पुत्रका पुत्र होने से मेरा पोता भी है॥

बसन्ततिलका ने जब कमला को 'वरुण' से इसप्रकार कहते हुए सुना तो कमला के पास आकर उससे पूछने लगी कि तू कौन है जो मेरे पुत्र से इस प्रकार ६ नाते प्रकट कर रही है। तब कमला बोली कि सुनो तुम्हारे साथ भी मेरे ६ ही नाते हैं :—

१. मैं धनदेव के साथ तुम्हारे ही उदर से जन्मी हूं। अतः तुम मेरी माता हो।
२. धनदेव मेरा भाई है। तुम मेरे भाई धनदेव की स्त्री हो। अतः तुम मेरी भावज (भौजाई) हो॥
३. धनदेव मेरा और तुम्हारा दोनों का पति है। अतः तुम मेरी सौतिन हो।
४. तुम मेरे पति धनदेव की माता हो। अतः तुम मेरी सासू भी हो।
५. धनदेव सौतिन का पुत्र होने से मेरा सौतेला पुत्र है और तुम उसकी स्त्री हो। अतः तुम मेरी पुत्रवधू भी हो।
६. धनदेव तुम्हारा पति है और मैं तुम्हारे गर्भ से जन्मी हूं। अतः धनदेव मेरा पिता है और तुम धनदेव की माता भी हो। इस लिये तुम मेरी दादी भी हो।

कमला बसन्ततिलका से इतना कह कर धनदेव से भी कहने लगी कि आपके साथ भी मेरे ६ ही नाते हैं, सो सुनिये :—

१. आपके साथ मेरा विवाह हुआ है। अतः आप मेरे पति हैं।
२. आप और मैं दोनों एक ही माता के उदर से जन्मे हैं। अतः आप मेरे भाई हैं।
३. मेरी माता बसन्ततिलका के आप पति हैं। अतः आप मेरे पिता भी हैं।
४. आप मेरे और बसन्ततिलका दोनों के पति हैं। और आप बसन्ततिलका के पुत्र

भी हैं। अतः सौतिन के पुत्र होने से आप मेरे सौतीले पुत्र भी हैं।

५. आप मेरी सासु वसन्ततिलका के पति होने से मेरे श्वसुर भी हैं।

६. वरुण आपका छोटा भाई होने से मेरा चाचा (काका) है। उसके आप पिता हैं। अतः आप मेरे दादा (पितामह) हैं॥

नोट १—जिस प्रकार कमला के छह छह नाते वरुण, वसन्ततिलका और धनदेव के साथ ऊपर दिखाये गए हैं, इसी प्रकार वरुण के, वसन्ततिलका के, और धनदेव के भी छह छह नाते अन्य तीनों के साथ दिखाये जा सकते हैं।

नोट २—यदि किसी एक के नातों का अन्य के सर्व पारस्परिक नातों के साथ सम्बन्ध लगा लगा कर विचार किया जाय तो प्रत्येक व्यक्ति के अन्य भी कई कई नाते एक दूसरे के साथ निकल सकते हैं। जैसे कमला ने धनदेव को नं० ५ में अपना श्वसुर सिद्ध किया है तो श्वसुर की माता वसन्ततिलका कमला की दादस भी सिद्ध होती है। फिर दादस का पति धनदेव उसका ददिया श्वसुर भी सिद्ध होता है। इत्यादि॥

अठारह पाप—(१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशून्य (१५) परपरिवाद (१६) रति अरति (१७) मायामोषा (१८) मिथ्यादर्शनशल्य।

(वर्द्धमानचरित्र पृ० २०)

अठारह बुद्धिर्द्धि—(१) कैवल्यज्ञान (२) अवधिज्ञान (३) मनःपर्ययज्ञान (४) बीजबुद्धि (५) कोष्ठबुद्धि (६) पदानुसारित्व (७) संभिन्न श्रोतृत्व (८) दूरस्पर्शन-समर्थता (९) दूरास्वादन-समर्थता (१०) दूरघ्राण-समर्थता (११) दूरदर्शन समर्थता (१२) दूरश्रवण-समर्थता (१३) दशपूर्वत्व (१४) चतुर्दशपूर्वत्व (१५) अष्टांग महानिमित्तज्ञता (१६) प्रज्ञाश्रवणत्व (१७) प्रत्येकबुद्धता (१८) वादित्व। यह अठारह भेद बुद्धिऋद्धि के हैं।

नोट—ऋद्धियों के आठ मूल भेदों में से एक भेद "बुद्धिऋद्धि" है जिसके उपरोक्त १८ उत्तर भेद हैं। (पीछे देखो शब्द 'अक्षीण ऋद्धि' और उसके नोट, पृष्ठ ४२, ४३)

अठारह मिश्रभाव—१८ क्षायोपशमिक भाव। (पीछे देखो शब्द 'अठारह क्षायोपशमिक भाव', पृ० २४१)

(गो० क० ८१७)

अठारह श्रेणी—एक मुकुटबन्ध राजा जिस दल या समूह पर शासन करता है वह दल निम्नलिखित १८ श्रेणी में विभक्त है:—

(१) सेनापति (२) गणकपति अर्थात् ज्योतिषनायक (३) वणिकपति अर्थात् राजश्रेष्ठी या व्यापारपति (४) दंडपति अर्थात् सर्व प्रकार की सेनाओं का नायक (५) मन्त्री (पंचाङ्गमंत्रविद) (६) महत्तर अर्थात् कुलवृद्ध (७) तलवर अर्थात् कोटपाल या कुतवाल (८–११) वर्ण चतुष्टय अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र (१२–१५) चतुरङ्गसेना अर्थात् गज, तुरङ्ग, रथ, पयादा (१६) पुरोहित (१७) आमात्य अर्थात् देशाधिकारी (१८) महामात्य अर्थात् सर्व राज्यकार्याधिकारी॥

(त्रि० ६८३, ६८४)

अठारह श्रेणीपति—अठारह श्रेणी का नायक एक मुकुटधारी राजा। (ऊपर देखो शब्द "अठारह-श्रेणी")

नोट—५०० मुकुटबन्ध राजाओं के स्वामी को "अधिराज", १००० मुकुटबन्ध राजाओं के स्वामी को "महाराजा", २००० मुकुटबन्ध राजाओं के स्वामी को "अर्द्ध-मंडलीक", ४००० मुकुटबन्ध राजाओं के अधिपति को "मंडलीक" या "मंडलेश्वर", ८०००मुकुटबन्ध राजाओं के अधिपति को "महामंडलीक", १६००० मुकुटबन्ध राजाओं के अधिपति को "अर्द्ध चक्री" या "त्रिखंडी" और ३२००० मुकुटबन्ध राजाओंके अधिपति को "चक्री" या "चक्रवर्ती" कहते हैं॥

(त्रि० ६८५)

अठारह श्रेणी शूद्र—शूद्र वर्ण के मुख्य भेद दो हैं (१) कारु (२) अकारु या नारु। इनमें से प्रत्येक के सामान्य भेद दो दो और विशेष भेद नव २ निम्नलिखित हैं अर्थात् ९ श्रेणी कारु और ९ श्रेणी अकारु या नारु, एवम् सर्व १८ श्रेणी शूद्रों की हैं:—

(१) कारु के ९ भेद.—

१. स्पृश्य कारु ८— (१) कुम्भकार अर्थात् कुम्हार (२) भूषणकार अर्थात् सुनार, जड़िया आदि (३) धातुकार अर्थात् लुहार, कंसकार या कसेरा आदि (४)पटकार अर्थात् कोली या कौलिक (५) सूचीकार अर्थात् दर्जी (६) काष्ठकार अर्थात् स्थपति या बढ़ई, खाती आदि (७) लेपकार अर्थात् लेपक या थवई, राज या मेमार (८) रङ्गकार अर्थात् रङ्गार, रङ्गरेज़, रङ्गसाज़ छीपी, चित्रकार आदि।

२. अस्पृश्य कारु १—चर्मकार अर्थात् चमार या मोची आदि।

(२) अकारु के ९ भेद.—

१. स्पृश्य अकारु ७—(१) नापित अर्थात् नाई (२) रजक अर्थात् धोबी (३) शबर अर्थात् भील आदि (४) उद्यानप अर्थात् माली या काछी आदि(५)अहीर अर्थात् आभीर, गोप या ग्वाला आदि (६) वाद्यकर अर्थात् बजन्त्री (७) कत्थक या गन्धर्व अर्थात् गायक या गवैया, नृतक या नृत्यकार आदि

२. अस्पृश्य अकारु २—(१) श्वपच या श्वपाक अर्थात् भङ्गी (२) वधक अर्थात् व्याध, मछेरा, धीवर, पासी, जल्लाद,चांडाल, कंजर आदि॥

नोट १—इन १८ श्रेणी शूद्रों की उपजातियां अनेक हैं॥

नोट२—किसी प्रकार की शिल्पकारी, हस्तकला, कारीगरी या दस्तकारी के कार्य करने वाले 'कारु' कहलाते हैं। और जो कारु नहीं हैं वे सर्व अकारु हैं॥

अठारहसहस्रपदविहितआचाराङ्ग—अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञान के १२ भेदों अर्थात् द्वादशाङ्गों में से एक अङ्ग, अर्थात् द्वादशांग जिनवाणी का प्रथम अङ्ग जो १८००० मध्यम पदों में वर्णित है। (पीछे देखो शब्द 'अङ्गप्रविष्ट-श्रुतज्ञान', पृष्ठ११९)

(गो० जी० ३५६, ३५७)

अठारहसहस्र मैथुनकर्म—(अठारह सहस्र कुशील या व्यभिचार भेद)—

ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण रीति से सर्व प्रकार निर्दोष पालन करने के लिये जिन १८००० प्रकार के मैथुन या व्यभिचार या कुशील से बचने की आवश्यका है उनका विवरण निम्न प्रकार है :—

१. मैथुनकर्म के मूल भेद १० हैं (१) विषयाभिलाषा या विषय-संकल्प-विकल्प (२) वस्तिविमोक्ष या वीर्य स्खलन या शुक्रक्षरण या लिङ्गविकार (३) प्रणीत रस सेवन या वृष्याहार सेवन या शुक्रवृद्धिकर-आहार ग्रहण (४) संसक्त द्रव्य सेवन या सम्बन्धित द्रव्य सेवन (५) इन्द्रियावलोकन या शरीराङ्गोपाङ्गावलोन (६) प्रेमी सत्कार पुरस्कार (७) शरीरसंस्कार (८) अतीतस्मरण या पूर्वानुभोग सम्भोगस्मरण (९) अनागत भोगाभिलाष (१०) इष्टविषयसेवन या प्रेमीसंसर्ग ॥

२. उपरोक्त १० प्रकार में से प्रत्येक प्रकार का मैथुनकर्म कामचेष्टा या कामविकार की निम्न लिखित १० अवस्थाओं या १० वेगों को उत्पन्न करने की संभावना रखने से १०० (१० × १० = १००) प्रकार का है:—

(१) चिन्ता (२) द्रष्टुमिच्छा या दर्शनेच्छा (३) दीर्घनिश्वास (४) ज्वर (५) दाह (६) अशनारुचि (७) मूर्छा (८) उन्माद (९) प्राणसंदेह या जीवनसंदेह (१०) मरण ॥

३. उपरोक्त १०० प्रकार का मैथुन स्पर्शन आदि ५ इन्द्रियों में से प्रत्येक के वशीभूत होने से हो सकता है। अतः इस के ५ गुणित १०० अर्थात् ५०० भेद हैं ॥

४. उपरोक्त ५०० प्रकार का मैथुनकर्म मन, वचन, काय, इन तीनों योगों द्वारा हो सकने से इसके ३ गुणित ५०० अर्थात् १५०० भेद हैं ॥

५. उपरोक्त १५०० प्रकार का मैथुनकर्म कृत, कारित, अनुमोदित, इन तीन प्रकार से हो सकने से इस के ३ गुणित १५०० अर्थात् ४५०० भेद हैं ॥

६. यह ४५०० प्रकार का मैथुनकर्म जागृत और स्वप्न, इन दोनों ही अवस्थाओं में हो सकने से २ गुणित ४५०० अर्थात् ९००० भेद हैं ॥

७. यह नौ सहस्र प्रकार का मैथुन कर्म चेतन और अचेतन, इन दोनों ही प्रकार की स्त्रियों के साथ हो सकने से इस के ९००० का दुगुण १८००० (अठारह सहस्र) भेद हैं ॥

नोट १.—अगले पृष्ठ पर दिये प्रस्तार की सहायता से अथवा बिना सहायता ही मैथुन के सर्व भेदों के अलग अलग नाम या नष्ट उद्दिष्ट लाने और प्रस्तार बनाने आदि की रीति जानने के लिये पीछे देखो शब्द 'अजीवगतहिंसा' और उस के सर्व नोट, पृ० १९२-२०६।

नोट २.—पुरुष का मैथुन कर्म उपरोक्त दो प्रकार की स्त्री के साथ होने से इस के १८००० भेद हैं इसी प्रकार स्त्री का भी दो प्रकार के पुरुष के साथ मैथुन कर्म हो सकने से इस के अठारह हज़ार भेद हैं।

नोट ३—मैथुन कर्म के उपरोक्त १८ सहस्र भेदों के सम्पूर्ण अलग अलग नाम या नष्ट उद्दिष्ट लाने के लिये नीचे दिये प्रस्तार से सहायता लें:—

अष्टादश सहस्र मैथुन भेदों का प्रस्तार।

चेतन स्त्री संबन्धी १	अचेतन स्त्री संबन्धी २								
जागृतावस्था मध्य ०	स्वप्नावस्था मध्य २								
स्वकृत ०	कारित ४	अनुमोदित ८							
मानसिक ०	वाचनिक १२	कायिक २४							
स्पर्शनेन्द्रिय वश ०	रसनेन्द्रिय वश ३६	घ्राणेन्द्रिय वश ७२	नेत्रेन्द्रिय वश १०८	कर्णेन्द्रिय वश १४४					
चिन्तोत्पादक ०	दर्शनेच्छोत्पादक १८०	दीर्घ निश्वासोत्पादक ३६०	ज्वरोत्पादक ५४०	दाहोत्पादक ७२०	अशनारुच्योत्पादक ९००	मूर्छोत्पादक १०८०	उन्मादोत्पादक १२६०	प्राणसंदेहोत्पादक १४४०	मरणोत्पादक १६२०
विषयाभिलाष मैथुन कर्म ०	लिंगविकार मैथुन कर्म १८००	वृष्याहार सेवनमैथुन कर्म ३६००	संसक्तद्रव्य सेवनमैथुन कर्म ५४००	अंगोपाङ्गावलोकन मैथुनकर्म ७२००	प्रेमीसत्कार पुरस्कार मैथुनकर्म ९०००	शरीरसंस्कार मैथुन कर्म १०८००	अतीत स्मरण मैथुनकर्म १२६००	अनागत भोगाभिलाष मैथुनकर्म १४४००	इष्ट विषय सेवन मैथुनकर्म १६२००

नोट ४—अन्यान्य कई ग्रन्थकारों ने निम्नोक्त अन्यान्य रीतियों से भी मैथुन के १८००० भेद गिनाये हैं:—

(१) जागृतावस्था और स्वप्नावस्था के स्थान में दिवा-मैथुन और रात्रिमैथुन रख कर।

(२) स्त्री के दो भेद करने के स्थान में ४ भेद अर्थात् देवी, मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी और अचेतन स्त्री, करके और जागृत व स्वप्न इन दो अवस्थाओं को न लेकर।

(३) स्त्री का सामान्य भेद एक ही रख कर और दो प्रकार की स्त्री और दो अवस्थाओं के स्थान में क्रोधादि चार कषायें लेकर।

(४) चेतन स्त्री ३, कृत आदि ३, मनोयोगादि ३, स्पर्शनादि इन्द्रिय ५, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, यह संज्ञा ४, द्रव्यत्व, भावत्व, यह २, अनन्तानुबन्धी-क्रोधादि १६, यह गिना कर ३×३×३×५×४×२×१६ =१७२८० प्रकार का मैथुन तो चेतन स्त्री सम्बन्धी। और अचेतन स्त्री ३ (१. मट्टी, काष्ठ, पाषाण आदि की कठोर स्पर्श, २. रुई आदि के वस्त्र की या रबर आदि की कोमल स्पर्श, ३. चित्रपट), कृत आदि ३, मन वचन २, इन्द्रिय ५, संज्ञा ४, द्रव्यत्व भावत्व २, इस प्रकार ३×३×२×५×४×२=७२०, अथवा अचेतन स्त्री ३, कृत आदि ३, मनो योग १, इन्द्रिय ५, कषाय १६, इस प्रकार ३×३×१ ×५×१६= ७२० प्रकार का मैथुन अचेतन स्त्री सम्बन्धी। यूं चेतनस्त्री सम्बन्धी १७२८० और अचेतनस्त्री सम्बन्धी ७२० भेद जोड़ने से १८००० भेद॥ इत्यादि.........

नोट ५—मैथुनकर्म के उपरोक्त १८००० भेदों पर कई प्रकार की शंकायें उठाई आती हैं, किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर वे अधिकांश में निर्मूल ही सिद्ध होती हैं और प्रस्तार में दिये हुये भेदों पर तो किसी प्रकार की शंका होती ही नहीं। यदि होगी तो वह थोड़े ही से गम्भीर विचार से सर्वांश निर्मूल सिद्ध हो जायगी॥

अठारहसहस्र शील—शील शब्द का अर्थ है स्वभाव, शुद्धविचार, अभ्यास, आत्म मनन, आत्मसमाधि, आत्मरमण, आत्म रक्षा, आत्म सत्कार, इत्यादि। अतः जिस अभ्यास से या जिस प्रकार के विचार रखने से सर्व विकार दूर हो कर आत्मा में निर्मलता आती और मुनिधर्म सम्बन्धी व्रतों या मूल गुणों की रक्षा होती है तथा जिन की सहायता से संयम के भेद रूप मुनिधर्म के ८४ लाख उत्तर गुणों की पूर्णता होती हैं वे १८ हज़ार प्रकार के निम्न लिखित हैं:—

१. आत्मधर्म्म के लक्षण १०—(१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्यव (४) उत्तम शौच (५) उत्तम सत्य (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आकिञ्चन्य (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य।

यह दश लक्षण ही शील के १० मूल भेद हैं॥

२. प्राणिसंयम १०—(१) पृथ्वीकायिक प्राणिसंयम (२) जलकायिक प्राणिसंयम (३) अग्निकायिक प्राणिसंयम (४) वायुकायिक प्राणिसंयम (५) प्रत्येकवनस्पतिकायिक प्राणिसंयम (६) साधारणवनस्पतिकायिक प्राणिसंयम (७) द्वीन्द्रिय प्राणिसंयम (८) त्रीन्द्रिय प्राणिसंयम (९) चतुरिन्द्रिय प्राणिसंयम

अष्टादशसहस्र शीलाङ्ग कोष्ठ

स्वकृत १	कारित २	अनुमोदित ३							
मनोगुप्ति सहित ०	वचनगुप्ति सहित ३	कायगुप्ति सहित ६							
आहारसंज्ञा विरक्त ०	भयसंज्ञा विरक्त ९	मैथुनसंज्ञा विरक्त १८	परिग्रहसंज्ञा विरक्त २७						
स्पर्शनेन्द्रिय वश रहित ०	रसनेन्द्रिय-वश रहित ३६	घ्राणेन्द्रिय-वश रहित ७२	नेत्रेन्द्रिय-वश रहित १०८	कर्णेन्द्रिय-वश रहित १४४					
पृथ्वीकायिक प्राणिसंयमसहित ०	जल कायिक प्राणिसंयम सहित १८०	अग्निकायिक प्राणिसंयम सहित ३६०	वायुकायिक प्राणिसंयम सहित ५४०	प्रत्येक वनस्पतिकायिक प्राणिसंयम सहित ७२०	साधारण वनस्पति कायिक प्राणिसंयम सहित ९००	द्वीन्द्रिय प्राणिसंयम सहित १०८०	त्रीन्द्रिय प्राणिसंयम सहित १२६०	चतुरेन्द्रिय प्राणिसंयम सहित १४४०	पंचेन्द्रिय प्राणिसंयम सहित १६२०
उत्तम क्षमान्वित शील ०	उत्तम मार्दवान्वित शील १८००	उत्तम आर्यवान्वित शील ३६००	उत्तम शौचान्वित शील ५४००	उत्तम सत्यान्वित शील ७२००	उत्तम संयमान्वित शील ९०००	उत्तम तपान्वित शील १०८००	उत्तम त्यागान्वित शील १२६००	उत्तम आकिञ्चन्यान्वित शील १४४००	उत्तम ब्रह्मचर्यान्वित शील १६२००

(१०) पंचेन्द्रिय प्राणिसंयम

शीलके उपरोक्त १० मूल भेद अर्थात् दशलक्षण धर्म इन १० प्रकार के प्राणि संयम में से प्रत्येक के साथ पालन किये जाने से शील के १० गुणित १० = १०० भेद हैं।

३. इन्द्रिय संयम ५.—(१) स्पर्शनेन्द्रिय संयम (२) रसनेन्द्रियसंयम (३) घ्राणेन्द्रिय संयम (४) नेत्रन्द्रिय संयम (५) श्रोत्रेन्द्रिय संयम।

उपरोक्त १०० प्रकार का शील प्रत्येक इन्द्रिय संयम के साथ पालन करने से शील के ५०० भेद हैं।

४. संज्ञा ४—(१) आहार (२) भय (३) मैथुन (४) परिग्रह।

उपर्युक्त ५०० प्रकार का शील इन ४ संज्ञाओं में से प्रत्येक से विरक्त रह कर पालन किये जाने से शील के २००० भेद हैं।

५. गुप्ति ३—(१) मनोगुप्ति (२) वचनगुप्ति (३) कायगुप्ति।

अथवा करण ३—(१) मनकरण (२) वचकरण (३) काय करण।

उपरोक्त २००० प्रकार का शील मनोगुप्ति आदि ३ गुप्ति सहित अर्थात् मनकरण आदि ३ करण रहित पालन किये जाने से शील के ६००० भेद हैं जिनके स्वकृत, कारित, अनुमोदना द्वारा किये जाने से १८००० भेद हो जाते हैं।

नोट १—किसी किसी ग्रन्थकार ने कृत, कारित, अनुमोदना, इन तीन के स्थान में उपरोक्त ३ गुप्ति और ३ करण को अलग अलग गिना कर शील के १८००० भेद दिखाये हैं॥

नोट २—'अठारहसहस्र-मैथुनकर्म' के प्रस्तार के समान इन १८००० शील के भेदों का प्रस्तार भी बनाया जा सकता है और प्रत्येक भेद का नाम अथवा नष्ट उद्दिष्ट लाया जा सकता है। (पीछे देखो पृ० २५० और शब्द 'अठारह सहस्र मैथुनकर्म' का नोट १, पृ० २४७)॥

{ श्रा० प्र० ११ श्लोक ७, ८, ९, ३१;
अनगार० अ० ४ श्लोक ६१, ६६;
मूला० गा० ८७८, ८७९, ८८० ;
गृ० अ० १३; श्रा० पृ० २०४ }

अठारह स्थान—(१) वैराग्योत्पादक १८ विचार स्थान। प्रमादवश कोई आकुलता या चित्त विकार उत्पन्न होने पर संयम में दृढ़ता रखने और मन स्थिर रखने के लिये साधुओं को विचारने योग्य १८ स्थान हैं। (अ० मा०)॥

(२) दोषोत्पादक १८ पापस्थान। शुद्ध विचार से गिराने वाले और जीवन को बिगाड़ने वाले प्राणातिपात आदि दोषोत्पादक १८ पापस्थान हैं। (अ० मा० 'अट्ठारसठाण')॥ (पीछे देखो शब्द 'अठारह पाप', पृ० २४५)॥

अठासीग्रह—(१) कालविकाल (२) लोहित (३) कनक (४) कनकसंस्थान (५) अन्तरद (६) कचयव (७) दुंदुभि (८) रत्ननिभ (९) रूपनिर्भास (१०) नील (११) नीलाभास (१२) अश्व (१३) अश्वस्थान (१४) कोश (१५) कंसवर्ण (१६) कंस (१७) शङ्खपरिमाण (१८) शङ्खवर्ण (१९) उदय (२०) पंचवर्ण (२१) तिल (२२) तिलपुच्छ (२३) क्षारराशि (२४) धूम्र (२५) धूम्रकेतु (२६) एक संस्थान (२७) अक्ष (२८) कलेवर (२९) विकट (३०) अभिन्न-

संधि (३१) ग्रंथि (३२) मान (३३) चतुःपाद (३४) विद्युज्जिह्व (३५) नभ (३६) सदृश (३७) निलय (३८) काल (३९) कालकेतु (४०) अनय (४१) सिंहायु (४२) विपुल (४३) काल (४४) महाकाल (४५) रुद्र (४६) महारुद्र (४७) सन्तान (४८) संभव (४९) सर्वार्थी (५०) दिशा (५१) शांति (५२) वस्तुन (५३) निश्चल (५४) प्रलंभ (५५) निर्मंत्र (५६) ज्योतिष्मान (५७) स्वयम्प्रभ (५८) भासुर (५९) विरज (६०) निर्दुःख (६१) वीतशोक (६२) सीमङ्कर (६३) क्षेमङ्कर (६४) अभयंकर (६५) विजय (६६) वैजयन्त (६७) जयन्त (६८) अपराजित (६९) विमल (७०) त्रस्त (७१) विजयिष्णु (७२) विकस (७३) करिकाष्ठ (७४) एकजटि (७५) अग्निज्वाल (७६) जलकेतु (७७) केतु (७८) क्षीरस (७९) अघ (८०) श्रवण (८१) राहु (८२) महाग्रह (८३) भावग्रह (८४) मंगल (अंगार) (८५) शनैश्चर (८६) बुध (८७) शुक्र (८८) बृहस्पति ॥

(त्रि० ३६३-३७०)

नोट १—जम्बूद्वीप सम्बन्धी दो चन्द्रमा हैं प्रत्येक चन्द्रमा का परिवार ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र और ६६९,७५००००००००००००-००० तारे हैं ॥

(त्रि० ३६२)

नोट २—उपरोक्त ८८ ग्रहों में से नं० ७७, ८१, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८ (अर्थात् केतु, राहु, मंगल, शनि, बुध, शुक्र, बृहस्पति), इन ७ ग्रहों का मनुष्य लोक के साथ अन्य ग्रहों की अपेक्षा कुछ अधिक सम्बन्ध होने के कारण फलित ज्योतिष में इन ही से काम लिया जाता है और इसलिये साधारण गणित ज्योतिष ग्रन्थों में भी अन्य की उपेक्षा कर इन ही ७ का सविस्तार वर्णन है। इन ७ ग्रहों में चन्द्र और सूर्य, इन दो को मिला कर ज्योतिषी लोग नवग्रह कहते हैं। यद्यपि यह दो वास्तव में ग्रह नहीं हैं तथापि फलित ज्योतिष में इन से भी ग्रहों की समान ही काम लिया जाता है। इसी लिये यह दो भी वास्तविक ७ ग्रहों से मिला कर नवग्रह कहने में आते हैं ॥

नोट ३—बहुत लोग जानते हैं कि यह नवग्रह ही हम मनुष्यों को सर्व प्रकार का सुख दुःख देते रहते हैं परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वे हमें किसी प्रकार का सुख दुःख नहीं देते और न वे किसी प्रकार भी हमारे सुख दुःख का कारण हैं। इसी लिये उनका अरिष्टादि दूर करने के लिये जो पूजन, अनुष्ठान, जप आदि किये जाते हैं उन से वे प्रसन्न भी नहीं होते और न वे हमारा कोई भी कष्ट दूर करने में हमें किसी प्रकार की सहायता ही देते हैं। हां इतना अवश्य है कि गणित ज्योतिष शास्त्रों के नियमानुकूल उनके गमनागमन से १२ राशियों में उनकी स्थिति आदि को भले प्रकार जानकर तथा अपने जन्म समय के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि का उन से सम्बन्ध मिला कर हम अपने पूर्व कर्मों के निमित्त से होने वाले सुख दुःख के सम्बन्ध में पहिले ही से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कराने वाले नियमों का नाम ही 'फलितज्योतिष' है। यह नियम यदि किसी यथार्थज्ञानी ऋषि मुनि द्वारा बताये हुए हैं या उनही के वचन की परम्परागत हैं तो उन के अनुकूल जाना हुआ फल अवश्य सत्य होता

है। यह फल यदि किसी कर्म के तीव्र उदय-रूप है तब तो किसी भी उपाय द्वारा बदल नहीं सकता। हां, जब मन्द उदयरूप होता है तो योग्य और धार्मिक उपायों द्वारा परिवर्तित हो सकता है, परन्तु गृहों के अनुष्ठान आदि अयोग्य उपायों द्वारा नहीं।

नोट ४—फलित ज्योतिष के नियमों द्वारा जो त्रिकाल सम्बन्धी कुछ स्थूलज्ञान प्राप्त होता है वह ज्योतिष चक्र के निमित्त से होने के कारण 'निमित्तज्ञान' के आठ अङ्गों में से एक अङ्ग गिना जाता है। इसी का नाम 'अन्तरीक्ष निमित्तज्ञान' भी है। (निमित्तज्ञान के आठ अङ्गों के नाम जानने के लिये पीछे देखो शब्द 'अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञान' के १२वें अङ्ग 'दृष्टिवादाङ्ग' के भेद 'पूर्वगत' में १०वाँ विद्यानुवादपूर्व, पृ० १२७)॥

अड़तालीस अन्तरद्वीप (लवणसमुद्र में)—इन अन्तर द्वीपों का विवरण निम्न प्रकार है:—

(१) लवणसमुद्र की ४ दिशाओं में ४, और ४ विदिशाओं में ४, एवम् सर्व ८

(२) चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं के मध्य की ८ अन्तर दिशाओं में ८

(३) हिमवन कुलाचल, शिखरी कुलाचल, भरतक्षेत्र का वैताढ्य पर्वत (विजयार्द्ध पर्वत), और ऐरावतक्षेत्र का वैताढ्य पर्वत, इन चारों पर्वतों के दोनों अन्तिम किनारों के निकट लवणसमुद्र में दो दो अन्तरद्वीप, एवम् सर्व ८

(४) उपरोक्त प्रकार लवणसमुद्र के अभ्यन्तर तट पर जम्बूद्वीप के निकट सर्व २४ अन्तरद्वीप हैं॥

(५) उपरोक्त प्रकार लवणसमुद्र के बाह्यतट पर धातकीखंडद्वीप के निकट सर्व २४ अन्तरद्वीप हैं॥

(६) इस प्रकार सर्व मिल कर लवणसमुद्र में दोनों तटों के निकट ४८ अन्तरद्वीप हैं॥

(त्रि. ६१३)

अड़तालीस अन्तरद्वीप (कालोदक समुद्र में)—लवणसमुद्र की समान कालोदकसमुद्र में भी उस के दोनों तटों के निकट अड़तालीस अन्तरद्वीप हैं। [ऊपर देखो शब्द 'अड़तालीस अन्तरद्वीप (लवणसमुद्र में)']॥

अड़तालीस दीक्षान्वय क्रिया—अवतार क्रिया आदि उपयोगिता क्रिया पर्यन्त ८ विशेष क्रिया और उपनीति आदि अग्रनिर्वृति पर्यन्त ४० साधारण क्रिया। (इन का विवरण जानने के लिये पीछे देखो शब्द 'अग्रनिर्वृति क्रिया' का नोट ३, पृ० ७१)॥

अड़तालीस प्रशस्तकर्मप्रकृति—पीछे देखो शब्द "अघातिया कर्म" का नोट ८ पृ० ८४।

अड़तालीस मतिज्ञान भेद—मतिज्ञान के मूल भेद अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, यह ४ हैं। इनमें से प्रत्येक के विषयभूत पदार्थ बहु, बहुविध आदि १२ भेद रूप होने से मतिज्ञान १२ गुणित ४ अर्थात् ४८ भेद रूप है। (पीछे देखो शब्द "अट्ठाईस मतिज्ञान भेद" के नोट १, २, ३, पृ० २२५)॥

(गो० जी० ३१३)

अड़तालीस-व्यंजनावग्रहमतिज्ञान भेद—व्यंजनावग्रह केवल स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र, इन ४ इन्द्रियों द्वारा होने से ४ भेद रूप है। इन में से प्रत्येक के विषयभूत पदार्थ बहु, बहुविध, आदि १२ भेद रूप होने से व्यञ्जनावग्रह के १२ गुणित ४ अर्थात् ४८ भेद हैं। (पीछे देखो शब्द "अट्ठाईस मतिज्ञान भेद", पृ० २२५)

(गो० जी० ३०६, ३१३,)

अड़तीस जीवसमास—स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों के सामान्य जीवसमास १४ (पीछे देखो शब्द 'अट्ठानवे जीवसमास' का न० १ पृ० २२९),

इन में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय, यह ५ सामान्य जीवसमास त्रस जीवों के जोड़ने से सर्व १९ जीवसमास हैं। इन १९ में से प्रत्येक पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से द्विगुण १९ अर्थात् ३८ भेद जीवसमास के होते हैं॥

(गो० जी० गा० ७६,७७, ७८)

अड़सठक्रिया—(६८ क्रियाकल्प)—गर्भाधानादि ५३ गर्भान्वय क्रिया, अवतारादि उपयोगिता पर्यन्त ८ दीक्षान्वय क्रिया, और निम्नलिखित ७ कर्त्रन्वय क्रिया:—

(१) सज्जातिक्रिया (२) सद्गृहीत्व क्रिया (३) पारिव्राज्य क्रिया (४) सुरेन्द्रता क्रिया (५) साम्राज्य क्रिया (६) परमार्हन्त्य क्रिया (७) परमनिर्वाण क्रिया। यह ७ क्रियायें सप्त परम स्थान हैं जो जिनमार्ग के आराधन के फलरूप हैं। इन्हें महापुण्याधिकारी पुरुष ही पाते हैं।

{ आदि पु० पर्व ३८। श्लो० ६७, ६५, पर्व३९ श्लो० ७९—१९९ }

नोट १—शेष ५३ और ८ क्रियाओं का विवरण जानने के लिये पीछे देखो शब्द "अग्रनिर्वृति क्रिया" के नोट १,२,३,पृ.७०.॥

नोट २—यह ५३ गर्भान्वय, ८ अथवा ४८ दीक्षान्वय और ७ कर्त्रन्वय, एवम् सर्व ६८ अथवा १०८ क्रियायें "क्रियाकल्प" कहलाती हैं॥

अड़सठ पुण्य प्रकृतियां—(पीछे देखो शब्द 'अघातिया कर्म' का नोट ८ पृष्ठ८४)

अष्ट मूल कर्म प्रकृतियों के १४८ उत्तर भेदों में से ४ घातिया कर्मों की ४७ उत्तर कर्मप्रकृतियां तो सर्व पाप प्रकृतियां ही हैं परन्तु शेष ४ अघातिया कर्म की १०१ उत्तर प्रकृतियों में से ३३ प्रकृतियां तो पापरूप हैं, ४८ प्रकृतियां पुण्य रूप हैं और शेष २० प्रकृतियां उभय रूप हैं अर्थात् पुण्यरूप भी हैं, और पापरूप भी। अतः ४८ पुण्य प्रकृतियों में यह २० जोड़ने से ६८ पुण्य प्रकृतियां हैं। पुण्यप्रकृतियों को 'शुभ प्रकृतियां' या "प्रशस्त प्रकृतियां" भी कहते हैं। अभेद विवक्षा से या बन्धोदय की अपेक्षा से पुण्यप्रकृतियां सर्व ४२ ही हैं॥

(गो० क० गा. ४१, ४२)

अड़सठ श्रेणीबद्ध विमान (शतार सहस्रार युगल में)—ऊर्ध्वलोक के सर्व ६३ पटलों में से शतार और सहस्रार नामक ११ वें, १२ वें स्वर्गों के युगल में केवल एक ही पटल है जिसके मध्य के इन्द्रक विमान

का नाम "शतार" है। इस इन्द्रक विमान की पूर्व आदि प्रत्येक दिशा में १७ और चारों दिशाओं में ६८ श्रेणीबद्धविमान हैं।

(त्रि. गा. ४६७, ४७३)

अढ़ाईद्वीप (सार्द्धद्वय द्वीप, द्वाईद्वीप)--

जम्बूद्वीप, घातकीखंडद्वीप और पुष्करार्द्ध-द्वीप अर्थात् अर्द्ध पुष्करद्वीप।

अढ़ाई-द्वीप का सर्व क्षेत्र "मनुष्य क्षेत्र", "मनुष्य लोक" या "नर-लोक" भी कहलाता है, क्योंकि सर्व प्रकार के मनुष्य इस अढ़ाईद्वीप ही में बसते हैं। इस से बाहर मनुष्य की गम्य विमान आदि की सहायता से भी नहीं है। इसी कारण तीसरे "पुष्कर-द्वीप" के मध्य में उसे दो अर्द्ध भागों में विभाजित करने वाला जो एक पर्वत है उसका नाम 'मानुषोत्तर' है, अर्थात् यही पर्वत् मनुष्य क्षेत्र की अन्तिम सीमा है। इस मनुष्यक्षेत्र में जम्बूद्वीप और उसकी चारों दिशाओं का (गिर्दागिर्द का) "लवणसमुद्र", घातकीखंडद्वीप और उसकी चारों दिशाओं का (गिर्दागिर्द का) "कालोदक समुद्र", तथा मानुषोत्तर पर्वत तक का आधा पुष्कर द्वीप, इस प्रकार ये ढाई द्वीप और उनके मध्य के दो महासमुद्र सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र का व्यास ४५ लक्ष महा योजन है।

(त्रि. ३०४, ३०७, ३२२, ३२३)

नोट १--इस नरलोक में जम्बूद्वीप बीचों बीच में एक लक्ष योजन चौड़ा थालाकार है। इसे घेरे हुए दो लक्ष योजन चौड़ा लवणसमुद्र वलयाकार है। इस समुद्र को घेरे ४ लक्ष योजन चौड़ा घातकीखंडद्वीप वलयाकार है। इस द्वीप को घेरे ८ लक्ष योजन चौड़ा कालोदकसमुद्र वलयाकार है। इस समुद्र को घेरे १६ लक्ष योजन चौड़ा पुष्करवर द्वीप वलयाकार है जिस के बीचों बीच में वलयाकार "मानुषोत्तर" पर्वत पड़ा है जिस से इस द्वीप के दो समान भाग हो जाते हैं।

(त्रि० ३०८)

नोट २--अढ़ाईद्वीप की रचना का सामान्य विवरण निम्न प्रकार है:--

१. मेरु ५ --

जम्बूद्वीप के बीचों बीच में सुदर्शनमेरु, घातकीखंडद्वीप की पूर्वदिशा में विजयमेरु और पश्चिमदिशा में 'अचल मेरु', पुष्करार्द्ध की पूर्वदिशा में मन्दर-मेरु' और पश्चिमदिशा में विद्युन्माली मेरु॥

(त्रि. गा. ५६३)

२. महाक्षेत्र ३५--

(१) प्रत्येक मेरु की पूर्व और पश्चिम दिशाओं में एक एक विदेह क्षेत्र है जो हरेक १६ पूर्वविदेहदेशों और १६ पश्चिमविदेह-देशों, एवम् ३२, ३२, विदेहदेशों में विभाजित है और हरएक विदेहदेश में एक एक आर्यखण्ड और पांच पांच म्लेच्छखण्ड हैं। अतःपांचों मेरु सम्बन्धी ५ विदेहक्षेत्र हैं जो १६०विदेहदेशों तथ १६०आर्यखण्डों व ८०० म्लेच्छखण्डों में विभाजित हैं।

(त्रि. गा. ६६५, ६६१)

(२) प्रत्येक मेरु की दक्षिण दिशा में दक्षिण से उत्तर को क्रम से भरत, हैमवत, और हरि, इस नाम के तीन तीन क्षेत्र हैं और उत्तर दिशा में दक्षिण से उत्तर को क्रम से रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नाम के तीन तीन क्षेत्र हैं॥ अतः पांचों मेरु सम्बन्धी यह ३० क्षे हैं। इन में के

पाँचों भरत और पांचों ऐरावत क्षेत्रों में से प्रत्येक क्षेत्र एक एक आर्यखंड और पांच पांच म्लेच्छखंडों में विभाजित है ॥

इस प्रकार यह ३५ क्षेत्र हैं जिन में पांचों विदेहक्षेत्र कर्मभूमि के क्षेत्र हैं। इन में अवसर्पिणी की अपेक्षा सदैव दुःषमसुषम नामक चतुर्थकाल (या उत्सर्पिणी की अपेक्षा तृतीयकाल) वर्तता है। पांचों भरत और पांचों ऐरावत क्षेत्रों के आर्यखंडों में कुछ समय तक तो उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि सम्बन्धी सुषमसुषम, सुषम, सुषमदुःषम, यह अवसर्पिणीकी अपेक्षा प्रथम द्वितीय और तृतीय काल (या उत्सर्पिणी की अपेक्षा चतुर्थ, पंचम, षष्ठम काल) क्रम से वर्तते हैं और कुछ समय तक कर्मभूमि सम्बन्धी दुःषम सुषम, दुःषम, दुःषम दुःषम यह अवसर्पिणी की अपेक्षा चतुर्थ, पंचम, और षष्ठम काल[या उत्सर्पिणी की अपेक्षा प्रथम, द्वितीय, तृतीय काल]क्रमसे वर्तते हैं। और इन दोनों क्षेत्रों के पांच पांच म्लेच्छ खण्डों तथा विजयार्द्ध पर्वतों की श्रेणियों में केवल दुःषमसुषम काल ही अपनी आदि अवस्था से अन्त अवस्था तक हानि वृद्धि सहित वर्तता है। शेष २० क्षेत्र भोगभूमि के हैं जिन में से पाँचों हैमवत और पाँचों हैरण्यवत तो जघन्य भोगभूमि के क्षेत्र हैं। इन में अवसर्पिणी की अपेक्षा सदैव तृतीयकाल सुषमदुःषम नामक वर्तता है। और पाँचों हरि व पाँचों रम्यक मध्यमभोगभूमि के क्षेत्र हैं। इनमें अवसर्पिणी की अपेक्षा सुषम नामक द्वितीय काल सदैव वर्तता है।

इस प्रकार ३५ महाक्षेत्रों में से १० क्षेत्र अखंड भोगभूमि के, ५ क्षेत्र अखण्ड कर्मभूमिके और शेष १० क्षेत्र उभय प्रकार के हैं।

{ त्रि० गा० ५६४, ६५३, ६६५, ७७९, ८८२, ८८३ }

३. उपरोक्त ३५ महाक्षेत्रों के अतिरिक्त प्रत्येक मेरु के निकट उसकी दक्षिण दिशा में देवकुरु और उत्तर दिशा में उत्तरकुरु नामक क्षेत्र उत्तमभोगभूमि के क्षेत्र हैं जहां अवसर्पिणी की अपेक्षा सदैव प्रथम काल सुषमसुषम नामक वर्तता है। अर्थात् पांचों मेरु सम्बन्धी ५ देवकुरु और ५ उत्तरकुरु यह १० क्षेत्र उत्तमभोगभूमि के हैं।

इस प्रकार अढ़ाईद्वीप में सर्व ४५क्षेत्र हैं जिन में से ३० क्षेत्र नित्य-भोगभूमि के, ५ क्षेत्र नित्य-कर्मभूमि के, और शेष १० क्षेत्र अनित्य क्रमवर्ती भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों के हैं।

(त्रि० ६५३)

४. भोगभूमि के क्षेत्रों में कल्पवृक्ष १० प्रकार के होते हैं—(१) तूर्यांग (२), पात्रांग (३) भूषणांग (४) पानांग (५) आहारांग (६) पुष्पाङ्ग (७) ज्योतिराङ्ग (८) गृहांग (९) वस्त्रांग (१०) दीपांग ॥

(त्रि. गा. ७८७)

५. महावन १५—

(१) प्रत्येक मेरु के निकट उस के चौगिर्द भद्रशाल वन है जो पूर्व में सीता नदी से और पश्चिम में सीतोदा नदी से दो दो भागों में विभाजित है। अतः पाँचों मेरु सम्बन्धी ५ भद्रशालवन हैं।

(२) प्रत्येक मेरु की पूर्व दिशा में पूर्व-देवारण्य या भूतारण्यवन और पश्चिम दिशा में पश्चिम-भूतारण्य या देवारण्य-

वन समुद्र-तट के निकट (विदेह देशों और समुद्र-तट के बीच में) हैं जो क्रम से सीता और सीतोदा नदियोंसे दो दो भागों में विभाजित हैं। अतः प्रत्येक मेरुसम्बंधी दो दो और पांचों मेरु सम्बन्धी १० देवारण्य या भूतारण्य नाम के वन हैं। इस प्रकार सर्व वन (५+१०) १५ हैं।

(त्रि० गा० ६०७-६१२, ६७२)॥

६. कुलाचल ३०——प्रत्येक मेरु सम्बन्धी दक्षिण से उत्तर दिशा को क्रम से (१) हिमवत (२) महा हिमवत (३) निषध (४) नील (५) रुक्मी (६) शिखरी नामक छह छह कुलाचल, भरत हैमवत आदि सात सात महाक्षेत्रों के बीच बीच में हैं। अतः पांचों मेरु सम्बन्धी सर्व कुलाचल (५×६) ३० हैं॥

(त्रि० गा० ५६५, ७३१, ९२६)॥

७. अन्य पर्वत १५२०--प्रत्येक मेरु सम्बन्धी यमकगिरि ४, कांचनगिरि २००, दिग्गज ८, वक्षारगिरि १६, गजदन्त ४, विजयार्द्ध या वैताढ्य या रूपाचल ३४, वृषभाचल ३४, नाभिगिरि ४, एवम् सर्व ३०४ हैं। अतः पांचों मेरु सम्बन्धी सर्व (५×३०४) १५२० हैं।

{ त्रि०गा०६५४,६५५,६५६ ६६१,६६३,६६५-६७०, ७१०, ७१८, ७३१,९२१ }

८. इष्वाकार पर्वत ४—धातकी खण्ड द्वीप की दक्षिण उत्तर दोनों पार्श्वों में एक एक, और पुष्करार्द्ध की दक्षिण उत्तर दोनों पार्श्वों में भी एक एक, एवम् सर्व ४ हैं।

[त्रि०गा०९२५]

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में ५ मेरु, ३० कुलाचल, ४इष्वाकार सहित सर्व पर्वतोंकी संख्या १५५९ है। इन के अतिरिक्त अढ़ाई-द्वीपकी बाह्य सीमा पर उसे सर्व दिशाओं से घेरे हुये एक मानुषोत्तरपर्वत है।

[त्रि० गा० ९३७, ९४२]

९. मुख्यनदी ४५०——प्रत्येक मेरु सम्बन्धी भरत आदि ७ महा क्षेत्रों में गङ्गा आदि महानदी १४, विदेहदेशोंमें गाधवती आदि विभंगा नदी १२ और गंगा, सिन्धु, रक्ता, रक्तोदा, नामक प्रत्येक नदी१६, १६, एवम् सर्व ९० (१४+१२+१६+१६+१६+१६=९०) हैं। अतःपांचों मेरु सम्बन्धी सर्व ४५० (५×९०=४५०) हैं।

{ त्रि.गा.५७८, ५७९,५८१, ५९७,६६२, ७३१, ९२६ }

१०. परिवार नदी ८९६०००० —प्रत्येक मेरु सम्बन्धी ९० मुख्य नदियों की सहायक या परिवार नदियां १७९२००० हैं। अतः पांचों मेरु सम्बन्धी ८९६००००(५×१७९२०००=८९६००००) हैं।

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में ४५० मुख्य नदियों को मिला कर सर्व नदियां ८९६०४५० हैं॥

(त्रि० गा० ७३१,७४७-७५०)

११. महाह्रद (द्रह या ताल) १३०—प्रत्येक मेरु सम्बन्धी छह कुलाचलों पर पद्मद्रह आदि ह्रद ६ जिन से १४ महा नदियाँ निकलती हैं, सीता महानदी में १० और सीतोदा महानदी में १०, एवम् सर्व २६ ह्रद हैं। अतः पांचों मेरु सम्बन्धी सर्व ह्रद १३० (५×२६=१३०) हैं।

[त्रि० गा० ५६७,६५६,७३१,९२६]

१२. मुख्यकुंड ४५०—प्रत्येक मेरु सम्बन्धी उपर्युक्त ९० मुख्य नदियों में से १४ महा नदियां षट कुलाचलों से निकल कर उन कुलाचलों के मूलस्थ जिन कुण्डों में गिर कर आगे को बहती हैं वे कुण्ड१४,

और शेष ७६ नदियाँ जिन कुण्डों से निकलती हैं वे कुण्ड ७६, एवम् सर्व कुण्ड ९० हैं। अतः पांचों मेरु सम्बन्धी सर्व कुण्ड ४५० (५ × ९० = ४५०) हैं॥

(त्रि० गा० ५८६, ७३१, ९२६)

१३. पृथ्वीकायिक अकृत्रिम वृक्ष १४०१२००— जम्बूद्वीप में जम्बू वृक्ष १, और शाल्मली वृक्ष १, धातकीद्वीप में धातकी वृक्ष २ और शाल्मली वृक्ष २, पुष्करार्द्ध में पुष्कर वृक्ष २ और शाल्मली वृक्ष २, एवम् सर्व १० महावृक्ष हैं। इन १० महावृक्षों में से प्रत्येक के परिवार वृक्ष १४०११९ हैं, अतः सर्व परिवार वृक्ष १४०११९० हैं जिन की संख्या १० मुख्य वृक्षों सहित १४०१२०० है

(त्रि०गा० ६३९-६५२, ९३४, ५६२)

१४. मुख्य अन्तरद्वीप ४५४२१६४—

[१] अढ़ाई द्वीप के सर्व १६० विदेह देशों में से प्रत्येकके आर्य्यखंड में सीता सीतोदा नदियों के निकट एक २ उपसमुद्र है। तथा ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्रों में से प्रत्येक के निकटभी महासमुद्रों के अंशरूप एकएक उपसमुद्र है। अतः सर्व उपसमुद्र १७० हैं। इनमें से प्रत्येक में ५६ साधारण अन्तरद्वीप, २६००० रत्नाकर द्वीप और कुक्षिवास ७००, एवम् सर्व २६७५६ हैं। अतः १७० उपसमुद्रों में सर्व ४५४८५२० (१७० × २६७५६ = ४५४८५२०) अन्तरद्वीप हैं।

नोट (क)-जिन अन्तरद्वीपों में चांदी, सोना, मोती, मूंगा, नीलम, पुखराज, हीरा, पन्ना, लाल, आदि अनेक प्रकार के रत्न उत्पन्न होते हैं उन्हें 'रत्नाकर द्वीप,' और जो किसी देश के तट के अति निकट हों उन्हें 'कुक्षिवास' कहते हैं।

नोट (ख)-जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के निकट उसकी दक्षिण दिशामें जो उपसमुद्र (लवण समुद्रका एक भाग) है उसका नामआजकल हिंद-महासागर प्रसिद्ध है। अरबकी खाड़ीऔर बङ्गालकी खाड़ी इस उपसमुद्रके मुख्यविभाग और लाल समुद्र, अदन की खाड़ी, पारसकी खाड़ी, ओमान की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी, खम्बातकी खाड़ी, मनार की खाड़ी, मर्तावान की खाड़ी, इत्यादि अनेक इसके उपभाग हैं।

इस 'हिन्द महासागर' नामक उपसमुद्र में जो अन्तरद्वीप हैं और जिनके नाम, रूप, आकार, और परिमाण आदि में समय के फेर से बहुत कुछ परिवर्त्तन भी होता रहता है उनमें से कुछेक आजकल निम्न लिखित नामों से प्रसिद्ध हैं:—

(१) अफ्रीका देश के निकट उसके पूर्व में मैडेगास्कर (लगभग ९८० मील लम्बा और ३०० मील चौड़ा) और इसके आस पास र्‍यूनियन, मॉरीशस, रोड्रीगीज़, सीचैलीज़, अमीरैंटीज़, प्रोविडेंस और कोमोरो आदि अनेक अन्तरद्वीप हैं।

(२) अरब देश के दक्षिण (अफ्रीका के पूर्व) पैरिम, सॉकोटरा, क्यूरियाम्यूरिया, आदि हैं।

(३) पारस देश की खाड़ी में पारस और अरब देशों के मध्य बहरेन और ऑरमज़ आदि हैं।

(४) भारतवर्षके निकट उसके दक्षिण-पश्चिम में लकाद्वीप, मालद्वीप आदि छोटे छोटे सहस्रों टापुओं के समूह हैं।

(५) भारतवर्ष के दक्षिण-पूर्व बङ्गाल की खाड़ी में सीलोन (लङ्का-२६७ मील लम्बा, १४० मील चौड़ा), अंडमान (जहां ईस्वी सन् १७८९ से भारत वर्ष के तीव्र दंडित अपराधी भेजे जाते हैं और जो काले पानी के नाम से भी प्रसिद्ध है), निकोबार, रामरी, चडूबा, मरगुई आदि कई टापुओं के समूह हैं।

(६) ब्रह्मदेश के दक्षिण मलाया प्रायःद्वीप के निकट सुमात्रा (लगभग १००० मील लम्बा, २५० मील चौड़ा), जावा, बोरनियो, सेलीबीज़, न्यूगिनी और इनके दक्षिण में आस्ट्रेलिया (लगभग २३६० मीललम्बा और १०५० मीलचौड़ा भारत वर्षसेबड़ा) आदि बड़े२ और उनके आस पास बहुत से छोटे छोटे अन्तरद्वीप हैं।

नोट (ग)—उपरोक्त अन्तरद्वीपों में सीलोन, बोरनियो, आस्ट्रेलिया आदि कई बड़े बड़े और लकाद्वीप मालद्वीप आदि सहस्रों छोटे २ रत्नाकर द्वीप हैं। और पेरिम, क्यूरियास्यूरिया, कच्छ, बम्बई, साल्सट, रामेश्वरम, जाफना, श्रीहरिकोटा, सागर, रामरी, चडूबा, मरगुईआदि अनेक कुक्षिवास हैं। शेष साधारण अन्तरद्वीप हैं।

[२] अढ़ाईद्वीप सम्बन्धी १६० विदेह देशों के १६० आर्यखंडों में से प्रत्येक के निकट सीता और सीतोदा नामक महानदियों में मागध, वरतनु और 'प्रभास'नामक तीन तीन अन्तरद्वीप, एवम् सर्व ४८० अन्तरद्वीप हैं।

[३] लवण समुद्र में अभ्यन्तर तट से ४२०००योजन दूर चार विदिशाओंमें 'सूर्य' नामक द्वीप ८,आठ अन्तर दिशाओंमें "चन्द्र" नामकद्वीप१६,उसके अभ्यन्तर तट से १२००० योजन दूर वायव्य दिशामें'गौतम' नामक द्वीप १, भरत क्षेत्र के दक्षिण और ऐरावत क्षेत्रके उत्तर को समुद्र के अभ्यन्तर तट से कुछ योजन दूर मागध,वरतनु और प्रभास नामक तीनतीन द्वीप और अभ्यन्तर तटपर ४ दिशा,४ विदिशा,८ अन्तर दिशा में तथा हिमवन, शिखरी, भरत सम्बन्धी वैताढ्य,और ऐरावत सम्बन्धी वैताढ्य,इन चारों पर्वतों के दोनों छोरों पर सर्व २४, और बाह्य तट परभी इसी प्रकार२४,एवम् सर्व७६(८+१६+१+३+३+२४+२४=७६) अन्तरद्वीप हैं।

[४] लवण समुद्र की समान कालोदक समुद्र में 'सूर्य' नामक द्वीप८,'चन्द्र' नामक १६, गौतम नामक १, दो भरत और दो ऐरावत क्षेत्रों के निकट मागधादि नाम के १२, अभ्यन्तर तट पर२४और बाह्य तटपर २४, एवम् सर्व८५(८+१६+१+१२+२४+२४=८५) अन्तरद्वीप हैं।

इस प्रकार १७० आर्य देशों, और सीता, सीतोदा,लवण समुद्र और कालोदकसमुद्र के सर्व अन्तरद्वीपों की संख्या ४५४९१६४ (४५४८५२०+४८०+७६+८५=४५४९१६४) है।

(त्रि० ६७७,६७८,९०६-९१३,९२१)

१५. अकृत्रिम जिनालय ३९८—मेरु ५, कुलाचल ३०, वक्षारगिरि ८०,गजदन्त२०, इष्वाकार ४, मानुषोत्तर १, जम्बूधातकी-पुष्करवृक्ष४,शाल्मलीवृक्ष ५,और विजयार्द्ध पर्वत १७०,इनमें अकृत्रिम चैत्यालय क्रम से ८०, ३०, ८०, २०, ४,४,५,५,१७०,एवम् सर्व ३९८ हैं। (पीछे देखो शब्द "अकृत्रिम चैत्यालय", पृ० २२)॥

(त्रि० गा० ५६१)

अढ़ाईद्वीप पाठ

(अढ़ाईद्वीप पूजन, सार्द्धद्वयद्वीप पूजन)—अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी ३९८ अकृत्रिम जिन चैत्यालयों और उनमें विराजमान जिन प्रतिमाओं का, १६० विदेह देशों में नित्य विद्यमान २० तीर्थङ्करों का, तथा पांच भरत और पांच ऐरावत इन १० क्षेत्रों में से प्रत्येक की भूत भविष्यत वर्तमान तीन तीन चौबीसी अर्थात् सर्व ३० चौबीसी (७२० तीर्थङ्करों) का, इत्यादि का पूजन विधान है।

नोट १—इस नाम के प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी भाषा में कई एक पाठ हैं जिनमें से कुछ के रचयिता निम्न लिखित महानुभाव हैं:—

१. श्री जिनदास ब्रह्मचारी—इनका समय विक्रम की १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है (संवत् १५१०)। इनके रचित अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

(१) हरिवंश पुराण (२) पद्म पुराण (३) जम्बूस्वामी चरित्र, (४) हनुचरित्र (५) होली चरित्र (६) रात्रि भोजन कथा, (७) जम्बूद्वीप पूजन, (८) अनन्तव्रत पूजा (९) चतुर्विंशत्युद्यापन (१०) मेघ मालोद्यापन (११) चतुस्त्रिंश दुत्तरद्वादशशतोद्यापन (१२) अनन्त व्रतोद्यापन (१३) बृहत्सिद्ध चक्र पूजा (१४) धर्मपंचासिका।

(दि० ग्र० ९७)

२. त्रिविधविद्याधर षट भाषाकविचक्रवर्ती श्रीशुभचन्द्र—इनका समय विक्रम की १७ वीं शताब्दी है (सं०१६८०)। इनके रचे अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

१ सुभाषितरत्नावली, २ जीवन्धरचरित्र, ३ पांडवपुराण, ४ प्रद्युम्नचरित्र, ५ करकंडुचरित्र ६ जिनयज्ञकल्प, ७ श्रेणिकचरित्र, ८ सुभाषितार्णव, ९ सम्यक्त्वकौमुदी, १० श्रीपालचरित्र, ११ पद्मनाभपुराण, १२ अंगप्रज्ञप्ति, १३ त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति, १४ चिन्तामणिलघुव्याकरण, १५ अपशब्दखंडन, १६ तर्कशास्त्र, १७ स्तोत्रपञ्चक, १८ सहस्रनामस्तोत्र, १९ षट्पदस्तोत्र, २० नन्दीश्वरकथा, २१ षोड़शकारणोद्यापन, २२ चतुर्विंशतिजिनपूजा, २३ सर्वतोभद्रपूजा, २४ चारित्रशुद्धितपोद्यापन, २५ तेरहद्वीपपूजा, २६ पंचपरमेष्ठीपूजा, २७ चतुस्त्रिंशदधिकद्वादशशतव्रतोद्यापन(१२३४व्रतोद्यापन), २८ पल्यव्रतोद्यापन, २९ कर्मदहनपूजा, ३० सिद्धचक्रबृहत्पूजा, ३१ समयसारपूजा, ३२ गणधरवलयपूजा, ३३ चिन्तामणियंत्रपूजा, ३४ विमानशुद्धिशान्तिक, ३५ अम्बिका कल्प, ३६ स्वरूपसंबोधन की टीका, ३७ अध्यात्मपद की टीका, ३८ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका, ३९ अष्टपाहुड़ की टीका, ४० तत्वार्थटीका, ४१ पार्श्वनाथकाव्य की पंजिका टीका, ४२ आशाधरकृत पूजा की टीका, ४३ पद्मनन्दिपंचविंशतिका की टीका, ४४ सारस्वत-यंत्र पूजा॥

(दि० ग्र० ३३५)

३. श्री सुरेन्द्रभूषण—इन का समय विक्रमकी १९वीं शताब्दी है (सं० १८८२)। इनके बनाये अन्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

मुनिसुव्रत पुराण, श्रेयांसनाथ पुराण, श्रेयस्करणोद्यापन, सुख सम्पति व्रतोद्यापन, चतुर्दशोद्यापन, भक्तामरोद्यापन, कल्याण मन्दिरोद्यापन, रोहिणी कथा, सार संग्रह, चर्चा शतक, पंचकल्याणक पूजा॥

(दि० ग्र० ३७०)

४. माधव राजपुर निवासी पं० डालूराम अग्रवाल—इनका समय विक्रम की १९वीं शताब्दी है। इनके बनाये अन्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं:—

गुरूपदेश श्रावकाचार छन्दोबद्ध (सं० १८६७ में), श्रीमत्सम्यक्प्रकाश छन्दोबद्ध (सं० १८७१ में), पंचपरमेष्ठी पूजा, अष्टान्हिका पूजा, शिखरविलास पूजा, पंचकल्याणक पूजा, इन्द्रध्वज पूजा, द्वादशांग पूजा, पंचमेरु पूजा, रत्नत्रय पूजा, दशलक्षण पूजा, तीनचौबीसी पूजा॥

(दि० ग्र० ४८, पृ० ४४)

५. पं० जवाहिरलाल—इनका समय भी विक्रम की १९वीं शताब्दी है। इन्होंने यह पाठ लगभग ९५०० श्लोक प्रमाण हिन्दी भाषा में लिख कर शुभ मिती ज्येष्ठ शु० १३ शुक्रवार, विक्रम सं० १८८७ में पूर्ण किया था। इनके रचे अन्य ग्रन्थ निम्नोक्त हैं:—

सिद्धक्षेत्र पूजा, सम्मेदशिखर माहात्म्य पूजा विधान सहित, त्रैलोक्यसार पूजा, तीनचौबीसी पूजा, त्रिकाल चौबीसी पाठ या तीनचौबीसीपाठ (वि० सं० १८७८ में)॥

नोट २.—इनमें से पहिलेतीन महानुभावों के रचित पाठ संस्कृत भाषा में हैं और अंतिम दो के हिन्दी भाषा में हैं॥

नोट ३.—अढ़ाईद्वीप सम्बन्धी ३९८ अकृत्रिम जिनालयों का विवरण जानने के लिये पीछे देखो शब्द "अकृत्रिम चैत्यालय" नोटों सहित पृ० २२ और शब्द "अढ़ाईद्वीप" के नोट २ का नं० १५ पृ० २५९॥

नोट ४—१६० विदेह देशों और उनमें नित्य विद्यमान २० तीर्थंकरों और भरत, ऐरावत क्षेत्रों की ३० चौबीसी आदि का विवरण जानने के लिये नीचे कोष्ठ १, २, ३ नोटों सहित देखें:—

कोष्ठ १।

जम्बूद्वीप के सुदर्शनमेरु सम्बन्धी विदेह देश ३२।

क्रम संख्या	विदेह देश	राजधानी	विवरण
१.	कच्छा	क्षेमा	यह ८ देश सुदर्शनमेरु की पूर्व दिशा में सीता-नदी के उत्तर तट पर मेरु के निकट के भद्रशालवन की वेदी से लवण समुद्र के निकट के देवारण्यवन की वेदी तक क्रम से पश्चिम से पूर्व को हैं॥ इन कच्छा आदि देशों का परस्पर विभाग करने वाले चित्रकूट, पद्मकूट, नलिन, एक शैल, यह चार वक्षारगिरि और गाधवती, द्रहवती, पङ्कवती, यह तीन विभंगा नदी हैं जो क्रम से एक गिरि, एक नदी, एक गिरि, एक नदी, एक गिरि, एक नदी, एक गिरि, इन देशों के बीच बीच पड़ कर इनकी सीमा बनाते हैं॥
२.	सुकच्छा	क्षेमपुरी	
३.	महाकच्छा	अरिष्टा	
४.	कच्छकावती	अरिष्टपुरी	
५.	आवर्त्ता	खड्गा	
६.	लाङ्गलावर्त्ता (मङ्गलावती)	मंजूषा	
७.	पुष्कला	औषधी	
८.	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी	
९.	वत्सा	सुसीमा	यह आठ देश सुदर्शनमेरु की पूर्व दिशा में सीतानदी के दक्षिण तट पर लवण समुद्र के निकट के देवारण्यवन की वेदी से मेरु के निकट के भद्रशालवन की वेदी तक क्रम से पूर्व से पश्चिम को हैं॥ इन वत्सा, आदि देशों के बीच बीच में त्रिकूट, वैश्रवण, अंजनात्मा, अंजन, यह चार वक्षार पर्वत, और तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला, यह तीन विभंगा नदी क्रम से पर्वत, नदी, पर्वत, नदी, इत्यादि पड़ कर इन देशों की पारस्परिक सीमा बनाते हैं।
१०.	सुवत्सा	कुण्डला	
११.	महावत्सा	अपराजिता	
१२.	वत्सकावती	अभंकरा	
१३.	रम्या	अङ्का	
१४.	सुरम्यका	पद्मावती	
१५.	रमणीया	शुभा	
१६.	मङ्गलावती	रत्नसंचया	

यह कच्छा आदि १६ 'विदेहदेश' मेरुकी पूर्व दिशामें होनेसे 'पूर्व विदेहदेश' कहलाते हैं।

क्रमांक	विदेह देश	राजधानी	विवरण
१७.	पद्मा	अश्वपुरी	यह आठ देश सुदर्शनमेरु की पश्चिम दिशा में सीतोदानदी की दक्षिण और मेरु के निकट के भद्रशाल बन की वेदी से लवणसमुद्र के निकट के देवारण्यबन की वेदी तक क्रम से पूर्व से पश्चिम को हैं ॥
१८.	सुपद्मा	सिंहपुरी	इन पद्मा आदि देशोंकी पारस्परिक सीमा बनाने वाले श्रद्धावान, विजटावान, आशीविष, सुखावह, यह ४ वक्षारगिरि और क्षीरोदा, सीतोदा, श्रोतोवाहिनी यह तीन विभंगा नदी हैं जो गिरि, नदी, गिरि, नदी इस क्रम से बीच बीच में पड़ते हैं ॥
१९.	महापद्मा	महापुरी	
२०.	पद्मकावती	विजयपुरी	
२१.	शंखा	अरजा	
२२.	नलिनी	विरजा	
२३.	कुमुदा	अशोका	
२४.	सरिता (नलिनावती)	वीतशोका	
२५.	वप्रा	विजया	यह आठ देश सुदर्शनमेरु की पश्चिम दिशा में सीतोदानदी की उत्तर और लवण समुद्र के निकट के देवारण्यबन की वेदी से मेरु के निकट के भद्रशालबन की वेदी तक क्रम से पश्चिम से पूर्व को हैं ॥
२६.	सुवप्रा	वैजयन्ती	इन वप्रा आदि देशों का पारस्परिक विभाग करने वाले चन्द्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल, देवमाल, यह ४ वक्षारपर्वत और गम्भीरमालिनी, फेनमालिनी, ऊर्मिमालिनी, यह ३ विभंगानदी इनके बीच २सीमा पर एक गिरि, एक नदी, एक गिरि, एक नदी, इस क्रम से बीच बीच में पड़ते हैं ॥
२७.	महावप्रा	जयन्ता	
२८.	वप्रकावती (प्रभावती)	अपराजिता	
२९.	गन्धा (वल्गु)	चक्रपुरी	
३०.	सुगन्धा (सुवल्गु)	खड्गपुरी	
३१.	गन्धिला	अयोध्या	
३२.	गन्धमालिनी (गन्धलावती)	अवध्या	

यह पद्मा आदि १६ विदेह देश मेरुकी पश्चिम दिशामें होनेसे "पश्चिम विदेहदेश" कहलाते हैं ॥

नोट ५—यह ३२ विदेहदेश "जम्बूद्वीप" के मध्य सुदर्शनमेरु सम्बन्धी हैं। इसी प्रकार "धातकी द्वीप" के विजय और अचल दोनों मेरु और पुष्करार्द्धद्वीप के मन्दर और विद्युन्माली दोनों मेरु, इन चारों में से प्रत्येक मेरु सम्बन्धी भी ३२, ३२ विदेहदेश इन्हीं नामों के हैं जिनकी राजधानियों के नाम और उनका पारस्परिक विभाग आदि सब रचना उपरोक्त कोष्ठ में दी हुई रचना की समान ही है। अतः पांचों मेरु सम्बन्धी सर्व विदेहदेश ५ गुणित ३२=१६० हैं॥

सुदर्शनमेरु सम्बन्धी इन ३२ देशों में से "कच्छा" आदि ८ देशों में से किसी एक में "सीमन्धर" नाम के, 'वत्सा' आदि ८ देशों में से किसी एक में "युगमन्धर" नाम के, पद्मा आदि आठ देशों में से किसी एक में "बाहु" नाम के और वप्रा आदि ८ देशों में से किसी एक में "सुबाहु" नाम के कोई न कोई पुण्याधिकारी महान पुरुष तीर्थंकर पदवी धारक सदैव विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक देश में अलग अलग एक एक तीर्थंकर हो सकने से सर्व ३२ देशों में ३२ तीर्थंकर भी एक ही समय में कभी हो सकते हैं। अर्थात् इन ३२ देशों में कम से कम उपरोक्त चार तीर्थंकर और अधिक से अधिक उपरोक्त नामों के चार और अन्यान्य नामों के २८, एवं सर्व ३२ तीर्थंकर तक युगपत् होने की सम्भावना है॥

इसी प्रकार विजयमेरु सम्बन्धी ३२ विदेह देशों में संयातक, स्वयम्प्रभ, ऋषभानन, अनन्तवीर्य, इन नामों के चार तीर्थंकर, अचलमेरु सम्बन्धी ३२ विदेह देशों में सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, इन नामों के ४ तीर्थंकर, मन्दरमेरु सम्बन्धी ३२ विदेह देशों में चन्द्रबाहु, भुजङ्गप्रभ, ईश्वर, नेमीश्वर, इन नामों के ४ तीर्थंकर और पांचवें विद्युन्मालीमेरु सम्बन्धी ३२ विदेह देशों में वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य, इन नामों के ४ तीर्थंकर सदैव विद्यमान रहते हैं। और प्रत्येक देश में अलग २ एक एक तीर्थंकर हो सकने से प्रत्येक मेरु सम्बन्धी ३२, ३२ देशों में ३२, ३२ तीर्थंकर भी एक ही समय में होने की सम्भावना है। अर्थात् पांचों मेरु सम्बन्धी १६० विदेह देशों में कम से कम तो उपरोक्त नाम के २० तीर्थंकर और अधिक से अधिक इन २० और अन्यान्य नाम वाले १४० एवं सर्व १६० तीर्थंकर तक त्रिकाल में कभी न कभी युगपत् हो सकते हैं॥

उपर्युक्त १६० विदेह देशों में जिस प्रकार कम से कम ४, और अधिक से अधिक १६० तीर्थंकर युगपत कभी न कभी हो सकते हैं उसी प्रकार चक्रवर्ती या अर्द्धचक्री (नारायण, प्रतिनारायण) भी युगपत कम से कम २० रहते हैं और अधिक से अधिक १६० तक हो सकते हैं॥

यदि अढ़ाईद्वीप के पांचों मेरु सम्बन्धी ५ भरत और ५ ऐरावत के तीर्थंकरादि भी गणना में लिये जायँ तो अढ़ाईद्वीप भर में अधिकसे अधिक तीर्थंकर, और चक्री या अर्द्धचक्री में से प्रत्येक की उत्कृष्ट संख्या युगपत १७० तक हो सकती है। परन्तु जघन्य संख्या प्रत्येक की उपर्युक्त २० ही है क्योंकि भरत और ऐरावत क्षेत्रों में काल पलटते रहने से तीर्थंकरादि एक एक भी सदैव विद्यमान नहीं रहते॥

(त्रि०६६५–६६६ ६८१,६८७–६९०,७१२–७१५)

कोष्ठ नं० २।

अढ़ाई द्वीप के पांचों मेरु सम्बन्धी ५ विदेह क्षेत्रों के १६० विदेह देशों में विद्यमान २० तीर्थंकर।

क्रमांक	नामतीर्थंकर	लक्षणया चिन्ह	स्थान	माता	पिता	जन्म नगरी
१.	सीमन्धर	वृष	सुदर्शनमेरु सीतानदी के उत्तर	सत्या	श्रेयांस	पुंडरीकपुर
२.	युगमन्धर	गज	,, ,, दक्षिण	सुतारा	दृढ़राज	विजयवती
३.	बाहु	मृग	,, सीतोदानदी के दक्षिण	विजया	सुग्रीव	सुसीमा
४.	सुबाहु	कपि	,, ,, उत्तर	सुनन्दा	निशिढिल	अयोध्या
५.	संयातक	रवि	विजयमेरु सीता नदी के उत्तर	देवसेना	देवसेन	अलकापुरी
६.	स्वयंप्रभ	शशि	,, सीतानदी के दक्षिण	सुमङ्गला	मित्रभूत	विजयानगर
७.	ऋषभानन	हरि	,, सीतोदा के दक्षिण	वीरसेना	कीर्त्तिराज	सुसीमा
८.	अनन्तवीर्य	गज	,, ,, ,, उत्तर	मङ्गला	मेघराय	अयोध्या
९.	सूरप्रभ	सूर्य	अचलमेरु सीता नदी के उत्तर	भद्रा	नागराज	विजयपुरी
१०.	विशालकीर्ति	चन्द्र	,, ,, दक्षिण	विजया	विजयपति	पुंडरीकपुर
११.	वज्रधर	शंख	,, सीतोदा के दक्षिण	सरस्वती	पद्मार्थ	सुसीमा
१२.	चन्द्रानन	वृषभ	,, ,, उत्तर	पद्मावती	वाल्मीकि	पुंडरीकिनी
१३.	चन्द्रबाहु	पद्म	मंदरमेरु सीतानदी के उत्तर	रेणुका	देवनन्दि	विनीता (अयोध्या)
१४.	भुजङ्गप्रभ	चन्द्र	,, ,, ,, दक्षिण	महिमा	महाबल	विजयानगर
१५.	ईश्वर	रवि	,, सीतोदानदीके दक्षिण	ज्वाला	गलसेन	सुसीमा
१६.	नेमीश्वर	वृष	,, ,, उत्तर	सेना	वीरषेण	अयोध्या
१७.	वीरसेन	ऐरावत	विद्युन्मालीमेरु सीताके उत्तर	सूर्या	पृथ्वीपाल	पुंडरीकिनी
१८.	महान	शशि	,, ,, ,, दक्षिण	उमादे	देवराज	विजयनगर
१९.	देवयश	स्वस्तिक	,, सीतोदानदीके दक्षिण	गङ्गा	अवभूत	सुसीमा
२०.	अजितवीर्य	कमल	,, ,, ,, उत्तर	कनका	सुबोध	अयोध्या

अढ़ाई द्वीप के पांचों मेरु सम्बंधी ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्रों की त्रैकालिक ३० चौबीस

क्रमसंख्या	जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र (सुदर्शन मेरु के दक्षिण)			ऐरावत क्षेत्र (सुदर्शन मेरु के उत्तर)		
	अतीत २४ तीर्थंकर	वर्त्तमान २४ तीर्थंकर	अनागत २४ तीर्थंकर	अतीत २४ तीर्थंकर	वर्तमान २४ तीर्थंकर	अनागत २४ तीर्थंकर
१	श्री निर्वाण	श्रीऋषभदेव (आदिनाथ)	श्री महापद्म	श्री पंचरूप	श्री बालचन्द्र	श्री सिद्धार्थ
२	,, सागर	,, अजितनाथ	,, सूरदेव	,, जिनधर (जिनदेव)	,, सुव्रत	,, विमल
३	,, महासाधुदेव	,, संभवनाथ	,, सुप्रभ (सुपार्श्व)	,, सांप्रतीक (संपुटिक)	,, अग्निसेन	,, जयघोष
४	,, विमल प्रभ	,, अभिनन्दन	,, स्वयंप्रभ	,, उज्जयन्त (उद्धत)	,, नन्दसेन	,, आनन्दसेन (नन्दिसेन)
५	,, श्रीधर (श्री शुद्धाभ)	,, सुमतिनाथ	,, सर्वायुध (सर्वात्मभूत)	,, अधिक्षायक	,, श्रीदत्त	,, स्वर्गमंगल
६	,, दत्तनाथ (सुदत्त)	,, पद्मप्रभु	,, जगदेव (देवपुत्र)	,, अभिनन्दन	,, व्रतधर	,, वज्रधर
७	,, अमलप्रभ	,, सुपार्श्व	,, उदय देव (कुल पुत्र)	,, रत्नेश	,, सोमचन्द्र	,, निर्वाण
८	,, उद्धरनाथ	,, चन्द्रप्रभु	,, उदङ्क (प्रभादेव)	,, रामेश्वर	,, धृतदीर्घ (दीर्घसेन)	,, धर्मध्वज
९	,, अग्निनाथ	,, पुष्पदन्त (सुविधिनाथ)	,, प्रश्नकीर्ति (प्रौष्ठिल)	,, अंगुष्ठिक	,, शतपुष्पक शतायुधअजित	,, सिद्धसेन
१०	,, सन्मति	,, शीतलनाथ	,, जयकीर्ति (उदयकीर्ति	,, विन्यास	,, शिव शात	,, महासेन
११	,, संयमसिंधु	,, श्रेयांशनाथ	,, मुनिसुव्रत	,, आरोष	,, श्रेयांश	,, रविमित्र
१२	,, कुसुमांजलि (पुष्पांजलि)	,, वासुपूज्य	,, अरनाथ (अमम)	,, सुविधान	,, श्रुतिजल (स्वयंजल)	,, सत्यसेन
१३	,, शिवगणाधिप	,, विमलनाथ	,, निःपाप (पूर्णबुद्ध)	,, विप्रदत्त (प्रदत्त)	,, सिंहसेन	,, चन्द्रनाथ (श्रीचन्द्र)
१४	,, उत्साह प्रभ	,, अनन्तनाथ	,, निः कषाय	,, कुमार	,, उपशान्त	,, महीचन्द्र (महेन्द्र)
१५	,, ज्ञानेश्वर (ज्ञाननेत्र)	,, धर्मनाथ	,, विपुल (विमलप्रभ)	,, सर्व शैल	,, गुप्तासन	,, श्रुतांजन (स्वयंज्वल)
१६	,, परमेश्वर	,, शान्तिनाथ	,, निर्मल (बहुल)	,, प्रभंजन	,, अनन्तवीर्य (महावीर्य)	श्री देवसेन
१७	,, विमलेश्वर	,, कुन्थु नाथ	,, चित्रगुप्त	,, सौभाग्य	,, पार्श्वनाथ	श्री सुव्रत
१८	,, यशोधर (यथार्थ)	,, अरनाथ	,, समाधिगुप्त	,, दिवाकर	,, अभिधान	श्री जिनेन्द्र
१९	,, कृष्णचन्द्र	,, मल्लिनाथ	,, स्वयंभुव	,, व्रतबिन्दु (ध्वनिबिन्दु)	,, मरुदेव	श्री सुपार्श्व
२०	,, ज्ञानमति	,, मुनिसुव्रत	,, कन्दर्प (अनिवृत्त)	,, सिद्धकर्म	,, श्रीधर	श्री सुकोशल
२१	,, शुद्धमति	,, नमिनाथ	,, जयनाथ	,, ज्ञानशरीर	,, श्याम कंठ	श्री अनन्त
२२	,, श्रीभद्र	,, नेमिनाथ	,, विमलदेव	,, कल्पद्रुम	,, अग्निप्रभ	श्री विमलप्रभ
२३	,, अतिक्रान्त	,, पार्श्वनाथ	,, देवपाल (दिव्यवाद)	,, तीर्थ नाथ	,, अग्नि दत्त	श्री अमृतसेन
२४	,, शान्तिनाथ	,, महावीर (वर्द्धमान)	,, अनन्तवीर्य	,, वीरप्रभ (फलेश)	,, वीर सेन	श्री अग्निदत्त

धातकी खण्ड द्वीप (पूर्व भाग)।

संख्या	पूर्व भरतक्षेत्र (विजय मेरु के दक्षिण)			पूर्व ऐरावत क्षेत्र (विजय मेरु के उत्तर)।		
	अतीतचौबीसी	वर्तमान २४ सी	अनागत २४सी	अतीत २४सी	वर्तमान २४सी	अनागत २४सी
१	श्री रत्न प्रभ	श्री युगादिदेव	श्री सिद्धनाथ	श्रीवज्रस्वामिन्	श्रीअपश्चिम	श्री वीरनाथ
२	,, अमितनाथ	,, सिद्धांत	,, सम्यक्नाथ	,, उदयदत्त (इन्द्रदत्त)	,, पुष्पदत्त	श्रीविजयप्रभ
३	,, सम्भवनाथ	,, महेशनाथ	,, जिनेन्द्रदेव	सूर्यदेव	,, अरिहन्त	श्रीसत्यप्रभ
४	,, अकलङ्क	,, परमार्थ	,, सम्प्रतिनाथ	,, पुरुषोत्तम	,, सुचारित्र	श्रीमहामृगेन्द्र
५	,, चन्द्रस्वामिन्	,, समुद्धर (वरसेन)	,, सर्वस्वामिन्	,, शरणस्वामिन्	,, सिद्धानन्द	श्रीचिन्तामणि
६	,, शुभङ्कर	,, भूधरनाथ	,, मुनिनाथ	,, अविरोधन	,, नन्दक	श्रीअशोक
७	,, तत्वनाथ	,, उद्योत	,, वशिष्ठदेव	,, विक्रम	,, पद्माकर (पद्मकूप)	श्रीद्विमृगेन्द्र
८	,, सुन्दरस्वामिन्	,, आर्ज्जव	,, अद्वितीयदेव (अग्रनाथ)	,, निर्घंटक	,, उदयनाभ	श्रीउपवासिक
९	,, पुरन्दर	,, अभय नाथ	,, ब्रह्म शांति	,, हरीन्द्र	,, रुक्मेन्दु	श्रीपद्मचन्द्र
१०	,, स्वामिदेव	,, अप्रकम्प	,, पूर्वनाथ	,, प्रतिरित (परिश्रेरित	,, कृपाल	श्रीबोधकेन्दु
११	,, देवदत्त	,, पद्मनाथ	,, अकामुकदेव	,, निर्वाणसूर	,, प्रौष्ठिल	श्रीचिन्ताहिम
१२	,, वासवदत्त	,, पद्मनन्दि	,, ध्याननाथ	,, धर्मधुरन्धर	,, सिद्धेश्वर	श्रीउत्साहिक
१३	,, श्रेयनाथ (श्रेयांश)	,, प्रयंकर	,, कल्पजिन	,, चतुर्मुख	,, अमृतेन्दु	श्रीउपासिक (अपासिक)
१४	,, विश्वरूप	,, सुकृतनाथ	,, संवर देव	,, कुलेन्द्र	,, स्वामिनाथ	श्रीजलदेव
१५	,, तपस्तेज	,, सुभद्रनाथ	,, स्वच्छनाथ	,, श्रुताम्बुधि (स्वयंबुद्ध	,, भुवनलिंग	श्रीमारिकदेव
१६	,, प्रतिबोधदेव	,, मुनिचन्द्र (माणचन्द्र)	,, आनन्दनाथ	,, विमलादित्य	,, सर्वार्थ	श्रीअमोघ (अनिन्द्य)
१७	,, सिद्धार्थदेव	,, पंचमुष्टि	,, रविप्रभ	,, देव प्रभ	,, मेघनन्द	श्रीनागेंद्र
१८	,, अमलप्रभ	,, त्रिमुष्टि	,, चन्द्रप्रभ (प्रभंजन)	,, धरणेन्द्र	,, नन्दकेश	श्रीनीलोत्पल
१९	,, अमलसंयम	,, गांगयिक नाथ	,, नन्दसुन्दर	,, तीर्थनाथ	,, अधिष्ठायिक	श्रीअप्रकम्प
२०	,, देवेन्द्र	,, गण नाथ	,, सुकर्णदेव	उदयानन्द	,, हरिनाथ	श्री पुरोहित
२१	,, प्रवरनाथ	,, सर्वाङ्ग देव	,, सुकर्मणदेव	,, सर्वार्थदेव	,, शान्तिकदेव	श्रीभिन्दकनाथ (उपेन्द्र)
२२	,, विश्वसेन	,, ब्रह्मेन्द्रनाथ	,, अममदेव	,, धार्मिक	,, आनन्द स्वामिन्	श्रीपार्श्वनाथ
२३	,, मेघनन्दि	,, इन्द्रदत्त	,, पार्श्वनाथ	,, क्षेत्रनाथ	,, कुन्दपार्श्व	श्रीनिर्वाच्यक
२४	,, त्रिनेत्रिक सर्वज्ञ	,, दयानाथ (जिनपति)	,, शाश्वतनाथ	,, हरिचन्द्र	,, विरोचन	श्रीविरोधनाथ

धातकीखंड द्वीप (पश्चिम भाग)

क्र०	पश्चिम भरत क्षेत्र (अचल मेरु के दक्षिण)			पश्चिम ऐरावत क्षेत्र (अचल मेरु के उत्तर)		
	अतीतचौबीसी	वर्तमानचौ०	अनागतचौ०	अतीत चौ०	वर्तमान चौ०	अनागत चौ०
१	श्री वृषभ देव	श्री विश्वचन्द्र	श्री रक्त केश	श्री सुमेरु	श्री उषाधिक	श्री रवीन्द्र
२	श्री प्रिय मित्र	श्री कपिलदेव	श्री चक्र हस्त	,, जिनकृत	" जिन स्वामि	" सुकुमालिक
३	श्रीशान्तिनाथ	श्री ऋषभदेव	श्री कृतनाथ	" कैटभ नाथ हृषिकेश,अरुषि	,, स्तमितेन्द्र	" पृथ्वी वान प्रथित वन्त
४	श्रीसुमतिनाथ	श्री प्रिय तेज	श्री जिनचन्द्र (परमेश्वर)	" प्रशस्त	,,अत्यानन्दधाम	" कुलरत्न
५	श्रीअतीतजिन (आदिजिन)	श्री प्रशम (त्रिषमाँग)	श्री सुमूर्तदेव	,,निर्दर्प(निर्मद)	"पुष्पकोत्फुल्लक	" धर्मनाथ
६	,, अव्यक्तजिन	श्री चारित्रनाथ	श्री मुक्तकांत	" कुलकर	" मुंडिक	" सोमजिन (अपिसोम)
७	श्रीकमल सेन	,,प्रशमस्वामिन्	श्री निःकेश	" वर्द्धमान	" प्रहित देव	" वरुणेन्द्र
८	,, सर्व जिन	श्री प्रभादित्य	श्री प्रशान्तिक	" अमृतेन्दु	" मदन सिंह	" अभिनन्दन
९	,, प्रबोधजिन	श्री पुंजकेश	श्री निराहार	,, संख्यानन्द	" हस्तेन्द्र	" सर्वनाथ
१०	,, निर्वृत्त देव	श्री पीतवास	श्री अमूर्त	" कल्पकृत	,, चन्द्र पार्श्व	" सुदृष्ट
११	,, सौधर्म	श्री सुराधिप	श्री द्विजनाथ	" हरिनाद	" अब्ज बोध	" शिष्ट जिन (मौष्टिक)
१२	,, अर्द्धदीप्त (तमोदीप्त)	श्री दया नाथ	,, श्रेयनाथ (स्वेतांगद)	" बहुस्वामिन्	" जिन बल्लभ (जिनाष्टि)	" धन्य जिन (सुपर्ण)
१३	,, वज्रास	श्रीसहस्ररश्मि	,, अरुज नाथ	" भार्गव	,, विभूति	" सोमचन्द्र
१४	,, प्रबुद्धनाथ	श्री जिन सिंह	,, देवनाथ	,, सुभद्र देव	,, कुकुष्ण (कुसूर)	" क्षेत्राधीश
१५	,, प्रबन्धदेव	श्री रेवतिनाथ	,, दयाधिक	,, पविपति	" स्वर्ण शरीर	"सदंतिकनाथ
१६	,, अतीत (अमितनाथ)	श्री बाहु जिन	,, पुष्पनाथ	" विपेषित	,, हरिवास	" जयन्त देव (तृमय)
१७	,,सुमुख देव	श्री श्रीमाल	,, नरनाथ	,, ब्रह्मचारित्र	" प्रियमित्र	" तमोरिपु
१८	,, पल्योपम	श्री अयोगदेव	, प्रतिभूत	" असंदयक	" सुधर्मदेव	" निर्मल देव
१९	,, अकोप देव	श्रीअयोगनाथ	,, नागेन्द्र	,, चारित्रसेन	,, प्रियरत्न	" कृतपार्श्व
२०	,, निष्ठित	,, कामरिपु	,, तपोधिक	,, परिणामिक	" नन्दिनाथ	" बोधलाभ (बहुपार्श्व)
२१	,, मृग नाभि	श्रीअरण्यबाहु	,, दशानन	,, शाश्वतनाथ (कम्बोज)	" अश्वानीक	" बाहुनन्द
२२	,, देवेन्द्र	श्री नेमिनाथ	,, आरण्यक	,, निधिनाथ	" पूर्व नाथ	" दृष्टिजिन
२३	,, पदस्थित	गर्भ नाथ	,, दशानीक	,, कौशिक	" पार्श्व नाथ	" कंकुनाभ (त्रिकंक)
२४	,, शिवनाथ	एकार्जित स्वामि	,, सात्विक	,, धर्मेश	,,चित्र हृदय	" वक्षेश

पुष्करार्द्धद्वीप (पूर्व भाग)

क्रमांक	पूर्व भरत क्षेत्र (मन्दरमेरु के दक्षिण)			पूर्व-ऐरावत क्षेत्र (मन्दर मेरु के उत्तर)		
	अतीत२४सी०	वर्तमान२४सी	अनागत२४सी	अतीत२४सी	वर्तमान२४सी	अनागत२४सी
१	श्रीमदनेन्द्र (दमनन्द)	श्रीजगन्नाथ	श्रीवसन्तध्वज	श्रीकुलनाथ	श्रीशङ्कर (शिशामित)	श्रीयशोधर
२	श्रीमूर्तेन्द्र	श्रीप्रभास	,, त्रिजयन्त (त्रिमातुल)	उपविष्ट	अक्षपात	सुकृत
३	श्री निराग	श्रीसूरस्वामिन्	,, त्रिस्कन्ध (त्रिस्थंभ)	आदित्तदेव	नग्नादि	अभय घोष
४	श्री प्रलंबित	श्रीभरतेश	,, परमब्रह्म (अघटित)	अस्थानिक (अष्टाह्निक)	नग्नाधिप	निर्वाण
५	श्रीपृथ्वीपति	श्रीदीर्घानन	,, अबालीश	प्रचन्द्र	नष्टाखंड (नतपट)	व्रतवासु
६	श्रीचरित्रनिधि	श्रीविख्यात कीर्ति	,, प्रवादिक	वेणुक	स्वप्नप्रबोध (स्वपद)	अतिराज
७	श्रीअपराजित	,, अवशानन	,, भूमानन्द	त्रिभानु	तपोधन	अश्वजिन (अश्रमण)
८	श्रीसुबोधक	,, प्रबोधन	,, त्रिनयन	ब्रह्मब्रह्मण्य (ब्रह्मादित्य)	पुष्पकेतु	अर्जुन
९	श्री बुद्धेश (बुद्धेश)	,, तपोनिधि	,, विद्धेश	वज्राङ्क	धार्मिक	तपश्चन्द्र
१०	श्री वैतालिक	,, पावक	,, परमात्म प्रशम	अविरोधन	चन्द्रकेतु	शारीरिक
११	श्रीत्रिमुष्टि	,, त्रिपुरेश	,, भूमीन्द्र	अपाप (मुक्तिधन)	वीतराग (प्रणरिपु	महेश्वर
१२	श्रीमुनिबोधक	,, सौगत	,, गोस्वामिन्	लोकोत्तर	अनुरक्त (विरक्त)	सुग्रीव
१३	श्रीतीर्थेन्द्र	,, यवास	,, कल्याण प्रकाशित	जलधिशेष	उद्योतक	दृढ़प्रहार
१४	श्रीधर्माधीश	,, मनोहर (अघमन)	,, मंडलेश	विद्योद्युति	तमोपेक्ष	अयोनीति
१५	श्रीधारणेश	,, शुभकर्मेश	,, महावसु	सुमेरु	मधुनाथ (अतीतदेव)	अम्बरीष
१६	श्रीप्रभवदेव	,, इष्टसेवक (कुमतिकुरछ)	,, तैलोदयेन्दु	भावित	मरुदेव	तुंबरनाथ
१७	श्रीअनादिदेव	,, कमलेन्द्र	,, दिव्यजोति (पुर्दरीक)	वत्सल	दमनाय (दमयुक्त)	सर्वशील
१८	श्रीअनाथिप	,, धर्मध्वज	. प्रबोधजयति	जिनालय	वृषभस्वामिन्	प्रतिजातक
१९	,, सर्वतीर्थनाथ	,, प्रस्वादनाथ	,, अभयंक	तुषारिक	शिलातन	जितेन्द्रिय
२०	,, निरुपमदेव	,, प्रभामृगांक	,, प्रमितेश	भुवनेश (निधिचन्द्र)	विश्वनाथ	तपादित्य
२१	,, कुमारिक	,, अकलङ्क (मृगांक)	,, दिव्यस्फारक	सुकामुक	महेन्द्रसनर्क	रत्नकिरण
२२	,, विहारगृह (विग्रह)	,, स्फटिकप्रभ	,, अतेन्द्रस्वामि	देवाधिदेव (जिनचन्द्र	नन्दसहस्राधि	दिवेश
२३	,, धारणेश्वर	,, गणेन्द्र (गजेन्द्र)	,, निधिनाथ	अकारिमदेव	तमोनिभ	लांछनेश
२४	,, विकाशदेव (विकाशन)	,, ध्यानेन्द्र	,, निकर्मकदेव (निष्कर्मक)	विनीत (विवंक)	महाधारण	सुप्रदेश

पुष्करार्द्ध द्वीप (पश्चिम भाग)

संख्या	पश्चिम-भरत क्षेत्र (विद्युन्माली मेरु के दक्षिण)			पश्चिम ऐरावत क्षेत्र (विद्युन्मालीमेरुके उत्तर)		
	अतीतचौबीसी	वर्तमान चौ०	अनागत चौ०	अतीत चौ०	वर्तमान चौ०	अनागतचौ०
१	श्री पद्मचन्द्र	श्री सर्वाङ्ग (पद्मप्रभ)	श्री प्रभाकरदेव	श्री उपशान्त	श्री गाङ्गेयक	श्री अद्योष
२	श्री रत्नाङ्ग	श्रीप्रभाकरदेव (विद्युत्प्रभ)	विनयेन्द्र	फाल्गु	मलुवास (नलवास)	वृषभ
३	श्री अजोगिक	श्री पद्माकर (बलनाथ)	स्वभावकदेव	पुरवास	भीम	विनयानन्द
४	श्री सिद्धार्थ (सर्वार्थ)	श्रीयोगनाथ	दिनकर	सुन्दर	दयानाथ (ध्वजाधिप)	मुनिभारत
५	श्री ऋषिनाथ (कृषिनाथ)	श्री सूक्ष्माङ्ग	अनङ्गतेज (अगस्त)	गौरव	सुभद्र नाथ	इन्द्रक
६	श्री हरिभद्र	श्री बलातीत	धनदत्त	त्रिविक्रम	स्वामि जिन	चन्द्रकेतु
७	श्री गणाधिप	श्री मृगांक	पौरव	नृपसिंह	हनिक	ध्वजादित्य
८	श्री पारत्रिक	श्री कलंबक	जिनदत्त	मृगवासव	नन्दघोष	वस्तुबोधक
९	श्री ब्रह्मनाथ (पद्मनाथ)	श्री परित्याग	पार्श्व नाथ	परम शोभ (सोमेश्वर)	रूप वीर्य	मुक्तगति
१०	श्रीमुनिचन्द्र	श्री निषेधक	मुनिसिन्धु	शुद्धेश्वर	वज्रनाभ	धर्म प्रबोधक
११	श्रीकुलदीपक	श्रीपापप्रहारक	अस्तक (आस्तिक)	अपापजिन	सन्तोष	देवाङ्ग
१२	श्री राजर्षि	श्रीमुक्तचन्द्र स्वामि	भवनीक	विवाध जिन	सुधर्म	मरीचि
१३	श्रीविशारददेव	श्री अप्रकाश (अप्रासिक)	नृपनाथ	लब्धिकजिन	फनीश्वर	जीव नाथ (धर्मरथ)
१४	श्री आनन्दित	श्री जयचन्द्र (आनन्दित)	नारायण	मानधात्र	वीरचन्द्र	यशोधर
१५	श्रीरविस्वामिन्	श्री मलाधार (मलधारिण)	प्रशमीक	अदत्ततेज	मेघानीक	गौतम
१६	श्री सोमदत्त	श्री सुसंजय	भूपति	विद्याधर	स्वच्छ नाथ	मुनिशुद्ध
१७	श्रीजयस्वामि	श्रीमलयसिंधु	सुदृष्टि (दृष्टांक)	सुलोचन	कोपक्षय	प्रबोधक
१८	श्री मोक्षनाथ	श्री अक्षधर (अक्षोभ)	भवभीरु	मौननिधि	अकामिक	सदानीक
१९	श्री अग्निभानु	„ धराजयति (धरदेव)	नन्दन	पुंडरीक	धर्मधाम (सन्तोषिक)	चारित्र नाथ
२०	श्री धनुपाङ्ग	श्री गणार्धिप (प्रयच्छन)	भार्गव	चित्रगण	सुक्तसेन (सत्यसेन)	सदानन्द
२१	श्री मुक्तनाथ	श्री अकामिक	वासव	मुनीन्द्र	क्षेमङ्कर (क्षेमाङ्क)	वेदार्थ नाथ
२२	श्री रोमांच	„ विनीत	परवासव (किल्विषाद)	सर्वकला	दयानाथ	सुधानीक (प्रशहत)
२३	” प्रसिद्धनाथ	„ वीरराम	वनवासि (भववास)	भूरि श्रवण	कीर्तिप	ज्योतिमूर्ति
२४	„जिनेशस्वामि	„ रत्नानन्द	भरतेश	पुण्याङ्ग (पुष्पाङ्ग)	शुभङ्कर	सुरार्थ(सुबुद्ध)

नोट १—जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र की अनागत चौबीसी के "श्री महापद्म" नामक प्रथम तीर्थंकर का पद मगध नरेश महाराजा श्रेणिक "बिम्बसार" का जीव प्रथम नरक से आकर पायगा "श्री निर्मल" नामक १६ वां तीर्थङ्कर "श्रीकृष्ण चन्द्र" ९वें नारायण का जीव होगा और श्री अनन्त वीर्य नामक अन्तिम २४ वां तीर्थंकर "सात्यकि-तनय" नामक ११वें रुद्र का जीव होगा।

(त्रि. ८७२, ८७४, ८७५)

नोट २—जिस समय श्रीकृष्ण का जीव अनागत चौबीसी का १६वां तीर्थंकर 'निर्मल' नामक होगा उसी समय श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता "श्री बलदेव" का जीव मुक्तिपद प्राप्त करेगा॥

(त्रि. ८३३)

अणिमा—लघुता, अणुत्व, सूक्ष्म परिमाण, एक दैवी विद्या, एक ऋद्धि विशेष जिस के तपोबल द्वारा प्राप्त हो जाने पर अपना शरीर यथा इच्छा चाहे जितना छोटा बना सकने की शक्ति तपस्वियों को प्राप्त हो जाती है। यह शक्ति सर्व देवों और नारकियों में, तथा कुछ अन्य पर्यायों में जन्मसिद्ध होती है।

नोट १—यह ऋद्धि बुद्धिऋद्धि आदि ८ ऋद्धियों मेंसे तीसरी विक्रिया (वैक्रियिक) ऋद्धि के ११ भेदों में से एक भेद है जिन के नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) अणिमा (२) महिमा (३) लघिमा (४) गरिमा (५) प्राप्ति (६) प्राकाम्य (७) ईशित्व (८) वशित्व (९) अप्रतिघात (१०) अन्तर्द्धान (११) कामरूपित्व॥

नोट २—वैक्रियिक शक्ति दो प्रकार की होती है, एक पृथक्-विक्रिया और दूसरी अपृथक् विक्रिया। जिस शक्तिसे अपने शरीर से पृथक् (अलग) युगपत् अनेक शरीरादि की रचना निजात्म प्रदेशों द्वारा की जा सके उसे "पृथक्-वैक्रियिकशक्ति" कहते हैं। और जिस शक्ति से अपने ही शरीर को यथा इच्छा सूक्ष्म, स्थूल, हलका, भारी आदि अनेक प्रकार के रूपों में यथा इच्छा परिवर्तित किया जा सके उसे 'अपृथक् वैक्रियिक शक्ति' कहते हैं।

नोट ३—सर्व प्रकार के देवों और नारकियों का शरीर जन्म ही से वैक्रियिक होता है जिस से देव तो पृथक् और अपृथक् दोनों प्रकार की, और नारकी केवल अपृथक् विक्रिया कर सकते हैं। वैक्रियिक शरीर को "विगूर्व शरीर" या "वैगूर्विक शरीर" भी कहते हैं।

नोट ४—वैक्रियिक शक्ति की सम्भावना सर्व देवों, सर्व नारकियों और तपःबल द्वारा ऋद्धि प्राप्त किसी२ ऋषि मुनियों में तथा कुछ स्थूल तेजस कायिक और वायुकायिक पर्याप्त एकेन्द्रिय जीवों में, कुछ संज्ञी पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में, भोगभूमिज मनुष्यों और तिर्यञ्चों में, तथा कर्मभूमिज अर्द्धचक्री और चक्रवर्ती पद विभूषित पुरुषोंमें है। इनमें से देवों में पृथक् और अपृथक् दोनों, भोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों में तथा कर्मभूमिज चक्री, अर्द्धचक्रियों में पृथक् और शेष में अपृथक्-वैक्रियिक-शक्ति है।

(गो॰ जी॰ २३१, २३२, २५९)

नोट ५—तपस्वियों को तपोबल से जब यह शक्ति प्राप्त होती है तो वह 'वैक्रियिक ऋद्धि' कहलाती है जो पृथक् और अपृथक्

दोनों प्रकार की होती है। शेष जीवों की ऐसी जन्मसिद्ध शक्ति को वैक्रियिकशक्ति कहते हैं। वैक्रियिकऋद्धि नहीं॥

नोट ६—भोगभूमिज प्राणियों में विकलत्रय (अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरेन्द्रिय जीव), असंज्ञी और सम्मूर्छन पञ्चेन्द्रिय जीव, और जलचर प्राणी नहीं होते।

(गो० जी० ७६, ८०, ८१, ८२)

अणिमाऋद्धि—पीछे देखो शब्द "अणिमा"

अणिमाविद्या—रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि ५०० महाविद्याओं में से एक विद्या का नाम जो मन्त्रादि द्वारा सिद्ध की जाती हैं। इस विद्या के सिद्ध हो जाने पर अणिमा ऋद्धि के समान शक्ति इस के साधक को प्राप्त हो जाती है। इन ५०० विद्याओं में से कुछ के नाम निम्न लिखित हैं:—

(१) रोहिणी (२) प्रज्ञप्ति (३) गौरी (४) गान्धारी (५) नभ सञ्चारिणी (६) काम दायिनी (७) काम गामिनी (८) अणिमा (९) लघिमा (१०) अक्षोभ्या (११) मनः स्तम्भन कारिणी (१२) सुविधाना (१३) तपोरूपा (१४) दहनी (१५) विपलोदरी (१६) शुभप्रदा (१७) रजोरूपा (१८) दिवारात्रि विधायिनी (१९) वज्रोदरी (२०) समाकृष्टि (२१) अदर्शनी (२२) अजरा (२३) अमरा (२४) अनलस्तम्भनी (२५) जलस्तम्भनी (२६) वायुस्तम्भनी (२७) पवन संचारिणी (२८) गिरिदामणी (२९) अपसंचारिणी (३०) अवलोकिनी (३१) वन्हिमजालिनी (३२) दुःख मोचनी (३३) भुजङ्गिनी (३४) सर्व विष मोचनी (३५) दारुणी (३६) वारिणी (३७) मदनाशनी (३८) वश कारिणी (३९) जगत कम्पायिनी (४०) प्रघर्षिणी (४१) भानु मालिनी (४२) विश्वोद्भवकारी (४३) महा कष्ट निवारिणी (४४) इच्छा पूर्णी (४५) सुख सम्पत्ति दायिनी (४६) घोरा (४७) धीरा (४८) वीरा (४९) भुवना (५०) अवध्या (५१) बन्धमोचनी (५२) भास्करी (५३) उद्योतनी (५४) वज्रा (५५) रूप सम्पन्ना (५६) रूपपरिवर्तनी (५७) रोशनी (५८) विजया (५९) जया (६०) बहुवर्द्धनी (६१) संकट मोचनी (६२) वाराही (६३) कुटिलाकृति (६४) शान्ति (६५) कौवेरी (६६) योगेश्वरी (६७) बलोत्साही (६८) चंडी (६९) भीति (७०) दुर्निवारा (७१) सद्बुद्धि (७२) जृंभणी (७३) सर्व हारिणी (७४) व्योम भामिनी (७५) इन्द्राणी (७६) सिद्धार्था (७७) शत्रुदमनी (७८) निर्व्याघाता (७९) आघातिनी (८०) वज्र भेदनी। इत्यादि॥

अणीयस—भद्दिलपुर निवासी "नाग" नामक अधिकारी की स्त्री सुलसा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र, जिसने श्री नेमिनाथ से दीक्षा लेकर, १४ पूर्व पाठी हो २० वर्ष तक प्रव्रज्या (संन्यास विशेष, मुनि धर्म) पालन करने के पश्चात् शत्रुंजय पर्वत से मुक्तिपद पाया; षट्भ्राताओं के नाम से प्रसिद्ध मुनियों में से एक मुनि। (अ० मा०)

अणु—भाग, अंश, कण, लेश, सूक्ष्म, क्षुद्र, लघु, अदृश्य, धान्य, संगीतशास्त्र की मात्रा विशेष, पुद्गलकण, पुद्गलपरमाणु, अनु (उपसर्ग विशेष,) पीछे, सादृश्य, समीप,

सहकारी, अनुसार।

'अणु' शब्द का प्रयोग मुख्यतः पुद्गल द्रव्य (मैटर matter) के अंशही के लिये किया जाता है, और काल द्रव्य की अंश-कल्पना में भी, परन्तु अन्य चार द्रव्यों अर्थात् जीव, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, और आकाश की अंशकल्पना में नहीं। इन चार की अंशकल्पना में 'प्रदेश' शब्द का प्रयोग होता है और गुणों की अंश-कल्पना में "अविभागी प्रतिछेद" का।

प्रदेश यथार्थ में आकाश द्रव्य के या क्षेत्र के उस छोटेसे छोटे अंश को कहतेहैं जिसमें पुद्गलद्रव्य का केवल एक छोटे से छोटा अंश अर्थात् परमाणु समावे। प्रदेश यद्यपि क्षेत्रमान का एक अंश है तथापि छहों ही द्रव्यों के लघुत्व और गुरुत्व का अन्दाज़ा इसी मान के द्वारा भले प्रकार लग सकनेसे आचार्यों ने अलौकिक गणना में इसी को एक पैमाना मान लिया है जिस से नाप कर प्रत्येक द्रव्य का मान बताया जाता है। (पीछे देखो शब्द "अङ्कविद्या" का नोट ७)॥

नोट १—परमाणु (ज़र्रा या ऐटम Atom) कोई तो बालू रेत के कण को और कोई इसके ६० वें भाग को मानते हैं। नैयायिक अन्धेरी कोठरी में किसी छिद्र द्वारा प्रवेशित सूर्यकिरणों में उड़ते चमकते प्रत्येक रजकणके ६० वें भाग को परमाणु समझते हैं। आज कल के वैज्ञानिकों ने हिसाब लगा कर अनुमान कियाहै कि हाइड्रोजन गैस (Hydrogen gas) जो हलके से हलका अमिश्र द्रव्य वायु से भी बहुत ही सूक्ष्म है और जिस में न कोई वर्ण, न रस और न गन्ध है अर्थात् जो नेत्रादि किसी इन्द्रिय द्वारा पहिचाना नहीं जा सकता किन्तु जलाने से पीतवर्ण की लपटें प्रदर्शित करता और औक्सिजन गैस (Oxygen gas) से नियमानुसार विधिपूर्वक मिलने पर जलकण बनाता है उस के साठ लाख संख (६०००००००००००००००००००००० चौबीसस्थानप्रमाण) अणु तोल में केवल "एक रत्ती भर" होते हैं। इसी एक अणु को अर्थात् एक रत्तीभर हाइड्रोजन गैस के ६० लाख संखवें भाग को वे परमाणु मानते हैं जो वास्तव में नैयायिक आदि के माने हुए परमाणु से अत्यन्त सूक्ष्म और लघु है।

आजतक आविष्कृत अणुवीक्षण अर्थात् सूक्ष्म दर्शक यंत्रों में सर्वोत्कृष्ट यंत्र से देखने पर कोई वस्तु अपने सहज आकार से आठ सहस्र (८०००) गुणी बड़ी दीख पड़ती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि कोई ऐसा अणुवीक्षण यंत्र आविष्कृत हो जाय जिस के द्वारा कोई पदार्थ अपने सहज आकार से चौसठ सहस्र (६४०००) गुणा बड़ा दीख सके तो जलके परमाणु अलग अलग उस यंत्र द्वारा देखे जा सकते हैं अर्थात् वे मानते हैं कि जो छोटे से छोटा जलकण हमें नेत्र द्वारा दीख सकता है—अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जो जलकण किसी सुई की बारीक से बारीक नोक पर रुक सकता है—उस जलकण का चौसठ सहस्रवां भागांश जल का एक परमाणु है। यह परमाणु उपर्युक्त हाइड्रोजन गैस के एक परमाणु से बहुत बड़ा है।

सन १८८३ ई० में डाक्टर डालिंजर (Dr. Dallinger) ने किसी सड़े मांस के केवल एक घन इन्च के एक सहस्रवें भागांश में अणु वीक्षण यंत्र (खुर्दबीन Microscope) द्वारा २ अर्ब ८० करोड़ (२८० कोटि, २८००००००००) जीवित कीट (कीड़े)

देखे थे जिस से उसने अणु या परमाणु की लघुता या सूक्ष्मता का अनुमान किया था कि वह इस कीट के सहस्रांश से भी छोटा होगा । इत्यादि

सारांश यह कि उपर्युक्त विद्वानों ने जिस जिस को परमाणु स्वीकृत किया या समझा है उन में से प्रत्येक अणु जैन सिद्धान्तानुकूल एक स्कन्ध ही है, परमाणु नहीं है। परमाणु तो पुद्गल द्रव्य (Matter) का इतना छोटा और अन्तिम अंश है जिसे संसार भर की कोई प्राकृतिक शक्ति भी दो भागों में नहीं बाँट सकती । आजकल के वैज्ञानिकों की दृष्टि में हाइड्रोजन गैस का जो उपर्युक्त छोटे से छोटा अंश आया है अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी जैनसिद्धान्त की दृष्टि से असंख्य परमाणुओं का समूहरूप एक स्कन्ध या पिंड है ॥

नोट २—परमाणु पुद्गल द्रव्य का एक अत्यन्त लघुकण है । इसी लिये हम अल्पज्ञों को इन्द्रियगोचर न होने पर भी उस में असाधारण पौद्गलिक गुण(Material-properties)स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण सदैव विद्यमान रहते हैं । पुद्गल द्रव्यके इन चार मूल गुणोंके विशेष भेद २० हैं जिन में से परमाणु में स्पर्श के ८ भेदों में से दो (शीत-उष्ण युगल में से कोई एक और स्निग्ध-रूक्ष युगल में से कोई एक और हलका-भारी, नर्म कठोर, इन ४ में से कोई नहीं), रस के ५ भेदों अर्थात् तिक्त, कटु, कषायल, आम्ल और मधुर में से कोई एक, गन्ध के दो भेदों अर्थात् सुगन्धि दुर्गन्धि में से कोई एक, और वर्ण के ५ भेदों अर्थात् कृष्ण, नील, पीत, पद्म, और शुक्ल में से कोई एक, इस प्रकार यह ५ गुण सदैव विद्यमान रहते हैं । इन २० गुणों की अपेक्षा परमाणु के स्थूल भेद २०० निम्न प्रकार हो जाते हैं:—

१. स्पर्श गुण अपेक्षा ४ भेद—(१) शीतस्निग्ध (२) शीतरूक्ष (३) उष्णस्निग्ध (४) उष्णरूक्ष ।

२. स्पर्शगुण अपेक्षा इन उपर्युक्त ४ प्रकार के परमाणुओं में से प्रत्येक में रस के ५ भेदोंमें से कोई एक रहनेसे रसगुण अपेक्षा उसके ५ गुणित ४ अर्थात् २० भेद हो जायेंगे ।

३. इसी प्रकार इन २० प्रकार के परमाणुओं में से प्रत्येक में गन्ध के २ भेदों में से कोई एक रहने से गन्ध गुण अपेक्षा उसके दो गुणित २० अर्थात् ४० भेद हो जायेंगे । और ५ वर्णगुण अपेक्षा ५ गुणित ४० अर्थात् २०० भेद हो जाते हैं ।

पुद्गल द्रव्य के उपर्युक्त २० असाधारण गुणों में से प्रत्येक गुण के अविभागी प्रतिच्छेद या अविभागी अंश अनन्तानन्त होते हैं । अतः इन गुणों के अविभागी अंशों की हीनाधिकता की अपेक्षा से परमाणु भी अनन्तानन्त प्रकार के हैं जिनके प्राकृतिक नियमानुसार यथा योग्य संयोग वियोग से विश्वभर के सर्व प्रकार के पौद्गलिक पदार्थों (Material Substances) की रचना सदैव होती रहती है ।

यहां इतना ध्यान रहे कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, या सोना, चांदी, लोहा, तांबा, गन्धक, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन आदि पदार्थोंकी अपेक्षा,जिन्हें कुछ प्राचीन या अर्वाचीन दार्शनिक या वैज्ञानिक लोग 'द्रव्य' (अमिश्रित पदार्थ Elements) मानते हैं, परमाणुओं में किसी प्रकार का कोई मूल भेद नहीं है किन्तु जिन जाति के परमाणुओं के संयोग से पृथ्वी आदि में से किसी एक

पदार्थ के स्कन्ध बनते हैं उन्हीं परमाणुओं के संयोग से उनके मूलगुणों के अंशों में यथा आवश्यक हीनाधिक्यता होकर किसी अन्य पदार्थ के स्कन्ध भी बन सकते हैं और बनते रहते हैं। और इसी लिये पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु या सोना, चाँदी आदि के स्कन्ध भी बाह्यनिमित्त मिलने पर परस्पर एक दूसरे के रूप में परिवर्तित हो सकते हैं।

(पंचास्तिकाय ८०, ८१, ८२, गो० जी० ६०८......)

नोट ३—"अणु" शब्द का प्रयोग 'अनु' के स्थान में भी कभी २ किसी अन्य संज्ञावाची या क्रियावाची शब्द के पूर्व उसके उपसर्ग रूप भी किया जाता है तब यह अनु की समान "पीछे, सादृश्य, समान, अनुकूल, सहायक", इत्यादि अर्थ में भी आता है। जैसे "अणुव्रत" शब्द में "अणु" "अनु" के अर्थ में है॥

अणुवर्गणा—अणुसमुदाय, त्रैलोक्यव्यापी पुद्गलद्रव्य के अविभागी अणुओं अर्थात् परमाणुओं के समूह की जो २३ प्रकार की परमाणु से लेकर महास्कन्ध पर्यंत वर्गणायें हैं उनमें से प्रथम वर्गणा का नाम। (पीछे देखो शब्द "अणु" और "अग्राह्य-वर्गणा")॥

(गो० जी० ५९३—६०३)

नोट—"अणुवर्गणा" शब्द में "अणु" शब्द का प्रयोग 'परमाणु' के अर्थ में किया गया है॥

अणुवीचीभाषण (अनुवीचीभाषण)—आगमानुसार परिमित वचन बोलना।

यह सत्याणुव्रत की ५ भावनाओं में से एक भावना का नाम है जिसकी स्मृति हर दम रखने और उसके अनुकूल चलने से इस अणुव्रत की असत्य भाषण से रक्षा होकर उसका पालन निर्दोष रीति से भले प्रकार हो सकता है॥

नोट—सत्याणुव्रत की ५ भावनाओं के नाम यह हैं—(१) क्रोध त्याग (२) लोभ त्याग (३) भयत्याग (४) हास्यत्याग (५) अनुवीचि भाषण॥

(त० सू० ५, अ० ७)

अणुव्रत (अनुव्रत)—एकोदेश विरक्तता, हिंसा आदि पंच पापों का एक देश त्याग, पूर्ण विरक्तता या महाव्रत की सहायक या सहकारी प्रतिज्ञा, महाव्रत की योग्यता प्राप्त करने वाली प्रतिज्ञा॥

हिंसा, अनृत (असत्य), स्तेय (अदत्त ग्रहण या अपहरण या चोरी), अब्रह्म (कुशील,या मैथुन), और परिग्रह (अनात्मया अचेतन पदार्थों में ममत्व), यह ५ पाप हैं। इनसे विरक्त होने को, इन्हें त्याग करने को, या इनसे निवृत्ति स्वीकृत करने की शल्य रहित प्रतिज्ञा को 'व्रत' कहते हैं। यह प्रतिज्ञा जब तक पूर्ण त्याग रूप न हो किन्तु पूर्ण त्याग की सहायक और उसी की ओर को ले जाने वाली हो तथा किसी न किसी अन्श में उसी की अनुकरण रूप हो तो उसे "अणुव्रत" या 'अनुव्रत' कहते हैं। और जब यही प्रतिज्ञा पूर्ण रूपसे पालन की जाय तो उसे 'महाव्रत' कहते हैं।

उपर्युक्त पंच पाप त्याग की अपेक्षा से अणुव्रत निम्नोक्त ५ हैं:—

(१) अहिंसाणुव्रत, या अहिंसात्याग व्रत॥

(२) सत्याणुव्रत, या स्थूल असत्य-त्याग व्रत ॥

(३) अस्तेयाणुव्रत, या अचौर्याणुव्रत, या स्थूल चोरी त्यागव्रत ॥

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत, या शीलाणुव्रत, या स्वदारा सन्तोष या स्वपति सन्तोष व्रत ॥

(५) परिग्रह त्यागाणुव्रत, या परिग्रह परिमाणव्रत या अनावश्यक परिग्रह त्यागव्रत, या अल्पपरिग्रह-सन्तोषव्रत, या नियमित-परिग्रह-सन्तोषव्रत ॥

नोट १—इन पांचों अणुव्रतों को सुरक्षित रखने और निर्दोष पालन करने के लिये निम्न लिखित सप्त शील पालन करना और प्रत्येक व्रत की पांच पांच भावनाओं पर यथोचित ध्यान देना तथा पंचाणुव्रतों और सप्तशील में से प्रत्येक के पांच पांच मुख्य और अन्यान्य गौण अतिचारों से बचना भी परमोपयोगी है:-

१. सप्तशील (३ गुणव्रत + ४ शिक्षाव्रत)—(१) दिग्व्रत (२) अनर्थदण्डत्यागव्रत (३) भोगोपभोग परिमाणव्रत; (४) देशावकाशिक (५) सामायिक (६) प्रोषधोपवास (७) अतिथि संविभाग।

२. पांचों अणुव्रतोंकी पांच २ भावना और उनके पांच २ मुख्य अतिचार निम्नोक्त हैं:—

(१) अहिंसाणुव्रत की ५ भावना—१. मनोगुप्ति २. वचनगुप्ति ३. ईर्या समिति ४. आदान निक्षेपण समिति ५. आलोकित पान भोजन।

अहिंसाणुव्रत के ५ अतिचार-१. वध २. बन्धन ३. छेद ४. अति भारारोपण ५. अन्नपान निरोध।

(२) सत्याणुव्रत की ५ भावना-१. क्रोध त्याग २. लोभत्याग ३. भयत्याग ४. हास्य त्याग ५. अणुवीचीभाषण (आगमानुसार बोलना)।

इस व्रत के ५ अतिचार-१. मिथ्योपदेश २. रहोभ्याख्यान ३. कूटलेखक्रिया ४. न्यासापहार ५. साकारमंत्रभेद।

(३) अस्तेयाणुव्रत की ५ भावना—१. शून्यागार वास २. विमोचितावास ३. अपरोपरोधाकरण ४. आहार शुद्धि ५. सधर्माविसंवाद।

इस व्रत के ५ अतिचार-१. चौरप्रयोग २. चौरार्थदान या चौराहृतग्रह ३. विरुद्धराज्यातिक्रम ४. हीनाधिक मानोन्मान ५. प्रतिरूपक व्यवहार।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत की ५ भावना—१. अन्य स्त्री (या अन्य पुरुष) राग कथा श्रवण त्याग २.पर स्त्री(यापरपुरुष)तन-मनोहरांग निरीक्षण त्याग ३. पूर्वरतानुस्मरणत्याग ४. वृष्येष्ट रस त्याग ५. स्वशरीरसंस्कार त्याग।

इस व्रत के ५ अतिचार-१. परविवाहकरण २. इत्वरिका-परिगृहीतागमन ३. इत्वरिका अपरिगृहीतागमन ४. अनङ्ग क्रीड़ा ५. कामतीव्राभिनिवेश ॥

(५) परिग्रहत्यागाणुव्रतकी ५ भावना १. स्पर्शनेन्द्रिय विषयातिरागद्वेष त्याग। २. रसनेन्द्रिय विषयातिरागद्वेष त्याग। ३. घ्राणेन्द्रिय विषयातिरागद्वेष त्याग। ४. चक्षुरेन्द्रिय विषयातिराग द्वेष त्याग। ५. श्रोत्रेन्द्रिय विषयाति राग द्वेष त्याग।

इस व्रत के ५ अतिचार—

१.-वास्तुक्षेत्रातिक्रम

२. धनधान्यातिक्रम

३. कनककुप्यातिक्रम
४. कुप्य भांडाति क्रम
(या वस्त्रकुप्याति क्रम)
५. दासी दासातिक्रम
(या द्विपदचतुष्पदाति क्रम) ॥

{ त०सू०अ० ७ सू० १-८, २४-२६
सा०अ० ४। १५,१८,४१,५०,५८,६४ }

नोट २—उपरोक्त पंचाणुव्रतों, सप्त शीलों, सर्व भावनाओं व सर्व अतिचारों का लक्षण व स्वरूप आदि प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान देखें ॥

नोट ३-भावना शब्दका अर्थ "बारंबार चिन्तवन करना, विचारना या ध्यानमें रखना" है। अतिचार शब्द का अर्थ जानने के लिये पीछे देखो शब्द "अचौर्य-अणुव्रत" का नोट १।

नोट ४—संसार में जितने भी पाप या दुराचार हैं वे सर्व उपरोक्त ५ पापों ही के अन्तर्गत हैं। इतना ही नहीं किन्तु सूक्ष्म विचार दृष्टि से देखा जाय तो एक 'हिंसा' नामक पाप में ही पापों के शेष चारों भेदों का समावेश है। अर्थात् वास्तव में केवल 'हिंसा' ही का नाम "पाप" है। अन्य सर्व ही प्रकार के अपराध जिन्हें 'पाप' या 'दुराचारादि' नामोंसे पुकारा जाता है वे किसी न किसी रूपमें एक 'हिंसा' पाप के ही रूपान्तर हैं। (पीछे देखो शब्द 'अजीवगतहिंसा' और इस के नोट १, २, ३, पृष्ठ १६९) ॥

नोट ५—पीछे देखो शब्द 'अगारी' नोटों सहित पृष्ठ ५१ ॥

अणुव्रती—पंचाणुव्रतों को पालन करने वाला। (पीछे देखो शब्द 'अणुव्रत' नोटों सहित, पृ० २७४) ॥

अण्डज—अण्डे से जन्म लेने वाले प्राणी ॥

त्रैलोक्य भर के प्राणीमात्र के जन्म सामान्यतः निम्न लिखित तीन प्रकार के हैं:—

१. उपपादज—उपपादशय्या से पूर्ण युवावस्था युक्त उत्पन्न होने वाले प्राणी। इस प्रकार का जन्म केवल देवगति और नरकगति के प्राणियों का ही होता है। (देखो शब्द 'उपपादज') ॥

२. गर्भज—गर्भ से उत्पन्न होने वाले प्राणी अर्थात् वे प्राणी जो पिता के शुक्र (वीर्य) और माता के शोणित (रज) के संयोगसे माताके गर्भाशयमें उत्पन्न हो कर और कुछ दिनों तक वहीं बढ़कर माता की योनिद्वार से बाहर आते हैं ॥

यह सामान्यतः ३ प्रकार के होते हैं—(१) जरायुज; जो गर्भ से जरायु अर्थात् जेर या पतली झिल्ली युक्त उत्पन्न हों, जैसे मनुष्य, गाय, भैंस, घोड़ा, बकरी, हरिण आदि। (२) पोतज; जो गर्भ से बिना जरायु (जेर या झिल्ली) के उत्पन्न हों, जैसे सिंह, स्यार, भेड़िया, कुत्ता आदि। (३) अण्डज; जो गर्भ से अण्डे द्वारा उत्पन्न हों, जैसे कच्छव मत्स्य आदि बहुत से जलचर जीव, सर्प, छपकली, मेंढक आदि कई प्रकार के थलचर जीव और प्रायः सर्व पक्षी या नभचर जीव। (देखो शब्द 'गर्भज') ॥

३. संमूर्छन (सम्मूर्छन)—वे प्राणी जो बिना उपपाद शय्या और बिना गर्भ के अन्य किसी न किसी रीति से उत्पन्न हों। इनके उद्भिज्ज (उद्भिद) स्वेदज, द्वीघनज, आदि अनेक भेद हैं। (देखो शब्द "सम्मूर्छन") ॥

नोट १—एकेन्द्रिय से चौइन्द्रिय तक

के सर्व ही प्राणी सम्मूर्च्छन ही होते हैं। और पंचेन्द्रिय जीव उपर्युक्त तीनों प्रकार के अर्थात् उपपादज, गर्भज और सम्मूर्च्छन होते हैं।

नोट २—सर्व सम्मूर्च्छन प्राणी और उपपादजों में नारकी जीव सर्व ही नपुंसक लिंगी होते हैं। देवगति के सर्व जीव पुल्लिंगी और स्त्रीलिंगी ही होते हैं। और गर्भज जीव पुल्लिंगी, स्त्रीलिंगी और नपुंसकलिंगी तीनों प्रकार के होते हैं॥

नोट ३—अण्डे दो प्रकारके होते हैं—गर्भज और सम्मूर्च्छन। सीप, घोंघा, चींटी (पिपीलिका), मधुमक्षिका, अलि (भौंरा), बर्र, ततईया आदि विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुः इन्द्रिय) जीवों के अण्डे सम्मूर्च्छन ही होते हैं जो गर्भसे उत्पन्न न होकर उन प्राणियों द्वारा कुछ विशेष जाति के पुद्गल स्कन्धों के संगृहीत किये जाने और उन के शरीर के पसेव या मुख की लार (ष्ठीवन) या शरीर की उष्णता आदि के संयोग से अण्डाकार से बन जाते हैं। या कोई २ सम्मूर्च्छन प्राणीके सम्मूर्च्छन अण्डे योनि द्वारा उनके उदर से निकलते हैं, परन्तु वे उदर में भी गर्भज प्राणियों की समान पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित से नहीं बनते, क्योंकि सम्मूर्च्छन प्राणी सर्व नपुंसकलिंगी ही होते हैं। और न वे योनि से सजीव निकलते हैं किन्तु बाहर आने पर जिनके उदरसे निकलते हैं उनकी या उसी जाति के अन्य प्राणियोंकी मुख लार आदि के संयोग से उनमें जीवोत्पत्ति हो जाती है॥

नोट ४—सम्मूर्च्छन प्राणी सर्व ही नपुंसकलिंगी होने पर भी उनमें नर मादीन अर्थात् पुल्लिंगी स्त्रीलिंगी होने की जो कल्पना की जाती है वह केवल उनके बड़े छोटे, मोटे पतले शरीराकार और स्वभाव, शक्ति और कार्य कुशलता आदि किसी न किसी गुण विशेष की अपेक्षासे की जाती है। वास्तव में उनमें गर्भज जीवों की समान शुक्रशोणित द्वारा सन्तानोत्पत्ति करने की योग्यता नहीं होती॥

नोट ५—गर्भज और सम्मूर्च्छन दोनों प्रकार के अण्डज व कुछ अन्य प्राणियों के सम्बन्ध में कुछ निम्न लिखित बातें ज्ञातव्य हैं जो पाश्चात्य विद्वानों और वैज्ञानिकों ने अपने अनुभव द्वारा जान कर लिखी हैं:—

१. घोंघा एक बार में लगभग ५० अण्डे देता है॥

२. दीमक (श्वेत चींटी White aut) एक दिन रात में लगभग अस्सी सहस्र (८००००) अण्डे देती है॥

३. मधुमक्षिका (मुमाखी) एक फ़स्ल में एकलक्ष (१०००००) तक अण्डे रखती है॥

४. कोई २ जाति की मकड़ी दो सहस्र (२०००) तक अण्डे देती है॥

५. कछुवा एक बारमें ५० से १५० तक अण्डे देता है॥

६. हंसनी जब अण्डे देना प्रारम्भ करती है तो १५ या १६ दिन तक बराबर नित्य प्रति देती रहती है॥

७. साधारणतः पक्षियों के अण्डे २, ३ या ४ तक एक बारमें होते हैं पर छोटी जाति के पक्षी १८ या २० तक अण्डे देते हैं॥

८. पक्षियों में शुतरमुर्ग का अण्डा सब से बड़ा लगभग एक फ़ुट लम्बा होता है॥

९. पक्षी साधारणतः बसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में अंडे देते हैं, परन्तु राजहंस और कबूतर आदि कोई २ पक्षी इस नियम से बाहर हैं॥

१०. मछलियां लगभग सर्व ही जाति की सहस्रों, लक्षों और करोड़ों तककी संख्या में अण्डे देती हैं। झींगा मछली जो बहुत छोटी जाति की साधारण मछली होती है वह २१६९९ तक, कौड मछली ३६३६७६० तक और सामन मछली (Salmon) सर्व से अधिक १ करोड़ २० लाख से २ करोड़ तक अंडे देती पाई गई हैं ॥

११. अन्य सन्तान की रक्षा व पालन पोषण करने वाले पक्षियों में मुर्गी और तीतर सर्वोत्कृष्ट धात्री हैं ॥

१२. तीमी आदि जातिकी कुछ मछलियों के अतिरिक्त शेष मछलियां और किसी२ जाति की मेंढ़कियां अपने उदरसे निर्जीव अंडे निकालती हैं पश्चात् नर मत्स्य या नर मेंढक उन अंडों मेंसे जिन पर अपना शुक्र त्याग करता है उनमें जीवोत्पत्ति हो जाती है जिनसे उनकी सन्तान का जन्म होता है।

१३. कोई कोई जलजन्तु ऐसे विलक्षण देखने में आये हैं कि उन के शरीर के टूट टूट कर या तोड़ देने से जितने भाग हो जाते हैं उतने ही नवीन जन्तु प्रत्येक भाग से उसी जाति के बन जाते हैं अर्थात् प्रत्येक भाग में थोड़े ही समय में शिर और दुम (पुच्छ) आदि अन्य शरीर-अवयव निकल आते हैं। इनकी उत्पत्ति का क्रम यही है। यह कीड़े अपनी उत्पत्तिके समय से एक घंटेके अन्दर और कभी कभी आधे घण्टे ही में सन्तानोत्पत्ति योग्य हो जाते हैं। अर्थात् फट कर एक के दो हो जाते हैं। इसी क्रम से प्रति घण्टा एक के दो और दो के चार और चार के आठ इत्यादि बढ़ते बढ़ते २४ घण्टे में केवल एक कीड़े की सन्तान एक करोड़ ६८ लाख के लगभग और हर आधे घण्टे में एकके दो और दो के चार इत्यादि होने से लगभग ३ पद्म (२८१४७४९७६७१०६५६) तक हो जाती है।

१४. कोई कोई जीव जन्तु ऐसे हैं जिन के शरीर पर एक या कभी कभी कई गांठे या व्रण जैसे चिह्न से उत्पन्न हो कर वे फूल जाते हैं फिर धीरे धीरे उन्हीं व्रणों से एक एक नया कीड़ा उसी जाति का उत्पन्न हो जाता है। इन जन्तुओं का सन्तानोत्पत्तिक्रम यही है।

१५. जिन जन्तुओं के कान प्रकट दृष्टिगोचर हैं वे प्रायः बच्चे देते हैं और जिन के कान प्रकट नहीं दिखाई देते या जिन में सुनने की शक्ति ही नहीं होती अर्थात् जिनके कान नहीं होते वे प्रायः अण्डे से उत्पन्न होते हैं या गर्भ के अतिरिक्त अन्य किसी रीति से (सम्मूर्छन) जन्म लेते हैं।

१६. पालू खरहा (Rabbit) छह मास की वय का होकर प्रत्येक वर्ष में सात सात बार तक व्याता है और प्रत्येक बार में ४ से १२ तक बच्चे देता है अन्दाज़ा लगाया गया है कि यदि खरहा (शशक) का केवल एक ही जोड़ा और उसकी सन्तान योग्य खान पान और जलवायु आदि से पालन पोषण पाकर पूर्ण सुरक्षित रहे तो केवल ४ वर्ष ही में उस की सन्तान की संख्या लगभग १२ लक्ष तक हो सकती है।

{ Beeton's Dictionary of Universal Information, शब्द 'Oviparous, Egg etc.' विश्व कोष, शब्द 'अण्डा'; हमारे शरीर की रचना भाग २ पृष्ठ १३२, Every body's Pocket Cyclopaedia; etc. }

अण्डय्य—एक कर्णाटक देशीय जैनकवि।

इस कवि के पितामह का नाम भी अण्डय्य था जिसके शान्त, गुम्मट और वै-

अण, यह तीन पुत्र थे। इन में से बड़े पुत्र शान्त की धर्म पत्नी "बल्लब्बे" के गर्भ से इस कविका जन्म हुआ। इसने 'कब्बिगर' नाम का एक ग्रन्थ शुद्ध कनड़ी भाषा में लिखा है जिस में संस्कृत शब्दों का मिश्रण नहीं है। इस का समय लगभग सन् १२३५ ई० अनुमान किया जाता है।

(क० ५२)

अण्डर—स्थूल निगोदिया जीवों का शरीर विशेष। निगोदिया जीवों के ५ प्रकार के पिंडों या गोलकों में से एक प्रकार का गोलक। सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर का एक अवयव।

स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवि, और शरीर, यह ५ प्रकार के गोलक, कोष्ठ या पिंड हैं। यहां सप्रतिष्ठित प्रत्येक जीवों के शरीर का नाम स्कन्ध है। यह स्कन्ध सर्व लोकाकाश में असंख्यात लोक प्रमाण विद्यमान हैं। एक एक स्कन्ध में असंख्यात लोक प्रमाण "अण्डर" हैं। एक एक अण्डर में असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवास में असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं। एक एक पुलवि में असंख्यात लोक प्रमाण स्थूल निगोद शरीर हैं। और एक एक निगोद शरीर में अनन्तानन्त साधारण निगोदिया जीव हैं। अर्थात् अनन्तानन्तसाधारणनिगोदकायिक जीवों का निवास स्थान एक एक निगोद शरीर है। ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीरों के समूह का नाम पुलवि, असंख्यात लोक प्रमाण पुलवियों के समूह का नाम आवास, और असंख्यात लोक प्रमाण आवासों के समूहका नाम 'अण्डर' है जिनकी असंख्यात लोक प्रमाण संख्या एक एक स्कन्ध में है।

नोट १—लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात हैं। इस प्रदेश संख्या की असंख्यात गुणित संख्याविशेष का नाम "असंख्यात लोक प्रमाण" है। असंख्यात की गणना के असंख्यात भेद हैं। यहां असंख्यात के जिस भेद का ग्रहण किया गया है वह कैवल्यज्ञान-गम्य है।

नोट २—असंख्यात लोक प्रमाण संख्या को ५ बार परस्पर गुणन करने से जो असंख्यात की एक बड़ी संख्या प्राप्त होगी उस की बराबर सर्व स्थूल निगोद शरीरों की संख्या सर्वलोकाकाशमें है। लोकाकाश में असंख्यात लोक प्रमाण स्कन्ध तथा एक एक स्कन्ध में असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर, इत्यादि के विद्यमान् होने की सम्भावना आकाश और पुद्गल द्रव्य की अवगाहना शक्ति के निमित्त से है॥

(गो० जी० १९३, १९४, १९५)

अण्ण—चामुंडराय का अपर नाम।

यह द्राविड़ देशस्थ दक्षिण मथुरा या मदुरा नरेश, गंगकुल चूड़ामणि महाराज राचमल्लके मन्त्री और सेनापति थे। इनका जन्म ब्रह्मक्षत्रिय कुल में वीर नि० सं० १५२३ (वि० सं० १०३५) में हुआ था। इन की उदारता से प्रसन्न होकर राचमल्ल ने इन्हें "राय" की पदवी प्रदान की। यह बड़े शूर और पराक्रमी थे। गोविन्दराज, वेंकोडुराज आदि अनेक राजाओंको इन्होंने पराजित किया था। इसी लिये इन्हें समर-धुरन्धर, वीरमार्तंड, रणरङ्गसिंह, वैरिकुल-कालदण्ड, समर,परशुराम, प्रतिपक्षराक्षस

आदि अनेक उपनाम प्राप्त थे। यह जैनधर्म के अन्यतम श्रद्धालु थे। इसी लिये जैन विद्वानों ने इन्हें "सम्यक्त्वरत्नाकर" शौचाभरण, सत्य युधिष्ठिर आदि अनेक प्रशंसा वाचक पद दिये थे। महाराजा राचमल्ल और यह, दोनों ही श्री अजितसेनाचार्य के शिष्य थे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने सुप्रसिद्ध गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना इन्हीं की प्रेरणा से की थी। इन का बनाया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ त्रिषष्ठिलक्षण महापुराण या चामुंडराय पुराण है। इसमें चौबीसों तीर्थंकरों का चरित्र है। इस के प्रारम्भ में लिखा है कि इस चरित्र को पहिले "कूचिभट्टारक, तदनन्तर नन्दि मुनीश्वर, तत्पश्चात् कवि-परमेश्वर और तत्पश्चात् जिनसेन व गुणभद्र स्वामी, इस प्रकार परम्परा से कहते आये हैं, और उन्हीं के अनुसार मैं भी कहता हूं। मंगलाचरण में गृद्ध पिच्छाचार्य से लेकर अजितसेन पर्यन्त आचार्यों की स्तुति की है और अन्त में श्रुतकेवली, दशपूर्वधर, एकादशांगधर, आचारांगधर, पूर्वांगदेशधर के नाम कह कर अर्हद्बलि, माघनन्दि, भूतबलि, पुष्पदंत, श्यामकुंडाचार्य, तुम्बुलूराचार्य, समन्तभद्र, शुभनन्दि, रविनन्दि, एलाचार्य, वीरसेन, जिनसेनादि का उल्लेख किया है और फिर अपने गुरु की स्तुति की है। यह पुराण प्रायः गद्यमय है। पद्य बहुत ही कम है। कनड़ी के उपलब्ध गद्यग्रन्थों में चामुंडराय पुराण ही सब से पुराना गिना जाता है। गोम्मटसार की प्रसिद्ध कनड़ी टीका (कर्नाटक वृत्ति) भी चामुंडराय ही की बनाई हुई है, जिस परसे केशववर्णि ने संस्कृत टीका बनाई है। इस से मालूम होता है कि, चामुंडराय केवल शूरवीर राजनीतिज्ञ और कवि ही नहीं थे, किन्तु जैनसिद्धान्त के भी बड़े भारी पंडित थे। (पीछे देखो शब्द "अजितसेन आचार्य" पृ० १८८)

(क० १७)

नोट—चामुंडराय का विशेष चरित्र आदि जानने के लिये देखो संस्कृत छन्दोबद्ध 'भुजबलचरित्र' (बाहुबलिचरित्र) छन्द ६, ११, २८, ४३, ५५, ६१, ६२, ६३, आदि और गोम्मटसार कर्मकांड की अन्तिम ७ गाथा ९६६ से ९७२ तक, जिन का सारांश व भावार्थ अन्य कई आवश्यकीय सूचनाओं सहित श्री बृ० द्रव्य संग्रह की विद्वद्वर पं० जवाहर लाल जी कृत टीका की प्रस्तावना में भी पृ० १ से ७ तक दिया है।

इति बुलन्दशहर नगर निवासि श्रीयुत लाला देवीदासात्मज मास्टर बिहारीलाल चैतन्य विरचिते हिन्दी साहित्याभिधानान्तर्गते प्रथमावयवे श्री बृहत् जैनशब्दार्णवे प्रथमो खण्डः

॥ इतिशुभम् ॥

ॐ

शुद्धिपत्र

(कोष के प्रारम्भिक भाग का)

पृष्ठ।कालम।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३। × ।४	बाएँ	दाएँ
७। × ।२३	आवश्कीय	आवश्यकीय
१२। × ।२७	चेनतआर्यवशां-तीसहितजो वह	चेतनआर्यव शांतियुत,जेनरते
१४। × ।१	ज़माना	ज़माना
१४। × ।१६	आसार	असार
१५। × ।१५	तरगं	तरंग
२५। × ।५	ज्योषि	ज्योतिष
२६। × ।६	Treasuries	Treasures
२६। × ।३७	Propagate	propagate
३८।३।२२	अंगुष्ट	अंगुष्ठ
३८।३।२३	"	"
३८।३।२४	"	"
३८।३।२५	"	"
३६।४।२३	अजीव प्राहृे-शिका	अजीवप्राहृे-शिकी
४२।१।२	५५।२	५५।१
४२।१।१६	४५४८।६४	४५४९।६४
४२।१।१७	२२४।२	२२३।२
४२।१।१९	२५३।१,२	२५३।१
४२।१।२४	अन्वय दृष्टान्त	अन्वय दृष्टान्ता-भास
४२।१।३३	६६।२	७०।१
४२।२।१६	२२।१	२१।१
४२।२।३१	अष्ठ उपाम	अष्ठ उपमा
४३।१।५	१५८।"	१५८।१
४३।१।८	२७।१	१२७।१
४३।२।२२	७१।१	७६।१
४३।२।२७	४६।१	२८।१
४४।१।२१	उद्भव	उद्वव

शुद्धिपत्र (कोष के मूल भाग का)

पृष्ठ।कालम।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१।२।१६	बश्वानर	वैश्वानर
२।१।३०	अर्वस्य	अवर्णस्य
८।फु.नो.।६	(४८८५७)	(४८८+५७)
६।२।२८	तौ	तो
१६। × ।४	दन्तिदुग	दन्तिदुर्ग
१६। × ।८	ककराज	कर्कराज
२३।२।३२	ने	नेम
२६।१।३०	अजितशत्रु	जितशत्रु
२७।१।२८	अक्षयपरिवर्तन	अक्षपरिवर्तन
२८।१।६	का	के
२८।२।१७	सिद्धिराशि	सिद्धराशि
३०।२।३३	क्षे.	क्ष.
३१।१।१४	प्रचीन	प्राचीन
३२।२।१०	हैं। उनके	हैं उनके
४१।२।३६	अक्षरमाला	अक्षरमातृका
४३।१।२८	अक्षीरमधु-सर्पिष्क	अक्षीरमधु-सर्पिष्क
४३।२।३७	घति	घृति
४६।२।१६	और बल	और
४७।१।२६	(७–११) रक्तपद्म	(७–११) पंच उदुम्बरफल—रक्तपद्म
५१।१।६,७	और पृ० १३,१४	पृ० १३,१४, और
५०।२।२९	(कठूमरफल,	,कठूमरफल)
५४।२।हेडिंग	अगुरुलत्वघुगुण	अगुरुलघुत्व गुण
५४।२।१	घाकशाक	घाकशाक
५६।२।४	(१)	१.
५६।२।३०	सर्य	सूर्य
५७।१।१२	आकर	आकार
५६।२।३	अजी–	काशी–

पृष्ठ।कालम।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०।१।२	घर्व	वर्ष
६०।१।३	क्रिया	क्रिया)
६१।१।३२	कूटा	कूटा(अनुकूला)
६३।१।१३	प्राता	भ्राता
६५।२।२३	अन्त में	अन्तमें दोनोंहीने
६६।२।३	विमाम	विमान
६८।१।२२	स्वर्म	स्वर्ग
६९।२।३१	अशुद्ध	अशुद्ध
७३।२।१	प्राभृत प्रभृत	प्राभृत प्राभृत
७३।२।२	योग्यद्वार	योगद्वार
७४।२।१५	श्री यतिवृषम	श्रीयतिवृषभ
७५।१।१५	इलोक	श्लोक
७५।१।२१	ने रचा	(यतिवृषभ)नेरचा
७६।१।२१	इयादि	इत्यादि
७६।१।२	रहो	रहा
७६।१।३२	तिर्यञ्य	तिर्यञ्च
७६।१।३४	स्थित	स्थिति
७९।२।१	स्थित ३पल्योपम	स्थिति ३पल्योपम
७६।२।१७	स्थित	स्थिति
८०।२।६	तिर्यज्ज	तिर्यञ्च
८२।२।२०	(कषायरहित)	(कषायसहित)
८८।२।१	प्प्तम	सप्तम
९०।१।१	६६ कोटि,	९९ कोटि, ६६ लक्ष,
९०।२।१	घर्म	धर्म
६९।२।११	योयन	योजन
१०१।१।२२	घ फुट	घन फुट
१०२।१।३२	आदर्चोत्पादक	आश्चर्योत्पादक
१०३।१।४	त्यादि	इत्यादि
१०३।२।२	तृतील	तृतीय
१०८।२।६	या ७	७
१०८।२।१७	सूयांगुल	सूच्यंगुल

पृष्ठ।कालम।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०८।२।१७	का	के
११०।२।५	स्वस्थ्य	स्वस्थ
११४।१।१३	या को या को)	या को या को)
	० १	० १
	१	१
१२४।१।२५	सविस्तार,	सविस्तारे
१२७।१।२	सपञ्च	पञ्च
१२७।१।१७	नरायण	नारायण
१२८।२।११	का पांचवां	के पांचवें
१३५।१।१,२,	अंगुष्ठ	अंगुल
१३७।१।३२	पर्वत	पर्वत
१३९।१।१	पाण्डुक-कंबला	पाण्डु-कंबला
१४४।१।३१	अप्रतिष्ठत	अप्रतिष्ठित
१४७।१।२९	ईसी	इसी
१४८।१।१२	मनुषयादि	मनुष्यादि
१४८।२।२३	पन्तु	परन्तु
१५१।२।२७	साध	साधु
१५६।१।६	रघ	रघु
१५६।१।१२	अरण्य	अनरण्य
१६०।२।८	ज	जो
१६६।२।१	वर्ष	वंश
१६६।३।१	वर्षसंख्या	शासनकालवर्ष
१६६।२।२	सन्तान	सन्तान (महाभारत युद्ध के अन्तसे)
१७१।१।२४	दृष्टिगोचर	दृष्टिगोचर
१७३।१।५	शनागार	अनागार
१७३।२।८	(सहस्राम्र)	(सहस्राम्र)
१७३फु.नो.१८	असाधार	असाधारण
१७४।२।२५	शि खर	शिखर
१७६।३।१	पर्व	पूर्व
१७६।३।५	राज्ययद	राज्यपद
१७६।४।२	पूर्वविदेह, क्षेत्र	पूर्वविदेहक्षेत्र
१७६।४।३	सुसीमा	सुसीमा

पृष्ठ । कालम । पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८१।२।१६	इसीके	इसीके जैसे
१८४।१।१	लर्थंकुरों	तीर्थंकुरों
१८६।२।३०	'शी	वंशी
१८६।१।७	इड्डि	इड्डि
१६८।२।१५	कापिक	कायिक
१६८।२।१६	समारम्भ	समारम्भ
२०६।२।१६	स्वीमि	स्वामी
२१९।१।१२	लुप्रसिद्धपक	एकलुप्रसिद्ध
२१६।१।१३	लैन लेखक हाथरस निवासी	लेखक
२२३।१।१२	भेदो	भेद
२३१।×।हेडिङ्ग	अट्ठानवन	अट्ठावन
२३८।२।१	लक्षापवास	लक्षोपवास
२४४।२।३४	किस	किसी
२४७।१।१३	शरीराङ्गोपांगा-वलोन	शरीराङ्गोपाङ्गा-वलोकन
२४८।२।१४	वर्णनेच्छोत्प-	वर्णनेच्छोत्पा-
२४८।६।४	प्रेमीसुरका	प्रेमीसरकार
२५१।२।३३	धूम्रकेतु	धूम्रकेतु
२५६।२।१८	भमि	भूमि
२६३।१।४	विध-	विध-
२६३।२।१७	४	२०
२७३।२।३	उष्णस्निघ	उष्णस्निग्ध
२७७।२।१४	aut	ant
२७२।१।४	कनड़ी	कनड़ी

नोट—उपरोक्तअशुद्धियों के अतिरिक्त भी छपते समय प्रेस के दबाव में आकर किसी आगे पीछे की या ऊपर नीचे की मात्रा या अनुस्वार (बिन्दु) अथवा रेफाके टूट जानेसे कोई शब्द जहां कहीं अशुद्ध हो गया हो वहां पाठकमहोदय यथाआवश्यक शुद्ध करके पढ़े ॥

स्वल्पार्घ ज्ञानरत्नमाला

के

नियम

(१) इस माला के प्रत्येक रत्न का स्वल्प मूल्य रखना इसका मुख्य उद्देश्य है ।

(२) जो महानुभाव ॥=) प्रवेश शुल्क जमा कराकर माला से प्रकाशित होने वाले सर्व ग्रन्थ रत्नों के अथवा १।) जमा कराकर मन चाहे ग्रन्थ रत्नों के स्थायी ग्राहक बन जाते हैं उन्हें माला का प्रत्येक रत्न **पौने मूल्य** में ही दे दिया जाता है ।

(३) ज्ञानदानोत्साही महानुभावों को पब्लिक पुस्तकालयों या पाठशालाओं या विद्याप्रेमियों आदि में धर्मार्थ बांटने के लिये किसी रत्नकी कम से कम १० प्रति लेने पर ।-), २५ प्रति पर ।=), १०० प्रति पर ।≡) और २५० प्रति पर ॥) प्रति रुपया कमीशन भी काट दिया जाता है ।

माला में आज तक प्रकाशित हुए ग्रन्थ रत्न

१. प्रथमरत्न--"श्री वर्तमान चतुर्विंशति जिन पंचकल्याणक पाठ" (हिन्दी भाषा), यह पाठ काशी निवासी प्रसिद्ध कविवर वृन्दावन जी कृत उनके जीवनचरित, जन्मकुण्डली और वंशवृक्ष तथा उनके रचे अन्य सर्व ग्रन्थों की सूची, प्रत्येक ग्रन्थ का विषय व रचना काल आदि सहित नवीन प्रकाशित हुआ है अर्थात् कविवर कृत "श्री चतुर्विंशति जिन पूजा" तो कई स्थानों से कई बार प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु उनका "पंचकल्याणक पाठ" कल्याणक कूम से आज तक अन्य किसी स्थान से भी प्रकाशित नहीं हुआ । इसमें न केवल २५ पूजाओं (समुच्चय चौबीसी पूजा सहित) का संग्रह है वरन् गर्भ आदि पांचों कल्याणकों में से प्रत्येक कल्याणक सम्बन्धी चौबीसों तीर्थंकरों की चौबीस चौबीस पूजाओं और एक समुच्चय पूजा, एवं सर्व १२१ पूजाओं का संग्रह है । जिसमें सर्व १२१ अष्टक,२४१ अर्घ और८६ जयमालार्घ हैं ।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इस पाठ में यह भी एक मुख्य विशेषता है कि पंच कल्याणकों की कोई तिथि अन्य हिंदी भाषा चौबीसी पाठों की समान अशुद्ध नहीं है । सब तिथियों का मिलान संस्कृत चौबीसी पाठों तथा श्री आदिपुराण, उत्तरपुराण और हरिवंशपुराण से और ज्योतिषशास्त्र के नियमानुकूल गर्भादि के नक्षत्रों से भी भले प्रकार कर लिया गया है । और साथ ही में तीर्थंकर कूम से तथा तिथि कूम से दो प्रकार के शुद्ध पंचकल्याणक तिथि कोष्ठ भी नक्षत्रों सहित इस ग्रन्थरत्न में लगा दिये गये हैं । इन सर्व विशेषताओं पर भी नुछावर केवल ॥=)। सजिल्द की है । वी. पी. मँगाने से डाक व्यय एक प्रति पर ।=) और इससे अधिक हर एक प्रतिपर =) लगेगा । मालाके १।) शुल्क देने वाले स्थायी ग्राहकों को श्री मन्दिर जी के लिये १ प्रति बिना मूल्य ही केवल डाक व्यय लेकर ही दी जा सकती है । किसी अन्य ग्रन्थ के साथ मँगाने से उसका डाक व्यय केवल -)॥ ही लगेगा ।

२.द्वितीय रत्न—"श्री बृहत् जैन शब्दार्णव"—यही ग्रन्थ है जो इस समय पाठकों के हस्तगत है ।

३. तृतीय रत्न—"अग्रवाल इतिहास"—सूर्यवंशकी एक शाखा अग्रवंशका लगभग सात सहस्र (७०००) वर्ष पूर्व से आज तक का कई प्रमाणिक जैन अजैन ग्रन्थों और पट्टावलियों के आधार पर लिखा गया सर्वांग पूर्ण और शिक्षाप्रद इतिहास। मूल्य ≈), लेखक के फोटो सहित ≈)॥

४. चतुर्थरत्न-'संस्कृत-हिन्दीव्याकरण शब्दरत्नाकर" (संक्षिप्त पद्यरचना, काव्य रचना नाट्यकला और संगीतकला आदि सहित)—यह ग्रन्थरत्न इसी 'श्री बृहत् जैन शब्दार्णव' के माननीय लेखक की लेखनी द्वारा लिखा गया है। यह अपने विषय और ढंग का सब से पहिला और अपूर्व ग्रन्थ है। इसी शब्दार्णव के जैसे बड़े बड़े ११६ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इस में जैनेन्द्र, शाकटायन, पाणिनी, सिद्धान्त कौमुदी आदि कई संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों और बहुत से प्रसिद्ध और प्रमाणिक हिन्दी व्याकरण ग्रन्थों, तथा छन्दप्रभाकर, काव्यप्रभाकर, वाग्भटालंकर, नाट्यशास्त्र, संगीतसुदर्शन आदि कई छन्दोग्रन्थ, काव्यालंकार ग्रन्थ, नृाट्य व संगीत ग्रन्थों में आये हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले लगभग सर्व ही शब्दों की निर्दोष परि[illegible] आदि सहित ऐसी उत्तम रीति से क्रमबद्ध दी गई है जिस की सहायता से व्याकरण के विद्यार्थी अपनी हिन्दी भाषा मे इस एक ही ग्रन्थ द्वारा अच्छा ज्ञान प्राप्त करके उपरोक्त विषयों सम्बन्धी परीक्षाओं में अधिक से अधिक उत्तम अंक प्राप्त कर सकेंगे।

अंगरेज़ी मिडिल या हाई स्कूलों तथा इन्टरमिडियेट कालिजों के संस्कृत व हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थी इस से और भी अधिक लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इस ग्रन्थ में प्रारम्भ से अंत तक के सर्व लगभग १००० (एक सहस्र) पारिभाषिक शब्दों के अङ्गरेज़ी पारिभाषिक शब्द (पर्याय वाची शब्द) अङ्गरेज़ी अक्षरों ही में प्रत्येक शब्द के साथ दे दिये गये हैं।

भाषा और उसके भेद, व्याकरण और उसके भेद, अक्षरविचार और अक्षरभेद, लिपि और उसके पर्यायवाची अनेक नामादि, स्वर, व्यंजन, सन्धि, शब्दव उसकी जाति भेद, उपभेदादि, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया व धातु आदि, अव्यय और इन सबके अनेक भेद उपभेद आदि, शब्दरूपान्तर—लिंग, वचन, कारक, पुरुष, विशेषणावस्था, वाच्य, काल, अर्थ या रीति, प्रयोग, कृदन्त, कालरचना आदि—, समास और उसके अनेक भेद उपभेदादि, वाक्य में अन्वय, अधिकारादि व उसके अङ्ग प्रत्यंग आदि, वाक्य भेद—अर्थापेक्षा, वाच्यापेक्षा, रचनापेक्षा—, विरामचिह्न, हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले अन्य अनेक चिह्न, छन्दरचना—छन्द, गति, यति, पाद, दग्धाक्षर, गण आदि—, काव्यरचना—काव्य, काव्यरस, काव्यगुण, काव्य दोष, काव्य रीति, काव्यालंकार, शब्दालंकार, अर्थालङ्कार, उभयालङ्कार और इन सब के लगभग १२५ भेदोपभेदादि, न्यायालङ्कार और उसके ४५ भेद, नाटक सम्बन्धी ४० और संगीत में ६ राग, ३० रागणी, ३० रागपुत्र, ३० रागपुत्रवधू इत्यादि, और ताल नृत्यादि के अनेक भेदोपभेद इत्यादि इस महान ग्रन्थरत्न में हिन्दी साहित्य सम्बन्धी अनेक विषयों का समावेश है। बड़ी दृढ़ता और साहस के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दी व्याकरण के अथवा संस्कृत या हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी भाषा सीखने वाले विद्यार्थियोंके लिये इतना महत्व पूर्ण और उपयोगी अन्यग्रन्थ आज तक एकभी नहीं लिखा गया। तिस पर भी मूल्य केवल १), सजिल्द १।) स्व-

स्पार्थ ज्ञानरत्नमाला के स्थायी ग्राहकों को अर्द्ध मूल्य ही में। पब्लिक पुस्तकालयों को पौने मूल्य में। वी. पी. डाक व्यय एक प्रति का ।=) और इससे अधिक प्रत्येक प्रति का डाक महसूल =) ग्राहकों को देना होगा।

५. पंचमरत्न—उपर्युक्त चारों ग्रन्थ रत्नों के सम्पादक महोदय का संक्षिप्त जीवनचरित्र, उनके रचे ५० से अधिक ग्रन्थों की सूची और उनमें से कुछ की गद्यात्मक और पद्यात्मक रचनाओं के नमूनों सहित। मूल्य ≡)॥ फ़ोटो सहित ।)

६. षष्टमरत्न—श्री वृहत् "हिन्दी शब्दार्थ महासागर" (प्रथमखंड)—यह ग्रन्थरत्न भी इसी श्री वृहत् जैन शब्दार्णव के माननीय लेखक की लेखनी द्वारा लिखा गया है। यह एक चतुर्भाषिक या भाषाचतुष्क शब्द कोष है। हिन्दी भाषा में लिखे पढ़े और बोले जाने वाले लगभग सर्व ही विद्याओं, कलाओं या विषयों सम्बन्धी सर्व प्रकार के शब्दों के संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी अक्षरों में अँग्रेज़ी पर्याय वाची शब्द और उनके अर्थ आदि दिये गयेहैं। शब्द किस भाषासे हिन्दीमें आयाहै तथा उसका शब्द भेद और लिंग भी प्रत्येक शब्द के साथ देदिये गयेहैं। इन विशेषताओंके अतिरिक्त इसका महत्व प्रगट करते हुए दावे के साथ कहा जा सकताहै कि हिन्दीमें प्रयुक्त अधिकसे अधिक जितने शब्दोंका संग्रह इस कोष ग्रन्थ में किया गया है उतनों का संग्रह अन्य किसी भी हिन्दी कोष ग्रन्थमें—कलकत्ते का विश्वकोष (The Encyclopædia Indica of Calcutta) और काशी नागरी प्रचारिणी सभा का हिंदी शब्द सागरमेंभी-नहीं हुआ। अर्थात् इस महान् कोषमें विश्वकोष और हिन्दी शब्दसागर के सर्व ही शब्दोंके अतिरिक्त हिन्दीमें आने वाले अन्य सैकड़ों सहस्रों शब्द भी माननीय लेखक ने रखकर हिन्दी संसार का महान् उपकार किया है। हाँ इतना अवश्य है कि इन उपर्युक्त दोनों वृहत् कोषों के समान इस "वृहत् हिन्दी शब्दार्थ महा सागर" में शब्दों की व्याख्या नहीं दी गई है इसी लिये यह ग्रन्थ रत्न साइज़ (आकार और परिमाण) में उनसे छोटा है, पर उपर्युक्त अपनी अन्य कई विशेषताओं में उनमें से प्रत्येक से अधिक महत्वपूर्ण है। प्रथम खंड लिखा जा चुका है और प्रेस को छपने के लिये दिया जा चुका है। आशा है कि छपकर भी शीघ्र ही तईयार होजायगा। प्रथम खंड का मूल्य लग भग २) रहेगा।

नोट—इस वृहत्जैन शब्दार्णव के लेखक महोदय रचित,अनुवादित व प्रकाशित हिन्दी उर्दू,अंग्रेज़ी,अन्यान्य सर्व ग्रन्थ भी जिनका संक्षिप्त विवरण पंचम रत्न में (श्री इसी शब्दार्णव के प्रारम्भ में जोड़ दिया गया है) देदिया गया है नीचे लिखे पते पर माला के स्थायी ग्राहकों को माला के उपरोक्त नियमानुकूल मिल सकते हैं।

शान्तीशचन्द्र जैन,

मैनेजर स्वल्पार्थज्ञानरत्नमाला,

बाराबंकी (अवध)